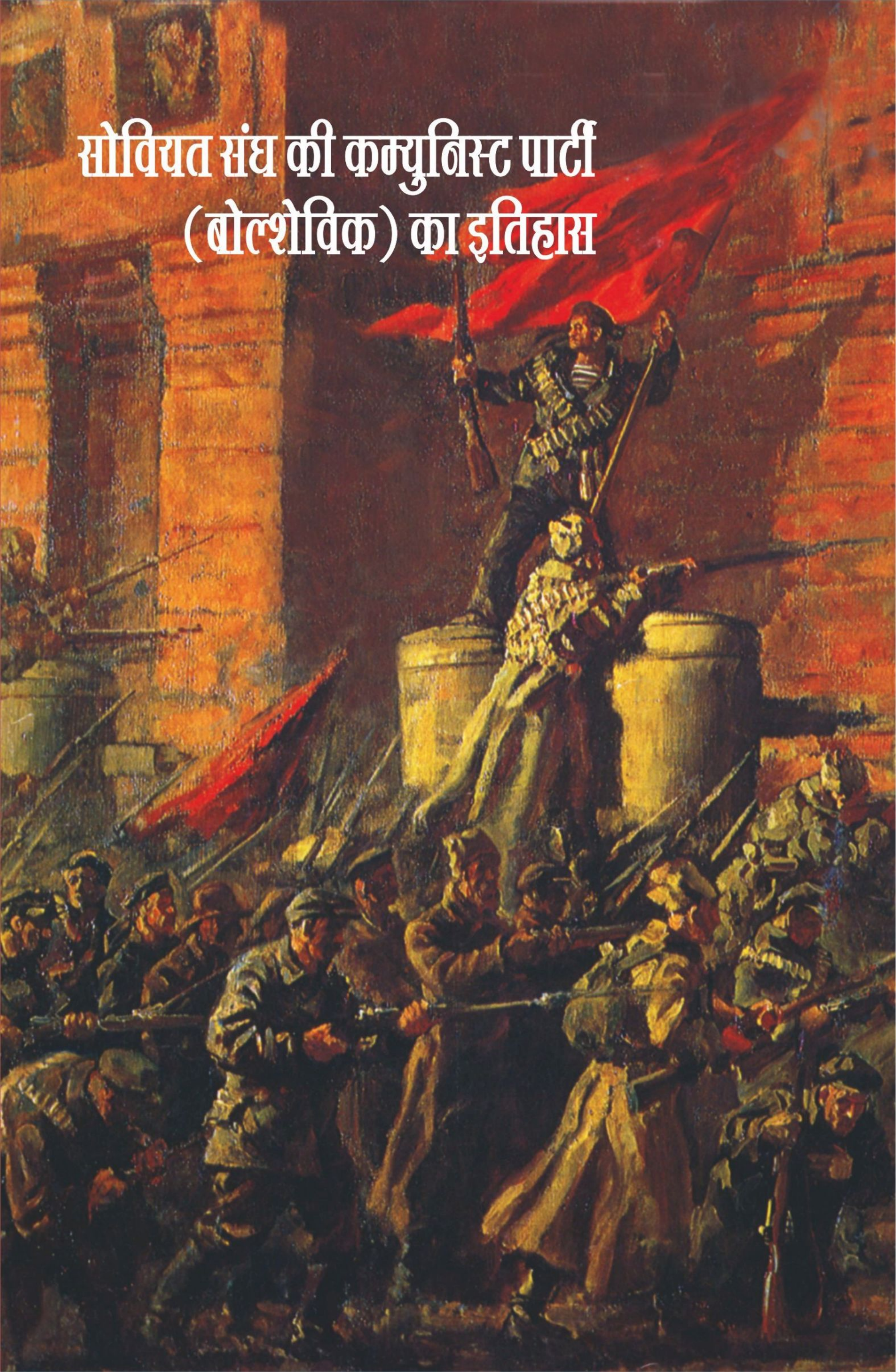
सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) का इतिहास



सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) का इतिहास

यह पुस्तक राहुल फ़ाउण्डेशन द्वारा प्रकाशित की गई है व प्रगतिशील साहित्य के वितरक जनचेतना द्वारा कम से कम दामों में जनता तक पहुँचाई जा रही है। अगर आप पीडीएफ की बजाय प्रिण्ट कॉपी से पढ़ना चाहते हैं तो जनचेतना से खरीद सकते हैं।

ऑनलाइन लिंक : http://janchetnabooks.org/product/soviet-sangh-kicommunist-party-bolshevik-ka-itihas/

जनचेतना सम्पर्क : D-68, Niralanagar, Lucknow-226020
0522-4108495; 09721481546
janchetna.books@gmail.com
Website - http://janchetnabooks.org

इस पीडीएफ फाइल के अंत में जनचेतना द्वारा वितरित किये जा रहे प्रगतिशील, मानवतावादी व क्रान्तिकारी साहित्य की सूची भी दी गयी है। जनचेतना द्वारा वितरित किया जा रहा प्रगतिशील, मानवतावादी साहित्य दिये गये अमेजन लिंक से भी खरीद सकते हैं।

अमेजन लिंक : https://goo.gl/bxmZR5



मज़दूर बिगुल

दुनिया के मज़दूरो, एक हो!

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) का इतिहास

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) का इतिहास

(संक्षिप्त कोर्स)

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) की
केन्द्रीय कमेटी के कमीशन द्वारा सम्पादित

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) की
केन्द्रीय कमेटी द्वारा अनुमोदित, 1938

अनुवादक : रामविलास शर्मा

राहुल फाउण्डेशन

69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226 006

Historyof the Communist Party of the Soviet Union (Bolsheviks)
Short Course

Edited by a Commission of the CPSU (B)
Authorized by the Central Committee of the CPSU (B)

मूल्य : रु. 90.00

प्रथम हिन्दी संस्करण : दिसम्बर, 1943
यह संस्करण : अप्रैल, 2003
पुनर्मुद्रण : जनवरी, 2008

प्रकाशक : राहुल फाउण्डेशन
69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006

कम्प्यूटर टाइपसेटिंग : कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन

मुद्रक : वाणी ग्राफिक्स, अलीगंज, लखनऊ

Soviet Sangh Ki Communist Party (Bolshevik) Ka Itihas

ISBN : 978-81-87728-15-3

विषय सूची

तीसरा अध्याय

रूस-जापान युद्ध और पहली रूसी क्रान्ति के समय बोल्शेविक और मेन्शेविक

(1904-1907)

चौथा अध्याय

स्तोलिपिन प्रतिक्रियावाद के दौर में मेन्शेविक और बोल्शेविक। बोल्शेविकों द्वारा स्वतंत्र मार्क्सवादी पार्टी का निर्माण।

(1908-1912)

पाँचवाँ अध्याय

प्रथम साम्राज्यवादी युद्ध के पहले मजदूर आन्दोलन की नयी उठान के दौर में बोल्शेविक पार्टी।

(1912-1914)

छठा अध्याय

साम्राज्यवादी युद्ध में बोल्शेविक पार्टी। रूस में दूसरी क्रान्ति।

(1914-मार्च 1917)

नवाँ अध्याय

आर्थिक पुनर्संगठन की शान्तिमय कार्रवाई की ओर संक्रमण के दौर में बोल्शेविक पार्टी

(1921-1925)

दसवाँ अध्याय

देश के समाजवादी औद्योगीकरण के लिए संघर्ष में बोल्शेविक पार्टी

(1926-1929)

ग्यारहवाँ अध्याय

खेती के सामूहिकीकरण के लिए संघर्ष में बोल्शेविक पार्टी

(1930-1934)

बारहवाँ अध्याय

समाजवादी समाज के निर्माण को पूरा करने के संघर्ष में बोल्शेविक पार्टी। नये विधान का प्रचलन।

(1935-1937)

सोवियत संघ की
कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक)
का इतिहास

भूमिका*

उन्नीसवीं सदी के आखिरी दिनों में रूस के प्रारम्भिक छोटे-मोटे मार्क्सवादी गुटों और हलकों में जन्म लेकर सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) बीसवीं सदी की महान बोल्शेविक पार्टी बनी, जो आज संसार के किसान-मजदूरों का पहला समाजवादी राज चला रही है। इस तरह, वह अपने जीवन का एक लम्बा और शानदार रास्ता तय कर चुकी है।

क्रान्ति से पहले के रूस के मजदूर आन्दोलन के आधार पर इस पार्टी का विकास हुआ। उसका जन्म उन मार्क्सवादी गुटों और हलकों से हुआ जिन्होंने अपना सम्बन्ध मजदूर आन्दोलन से कायम किया था और उसमें समाजवादी चेतना पैदा की थी। मार्क्सवाद-लेनिनवाद के क्रान्तिकारी सिद्धान्त हमेशा इस पार्टी को रास्ता दिखाने वाले रहे हैं। साम्राज्यवाद, साम्राज्यवादी जंगों और सर्वहारा क्रान्तियों के युग की नयी परिस्थितियों में उसके नेताओं ने मार्क्स और एंगेल्स के सिद्धान्तों को और विकसित किया और वे उन्हें एक ऊँची सतह तक ले आये।

अपने बुनियादी सिद्धान्तों के लिए मजदूर आन्दोलन के भीतर की निम्न-पूँजीवादी पार्टियों से लड़कर यह पार्टी बढ़ी और पुष्ट हुई है। समाजवादी-क्रान्तिकारियों (और उनसे भी पहले उनके पुरखे नरोदवादियों), मेन्शेविकों, अराजकतावादियों और सभी तरह के पूँजीवादी राष्ट्रवादियों से लड़कर और पार्टी के भीतर भी मेन्शेविक, अवसरवादी रुझानों, त्रात्स्कीपंथियों, बुखारिन के अनुयायियों, राष्ट्रवादी गुमराहियों में पड़ने वालों और लेनिनवाद के दूसरे विरोधी गुटों से लड़ कर यह पार्टी बढ़ी और पुष्ट हुई है।

मजदूर वर्ग और सभी मेहनतकशों के सारे दुश्मनों से-जमीन्दारों, पूँजीपतियों, धनी किसानों, तोड़-फोड़ करने वालों, जासूसों और चारों तरफ के पूँजीवादी राज्यों के दलालों से लड़कर क्रान्तिकारी संघर्ष की आँच में यह पार्टी पकी और मजबूत हुई है।

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) का इतिहास तीन क्रान्तियों का इतिहास है : 1905 की पूँजीवादी-जनवादी क्रान्ति, फरवरी 1917 की पूँजीवादी-जनवादी क्रान्ति और अक्टूबर 1917 की समाजवादी क्रान्ति का इतिहास।

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) का इतिहास जारशाही के नाश और

---

* मूल पुस्तक के लिए पार्टी द्वारा तैयार भूमिका

पूँजीपतियों और जमीन्दारों की ताकत के नाश का इतिहास है। इसका इतिहास घरेलू जंग में दूसरे देशों की फौजी दखलन्दाजी की हार का इतिहास है। इसका इतिहास हमारे देश में समाजवादी समाज और सोवियत राज्य के निर्माण का इतिहास है।

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) के इतिहास के अध्ययन से हम उस अनुभव से परिचित होंगे जिसे हमारे देश के मजदूरों और किसानों ने समाजवाद के लिए लड़कर हासिल किया है।

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) के इतिहास का अध्ययन, मेहनतकश जनता और मार्क्सवाद-लेनिनवाद के सभी दुश्मनों से हमारी पार्टी की लड़ाई के इतिहास का अध्ययन, हमें **बोल्शेविज्म में माहिर होने में** मदद देता है तथा राजनीतिक तौर से और सजग करता है।

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) के वीरतापूर्ण इतिहास का अध्ययन हमें सामाजिक विकास और राजनीतिक संघर्ष के नियमों के ज्ञान से, क्रान्ति की मूल प्रेरक शक्तियों के ज्ञान से लैस करता है।

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) के इतिहास के अध्ययन से लेनिन और स्तालिन की पार्टी के ध्येय में हमारा विश्वास दृढ़ होता है, संसार भर में कम्युनिज्म की जीत में हमारा विश्वास दृढ़ होता है।

इस पुस्तक में सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) का संक्षिप्त इतिहास है।

पहला अध्याय

रूस में सामाजिक-जनवादी मजदूर पार्टी के निर्माण के लिए संघर्ष

(1883-1901)

1. भूदास प्रथा का खात्मा और रूस में औद्योगिक पूँजीवाद का विकास। आधुनिक औद्योगिक सर्वहारा वर्ग का उत्थान। मजदूर आन्दोलन के पहले कदम।

दूसरे देशों के मुकाबले, जारशाही रूस पूँजीवादी विकास की राह पर देर से आगे बढ़ा। 1860 के पहले, रूस में बहुत कम मिलें और कारखाने थे। आर्थिक व्यवस्था का मुख्य रूप भूदास प्रथा पर निर्भर जागीरें थीं। भूदास प्रथा के रहते हुए उद्योग-धन्धों का सच्चा विकास नहीं हो सकता था। खेती में भूदासों की बेगार से पैदावार कम होती थी। आर्थिक विकास के समूचे क्रम ने यह लाजिमी कर दिया था कि भूदास प्रथा का खात्मा किया जाये। 1861 में, क्रीमिया की लड़ाई में हारने से कमजोर होकर और जमीन्दारों के खिलाफ किसानों के विद्रोह से डर कर जारशाही सरकार को मजबूर होकर भूदास प्रथा का खात्मा करना पड़ा।

लेकिन, भूदास प्रथा का खात्मा हो जाने के बाद भी जमीन्दार किसानों को सताते रहे। उनकी 'मुक्ति' के सिलसिले में उन्होंने किसानों को लूटा। जिस जमीन को किसान पहले जोतते-बोते थे, उसके काफी हिस्सों को उन्होंने घेर लिया या छाँट लिया। जमीन के इन छाँटे हुए हिस्सों को किसान *अतरेज्की* (छाँटी हुई जमीन) कहते थे। किसानों को मजबूर किया गया कि अपनी मुक्ति के लिए करीब दो अरब रूबल जमीन्दारों को मुक्ति-धन के रूप में दें।

जब भूदास प्रथा का खात्मा हो गया, तब किसानों को मजबूर किया गया कि बहुत ही कड़ी शर्तों पर वे जमीन्दारों से लगान पर जमीनें लें। नकदी लगान देने के अलावा, किसानों को अकसर जमीन्दार मजबूर करते थे कि अपने ही घोड़ों और हल-माची से उनकी जमीन का एक निश्चित हिस्सा वे बिना पैसे लिये जोतें-बोएँ।

इसे *अत्राबोत्की या बार्शचीना* (लगान के बदले मेहनत, बेगार) कहते थे। ज्यादातर

किसानों को मजबूर होना पड़ता था कि वे जमीन्दारों को गल्ले की शकल में लगान दें, जो उनकी फसल का आधा होता था। इसे *इस्पोलू* (अधियारी) कहते थे।

इस तरह, हालत करीब-करीब वैसी ही रही जैसी कि भूदास प्रथा में थी। फर्क यही था कि किसान निजी तौर पर अब आजाद था और जानवर की तरह उसकी खरीद-फरोख्त नहीं हो सकती थी।

जमीन्दारों ने पिछड़े हुए किसान कुनबों को शोषण के विभिन्न तरीकों (लगान, जुर्माना) से बेदम कर दिया था। जमीन्दारों के सताने की वजह से, ज्यादातर किसान अपनी खेती में तरक्की नहीं कर सकते थे। इसीलिए, क्रान्ति से पहले के रूस में खेती बहुत ज्यादा पिछड़ी हुई थी, जिससे अकसर फसल नहीं होती थी और अकाल पड़ते थे।

भूदास प्रथा के अवशेषों से, भारी टैक्स और जमीन्दारों को मुक्ति धन देने से, जो कभी-कभी किसान कुनबे की आय से भी ज्यादा होता था, किसान तबाह हो गये। वे दर-दर के भिखारी बन गये और रोजी की तलाश में उन्हें मजबूरन अपने गाँव छोड़ने पड़े। वे मिलों और कारखानों में काम करने चले गये। कारखानेदारों को इससे सस्ते में श्रमशक्ति खरीदने का जरिया मिल गया।

मजदूरों और किसानों के सिर पर मुंशी, दारोगा, चौकीदार, जमादार वगैरह की एक पूरी फौज थी जो शोषित और मेहनत करने वाली जनता से जार, पूँजीपतियों और जमीन्दारों की रक्षा करती थी। 1903 तक शारीरिक दण्ड देने की प्रथा चालू थी। हालाँकि भूदास प्रथा का खात्मा कर दिया गया था, फिर भी छोटे से छोटे कसूर के लिए और टैक्स नहीं देने पर किसानों को पीटा जाता था। पुलिस और कज्जाक मजदूरों को मारते थे, खास तौर से हड़ताल में, जबकि मजदूर कारखानेदारों द्वारा जिन्दगी असह्य बना दिये जाने पर काम बन्द कर देते थे। जारशाही में मजदूरों और किसानों के कोई भी राजनीतिक अधिकार नहीं थे। निरंकुश जारशाही जनता की सबसे बड़ी शत्रु थी।

जारशाही रूस राष्ट्रीयताओं के लिए जेलखाना था। वहाँ की अनेकों गैर-रूसी राष्ट्रीयताओं को कोई भी अधिकार नहीं दिये गये थे और उन्हें हर तरह से लगातार अपमानित किया और नीचा दिखाया जाता था। जारशाही सरकार ने रूसी जनता को सिखलाया था कि वह इन कौमी इलाकों के रहने वालों को नफरत की नजर से देखे, उन्हें घटिया नस्ल का समझे। सरकारी तौर पर वह उन्हें *इनोरोत्सी* (पराये) कहती थी और उनके खिलाफ घृणा और नफरत फैलाती थी। जारशाही सरकार जानबूझकर कौमी द्वेष की आग लगाती थी, एक राष्ट्रीयता को दूसरी राष्ट्रीयता के खिलाफ उकसाती थी, यहूदियों के कत्ले आम कराती थी और ट्रांस-काकेशया में तातारों और आरमीनियनों को एक-दूसरे का कत्ले आम करने के लिए भड़काती थी।

कौम इलाकों में सभी नहीं, तो करीब-करीब सभी सरकारी जगहों पर रूसी अफसर होते थे। सरकारी संस्थाओं और कचहरियों में सभी काम रूसी भाषा में होता था। गैर-रूसी राष्ट्रीयताओं की भाषाओं में अखबार और किताबें छापने या स्कूलों में वहाँ की भाषा में पढ़ाने की मनाही थी। जारशाही सरकार कोशिश करती थी कि कौमी संस्कृति की हर चिनगारी बुझा दी जाये। वह गैर-रूसी राष्ट्रीयताओं को जबर्दस्ती “रूसी बनाने”

की नीति पर चलती थी। गैर-रूसी राष्ट्रीयताओं के लिए जारशाही उन्हें सताने वाला जल्लाद थी।

भूदास प्रथा के खात्मे के बाद, रूस में औद्योगिक पूँजीवाद का विकास काफी तेजी के साथ हुआ, हालाँकि भूदास प्रथा के अवशेषों से उसमें अब भी अड़चनें पड़ती थीं। 1865 से 1890 तक, 25 वर्षों में, बड़ी मिलों और कारखानों में और रेलों पर काम करने वाले मजदूरों की तादाद 7,06,000 से बढ़ कर 14,33,000 हो गई, यानी दूनी से ज्यादा हो गयी।

1890 के बाद, बड़े पैमाने के पूँजीवादी उद्योग-धन्धे और भी तेजी के साथ विकसित होने लगे। दस साल के बाद, रूस के पचास यूरोपीय सूबों में ही बड़ी मिलों और कारखानों में, खानों और रेलों में काम करने वाले मजदूरों की संख्या 22,07,000 और समूचे रूस में उनकी संख्या 27,92,000 हो गई थी।

यह एक आधुनिक औद्योगिक सर्वहारा वर्ग था। यह वर्ग भूदास प्रथा के जमाने में कारखानों में काम करने वाले मजदूरों से और छोटी-मोटी दस्तकारी और दूसरी तरह के धन्धों में काम करने वाले मजदूरों से बुनियादी तौर पर भिन्न था। वह इसलिए भिन्न था कि बड़े पूँजीवादी धन्धों में काम करने वाले मजदूरों के अन्दर एकता की भावना थी और इसलिए भी कि उसके अन्दर लड़ाकू क्रान्तिकारी गुण थे।

1890 के बाद उद्योग-धन्धों में जो बढ़त दिखाई दी, उसका खास सबब बड़े पैमाने पर रेलों का बनना था। दस सालों में (1890 से 1900 तक) 2,100 वर्स्त नई रेलें बिछाई गईं। रेलों की वजह से धातु की भारी माँग हुई (रेलों के लिए, इंजनों और गाड़ियों के लिए) और ज्यादा तादाद में ईंधन, कोयला और तेल के लिए भी माँग बराबर बढ़ती गयी। इस वजह से धातुओं और ईंधन के उद्योगों का विकास हुआ।

सभी पूँजीवादी देशों की तरह, क्रान्ति से पहले के रूस में उद्योग-धन्धों में बढ़त के बाद औद्योगिक संकट और ठहराव का जमाना आता था, जिसका गहरा असर मजदूरों पर पड़ता था और वे लाखों की तादाद में बेकारी और गरीबी के शिकार होते थे।

हालाँकि भूदास प्रथा के खात्मे के बाद रूस में पूँजीवाद का विकास काफी तेजी से हुआ, फिर भी आर्थिक विकास में रूस दूसरे पूँजीवादी देशों से काफी पीछे था। जनता का बहुसंख्यक हिस्सा अब भी खेती में लगा हुआ था। अपनी प्रसिद्ध पुस्तक **'रूस में पूँजीवाद का विकास'** में लेनिन ने 1897 की आम जनगणना से महत्त्वपूर्ण आँकड़े दिये थे। इन आँकड़ों से मालूम होता था कि सम्पूर्ण जनता का करीब 5/6 भाग खेती में लगा हुआ है और सिर्फ करीब 1/6 हिस्सा बड़े और छोटे उद्योग-धन्धों, व्यापार, रेलों और जल-मार्गों, मकान बनाने के कामों और लकड़ी वगैरह के काम में लगा हुआ है।

इससे मालूम होता है कि हालाँकि रूस में पूँजीवाद का विकास हो रहा था, पर वह अब भी एक खेतिहर, आर्थिक रूप से पिछड़ा हुआ देश, एक निम्न-पूँजीवादी देश था। यानी, वह एक ऐसा देश था जिसमें छोटी मिल्कियत पर आधारित कम पैदावार वाली निजी खेती की अब भी बहुतायत थी।

पूँजीवाद शहरों में ही नहीं बल्कि देहात में भी विकसित हो रहा था। क्रान्ति से पहले

के रूस के सबसे बड़े वर्ग, किसानों में, भीतर से टूटने, छिन्न-भिन्न होने का सिलसिला जारी था। ज्यादा खाते-पीते किसानों से धनी किसान का एक ऊपरी स्तर पैदा हो रहा था। ये देहात के पूँजीपति थे। दूसरी तरफ बहुत से किसान तबाह हो रहे थे और गरीब किसानों, देहाती सर्वहारा और अर्द्ध-सर्वहारा की तादाद बढ़ रही थी। जहाँ तक मध्यम किसानों का सवाल था, उनकी संख्या साल-दर-साल घटती जाती थी।

1903 में, रूस में करीब एक करोड़ किसान कुनबे थे। **'गाँव के गरीबों से'** नाम की अपनी पुस्तिका में, लेनिन ने हिसाब लगाया था कि इस तादाद में कम से कम 35,00,000 कुनबे ऐसे थे जिनके पास घोड़े नहीं थे (रूस में हल जोतने का काम घोड़ों से लिया जाता था-अनु.)। ये सबसे गरीब किसान थे जो आम तौर से अपनी जमीन का थोड़ा हिस्सा ही बोते थे, बाकी धनी किसानों को उठा देते थे और खुद रोजी के लिए दूसरे उपाय तलाश करने निकल पड़ते थे। इन किसानों की हालत सर्वहारा के सबसे नजदीक थी। लेनिन ने इन्हें देहाती सर्वहारा या अर्द्ध-सर्वहारा कहा था।

दूसरी तरफ, (उन एक करोड़ किसान कुनबों में से) पन्द्रह लाख धनी किसानों के परिवार ऐसे थे जिन्होंने किसानों की कुल खेती की आधी जमीन अपने हाथ में कर रखी थी। ये देहाती पूँजीपति गरीब और मध्यम किसानों को पीसकर खुद धनी बन रहे थे। वे खेतिहर मजदूरों की जांगर से फायदा उठा रहे थे और देहाती पूँजीपति बन रहे थे।

रूस का मजदूर वर्ग 1870 में ही, खास तौर से 1880 के बाद, जागने लगा था और पूँजीपतियों के खिलाफ उसने संघर्ष छेड़ दिया था। जारशाही रूस में मजदूरों की जिन्दगी बड़ी ही कठिन थी। 1880 के करीब, मिलों और कारखानों में काम करने का दिन साढ़े बारह घण्टे से कम का नहीं था और सूती धन्धों में 14 से 15 घण्टे तक का हो जाता था। औरतों और बच्चों की मेहनत का शोषण बड़े पैमाने पर होता था। बच्चे उतने ही घण्टे काम करते थे जितने घण्टे बड़े, लेकिन औरतों की तरह तनख्वाह बहुत कम पाते थे। मजदूरी बेहद कम दी जाती थी। ज्यादातर मजदूरों को 7 या 8 रूबल माहवार दिया जाता था। धातु के कारखानों और ढलाई घरों के मजदूरों को, जो सबसे ज्यादा तनख्वाह पाते थे, 35 रूबल माहवार से ज्यादा मजदूरी नहीं मिलती थी। मजदूरों की रक्षा करने के लिए कोई भी कायदे-कानून नहीं थे। नतीजा यह होता था कि मजदूर भारी तादाद में घायल होते और मारे जाते थे। मजदूरों का बीमा नहीं होता था और हर तरह की दवा-दारू के लिए उन्हें पैसे देने होते थे। इनके रहने के घरों की हालत भयानक थी। कारखाने की बैरकों में छोटी-छोटी 'खोलियों' में दस-दस, बारह-बारह मजदूर ठूँस दिये जाते थे। मजदूरी देने के मामले में कारखानेदार अकसर मजदूरों को ठगते थे। कारखाने की दूकानों में भारी कीमतें देकर चीजें खरीदने के लिए मजदूरों को मजबूर किया जाता था और जुर्माने के जरिये उनकी जेबें कतरी जाती थीं।

मजदूर एकजुट होने लगे और अपनी असह्य परिस्थितियों में सुधार करने के लिए कारखानेदारों के सामने मिली-जुली माँगें रखने लगे। काम बन्द करके, वे हड़तालें करने लगे। 1870 और '80 में जो शुरू-शुरू की हड़तालें हुईं, आम तौर से उनका कारण बेहद जुर्माना, पगार के मामले में मजदूरों को झाँसा देना और ठगना तथा मजदूरी की दरों में

कमी करना होता था।

इन शुरू की हड़तालों में, मजदूर निराश होकर कभी-कभी मशीनें तोड़ देते थे, कारखानों की खिड़कियाँ फोड़ देते थे और कारखानों की दूकानों और उनके दफ्तरों को बर्बाद कर देते थे।

ज्यादा आगे बढ़े हुए मजदूर यह समझने लगे कि पूँजीपतियों के खिलाफ संघर्ष में अगर उन्हें सफल होना है तो उन्हें संगठित होना पड़ेगा। मजदूरों की यूनियनें बनने लगीं।

1875 में, दक्षिण रूस के मजदूरों की यूनियन ओदेसा में बनी। मजदूरों का यह पहला संगठन आठ या नौ महीने चला और उसके बाद जार की हुकूमत ने उसे कुचल डाला।

1878 में, रूसी मजदूरों की उत्तरी यूनियन सेण्ट पीटर्सबर्ग (सेण्ट पीटर्सबर्ग) में बना। इसके नेता खाल्तूरिन, जो बढ़ई था, और अबनोर्स्की, जो फिटर था, बने। यूनियन के कार्यक्रम के अनुसार, यूनियन के उद्देश्य और ध्येय वैसे ही थे जैसे पश्चिम की सामाजिक-जनवादी मजदूर पार्टियों के। यूनियन का अन्तिम ध्येय यह था कि वह समाजवादी क्रान्ति करे-"मौजूदा राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था को खत्म किया जाये, जो एक बहुत ही अन्यायपूर्ण व्यवस्था है।" अबनोर्स्की, जो यूनियन के जन्मदाताओं में से था, कुछ समय तक विदेश रह आया था और वहाँ पर वह मार्क्सवादी सामाजिक-जनवादी पार्टियों से और पहली इण्टरनेशनल की कार्रवाइयों से, जिसका संचालन मार्क्स करते थे, परिचित हो आया था। इस बात की छाप रूसी मजदूरों की उत्तरी यूनियन के कार्यक्रम पर पड़ी। यूनियन का फौरी उद्देश्य जनता के लिए राजनीतिक स्वाधीनता और राजनीतिक अधिकार (बोलने, अखबार निकालने, सभा करने वगैरह की आजादी) हासिल करना था। फौरी माँगों में काम के दिन के घण्टे कम करने की माँग भी शामिल थी।

यूनियन की सदस्यता 200 तक पहुँच गयी और करीब इतने ही उसके हमदर्द थे। वह मजदूरों की हड़तालों में हिस्सा लेने लगी, उनका नेतृत्व करने लगी। जार की हुकूमत ने मजदूरों की इस यूनियन को भी कुचल दिया।

लेकिन, मजदूर आन्दोलन एक जिले से दूसरे जिले तक फैलता हुआ बराबर बढ़ता रहा। 1880 के आसपास बहुत सी हड़तालें हुईं। पाँच साल के दौरान (1881 से '86 तक) 48 हड़तालें हुईं, जिनमें 80,000 मजदूरों ने हिस्सा लिया।

क्रान्तिकारी आन्दोलन के इतिहास में बहुत ही महत्त्वपूर्ण भूमिका उस बड़ी हड़ताल की थी, जो 1885 में अरेखोवोजुयेवो की मोरोजोव मिल में हुई थी।

इस मिल में करीब 8,000 मजदूर काम करते थे। उनके काम करने की हालत दिन पर दिन गिरती जाती थी। 1882 से 84 तक, पाँच बार उनकी मजदूरी में कटौती हुई। 1884 में, मजदूरी की दरों में एकबारगी 25 फीसदी कमी की गयी। इसके अलावा, कारखानेदार मोरोजोव जुर्माने करके मजदूरों को सताता था। हड़ताल के बाद जो मुकदमा हुआ, उसमें पता चला कि मजदूर जो भी कमाते थे उसमें से फी रूबल 30 से 50 कोपेक तक जुर्माने की शक्ल में कारखानेदार की जेब में चला जाता था। मजदूर यह डकैती और नहीं सह सके। जनवरी 1885 में उन्होंने हड़ताल कर दी। हड़ताल का संगठन पहले से ही किया गया था। राजनीतिक तौर से आगे बढ़े हुए मजदूर प्योत्र मोयरूसेयंको ने उसका

नेतृत्व किया। वह रूसी मजदूरों की उत्तरी यूनियन का सदस्य रह चुका था और उसे थोड़ा बहुत क्रान्तिकारी अनुभव हासिल था। हड़ताल शुरू होने से पहले मोयरूसेयंको और दूसरे बुनकरों ने, जो ज्यादा वर्ग-चेतन थे, मिल-मालिक के सामने पेश करने के लिए कुछ माँगें तैयार कीं। मजदूरों की एक गुप्त सभा में इन माँगों का अनुमोदन किया गया। खास माँग बेहिसाब जुर्मानों को खत्म करने की थी।

हथियारबन्द शक्ति से इस हड़ताल को दबाया गया। 600 से ऊपर मजदूर पकड़ लिये गये और बीसों को मुकदमा चलाने के लिए बन्द कर रखा गया।

इसी तरह की हड़तालें 1885 में इवानोवो-वजनेसेंस्क में हुई।

मजदूर आन्दोलन की बढ़त से डर कर, अगले साल जार सरकार को मजबूरन जुर्मानों के बारे में एक कानून बनाना पड़ा। कानून यह था कि जुर्माने से जो पैसा मिले वह कारखानेदारों की जेबों में नहीं जाये बल्कि खुद मजदूरों की जरूरतों में लगाया जाये।

मोरोजोव मिल और दूसरी जगह की हड़तालों ने मजदूरों को सिखा दिया कि संगठित होकर संघर्ष करने से बहुत कुछ हासिल हो सकता है। मजदूर आन्दोलन ऐसे योग्य नेता और संगठनकर्ता पैदा करने लगा जो दृढ़ता के साथ मजदूर वर्ग के हितों का समर्थन करते थे।

इसके साथ ही मजदूर आन्दोलन की बढ़त के आधार पर और पश्चिमी यूरोप के मजदूर आन्दोलन के असर से, रूस में पहले मार्क्सवादी संगठन बनने लगे।

2. रूस में नरोदवाद (लोकवाद) और मार्क्सवाद। प्लेखानोव और उनका 'श्रमिक मुक्ति दल'। नरोदवाद के खिलाफ प्लेखानोव का संघर्ष। रूस में मार्क्सवाद का फैलना।

मार्क्सवादी गुटों के जन्म लेने से पहले रूस में क्रान्तिकारी काम नरोदवादी किया करते थे। ये लोग मार्क्सवाद के विरोधी थे।

पहला रूसी मार्क्सवादी गुट 1883 में बना। यह 'श्रमिक मुक्ति दल' था, जिसे जी.वी. प्लेखानोव ने रूस के बाहर जिनेवा में बनाया था। क्रान्तिकारी काम की वजह से, जार सरकार के दमन से बचने के लिए उन्हें वहाँ मजबूरन जाना पड़ा था।

पहले प्लेखानोव खुद भी नरोदवादी थे। लेकिन विदेश में मार्क्सवाद का अध्ययन करने के बाद, उन्होंने नरोदवाद से नाता तोड़ लिया और मार्क्सवाद के श्रेष्ठ प्रचारक बन गये।

'श्रमिक मुक्ति दल' ने रूस में मार्क्सवाद फैलाने में बहुत कुछ किया। इस गुट के लोगों ने मार्क्स और एंगेल्स की पुस्तकों का रूसी में अनुवाद किया। इन किताबों में **कम्युनिस्ट घोषणापत्र, मजदूरी और पूँजी, समाजवाद-काल्पनिक और वैज्ञानिक** आदि थीं। उन्होंने इन किताबों को बाहर छपवाया और गुप्त रूप से रूस में बँटवाया। प्लेखानोव, जासूलिच, अक्सेलरोद और इस गुट के दूसरे लोगों ने मार्क्स और एंगेल्स के सिद्धान्तों की व्याख्या करते हुए, **वैज्ञानिक समाजवाद** के विचारों की व्याख्या करते हुए, कई पुस्तकें भी लिखीं।

सर्वहारा वर्ग के महान शिक्षक मार्क्स और एंगेल्स ने सबसे पहले बतलाया था कि काल्पनिक समाजवादियों के मत के खिलाफ समाजवाद सपना देखनेवालों (कल्पनावादियों) का स्वप्न नहीं है, बल्कि आधुनिक पूँजीवादी समाज के विकास का लाजिमी नतीजा है। उन्होंने दिखलाया था कि पूँजीवादी व्यवस्था वैसे ही खत्म होगी जैसे भूदास प्रथा खत्म हुई थी और यह कि सर्वहारा वर्ग के रूप में पूँजीवाद खुद अपनी कब्र खोदने वाले पैदा कर रहा था। उन्होंने दिखाया था कि सर्वहारा का वर्ग-संघर्ष ही, पूँजीपतियों पर सर्वहारा की विजय ही, मनुष्य मात्र को पूँजीवाद और शोषण से मुक्त करेगी।

मार्क्स और एंगेल्स ने सर्वहारा वर्ग को सिखलाया था कि वह अपनी ताकत पहचाने, अपने वर्ग-हित पहचाने और पूँजीपतियों के खिलाफ जम कर संघर्ष करने के लिए एक हो। मार्क्स और एंगेल्स ने पूँजीवादी समाज के विकास के नियमों का पता लगाया और वैज्ञानिक ढंग से साबित किया कि पूँजीवादी समाज के विकास से और उसके अन्दर चलने वाले वर्ग-संघर्ष से लाजिमी तौर पर पूँजीवाद का नाश होगा, सर्वहारा की विजय होगी, **सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व** कायम होगा। मार्क्स और एंगेल्स ने सिखलाया था कि शान्तिपूर्ण ढंग से पूँजी की ताकत से छुटकारा पाना और पूँजीवादी सम्पत्ति को जन-सम्पत्ति बनाना असम्भव है। उन्होंने सिखलाया था कि मजदूर वर्ग यह काम पूँजीपतियों के खिलाफ क्रान्तिकारी हिंसा के जरिये, सर्वहारा क्रान्ति के जरिये ही कर सकता है, अपनी राजनीतिक हुकूमत-सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व-कायम करके ही कर सकता है, जो शोषकों के विरोध को कुचल दे और एक नये, वर्गहीन कम्युनिस्ट समाज का निर्माण करे।

मार्क्स और एंगेल्स ने सिखाया था कि पूँजीवादी समाज में औद्योगिक सर्वहारा वर्ग सबसे क्रान्तिकारी और इसलिए सबसे आगे बढ़ा हुआ वर्ग है और सर्वहारा जैसा वर्ग ही पूँजीवाद से असंतुष्ट तमाम ताकतों को अपने चारों तरफ बटोर सकता है और पूँजीवाद पर हल्ला बोलने के लिए उनका नेतृत्व कर सकता है। लेकिन, पुरानी दुनिया को पछाड़ने और नये वर्गहीन समाज का निर्माण करने के लिए यह जरूरी है कि सर्वहारा की अपनी मजदूर वर्ग की पार्टी हो, जिसे मार्क्स और एंगेल्स कम्युनिस्ट पार्टी कहते थे।

रूस के पहले मार्क्सवादी गुट, प्लेखानोव के 'श्रमिक मुक्ति दल' ने मार्क्स और एंगेल्स के मत का प्रचार करने का काम उठाया था।

'श्रमिक मुक्ति दल' ने विदेश के रूसी अखबारों में मार्क्सवाद का झण्डा उस समय ऊँचा किया जब कि रूस में कोई सामाजिक-जनवादी आन्दोलन जन्म नहीं ले पाया था। पहले जरूरी था कि इस तरह के आन्दोलन के लिए सिद्धान्तों और विचारधारा की जमीन तैयार की जाये। मार्क्सवाद और सामाजिक-जनवादी आन्दोलन के फैलने में विचारधारा सम्बन्धी खास अड़चन नरोदवादी मत था, जो उस समय आगे बढ़े हुए मजदूरों और क्रान्तिकारी रुझान रखने वाले बुद्धिजीवियों में फैला हुआ था।

रूस में जब पूँजीवाद का विकास हुआ तो मजदूर वर्ग एक ताकतवर और आगे बढ़ी हुई शक्ति बना, जो इस योग्य था कि संगठित होकर क्रान्तिकारी लड़ाई लड़ सके। लेकिन, नरोदवादी मजदूर वर्ग के नेतृत्व की भूमिका नहीं समझते थे। रूसी नरोदवादी गलती से समझते थे कि मुख्य क्रान्तिकारी ताकत मजदूर वर्ग नहीं बल्कि किसान है और जार और

जमीन्दारों का शासन किसानों के विद्रोह से खत्म किया जा सकता है। नरोदवादी मजदूर वर्ग से परिचित नहीं थे और यह महसूस नहीं करते थे कि मजदूर वर्ग से मैत्री किये बिना और उसके मार्ग-दर्शन के बिना अकेले किसान जारशाही और जमीन्दारों को परास्त नहीं कर सकते। नरोदवादी नहीं समझते थे कि मजदूर वर्ग समाज का सबसे क्रान्तिकारी और सबसे आगे बढ़ा हुआ वर्ग है।

नरोदवादियों ने पहले कोशिश की कि जार सरकार के खिलाफ संघर्ष करने के लिए किसानों को उभारें। इस उद्देश्य से नौजवान क्रान्तिकारी बुद्धिजीवियों ने किसानों की पोशाक पहनी और देहातों की तरफ गये-'जनता की ओर', जैसा कि कहा जाता था। इसीलिए उनका नाम *नरोद,* यानी जनता से, 'नरोदनिक' पड़ा। लेकिन किसानों में उन्हें समर्थन करने वाले नहीं मिले, क्योंकि किसानों की भी सही जानकारी या समझ उनमें नहीं थी। उनमें से अधिकाँश को पुलिस ने पकड़ लिया। इस पर, नरोदवादियों ने तय किया कि निरंकुश जारशाही के खिलाफ वे अकेले, जनता के बिना ही लड़ेंगे। इससे और भी भारी गलतियाँ हुईं।

'नरोदनाया वोल्या' (जनता की इच्छा) नाम की एक गुप्त नरोदवादी संस्था जार की हत्या का षड्यंत्र करने लगी। पहली मार्च, 1881 को 'नरोदनाया वोल्या' के सदस्य जार अलेक्सान्द्र द्वितीय को बम से मारने में सफल हुए। लेकिन, इससे जनता का कुछ भी भला नहीं हुआ। इक्का-दुक्का आदमियों की हत्या से निरंकुश जारशाही का खात्मा नहीं हो सकता था, न जमीन्दार वर्ग निर्मूल किया जा सकता था। मारे हुए जार के बदले, दूसरा जार, अलेक्सान्द्र तृतीय आ गया, जिसकी हुकूमत में मजदूरों और किसानों की हालत और बदतर हो गयी।

नरोदवादियों ने जारशाही का मुकाबला करने के लिए इक्का-दुक्का व्यक्तियों की हत्या करने का व्यक्तिगत आतंकवाद का जो रास्ता अपनाया था, वह गलत था और क्रान्ति के लिए हानिकर था। व्यक्तिगत आतंकवाद की नीति इस गलत नरोदवादी सिद्धान्त पर टिकी हुई थी कि कुछ लोग सक्रिय 'वीर' होते हैं और बाकी जनता निष्क्रिय 'भीड़' होती है, जो 'वीरों' से आशा करती है कि वे बड़े-बड़े काम करें। इस गलत सिद्धान्त का दावा था कि कुछ बड़े आदमी ही इतिहास बनाते हैं जबकि आम जनता, अवाम, वर्ग, 'भीड़'-जैसा कि नरोदवादी लेखक उसे नफरत से कहते थे-इस बात के अयोग्य है कि सचेत और संगठित होकर काम कर सके। लोग अन्धे होकर 'वीरों' के पीछे ही चल सकते हैं। इस वजह से, नरोदवादियों ने किसानों में और मजदूर वर्ग में आम क्रान्तिकारी काम करना छोड़ दिया और व्यक्तिगत आतंकवाद का रास्ता अपनाया। उस समय के एक बहुत ही प्रसिद्ध क्रान्तिकारी स्तेपान खाल्तूरिन को उन्होंने मना लिया कि वह क्रान्तिकारी मजदूरों की यूनियन का संगठन करना छोड़ दे और सारा समय आतंकवाद में लगाये।

शोषक वर्ग के इक्का-दुक्का प्रतिनिधियों की इन हत्याओं से, ऐसी हत्याओं से जिनसे क्रान्ति को कोई फायदा नहीं होता था, नरोदवादियों ने मेहनतकश जनता का ध्यान उस समूचे वर्ग के खिलाफ संघर्ष से हटाया। मजदूर वर्ग और किसानों की क्रान्तिकारी पहल और कार्रवाई के विकास में उन्होंने अड़चन डाली।

नरोदवादियों ने क्रान्ति में अपनी प्रमुख भूमिका पहचानने से मजदूर वर्ग को रोका और मजदूर वर्ग की स्वतंत्र पार्टी बनने में विलम्ब पैदा किया।

हालाँकि जार सरकार ने नरोदवादियों का गुप्त संगठन कुचल दिया था, लेकिन नरोदवादी विचार क्रान्तिकारी रुझान के बुद्धिजीवियों में बहुत दिनों तक कायम रहे। बचे हुए नरोदवादियों ने रूस में मार्क्सवाद के प्रसार का डटकर विरोध किया और मजदूर वर्ग के संगठन में बाधा डाली।

इसलिए, रूस में नरोदवाद का मुकाबला करके ही मार्क्सवाद बढ़ सकता था और शक्तिशाली बन सकता था।

'श्रमिक मुक्ति दल' ने नरोदवादियों के विचारों के खिलाफ लड़ाई छेड़ दी। उसने दिखाया कि उनके विचार और संघर्ष के तरीके मजदूर आन्दोलन के लिए कितने ज्यादा अहितकर हैं।

नरोदवादियों के खिलाफ अपनी रचनाओं में प्लेखानोव ने दिखाया कि उनके विचार और वैज्ञानिक समाजवाद में कोई भी समानता नहीं है, हालाँकि वे अपने को समाजवादी कहते थे।

सबसे पहले प्लेखानोव ने नरोदवादियों के गलत विचारों की मार्क्सवादी आलोचना की। नरोदवादी धारणाओं पर अचूक हमला करते हुए, प्लेखानोव ने साथ-साथ मार्क्सवादी विचारों का सुन्दर प्रतिपादन भी किया।

नरोदवादियों की मुख्य भूलें क्या थीं, जिन पर प्लेखानोव ने ऐसा घातक हमला किया?

पहले तो नरोदवादियों का दावा था कि रूस में पूँजीवाद एक 'आकस्मिक' वस्तु है, वह विकसित नहीं होगा और इसलिए सर्वहारा वर्ग भी न बढ़ेगा, न विकसित होगा।

दूसरे, नरोदवादी मजदूर वर्ग को क्रान्ति का प्रमुख वर्ग नहीं मानते थे। वे सर्वहारा वर्ग के बिना समाजवाद हासिल करने का सपना देखते थे। वे समझते थे कि प्रमुख क्रान्तिकारी शक्ति किसान है-जिनका नेतृत्व बुद्धिजीवी करेंगे-और किसानों के कम्यून हैं जिन्हें वे समाजवाद का बीज और बुनियाद समझते थे।

तीसरे, मानव इतिहास के समूचे क्रम के बारे में नरोदवादी विचार गलत और हानिकर थे। वे समाज के आर्थिक और राजनीतिक विकास के नियमों को न जानते थे, न समझते थे। इस मामले में वे बिल्कुल पिछड़े हुए थे। उनके हिसाब से इतिहास का निर्माण वर्गों के द्वारा नहीं होता था और वर्गों के संघर्ष द्वारा नहीं होता था, बल्कि महापुरुषों द्वारा, 'वीरों' द्वारा होता था, जिनके पीछे आम जनता, 'भीड़', अवाम, वर्ग आँख मूँदकर चलते थे।

नरोदवादियों का विरोध और खण्डन करते हुए, प्लेखानोव ने कई मार्क्सवादी पुस्तकें रचीं जिन्हें पढ़कर रूस के मार्क्सवादी बढ़े और शिक्षित हुए। **समाजवाद और राजनीतिक संघर्ष, हमारे मतभेद, इतिहास के प्रति एकसत्तावादी दृष्टिकोण का विकास** जैसी उनकी पुस्तकों ने रूस में मार्क्सवाद की जीत के लिए रास्ता साफ किया। प्लेखानोव ने अपनी रचनाओं में मार्क्सवाद के बुनियादी सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। 1895 में प्रकाशित **इतिहास के प्रति एक सत्तावादी दृष्टिकोण का विकास** नाम की पुस्तक खास तौर से

महत्त्वपूर्ण थी। लेनिन का कहना था कि इस पुस्तक को पढ़कर "रूसी मार्क्सवादियों की पूरी एक पीढ़ी तैयार हुई है।" (**लेनिन ग्रंथावली,** रूसी संस्करण, खण्ड 14, पृ. 347)

नरोदवादियों के खिलाफ अपनी रचनाओं में, प्लेखानोव ने दिखलाया कि नरोदवादी जिस तरह से सवाल करते थे कि 'रूस में पूँजीवाद का विकास हो या न हो'-यह सवाल करने का ढंग ही गलत था। प्लेखानोव ने कहा कि दरअसल रूस पूँजीवादी विकास के रास्ते पर **पहले ही चल पड़ा था**। उसने तथ्य देकर यह साबित किया और बताया कि ऐसी कोई ताकत नहीं है जो उसे इस रास्ते से हटा सके।

क्रान्तिकारियों का यह काम नहीं था कि रूस में पूँजीवाद के विकास को **रोकें**, यह तो वे किसी तरह भी नहीं कर सकते थे। उनका काम यह था कि पूँजीवाद के विकास ने जिस ताकतवर क्रान्तिकारी शक्ति को, यानी मजदूर वर्ग को जन्म दिया था, उसका समर्थन प्राप्त करें, उसकी वर्ग-चेतना को विकसित करें, उसे संगठित करें और उसकी अपनी मजदूर वर्ग की पार्टी बनाने में मदद करें।

प्लेखानोव ने नरोदवादियों की दूसरी मुख्य गलती का भी खण्डन किया कि क्रान्तिकारी संघर्ष में सर्वहारा वर्ग हिरावल की भूमिका अदा नहीं करेगा। नरोदवादी रूस में सर्वहारा के उत्थान को 'ऐतिहासिक दुर्घटना' जैसी चीज समझते थे और 'सर्वहारावाद के नासूर' की बातें किया करते थे। मार्क्सवाद के सिद्धान्तों का समर्थन करते हुए, प्लेखानोव ने दिखाया कि वे रूस पर पूरी तरह लागू हो सकते हैं और तादाद में किसानों के बहुत ज्यादा होने पर भी और उनकी तुलना में सर्वहारा वर्ग के संख्या में कम होने पर भी, क्रान्तिकारियों को अपनी मुख्य आशाएँ सर्वहारा वर्ग और उसकी बढ़त पर ही आधारित करनी चाहिए।

सर्वहारा वर्ग पर ही क्यों?

इसलिए कि हालाँकि सर्वहारा वर्ग अभी तादाद में कम था, लेकिन वह मेहनतकश वर्ग था जिसका सम्बन्ध आर्थिक व्यवस्था के **सबसे आगे बढ़े हुए** रूप से, बड़े पैमाने के उत्पादन से था और इस वजह से जिसका भविष्य महान था।

इसलिए कि वर्ग रूप में सर्वहारा साल दर साल **बढ़ रहा था,** राजनीतिक रूप से **विकसित हो रहा था।** बड़े पैमाने के उत्पादन में मजदूरी की हालत की वजह से, वह आसानी से संगठित किया जा सकता था। अपनी सर्वहारा स्थिति की वजह से, वह सबसे क्रान्तिकारी वर्ग था क्योंकि क्रान्ति में सिवाय अपनी जंजीरों के उसके पास खोने के लिए और कुछ नहीं था।

किसानों की हालत इससे भिन्न थी।

किसान (यहाँ पर व्यक्तिगत खेती करने वाले किसानों से मतलब है, जो अपने लिए अलग-अलग काम करते थे-सं.) तादाद में ज्यादा होने पर भी मेहनतकश वर्ग थे, जो आर्थिक व्यवस्था के **सबसे पिछड़े हुए रूप,** छोटे पैमाने के उत्पादन से सम्बन्धित थे, जिसकी वजह से उनके सामने न तो महान भविष्य था और न हो सकता था।

वर्ग रूप में बढ़ना तो दरकिनार, किसान अधिकाधिक पूँजीपतियों (धनी किसानों) और गरीब किसानों (सर्वहारा और अर्द्धसर्वहारा) में **बँट रहे थे।** इसके सिवा, बिखरे होने की वजह से, सर्वहारा के मुकाबले में वे कम आसानी से संगठित किये जा सकते थे और छोटे

मालिक होने की वजह से, सर्वहारा के मुकाबले में वे कम तत्परता से क्रान्तिकारी आन्दोलन में शामिल होते थे।

नरोदवादियों का दावा था कि रूस में समाजवाद सर्वहारा अधिनायकत्व से नहीं आयेगा बल्कि किसानों के कम्यून से आयेगा, जिसे वे समाजवाद का बीज और बुनियाद समझते थे। लेकिन, कम्यून समाजवाद का बीज और बुनियाद न था और न हो सकता था क्योंकि उस पर धनी किसान हावी थे। ये धनी किसान वे जोंक थे जो गरीब किसानों, खेत मजदूरों और आर्थिक रूप से कमजोर मध्यम किसानों का शोषण करते थे। जमीन पर सामूहिक मिल्कियत का दिखावा होने से और हर किसान कुनबे में खानेवालों की तादाद के हिसाब से समय-समय पर जमीन का बँटवारा होने से हालत में कोई फर्क नहीं पड़ता था। कम्यून के वे सदस्य जिनके पास मवेशी थे, हल-माची और बीज थे, यानी खाते-पीते मध्यम और धनी किसान जमीन जोत-बो सकते थे। जिनके पास घोड़े नहीं थे, ऐसे गरीब किसान और आम तौर से छोटे किसान मजबूरन अपनी जमीन धनी किसानों के हवाले करते थे और खेत मजदूरों के तौर पर मजदूरी करते थे। हकीकत यह थी कि किसानों का कम्यून धनी किसानों के प्रभुत्व को छिपाने के लिए बहुत बढ़िया साधन था। सामूहिक जिम्मेदारी के आधार पर किसानों से टैक्स वसूल करने के लिए जार सरकार के हाथ में कम्यून बिना पैसे-टके का साधन था। यही सबब था कि जारशाही ने किसानों के कम्यून को बरकरार रहने दिया था। इस तरह के कम्यून को समाजवाद का बीज या बुनियाद समझना बेहूदा बात थी।

प्लेखानोव ने नरोदवादियों की तीसरी मुख्य गलती का भी खण्डन किया, जिसके अनुसार महापुरुष, 'वीर' और उनके विचार समाज के विकास में प्रमुख भूमिका अदा करते हैं और जनता, 'भीड़', अवाम, वर्गों की भूमिका महत्त्वहीन होती है। प्लेखानोव ने नरोदवादियों पर **भाववाद** का आरोप लगाया और दिखाया कि सच्चाई भाववाद में नहीं है, बल्कि मार्क्स और एंगेल्स के भौतिकवाद में है।

प्लेखानोव ने मार्क्सवादी भौतिकवाद के मत का समर्थन किया और उसकी व्याख्या की। मार्क्सवादी भौतिकवाद के अनुकूल, उन्होंने दिखाया कि कुल मिला कर समाज का विकास महापुरुषों की इच्छाओं और विचारों से नहीं, बल्कि समाज के अस्तित्व की भौतिक परिस्थितियों के विकास और समाज के अस्तित्व के लिए जो भौतिक मूल्य जरूरी हैं, उनके उत्पादन के तरीकों में तब्दीली से निश्चित होता है। समाज का विकास भौतिक मूल्यों के उत्पादन में वर्गों के आपसी सम्बन्धों में तब्दीली और भौतिक मूल्यों के उत्पादन तथा उनके बँटवारे में स्थान तथा सुविधा के लिए वर्गों के संघर्ष से निश्चित होता है। इनसानों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति विचारों से निश्चित नहीं होती, बल्कि उनके विचार उनकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति से निश्चित होते हैं। महापुरुषों के विचार और उनकी इच्छाएँ समाज के आर्थिक विकास के खिलाफ जाएँ, प्रमुख वर्ग की जरूरतों के खिलाफ जायें तो महापुरुष नगण्य हो सकते हैं। इसके विपरीत, महापुरुष दरअसल महान पुरुष बन सकते हैं अगर उनके विचार और इच्छाएँ समाज के आर्थिक विकास की जरूरतों को, प्रमुख वर्ग की जरूरतों को ठीक-ठीक जाहिर करें।

नरोदवादियों के इस दावे के जवाब में कि जनता महज भीड़ छोड़कर और कुछ नहीं है और इतिहास का निर्माण करना और भीड़ को जनता बनाना वीरों का काम है, मार्क्सवादियों ने कहा कि इतिहास का निर्माण वीर नहीं करते बल्कि वीरों का निर्माण इतिहास करता है। इसलिए, वीर लोग जनता को नहीं बनाते बल्कि जनता वीरों को उत्पन्न करती है और इतिहास को आगे बढ़ाती है। वीर और महापुरुष समाज के जीवन में महत्त्वपूर्ण भूमिका वहीं तक अदा कर सकते हैं जहाँ तक वे समाज के विकास की परिस्थितियों को और उन्हें भले के लिए बदलने के तरीकों को ठीक-ठीक समझ सकते हैं। वीर और महापुरुष हास्यास्पद बन सकते हैं, और बुरी तरह असफल हो सकते हैं अगर वे समाज के विकास की परिस्थितियों को ठीक-ठीक न समझें और इस घमण्ड में कि वे इतिहास के 'निर्माता' हैं, अगर वे समाज की ऐतिहासिक जरूरतों के खिलाफ जायें।

इसी तरह के अभागे वीरों की श्रेणी में नरोदवादी थे।

प्लेखानोव की रचनाओं ने और नरोदवादियों के खिलाफ उनके संघर्ष ने क्रान्तिकारी बुद्धिजीवियों पर उनके असर को पूरी तरह कमजोर कर दिया। लेकिन, विचारधारा की दृष्टि से नरोदवाद का ध्वंस अभी पूरा नहीं हुआ था। नरोदवाद को मार्क्सवाद का दुश्मन साबित करना और उस पर आखिरी चोट करना लेनिन का ही काम था।

'नरोदनाया वोल्या' पार्टी के दबाये जाने के तुरन्त बाद ही, अधिकांश नरोदवादियों ने जार सरकार के खिलाफ क्रान्तिकारी संघर्ष बन्द कर दिया और उससे समझौते और मेलमिलाप की नीति का प्रचार करने लगे। 1880 और '90 में नरोदवादी धनी किसानों के हितों के समर्थक हो गये।

'श्रमिक मुक्ति दल' ने रूसी सामाजिक-जनवादियों के लिए कार्यक्रम के दो मसौदे तैयार किये, (पहला 1884 में और दूसरा 1887 में)। रूस में मार्क्सवादी सामाजिक-जनवादी पार्टी के निर्माण में यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण तैयारी का कदम था।

लेकिन इसके साथ ही, 'श्रमिक मुक्ति दल' ने कुछ बहुत ही संगीन गलतियाँ भी की थीं। उसके कार्यक्रम के पहले मसौदे में नरोदवादी विचारों के अवशेष मौजूद थे। व्यक्तिगत आतंकवाद की कार्यनीति उसने रहने दी थी। इसके अलावा, प्लेखानोव ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया था कि क्रान्ति के दौर में सर्वहारा वर्ग किसानों का नेतृत्व कर सकता है और उसे करना चाहिए और किसानों के साथ मिलकर ही सर्वहारा वर्ग जारशाही पर विजयी हो सकता है। इसके सिवा, प्लेखानोव का विचार था कि उदारपंथी पूँजीपति एक ऐसी ताकत है जो क्रान्ति को मदद दे सकते हैं, भले ही यह मदद अस्थिर हो। जहाँ तक किसानों का सवाल था, अपनी कुछ रचनाओं में उन्होंने उन्हें दरकिनार ही कर दिया था। मिसाल के लिए, उन्होंने कहा था :

> "पूँजीपतियों और सर्वहारा के अलावा, हमें अपने देश में ऐसी सामाजिक शक्ति नहीं दिखायी देती जिससे क्रान्तिकारी या विरोधी जमातों को मदद मिले।" (**प्लेखानोव ग्रंथावली,** रूसी संस्करण, खण्ड 3, पृ. 119)।

ये गलत धारणाएँ प्लेखानोव के भावी मेन्शेविक विचारों के बीज थीं।

न तो 'श्रमिक मुक्ति दल' और न उस समय के मार्क्सवादी हलकों का ही मजदूर आन्दोलन से कोई अमली सम्बन्ध कायम हो पाया था। यह वह जमाना था जब मार्क्सवाद के सिद्धान्त, मार्क्सवाद के विचार और सामाजिक-जनवादी कार्यक्रम के उसूल प्रकट ही हो रहे थे और रूस में पैर जमा रहे थे। 1884-'94 के दशक में, सामाजिक-जनवादी आन्दोलन अलग-अलग छोटे गुटों और मण्डलों के रूप में ही था। इनका आम मजदूर आन्दोलन से कोई लगाव नहीं था, या बहुत ही कम लगाव था। उस शिशु की तरह जो अभी पैदा नहीं हुआ हो लेकिन माँ के गर्भ में बढ़ रहा हो, सामाजिक-जनवादी आन्दोलन, जैसा कि लेनिन ने लिखा था, **"गर्भ रूप में विकसित होने की हालत में था।"**

लेनिन का कहना था कि 'श्रमिक मुक्ति दल' ने "सामाजिक-जनवादी आन्दोलन की सिर्फ सैद्धान्तिक नींव डाली और मजदूर आन्दोलन की तरफ पहले कदम उठाये।"

रूस में मार्क्सवाद और मजदूर आन्दोलन को मिलाने का काम और 'श्रमिक मुक्ति दल' की गलतियों को सुधारने का काम लेनिन के कन्धों पर पड़ा।

3. लेनिन की क्रान्तिकारी कार्रवाई की शुरुआत। मजदूर वर्ग के मुक्ति-संग्राम का सेण्ट पीटर्सबर्ग संघ।

व्लादिमीर इलिच उल्यानोव (लेनिन) बोल्शेविज्म के जन्मदाता, 1870 में सिम्बीर्स्क नाम के शहर में (जो अब उल्यानोव्स्क कहलाता है) पैदा हुए थे। 1887 में लेनिन कजान विश्वविद्यालय में दाखिल हुए, लेकिन क्रान्तिकारी विद्यार्थी आन्दोलन में हिस्सा लेने के कारण उन्हें तुरन्त ही गिरफ्तार किया गया और विश्वविद्यालय से निकाल दिया गया। कजान में लेनिन एक मार्क्सवादी मण्डल में शामिल हुए, जिसे फेदोसेयेव नाम के व्यक्ति ने बनाया था। बाद में, लेनिन समारा पहुँचे और जल्द ही उस शहर में पहला मार्क्सवादी मण्डल कायम हुआ, जिसके केन्द्र लेनिन थे। उन दिनों में भी मार्क्सवाद के सम्पूर्ण ज्ञान से लेनिन हरेक को चकित कर देते थे।

1893 के अन्त में, लेनिन सेण्ट पीटर्सबर्ग चले आये। उस शहर के मार्क्सवादी मण्डलों के सदस्य उनके शुरू के भाषणों से ही बहुत प्रभावित हुए। लेनिन ने मार्क्स का अभूतपूर्व ढंग से गहरा अध्ययन किया था। उनमें उस समय के रूस की आर्थिक और राजनीतिक हालत पर मार्क्सवाद लागू करने की क्षमता थी। मजदूरों के ध्येय की जीत में उनका विश्वास अटल और अडिग था। एक संगठनकर्ता के रूप में उनकी प्रतिभा अपूर्व थी। इन सब कारणों से, लेनिन सेण्ट पीटर्सबर्ग के मार्क्सवादियों के जाने-माने नेता बन गये।

लेनिन ने मण्डलों में जिन मजदूरों को शिक्षा दी और जो राजनीतिक रूप से आगे बढ़े हुए थे, उनके दिलों में लेनिन के लिए बेहद प्यार था।

मजदूरों के मण्डलों में लेनिन के शिक्षा-कार्य को याद करते हुए, बाबुश्किन नाम का मजदूर कहता है : "हमारे व्याख्यान बहुत ही दिलचस्प और सजीव होते थे। इन व्याख्यानों से हम सभी लोग बहुत खुश होते थे और अपने व्याख्यानदाता की बुद्धिमानी पर मुग्ध थे।"

1895 में लेनिन ने सेण्ट पीटर्सबर्ग के सभी मार्क्सवादी मजदूर-मण्डलों को एक किया

(उस वक्त भी उनकी तादाद बीस के लगभग थी) और, उनको मिला कर **मजदूर वर्ग के मुक्ति-संग्राम का संघ** बनाया। इस तरह, उन्होंने एक क्रान्तिकारी मार्क्सवादी मजदूर पार्टी की नींव डालने का रास्ता तैयार किया।

लेनिन ने मुक्ति-संग्राम संघ के सामने यह काम रखा कि आम मजदूर आन्दोलन के साथ और नजदीकी सम्बन्ध कायम किया जाये और उसे राजनीतिक नेतृत्व दिया जाये। लेनिन ने यह प्रस्ताव रखा कि प्रचार-मण्डलों में राजनीतिक रूप से आगे बढ़े हुए जो थोड़े से मजदूर आते थे, उनमें मार्क्सवाद का प्रचार करने से बढ़ कर सामायिक समस्याओं पर आम मजदूरों में राजनीतिक आन्दोलन की तरफ चला जाये। रूस में मजदूर आन्दोलन के विकास के लिए, जन आन्दोलन की तरफ यह मोड़ बहुत ही महत्त्वपूर्ण था।

1890 का जमाना औद्योगिक बढ़त का जमाना था। मजदूरों की तादाद बढ़ रही थी। मजदूर आन्दोलन शक्तिशाली बन रहा था। 1895-'99 के सालों में, अधूरे आँकड़ों के अनुसार, 2,21,000 से ज्यादा मजदूरों ने हड़तालों में हिस्सा लिया। देश के राजनीतिक जीवन में मजदूर आन्दोलन महत्त्वपूर्ण शक्ति बन रहा था। घटनाक्रम उस मत का समर्थन कर रहा था जिसे मार्क्सवादियों ने नरोदवादियों के खिलाफ पेश किया था, यानी कि क्रान्तिकारी आन्दोलन में मजदूर वर्ग प्रमुख भूमिका अदा कर रहा था।

लेनिन के निर्देश से मजदूर वर्ग के मुक्ति-संग्राम संघ ने आर्थिक माँगों के लिए मजदूरों के संघर्ष को-मजदूरी करने की स्थितियों में सुधार, काम के घण्टों में कमी और मजदूरी बढ़ाने के संघर्ष को जारशाही के खिलाफ राजनीतिक संघर्ष से जोड़ दिया।

लेनिन की देख-रेख में मजदूर वर्ग के मुक्ति-संग्राम का सेण्ट पीटर्सबर्ग संघ रूस में पहली संस्था था जो **समाजवाद को मजदूर आन्दोलन से जोड़ने लगा।** जब किसी कारखाने में हड़ताल होती थी, तब मुक्ति-संग्राम संघ परचे निकाल कर और समाजवादी ऐलान निकाल कर तुरन्त उसकी हिमायत करता था। अपने मण्डल के सदस्यों के जरिये, उसे अच्छी तरह पता रहता था कि कारखानों में कहाँ क्या हो रहा है। ये परचे कारखानेदारों द्वारा मजदूरों को सताने का भण्डाफोड़ करते थे। वे बतलाते थे कि मजदूरों को अपने हितों के लिए किस तरह लड़ना चाहिए और वे मजदूरों की माँगें पेश करते थे। इन परचों में पूँजीवाद के नासूर के बारे में साफ बातें कही जाती थीं। इसमें मजदूरों की गरीबी, 12 से 14 घण्टों तक उनके असहनीय कठिन काम करने के दिन और अधिकारों के एकदम अभाव की चर्चा होती थी। वे उचित माँगें भी पेश करते थे। मजदूर बाबुश्किन के सहयोग से लेनिन ने 1894 के अन्त में इस तरह का पहला आन्दोलनकारी पर्चा लिखा और सेण्ट पीटर्सबर्ग में सेम्यानिकोव कारखाने के हड़ताली मजदूरों के नाम अपील निकाली। 1895 की शरद में, लेनिन ने थॉर्नटन मिलों के मर्द-औरत हड़तालियों के लिए एक पर्चा लिखा। ये मिलें अंग्रेज मालिकों की थीं, जो इनसे लाखों का मुनाफा काट रहे थे। इन मिलों में काम करने का दिन चौदह घण्टों से भी ज्यादा का होता था, जब कि एक बुनकर की तनख्वाह 7 रूबल माहवार के करीब होती थी। मजदूर हड़ताल में जीत गये। थोड़े ही वक्त में, मुक्ति-संग्राम संघ ने इस तरह के दर्जनों पर्चे और अपीलें विभिन्न कारखानों के मजदूरों के लिए छापीं। मजदूरों के मन को दृढ़ करने में हर पर्चे ने बहुत काम किया। उन्होंने देखा

कि समाजवादी उनकी मदद कर रहे हैं और उनका समर्थन कर रहे हैं।

1896 की गर्मी में, सेण्ट पीटर्सबर्ग में मुक्ति-संग्राम संघ के नेतृत्व में 30,000 सूती मजदूरों की हड़ताल हुई। इनकी मुख्य माँग काम के घण्टे कम करने की थी। इस हड़ताल ने 2 जून, 1897 को जार सरकार को एक कानून बनाने के लिए मजबूर किया, जिससे काम करने का दिन साढ़े ग्यारह घण्टों का तय हुआ। इससे पहले, काम करने के दिन पर किसी तरह की पाबन्दी नहीं थी।

दिसम्बर 1895 में, जार सरकार ने लेनिन को गिरफ्तार कर लिया। लेकिन, जेल में भी उन्होंने अपना क्रान्तिकारी काम बन्द नहीं किया। सलाह और निर्देश देकर, वह मुक्ति-संग्राम संघ की मदद करते रहे और उसके लिए पुस्तिकाएँ और पर्चे लिखते रहे। वहाँ पर उन्होंने **हड़तालों के बारे में** नामक एक पुस्तिका लिखी और जारशाही के बर्बर स्वेच्छाचार का पर्दाफाश करते हुए, **जार सरकार के नाम** शीर्षक से एक पर्चा निकाला। यहीं पर लेनिन ने पार्टी के लिए कार्यक्रम का मसौदा तैयार किया (उन्होंने अदृश्य स्याही के तौर पर दूध इस्तेमाल किया और दवाइयों की किताब की पंक्तियों के बीच में लिखा)।

मुक्ति-संग्राम के सेण्ट पीटर्सबर्ग संघ ने रूस के दूसरे शहरों और प्रदेशों में मजदूरों के मण्डलों को ऐसे ही संघों में मिल कर एक होने की भारी प्रेरणा दी। 1894-95 के लगभग, ट्रांस-काकेशिया में मार्क्सवादी संगठन बने। 1894 में, मास्को में एक मजदूर यूनियन बनी। 1900 के लगभग, साइबेरिया में एक सामाजिक-जनवादी यूनियन कायम हुई। लगभग इसी काल में इवानोवो-वज्नेसेंस्क, यारोस्लाव्ल और कोस्त्रोया में मार्क्सवादी गुट बने। आगे चलकर, वे एक-दूसरे से मिल गये और उनसे सामाजिक-जनवादी पार्टी का उत्तरी यूनियन बनी। 1895 के बाद, दोन नदी के तट पर रोस्तोव, एकातेरीनोस्लाव, कीव, निकोलायेव, तूला, समारा, कजान, ओरेखोवोजूयेवो और दूसरे शहरों में सामाजिक-जनवादी गुटों और यूनियनों का गठन हुआ।

मजदूर वर्ग के मुक्ति-संग्राम के सेण्ट पीटर्सबर्ग संघ का महत्त्व, जैसा कि लेनिन ने कहा था, इस बात में था कि वह एक क्रान्तिकारी पार्टी की पहली सच्ची शुरुआत थी जिसे मजदूर आन्दोलन का समर्थन हासिल था।

आगे चलकर, रूस में एक मार्क्सवादी सामाजिक-जनवादी पार्टी बनाने के लिए लेनिन ने सेण्ट पीटर्सबर्ग संघ के क्रान्तिकारी अनुभव से काम लिया।

लेनिन और उनके नजदीकी साथियों के पकड़े जाने के बाद, मुक्ति-संग्राम के सेण्ट पीटर्सबर्ग संघ का नेतृत्व काफी बदल गया। नये आदमी आ गये, जो अपने को 'नौजवान' और लेनिन और उनके साथियों को 'पुराने लोग' कहते थे। ये लोग एक गलत राजनीतिक नीति पर चल रहे थे। इनका कहना था कि मजदूरों से सिर्फ अपने मालिकों के खिलाफ आर्थिक लड़ाई लड़ने के लिए कहना चाहिए; जहाँ तक राजनीतिक संघर्ष का सवाल है, वह उदारपंथी पूँजीपतियों का काम है और राजनीतिक संघर्ष का नेतृत्व उन्हीं के लिए छोड़ देना चाहिए।

ये लोग 'अर्थवादी' कहलाये।

रूस के मार्क्सवादी संगठनों की कतारों में ये अवसरवादियों और समझौता करने वालों

के पहले गुट थे।

4. नरोदवाद और 'कानूनी मार्क्सवाद' के खिलाफ लेनिन का संघर्ष। मजदूर वर्ग और किसानों की मैत्री के बारे में लेनिन का विचार। रूसी सामाजिक-जनवादी मजदूर पार्टी की पहली कांग्रेस।

हालाँकि 1880 के आसपास ही प्लेखानोव ने नरोदवादी मत पर मुख्य प्रहार किया था, फिर भी 1890 के लगभग क्रान्तिकारी नौजवानों के कुछ हलकों में नरोदवादी विचारों के प्रति अब भी हमदर्दी बनी हुई थी। उनमें से कुछ का यह विचार बना हुआ था कि रूस, विकास के पूँजीवादी रास्ते से बच सकता है और क्रान्ति में मुख्य भूमिका किसानों की होगी, न कि मजदूर वर्ग की। जो नरोदवादी अब भी बच रहे थे वे रूस में मार्क्सवाद के प्रसार को रोकने की भरसक कोशिश कर रहे थे। वे मार्क्सवादियों से लड़ते थे और हर तरह उन्हें बदनाम करने की कोशिश कर रहे थे। अगर मार्क्सवाद का आगे प्रसार करना था और सामाजिक-जनवादी पार्टी बनाने का काम सचमुच करना था, तो विचारधारा के रूप में नरोदवाद का पूरी तरह से **खण्डन** जरूरी था।

यह काम लेनिन ने पूरा किया।

अपनी किताब **'जनता के मित्र' क्या हैं और वे सामाजिक-जनवादियों से कैसे लड़ते हैं**? (1894) में, लेनिन ने नरोदवादियों की असलियत का पूरी तरह पर्दाफाश किया। उन्होंने दिखाया कि वे 'जनता के' झूठे 'मित्र' हैं, जो दरअसल जनता के खिलाफ काम कर रहे थे।

1890 के नरोदवादियों ने तत्व रूप में बहुत पहले ही जार सरकार के खिलाफ क्रान्तिकारी संघर्ष को छोड़ दिया था। उदारपंथी नरोदवादी जार सरकार से मेल करने का प्रचार करते थे। उस समय के नरोदवादियों के सिलसिले में लेनिन ने लिखा था : "वे समझते हैं कि वे इस सरकार से अगर काफी बढ़िया ढंग से और काफी नम्रता से अर्ज भर करेंगे तो वह सब कुछ दुरुस्त कर देगी।" (लेनिन, **'जनता के मित्र' क्या हैं और वे सामाजिक-जनवादियों से कैसे लड़ते हैं?**, अंग्रेजी संस्करण, मास्को, 1946, पृष्ठ 157)।

1890 के नरोदवादियों ने गरीब किसानों की हालत की तरफ, देहात के वर्ग-संघर्ष की तरफ और धनी किसानों द्वारा गरीब किसानों के शोषण की तरफ आँखें बन्द कर रखी थीं। वे धनी किसानों की खेती के गुन गाते थे। हकीकत यह थी कि वे धनी किसानों के हितों के समर्थक थे।

इसके साथ ही, अपनी पत्रिकाओं में नरोदवादियों ने मार्क्सवादियों के खिलाफ हल्ला बोल रखा था। वे जानबूझ कर रूसी मार्क्सवादियों के विचारों को तोड़ते-मरोड़ते और गलत पेश करते थे। वे दावा करते थे कि मार्क्सवादी चाहते हैं कि गाँवों के लोग तबाह हो जायें और वे "हर किसान को कारखाने की भट्टी में झोंक देना चाहते हैं।" लेनिन ने नरोदवादी आलोचना के झूठ का पर्दाफाश किया और दिखाया कि सवाल मार्क्सवादियों के "चाहने" का नहीं है। उन्होंने कहा कि हकीकत यह है कि पूँजीवाद रूस में सचमुच विकसित हो रहा है और लाजिमी तौर पर इस विकास के साथ सर्वहारा वर्ग बढ़ रहा है।

उन्होंने कहा कि सर्वहारा वर्ग पूँजीवादी व्यवस्था की कब्र खोदने वाला बनेगा।

लेनिन ने दिखाया कि जनता के सच्चे दोस्त मार्क्सवादी हैं, न कि नरोदवादी। उन्होंने दिखाया कि पूँजीपतियों और जमीन्दारों की गुलामी जो खत्म करना चाहते हैं, जारशाही का नाश जो करना चाहते हैं, वे मार्क्सवादी ही हैं।

अपनी किताब **'जनता के मित्र' क्या हैं**? में, लेनिन ने पहली बार मजदूरों और किसानों के क्रान्तिकारी सहयोग का विचार जारशाही, जमीन्दारों और पूँजीपतियों को परास्त करने के मुख्य साधन के रूप में रखा था।

इस जमाने की अपनी कई रचनाओं में, लेनिन ने राजनीतिक संघर्ष के उन तरीकों की आलोचना की थी जिन्हें मुख्य नरोदवादी गुट 'नरोदनाया वोल्या' इस्तेमाल करता था और जिन्हें बाद में नरोदवादियों के वारिसों, सामाजिक क्रान्तिकारियों ने इस्तेमाल किया था। लेनिन ने खास तौर से व्यक्तिगत आतंकवाद की आलोचना की थी। लेनिन का विचार था कि क्रान्तिकारी आन्दोलन के लिए ये दाँव-पेंच हानिकर हैं, क्योंकि उनके अनुसार आम जनता के संघर्ष की जगह कुछ अलग-थलग वीरों का संघर्ष ले लेता था। उनसे जनता के क्रान्तिकारी आन्दोलन में विश्वास की कमी जाहिर होती थी।

'जनता के मित्र' क्या हैं? पुस्तक में, लेनिन ने रूसी मार्क्सवादियों के लिए मुख्य कामों की रूपरेखा पेश की। उनके विचार से रूसी मार्क्सवादियों का पहला कर्त्तव्य यह था कि बिखरे हुए मार्क्सवादी मण्डलों को एक संयुक्त समाजवादी मजदूर पार्टी में इकट्ठा करें। इसके अलावा, उन्होंने बतलाया कि रूस का मजदूर वर्ग ही, किसानों के सहयोग से, निरंकुश जारशाही का खात्मा करेगा। इसके बाद, रूसी सर्वहारा वर्ग मेहनतकश और शोषित अवाम के सहयोग से, दूसरे देशों के सर्वहारा के साथ, कम्युनिस्ट क्रान्ति की विजय के लिए खुले राजनीतिक संघर्ष का सीधा रास्ता अपनायेगा।

इस तरह, चालीस साल से ऊपर बीते जब लेनिन ने मजदूर वर्ग को उसके संघर्ष का ठीक-ठीक रास्ता बतलाया था, समाज की प्रमुख क्रान्तिकारी शक्ति के रूप में उसकी भूमिका की व्याख्या की थी और मजदूर वर्ग के सहयोगी के रूप में किसानों की भूमिका बताई थी।

लोकवाद के खिलाफ लेनिन और उनके अनुयायियों ने जो संघर्ष किया, उससे 1890 के आसपास, विचारधारा के क्षेत्र में नरोदवादियों की पूरी हार हुई।

'कानूनी मार्क्सवाद' के खिलाफ भी लेनिन का संघर्ष बहुत ही महत्त्वपूर्ण था। इतिहास में आम तौर से ऐसा होता है कि बड़े सामाजिक आन्दोलनों के साथ अस्थिर 'सहयात्री' चिपक आते हैं। 'कानूनी मार्क्सवादी', जैसा कि उनका नाम पड़ गया था, इसी तरह के सहयात्री थे। रूस में चारों तरफ बड़े पैमाने पर मार्क्सवाद फैलने लगा था। और इसलिए, पूँजीवादी बुद्धिजीवी भी मार्क्सवादी पोशाक पहने हुए दिखाई दिये। वे अपने लेख ऐसे अखबारों और पत्रिकाओं में छपवाते थे जो कानूनी थीं, यानी जिनके लिए जार सरकार की अनुमति थी। इसीलिए, वे 'कानूनी मार्क्सवादी' कहलाये।

अपने ढंग से वे भी नरोदवाद से लड़ते थे। लेकिन, वे इस लड़ाई और मार्क्सवाद के झण्डे का इस्तेमाल यों करने की कोशिश करते थे कि मजदूरों के आन्दोलन को पूँजीवादी

समाज के हितों के अनुकूल, पूँजीपतियों के हितों के अनुकूल चलायें और उसे उन हितों के मातहत बनायें। उन्होंने मार्क्सवाद का तत्व ही निकाल दिया था, यानी सर्वहारा क्रान्ति और सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व को निकाल दिया था। पिएत्र स्त्रूवे नाम का एक प्रमुख 'कानूनी मार्क्सवादी' पूँजीपतियों की तारीफों के पुल बाँधता था और पूँजीवाद के खिलाफ क्रान्तिकारी संघर्ष के बदले, इस बात पर जोर देता था कि "हम इस बात को मानें कि संस्कृति की हममें कमी है और शिक्षा पाने के लिए हम पूँजीवाद के पास जायें।"

नरोदवादियों के खिलाफ संघर्ष में, लेनिन ने यह उचित समझा कि कानूनी मार्क्सवादियों के साथ अस्थायी समझौता कर लिया जाये ताकि उन्हें नरोदवादियों के खिलाफ इस्तेमाल किया जा सके। मिसाल के लिए, नरोदवादियों के खिलाफ मिलजुल कर एक लेख-संग्रह प्रकाशित करने के बारे में यह समझौता किया गया। इसके साथ ही, लेनिन ने अपनी आलोचना में 'कानूनी मार्क्सवादियों' को जरा भी नहीं बख्शा और उनके उदारपंथी पूँजीवादी स्वरूप का पर्दाफाश किया।

आगे चलकर, इनमें से बहुत से सहयात्री संवैधानिक जनवादी (रूसी पूँजीपतियों की प्रमुख पार्टी) और गृहयुद्ध के काल में सौ फीसदी गद्दार बन गये।

सेण्ट पीटर्सबर्ग, मास्को, कीव और दूसरी जगहों के मुक्ति-संग्राम संघों के साथ-साथ रूस के पश्चिमी कौमी सीमान्त इलाकों में भी सामाजिक-जनवादी संगठन बने। 1890 के बाद, पोलैण्ड की राष्ट्रवादी पार्टी से मार्क्सवादी अलग हो गये और उन्होंने पोलैण्ड और लिथुआनिया की सामाजिक-जनवादी पार्टी बनायी। 1900 से कुछ पहले, लातविया में सामाजिक-जनवादी संगठन बने और अक्टूबर, 1897 में, रूस के पश्चिमी सूबों में यहूदियों की जनरल सामाजिक-जनवादी यूनियन बनी, जो 'बुन्द' कहलाती थी।

1898 में, सेण्ट पीटर्सबर्ग, मास्को, कीव और एकातेरीनोस्लाव के मुक्ति-संग्राम संघों ने बुन्द के साथ मिलकर पहली बार कोशिश की कि वे एक हों और एक सामाजिक-जनवादी पार्टी बनायें। इस उद्देश्य से, उन्होंने रूसी सामाजिक-जनवादी मजदूर पार्टी (रू.सा.ज.म.पा.) की पहली कांग्रेस बुलाई, जो मार्च 1898 में मिन्स्क में हुई।

रू.सा.ज.म.पा. की पहली कांग्रेस में सिर्फ नौ आदमी आये थे। लेनिन मौजूद नहीं थे, क्योंकि उस समय वह साइबेरिया में निर्वासित थे। पार्टी की केन्द्रीय समिति, जो कांग्रेस में चुनी गयी, बहुत जल्द गिरफ्तार कर ली गयी। कांग्रेस के नाम से जो घोषणापत्र छापा गया था, वह कई तरह से असन्तोषजनक था। सर्वहारा वर्ग द्वारा राजनीतिक शक्ति जीतने के सवाल को उसमें टाल दिया गया था, सर्वहारा वर्ग के एकछत्र नेतृत्व का उसमें जिक्र नहीं था। जारशाही और पूँजीपतियों के खिलाफ सर्वहारा वर्ग के सहयोगियों के बारे में उसमें कुछ भी नहीं कहा गया था।

अपने फैसलों में और घोषणापत्र में, कांग्रेस ने रूसी सामाजिक-जनवादी मजदूर पार्टी के बनने का ऐलान किया था।

रू.सा.ज.म.पा. की पहली कांग्रेस का महत्त्व इस व्यावहारिक काम में ही निहित था। इसने एक भारी क्रान्तिकारी प्रचारात्मक भूमिका अदा की।

लेकिन, हालाँकि पहली कांग्रेस हो चुकी थी, फिर भी हकीकत में अभी रूस में कोई

मार्क्सवादी सामाजिक-जनवादी पार्टी बनी नहीं थी। अलग-थलग मार्क्सवादी मण्डलों और संगठनों को मिलाने और संगठित करके दृढ़ करने में कांग्रेस कामयाब नहीं हुई थी। स्थानीय संगठनों के काम के लिए अब भी कोई सर्वसम्मत नीति नहीं थी, न अभी पार्टी का कार्यक्रम था, न पार्टी के नियम थे और न एकमात्र नेतृत्व करने वाला केन्द्र था।

इस वजह से और ऐसे ही दूसरे कारणों से, स्थानीय संगठनों में विचारधारा-सम्बन्धी उलझन बढ़ने लगी और इससे मजदूर आन्दोलन के अन्दर 'अर्थवाद' नाम की अवसरवादी प्रवृत्ति के बढ़ने के लिए अनुकूल जमीन तैयार हो गयी।

लेनिन और उनके स्थापित किये हुए अखबार **इस्क्रा (चिन्गारी)** को कई साल तक घोर मेहनत करनी पड़ी और तब कहीं जाकर यह उलझन दूर हुई, अवसरवादी ढुलमुलपन खत्म किया गया और रूसी सामाजिक-जनवादी मजदूर पार्टी के निर्माण के लिए रास्ता साफ हुआ।

5. 'अर्थवाद' के खिलाफ लेनिन का संघर्ष। लेनिन के अखबार 'इस्क्रा' का प्रकाशन।

रू.सा.ज.म.पा. की पहली कांग्रेस में लेनिन मौजूद नहीं थे। उस समय वह साइबेरिया में शुशेन्स्कोय नाम के गाँव में निर्वासित थे। मुक्ति-संग्राम संघ पर मुकदमा चलाने के सिलसिले में, जार सरकार ने एक लम्बे अर्से के लिए उन्हें सेण्ट पीटर्सबर्ग की जेल में डाल रखा था और उसके बाद वह निर्वासित किये गये थे।

लेकिन, निर्वासन में भी लेनिन ने अपना क्रान्तिकारी काम जारी रखा।

वहाँ पर उन्होंने अपनी बहुत ही महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक पुस्तक **रूस में पूँजीवाद का विकास** पूरी की। इस किताब ने विचारधारा के क्षेत्र में नरोदवाद को समाप्त करने का काम पूरा किया। वहीं पर, उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तिका **रूसी सामाजिक-जनवादियों के कर्त्तव्य** भी लिखी।

हालाँकि लेनिन सीधे-सीधे अमली क्रान्तिकारी कार्रवाई में भाग नहीं ले सकते थे, फिर भी जो लोग इस काम में लगे हुए थे, उनसे वह कुछ न कुछ सम्बन्ध बनाये ही हुए थे। निर्वासन से वह उनसे पत्र-व्यवहार रखते थे, उनसे समाचार प्राप्त करते थे और उन्हें सलाह देते थे। इन दिनों लेनिन का ज्यादा ध्यान 'अर्थवादियों' की तरफ था। और सभी से वह इस बात को ज्यादा अच्छी तरह समझते थे कि समझौते और अवसरवाद की मुख्य जड़ 'अर्थवाद' है और अगर मजदूर आन्दोलन में 'अर्थवाद' की तूती बोलने लगी तो इससे सर्वहारा वर्ग के क्रान्तिकारी आन्दोलन में कमजोरी पैदा होगी और उससे मार्क्सवाद की हार होगी।

इसलिए, जैसे ही 'अर्थवादी' सामने आये, लेनिन ने उन पर भरपूर हमला बोल दिया।

'अर्थवादियों' का दावा था कि मजदूरों को सिर्फ आर्थिक संघर्ष करना चाहिए। जहाँ तक राजनीतिक संघर्ष का सवाल है, वह उदारपंथी पूँजीपतियों के लिए छोड़ देना चाहिए और मजदूरों को चाहिए कि उनका समर्थन करें। लेनिन की नजरों में यह मत मार्क्सवाद का त्याग था। इसके मानी थे, मजदूर वर्ग की स्वतंत्र राजनीतिक पार्टी की जरूरत से

इन्कार करना। यह इस बात की कोशिश थी कि मजदूर वर्ग को पूँजीपतियों का राजनीतिक पुछल्ला बना दिया जाये।

1899 में, 'अर्थवादियों' के एक गुट ने (प्रोकोपोविच, कुस्कोवा और दूसरों ने जो आगे चलकर संवैधानिक जनवादी बन गये थे) एक घोषणापत्र निकाला, जिसमें उन्होंने क्रान्तिकारी मार्क्सवाद का विरोध किया। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि सर्वहारा की स्वतंत्र राजनीतिक पार्टी और मजदूर वर्ग की स्वतंत्र राजनीतिक माँगों का विचार छोड़ दिया जाये। 'अर्थवादियों' का कहना था कि राजनीतिक संघर्ष चलाना उदारपंथी पूँजीपतियों का काम है। जहाँ तक मजदूरों का सम्बन्ध है, उनके लिए मालिकों के खिलाफ आर्थिक संघर्ष चलाना ही काफी है।

जब लेनिन को इस अवसरवादी दस्तावेज की जानकारी हुई, तो उन्होंने राजनीतिक निर्वासन में आसपास रहने वाले मार्क्सवादियों का एक सम्मेलन बुलाया। इनमें से सत्रह लोग आये और उन्होंने लेनिन की अगुवाई में 'अर्थवादियों' के मत का जोरों से खण्डन करते हुए, अपना तीव्र विरोध प्रकाशित किया।

यह विरोध-पत्र लेनिन ने लिखा था। देश के तमाम मार्क्सवादी संगठनों में वह घुमाया गया और रूस में मार्क्सवादी विचारों और मार्क्सवादी पार्टी के विकास में उसने महत्त्वपूर्ण काम किया।

रूसी 'अर्थवादी' वे ही विचार प्रतिपादित कर रहे थे जिनका प्रचार बाहर की सामाजिक-जनवादी पार्टियों में मार्क्सवाद के विरोधी किया करते थे। इनको लोग बर्न्सटाइनपंथी, यानी अवसरवादी बर्न्सटाइन के अनुयायी, कहते थे।

इस तरह 'अर्थवादियों' के खिलाफ लेनिन का संघर्ष अन्तरराष्ट्रीय पैमाने पर अवसरवाद के खिलाफ संघर्ष भी था।

लेनिन द्वारा संस्थापित गैर-कानूनी अखबार **इस्क्रा** ने मुख्य तौर से अर्थवाद के खिलाफ लड़ाई की और सर्वहारा वर्ग की स्वतंत्र राजनीतिक पार्टी बनाने के लिए संघर्ष किया।

1900 के आरम्भ में, लेनिन और मुक्ति-संग्राम संघ के दूसरे सदस्य साइबेरिया के निर्वासन से रूस लौट आये। लेनिन ने अखिल रूसी पैमाने पर एक बड़ा गैर-कानूनी मार्क्सवादी अखबार स्थापित करने का विचार किया। रूस में जो बहुत से मार्क्सवादी मण्डल और संगठन अभी थे, वे एक दूसरे से जुड़े हुए नहीं थे। ऐसे वक्त जब, कामरेड स्तालिन के शब्दों में, "मण्डलों का अधकचरापन और उनका स्थानीय दृष्टिकोण पार्टी को ऊपर से नीचे तक खोखला बना रहा था, जब पार्टी के अन्दरूनी जीवन की विशेषता विचारधारा की उलझन थी" तब अखिल रूसी पैमाने पर एक गैर-कानूनी अखबार चलाना रूस के क्रान्तिकारी मार्क्सवादियों का मुख्य काम था। इस तरह का अखबार ही बिखरे हुए मार्क्सवादी संगठनों को जोड़ सकता था और एक सच्ची पार्टी के निर्माण के लिए रास्ता साफ कर सकता था।

लेकिन, पुलिस के दमन की वजह से इस तरह का अखबार जारशाही रूस में नहीं छप सकता था। महीने भर में या ज्यादा से ज्यादा दो महीने में जार के कुत्ते उसे सूँघ लेते और उसे खत्म कर देते। इसलिए, लेनिन ने तय किया कि अखबार विदेश से निकाला जाये।

वह बहुत ही पतले, लेकिन टिकाऊ कागज पर छापा जाता था और गुप्त रूप से रूस पहुँचा दिया जाता था। रूस में **इस्क्रा** के कुछ अंक बाकू, किशीनेव और साइबेरिया के गुप्त छापेखानों में फिर से छापे जाते थे।

1900 की शरद में, 'श्रमिक मुक्ति दल' के साथियों के साथ अखिल रूसी पैमाने पर राजनीतिक अखबार निकालने का प्रबन्ध करने के लिए लेनिन विदेश गये। जब वह निर्वासन में थे, तभी उन्होंने इसकी पूरी रूपरेखा बना ली थी। निर्वासन से लौटते हुए, उन्होंने इस विषय पर ऊफा, प्स्कोव, मास्को और सेण्ट पीटर्सबर्ग में कई सम्मेलन किये थे। हर जगह उन्होंने गुप्त पत्र-व्यवहार के लिए संकेत-भाषा के बारे में साथियों से प्रबन्ध कर लिये थे। किस पते पर साहित्य वगैरह भेजा जायेगा, इसका इन्तजाम कर लिया था और भावी संघर्ष के लिए योजनाओं पर उनसे बातचीत कर ली थी।

जार सरकार ने सूँघ लिया कि लेनिन उसका सबसे खतरनाक दुश्मन है। जार की **ओखराना**[1] के हथियारबन्द दलों के एक अफसर, जुबातोव ने एक विश्वस्त रिपोर्ट में यह राय जाहिर की थी कि "आजकल इन्कलाब में उल्यानोव (लेनिन) से बढ़कर दूसरा कोई नहीं।" और इस वजह से, उसका विचार था कि लेनिन की हत्या करा देना उचित होगा।

विदेश में लेनिन ने 'श्रमिक मुक्ति दल' से, यानी प्लेखानोव, अक्सेलरोद और वेरा जासूलिच से मिल कर **इस्क्रा** निकालने के बारे में समझौता किया। शुरू से लेकर आखिर तक, प्रकाशन की पूरी योजना लेनिन ने बनायी थी।

दिसम्बर 1900 में, **इस्क्रा** का पहला अंक विदेश में निकला। मुखपृष्ठ पर यह वाक्य लिखा हुआ था :

"चिन्गारी से भड़केंगी ज्वालाएँ!"

साइबेरिया के निर्वासन में, दिसम्बरवादी क्रान्तिकारियों[2] के लिए पुश्किन ने अभिनन्दन भेजा था; उसका उन्होंने जो जवाब दिया था, ये शब्द उसी से लिये गये थे।

और दरअसल, लेनिन ने जो चिनगारी (इस्क्रा) जलाई, उससे आगे चलकर भारी क्रान्तिकारी ज्वालाएँ उठीं, जिनमें जमीन्दारों की जारशाही और पूँजीपतियों की ताकत जलकर खाक हो गयी।

सारांश

रूस में मार्क्सवादी सामाजिक-जनवादी मजदूर पार्टी का निर्माण हो रहा था। यह निर्माण उस संघर्ष के दौर में हो रहा था जो सबसे पहले नरोदवाद और उसकी धारणाओं के खिलाफ चलाया जा रहा था। ये धारणाएँ गलत थीं और क्रान्ति के लिए हानिकर थीं।

विचारधारा के क्षेत्र में नरोदवादियों के विचारों का खण्डन करके ही यह मुमकिन था कि रूस में मार्क्सवादी मजदूर पार्टी के लिए रास्ता साफ किया जाये। 1880 के आसपास

---

1. जारशाही रूस में क्रान्तिकारी आन्दोलन का दमन करने के लिए गुप्त राजनीतिक पुलिस विभाग-अंग्रेजी अनुवादक

2. अभिजात वर्ग के क्रान्तिकारी जो स्वेच्छाचारी, बादशाही और भूदास प्रथा के विरोधी थे। दिसम्बर 1825 में उन्होंने असफल विद्रोह किया था-अं. अनु.

प्लेखानोव और उनके 'श्रमिक मुक्ति दल' ने नरोदवाद पर निर्णायक प्रहार किया।

लेनिन ने विचारधारा के क्षेत्र में नरोदवाद को पूरी तरह हराया और 1890 के लगभग उस पर अन्तिम प्रहार किया।

1883 में स्थापित, 'श्रमिक मुक्ति दल' ने रूस में मार्क्सवाद के प्रसार के लिए बहुत कुछ किया। उसने सामाजिक-जनवाद की सैद्धान्तिक बुनियाद डाली और मजदूर आन्दोलन से सम्बन्ध कायम करने के लिए पहले कदम उठाये।

रूस में पूँजीवाद का विकास होने के साथ-साथ, औद्योगिक सर्वहारा वर्ग की तादाद तेजी से बढ़ी। 1885 के लगभग, मजदूर वर्ग ने संगठित संघर्ष का रास्ता, संगठित हड़तालों के रूप में सामूहिक कार्रवाई का रास्ता अपनाया। लेकिन, मार्क्सवादी मण्डल और गुट सिर्फ प्रचार करते थे और इस बात की जरूरत को नहीं समझ रहे थे कि मजदूर वर्ग के आम आन्दोलन की तरफ बढ़ना चाहिए। इसलिए, अब भी मजदूर आन्दोलन के साथ उनका कोई अमली सम्बन्ध नहीं था और वे उसका नेतृत्व नहीं करते थे।

1895 में, लेनिन ने मजदूर वर्ग के मुक्ति-संग्राम का जो सेण्ट पीटर्सबर्ग संघ कायम किया और जिसने मजदूरों में आम आन्दोलन शुरू किया और आम हड़तालों का नेतृत्व किया, वह एक नयी मंजिल का सूचक था। यह मंजिल मजदूरों में आम आन्दोलन की तरफ बढ़ने और मार्क्सवाद को मजदूर आन्दोलन से मिलाने की मंजिल थी। मजदूर वर्ग के मुक्ति-संग्राम का सेण्ट पीटर्सबर्ग संघ रूस में एक क्रान्तिकारी सर्वहारा पार्टी का बीज था। उसके बनने के बाद, सभी मुख्य औद्योगिक केन्द्रों में और सीमान्त इलाकों में भी मार्क्सवादी संगठन कायम हुए।

1898 में, रू.सा.ज.म.पा. की पहली कांग्रेस हुई। इसमें मार्क्सवादी सामाजिक-जनवादी संगठनों को एक पार्टी में मिलाने की पहली, यद्यपि नाकाम, कोशिश की गयी। लेकिन, इस कांग्रेस ने अभी पार्टी का निर्माण नहीं किया। न तो पार्टी का कार्यक्रम था और न पार्टी के नियम थे। अभी कोई नेतृत्व करने वाला एक ही केन्द्र भी न था और अलग-थलग मार्क्सवादी मण्डलों और गुटों में मुश्किल से ही कोई सम्बन्ध था।

विभिन्न मार्क्सवादी संगठनों को एक ही पार्टी में मिलाने और जोड़ने के लिए, लेनिन ने **इस्क्रा** की स्थापना की योजना पेश की और उसे पूरा किया। क्रान्तिकारी मार्क्सवादियों का अखिल रूसी पैमाने पर यह पहला अखबार था।

उस समय मजदूर वर्ग की एक ही राजनीतिक पार्टी बनाने के मुख्य विरोधी 'अर्थवादी' थे। वे इस तरह की पार्टी की जरूरत से इन्कार करते थे। अलग-थलग गुटों के अलगाव और अधकचरे तरीकों को वे शह देते थे। इन्हीं पर लेनिन और उनके द्वारा संगठित **इस्क्रा** अखबार ने अपने प्रहार किये।

इस्क्रा के पहले अंकों का प्रकाशन (1900-'01) एक नये जमाने की तरफ बढ़ने की सूचना थी। इस जमाने में, बिखरे हुए गुटों और मण्डलों से एक ही रूसी सामाजिक-जनवादी मजदूर पार्टी सचमुच बनी।

दूसरा अध्याय

रूसी सामाजिक-जनवादी मजदूर पार्टी का निर्माण। पार्टी के भीतर बोल्शेविक और मेन्शेविक गुटों का जन्म।

(1901-1904)

1. 1901-'04 में रूस में क्रान्तिकारी आन्दोलन की उठान।

यूरोप में 19वीं सदी के अन्त में औद्योगिक संकट दिखाई दिया। यह संकट जल्दी ही रूस भी आ पहुँचा। संकट के दिनों में (1900-'03) करीब 3,000 बड़े और छोटे कारखाने बन्द कर दिये गये और एक लाख से ऊपर मजदूर बेकार हो गये। जो मजदूर काम में लगे रहे, उनकी तनख्वाह में भारी कमी हुई। जबर्दस्त आर्थिक हड़तालें करके पूँजीपतियों से जो छोटी-मोटी रियायतें पहले मिली थीं, वे भी वापस ले ली गयीं।

औद्योगिक संकट और बेकारी ने मजदूर आन्दोलन को न तो रोका और न कमजोर बनाया। इससे उलट, मजदूरों का संघर्ष दिन पर दिन क्रान्तिकारी रूप धारण करता गया। आर्थिक हड़तालें करने के बाद, मजदूर राजनीतिक हड़तालें करने लगे और अन्त में वे प्रदर्शन करने लगे। जनवादी अधिकारों के लिए वे राजनीतिक माँगें पेश करने लगे और उन्होंने "निरंकुश जारशाही मुर्दाबाद!" का नारा बुलन्द किया।

1901 में, मई दिवस पर सेण्ट पीटर्सबर्ग में ओबूखोव के गोला-बारूद के कारखने में हड़ताल हुई, जिसके फलस्वरूप मजदूरों और फौज के सिपाहियों में खूनी टक्कर हुई। जार के हथियारबन्द सिपाहियों का मुकाबला करने के लिए, अस्त्र-शस्त्र के नाम पर मजदूरों के पास सिर्फ पत्थर और लोहे के टुकड़े थे। मजदूरों का जबर्दस्त विरोध तोड़ दिया गया। इसके बाद, भयानक बदला लिया गया था। करीब आठ सौ मजदूर गिरफ्तार किये गये। बहुतों को जेल में डाल दिया गया, या कठिन मेहनत और निर्वासन की सजा दी गयी, लेकिन वीरतापूर्ण 'ओबूखोव संघर्ष' ने रूस के मजदूरों पर गहरा असर डाला और उनके अन्दर हमदर्दी की लहर दौड़ गयी।

मार्च 1902 में, बातुम में मजदूरों की बड़ी हड़तालें हुई और एक प्रदर्शन हुआ। इसका

संगठन बातुम की सामाजिक-जनवादी कमेटी ने किया था। बातुम के प्रदर्शन से ट्रांस-काकेशया के मजदूरों और किसानों में हलचल पैदा हुई।

1902 में, दोन-तट के रोस्तोव नगर में भी एक भारी हड़ताल हुई। सबसे पहले रेल मजदूर काम छोड़कर आये। फिर, बहुत से कारखानों के मजदूर उनके साथ आ मिले। हड़ताल से सभी मजदूरों में हलचल थी। लगातार कई दिनों तक शहर के बाहर होने वाली सभाओं में तीस-तीस हजार मजदूर तक इकट्ठे हो जाते थे। इन सभाओं में सामाजिक-जनवादी ऐलान जोर से पढ़े जाते थे और वक्ता मजदूरों के सामने व्याख्यान देते थे। पुलिस और कज्जाक ये सभाएँ तोड़ने के लिए बेकार थे, जहाँ हजारों लोग इकट्ठे होते थे। जब पुलिस के हाथ से कई मजदूर मारे गये तो उनकी शव-यात्रा में मेहनतकश जनता का एक भारी जुलूस दूसरे दिन निकला। आसपास के शहरों से फौज बुलाकर ही, जार सरकार हड़ताल दबा सकी। रोस्तोव के मजदूरों के संघर्ष का नेतृत्व रू.सा.ज.म.पा. की दोन कमेटी ने किया था।

1903 में जो हड़तालें हुई, वे और भी बड़े पैमाने की थीं। उस साल दक्षिण में आम राजनीतिक हड़तालें हुईं। हड़तालों की लहर ट्रांस-काकेशिया (बाकू, तिफलिस, बातुम) और उक्रेन के बड़े शहरों (ओदेसा, कीव, एकातेरिनो-स्लाव) में फैल गयी। हड़तालें दिन पर दिन दृढ़ और ज्यादा सुसंगठित होती गयीं। मजूदर वर्ग की पहली कार्रवाई के विपरीत, करीब-करीब हर जगह मजदूरों के राजनीतिक संघर्ष का नेतृत्व सामाजिक-जनवादी कमेटियों ने किया था।

रूस का मजदूर वर्ग जारशाही के खिलाफ क्रान्तिकारी संघर्ष चलाने के लिए उठ रहा था।

मजदूर आन्दोलन का असर किसानों पर पड़ा। 1902 के बसन्त और गरमी में, उक्रेन में (पोल्तावा और खारकोव प्रान्तों में) और वोल्गा प्रदेश में किसान आन्दोलन शुरू हो गया। किसानों ने जमीन्दारों की कोठियों में आग लगा दी, उनकी जमीन छीन ली और **जेम्स्की नाचाल्निक**[1] और जमीन्दारों को, जिनसे वे नफरत करते थे, उन्होंने मार डाला। विद्रोही किसानों को दबाने के लिए फौजें भेजी गयीं। किसानों को गोलियाँ चलाकर मारा गया, सैकड़ों को गिरफ्तार कर लिया गया और उनके नेताओं और संगठनकर्ताओं को जेल में डाल दिया गया। फिर भी, क्रान्तिकारी किसान-आन्दोलन बढ़ता ही रहा।

मजदूरों और किसानों के क्रान्तिकारी कामों ने दिखला दिया कि रूस में क्रान्ति परिपक्व हो रही है और नजदीक आ रही है।

मजदूरों के क्रान्तिकारी संघर्ष के असर से हुकूमत के खिलाफ विद्यार्थियों के विरोध-आन्दोलन ने और तेजी पकड़ी। विद्यार्थियों के प्रदर्शनों और हड़तालों का बदला लेने के लिए हुकूमत ने विश्वविद्यालयों को बन्द कर दिया। सैकड़ों विद्यार्थियों को जेल में डाल दिया और अन्त में बागी विद्यार्थियों को मामूली सिपाहियों की तरह फौज में भेजने की योजना बनायी। इसके जवाब में, 1901-’02 के जाड़ों में सभी विश्वविद्यालयों के

1. अभिजात वर्ग द्वारा नियुक्त अफसर जो पुलिस, मजिस्ट्रेट और प्रशासक का काम करता था। -अं. अनु.

विद्यार्थियों ने एक आम हड़ताल संगठित की। इस हड़ताल में करीब 30,000 विद्यार्थी शामिल हुए।

मजदूरों और किसानों के क्रान्तिकारी आन्दोलन और खास तौर से विद्यार्थियों के खिलाफ दमन का असर उदारपंथी पूँजीपतियों और उदारपंथी जमीन्दारों पर पड़ा, जो जेम्स्त्वो नाम की संस्थाओं में जमे बैठे थे। ये भी अब हिले-डुले और अपने विद्यार्थी बेटों को दबाने में जार सरकार की 'ज्यादतियों' के 'विरोध' में इन्होंने अपनी आवाज बुलन्द की।

जेम्स्त्वो बोर्ड जेम्स्त्वो उदारपंथियों के गढ़ थे। ये स्थानीय सरकारी संस्थाएँ थीं, जिनके अधिकार में देहाती जनता से सम्बन्ध रखने वाले सिर्फ स्थानीय काम ही थे (सड़क, अस्पताल और स्कूल बनाना)। जेम्स्त्वो बोर्डों में उदारपंथी जमीन्दार काफी प्रमुख तौर पर भाग लेते थे। उदारपंथी पूँजीपतियों से उनका गहरा सम्बन्ध था। दरअसल वे करीब-करीब उनसे घुल-मिल गये थे, क्योंकि वे खुद वे तरीके छोड़ रहे थे जिनका आधार भूदास प्रथा के अवशेष थे और अपनी जागीरों में खेती के लिए ज्यादा मुनाफा देने वाले पूँजीवादी तरीके अपना रहे थे। यह ठीक है कि उदारपंथियों के ये दोनों गुट जार सरकार का समर्थन करते थे, लेकिन वे जारशाही की 'ज्यादतियों' का विरोध करते थे। उन्हें डर था था कि इन 'ज्यादतियों' से क्रान्तिकारी आन्दोलन और जोर ही पकड़ेगा। अगर एक तरफ वे जारशाही की 'ज्यादतियों' से डरते थे, तो दूसरी तरफ वे क्रान्ति से और भी डरते थे। इन 'ज्यादतियों' का विरोध करने में उदारपंथियों के दो उद्देश्य थे, पहला तो यह कि जार 'होश में आ जाये', और दूसरा यह कि जारशाही के प्रति 'गम्भीर असन्तोष' का चोगा पहनकर जनता का विश्वास हासिल करें और उसे या उसके एक हिस्से को क्रान्ति से तोड़ लें और इस तरह क्रान्ति को कमजोर बनायें।

इसमें कोई शक नहीं कि जेम्स्त्वो उदारपंथी आन्दोलन से जारशाही के अस्तित्व के लिए किसी तरह का भी खतरा नहीं था। फिर भी, उससे यह जाहिर हो गया कि जारशाही के 'अडिग' स्तम्भ भी डगमगाने लगे हैं।

1902 में, जेम्स्त्वो उदारपंथी आन्दोलन से पूँजीवादी 'देशोद्धारक' गुट का निर्माण हुआ। रूस में पूँजीपतियों की भावी मुख्य पार्टी-संवैधानिक जनवादी पार्टी-का यह बीज रूप था।

यह देखकर कि मजदूरों और किसानों का आन्दोलन एक जबर्दस्त लहर बनकर देश पर छाता जा रहा है, जार सरकार ने इस क्रान्तिकारी ज्वार को रोकने के लिए भरसक सब कुछ किया। मजदूरों की हड़तालों और प्रदर्शनों का दमन करने के लिए हथियारबन्द ताकत जल्दी-जल्दी इस्तेमाल की जाने लगी। मजदूरों और किसानों की कार्रवाई के जवाब में, हुकूमत आम तौर से लाठी और गोली इस्तेमाल करने लगी। जेलखाने और निर्वासन की जगहें ठसाठस भर गयीं।

दमन के उपाय और भी सख्ती से काम में लाने के साथ-साथ, जार सरकार ने कोशिश की कि दूसरे अहिंसावादी ज्यादा 'लचीले' तरीके भी इस्तेमाल करे, जिससे कि मजदूरों को क्रान्तिकारी आन्दोलन से हटाया जा सके। हथियारबन्द सिपाहियों और पुलिस की देखरेख

में मजदूरों के दिखावटी संगठन खड़े करने की कोशिश की गयी। इन्हें 'पुलिस समाजवाद' के संगठन या जुबातोव संगठन कहा जाता था (जुबातोव हथियारबन्द पुलिस का कर्नल था और वह पुलिस के निर्देश से चलने वाले इन मजदूर संगठनों का संथापक था)। अपने दलालों के जरिये **ओखराना** ने मजदूरों में यह विश्वास पैदा करने की कोशिश की कि जार सरकार खुद ही उनकी आर्थिक माँगों को पूरा किये जाने में मदद देने के लिए तैयार है। जुबातोव के दलाल मजदूरों से कहते : "राजनीति में पड़ने से क्या फायदा, क्रान्ति आने से क्या फायदा? जार खुद ही मजदूरों की हिमायत कर रहा है!" कई शहरों में जुबातोव संगठन बने। इन्हीं के नमूने पर और उसी उद्देश्य से 1904 में, गेपन नाम के पादरी ने सेण्ट पीटर्सबर्ग के रूसी मिल-मजदूरों का संघ बनाया।

लेकिन, जारशाही **ओखराना** की यह कोशिश कि वह मजदूर आन्दोलन की बागडोर अपने हाथ में ले ले, नाकाम रही। जार सरकार इस तरह के उपायों से बढ़ते हुए मजदूर आन्दोलन की रोकथाम करने में असफल रही। मजदूर वर्ग के उठते हुए क्रान्तिकारी आन्दोलन ने पुलिस के चलाये हुए इन संगठनों को अपने रास्ते से दूर फेंक दिया।

2. मार्क्सवादी पार्टी बनाने के लिए लेनिन की योजना। 'अर्थवादियों' का अवसरवाद। लेनिन की योजना के लिए 'इस्क्रा' का संघर्ष। लेनिन की पुस्तक 'क्या करें'-मार्क्सवादी पार्टी का सैद्धान्तिक आधार।

बावजूद इस बात कि रूसी सामाजिक-जनवादी पार्टी की पहली कांग्रेस 1898 में हो चुकी थी और उसने पार्टी बनने का ऐलान कर दिया था, अभी कोई सचमुच की पार्टी नहीं बनी थी। न कोई पार्टी कार्यक्रम था और न पार्टी के नियम थे। पहली कांग्रेस में जो पार्टी की केन्द्रीय समिति चुनी गयी थी, वह गिरफ्तार कर ली गयी थी और किसी ने उसकी जगह नहीं ली थी, क्योंकि जगह लेने वाला कोई था ही नहीं। इससे भी खराब यह था कि पहली कांग्रेस के बाद पार्टी में विचारधारा की उलझन और संगठन की एकता की कमी और भी बढ़ गयी।

1884-'94 के साल, नरोदवाद पर विजय के साल थे और सामाजिक-जनवादी पार्टी बनाने के लिए सैद्धान्तिक तैयारी के साल थे। 1894-'98 के सालों में कोशिश की गयी, भले ही यह नाकाम कोशिश थी, कि अलग-थलग मार्क्सवादी संगठनों को सामाजिक-जनवादी पार्टी में मिला कर एक किया जाये। 1898 के बाद ही जो वक्त आया, वह ऐसा था जिसमें पार्टी के भीतर विचारधारा और संगठन-सम्बन्धी उलझनें और बढ़ गयीं। नरोदवाद पर मार्क्सवादियों ने जो जीत हासिल की और मजदूर वर्ग ने जो क्रान्तिकारी काम किये, जिनसे साबित हुआ कि मार्क्सवादी सही थे, इनसे मार्क्सवाद के लिए क्रान्तिकारी नौजवानों में हमदर्दी पैदा हुई। मार्क्सवाद एक फैशन हो गया। इसका नतीजा यह हुआ कि झुण्ड के झुण्ड क्रान्तिकारी बुद्धिजीवी मार्क्सवादी संगठनों में आ पहुँचे। ये सिद्धान्त में कमजोर थे और राजनीतिक संगठन में अनुभवहीन थे। इनके दिमाग में मार्क्सवाद की एक अस्पष्ट और ज्यादातर गलत धारणा थी, जिसे उन्होंने 'कानूनी मार्क्सवादियों' की अवसरवादी

रचनाओं से पाया था। अखबारों में इस तरह की रचनाएँ भरी होती थीं। नतीजा यह कि मार्क्सवादी संगठनों का सैद्धान्तिक और राजनीतिक स्तर और नीचा हुआ। इनके अन्दर 'कानूनी मार्क्सवाद' की अवसरवादी प्रवृत्तियाँ घर कर गयीं। उनमें सैद्धान्तिक उलझन, राजनीतिक ढुलमुलपन और संगठन की अराजकता बढ़ गयी।

मजदूर आन्दोलन के उठते हुए ज्वार और क्रान्ति के स्पष्टतः नजदीक आने की यह माँग थी कि मजदूर वर्ग की एक संयुक्त और सुकेन्द्रित पार्टी हो, जो क्रान्तिकारी आन्दोलन का नेतृत्व कर सके। लेकिन स्थानीय पार्टी संगठन, स्थानीय कमेटियाँ, स्थानीय गुट और मण्डल ऐसी बुरी हालत में थे और उनकी संगठन-सम्बन्धी फूट और सैद्धान्तिक झगड़े ऐसे गम्भीर थे कि इस तरह की पार्टी का निर्माण करना बहुत बड़ी कठिनाई का काम था।

कठिनाई इसी में नहीं थी कि जार सरकार के बर्बर दमन का सामना करते हुए पार्टी बनानी थी। जार सरकार जब-तब संगठनों के सबसे अच्छे कार्यकर्ता छीन लेती थी और उन्हें निर्वासन, जेल और कठिन मेहनत की सजाएँ देती थी। कठिनाई इस बात में भी थी कि स्थानीय कमेटियों और उनके सदस्यों की एक बड़ी तादाद अपनी स्थानीय, छोटी-मोटी अमली कार्रवाई छोड़कर और किसी चीज से सरोकार नहीं रखती थी। पार्टी के अन्दर संगठन और विचारधारा की एकता नहीं होने से कितना नुकसान हो रहा है, इसका अनुभव नहीं करती थी। पार्टी के भीतर जो फूट और सैद्धान्तिक उलझन फैली हुई थी, वह उसकी आदी हो गयी थी। वह समझती थी कि बिना एक संयुक्त केन्द्रित पार्टी के भी मजे में काम चला सकती है।

अगर केन्द्रित पार्टी बनानी थी तो यह पिछड़ापन, आलस और स्थानीय संगठनों का यह संकीर्ण दृष्टिकोण खत्म करना था।

लेकिन, बात इतनी ही नहीं थी। पार्टी के अन्दर ऐसे लोगों का एक काफी बड़ा दल था जिनके अपने अखबार थे-रूस में **रबोचाया मिस्ल** (श्रमिक विचार) और विदेश में **रबोचेयेदेलो** (श्रमिक ध्येय)। ये सैद्धान्तिक आधार पर संगठन की एकता के अभाव और पार्टी के अन्दर सैद्धान्तिक उलझन को सही ठहराने की कोशिश करते थे। वे अकसर इस हालत की तारीफ भी करते थे। उनका दावा था कि मजदूर वर्ग की संयुक्त और केन्द्रित राजनीतिक पार्टी बनाने की योजना गैर-जरूरी और नकली थी।

ये थे 'अर्थवादी' और उनके अनुयायी।

सर्वहारा वर्ग की संयुक्त राजनीतिक पार्टी बने, इसके पहले 'अर्थवादियों' को हराना जरूरी था।

लेनिन ने यह काम और मजदूर वर्ग की पार्टी के निर्माण का काम उठाया।

मजदूर वर्ग की संयुक्त पार्टी बनाने का काम कैसे शुरू किया जाये, यह एक ऐसा सवाल था जिस पर अलग-अलग मत थे। कुछ लोगों का विचार था कि पार्टी की दूसरी कांग्रेस बुलाकर पार्टी-निर्माण का काम शुरू किया जाये। यह कांग्रेस स्थानीय संगठनों को एक करेगी और पार्टी बनायेगी। लेनिन इसका विरोध करते थे। उनका कहना था कि कांग्रेस बुलाने से पहले पार्टी के उद्देश्य और ध्येय साफ कर देना जरूरी है, यह मालूम करना जरूरी है कि किस तरह की पार्टी दरकार है, 'अर्थवादियों' से सैद्धान्तिक भेद करना

जरूरी है, ईमानदारी से और साफ-साफ पार्टी से यह कहना जरूरी है कि पार्टी के ध्येय और उद्देश्यों के बारे मे दो अलग मत मौजूद हैं-'अर्थवादियों' का मत और क्रान्तिकारी सामाजिक-जनवादियों का मत, अखबारों में क्रान्तिकारी सामाजिक-जनवाद के विचारों के पक्ष में व्यापक आन्दोलन करना जरूरी है-जैसेकि 'अर्थवादी' अपने अखबारों में अपने विचारों के पक्ष में आन्दोलन चला रहे थे, और इन दो धाराओं में से एक को जानबूझ कर चुनने के लिए स्थानीय संगठनों को मौका देना जरूरी है। यह शुरू का लाजिमी काम पूरा होने पर ही पार्टी कांग्रेस बुलाई जा सकती थी।

लेनिन ने साफ-साफ कहा :

> "इसके पहले कि हम मिलें और इसलिए कि हम मिलें, हमें मतभेद की स्पष्ट और निश्चित रेखाएँ खींच लेनी चाहिए।" (लेनिन, **संक्षिप्त ग्रंथावली**, *अंग्रेजी संस्करण, मास्को, 1947, खण्ड 1, पृ. 162)।*

इसी के अनुसार, लेनिन का कहना था कि मजदूर वर्ग की राजनीतिक पार्टी बनाने का काम अखिल रूसी पैमाने पर एक लड़ाकू राजनीतिक अखबार स्थापित करके शुरू करना चाहिए। यह अखबार क्रान्तिकारी सामाजिक-जनवाद के विचारों के पक्ष में प्रचार और आन्दोलन करे। इस तरह के अखबार की स्थापना पार्टी के निर्माण में पहला कदम होगी।

अपने प्रसिद्ध लेख **"शुरुआत कहाँ हो?"** में, लेनिन ने पार्टी के निर्माण के लिए एक ठोस योजना की रूपरेखा पेश की थी। अपनी प्रसिद्ध पुस्तक **क्या करें?** में, लेनिन ने आगे चलकर इसी योजना को विस्तृत रूप दिया।

लेनिन ने इस लेख में कहा था :

> "हमारी राय में हमारी कार्रवाई की शुरुआत अखिल रूसी पैमाने पर एक राजनीतिक अखबार की स्थापना से होनी चाहिए। जिस तरह का संगठन हम चाहते हैं (यानी पार्टी का निर्माण-सं.), उसके लिए यह पहला अमली कदम होगा। यही मुख्य सूत्र होगा जिसके सहारे हम संगठन को अटल रूप से विकसित कर सकेंगे, उसमें गम्भीरता पैदा कर सकेंगे और उसका प्रसार कर सकेंगे।... इसके बिना हम बाकायदा वह व्यापक प्रचार और आन्दोलन नहीं कर सकते, जो हमेशा सैद्धान्तिक रहे और जो आम तौर से सामाजिक-जनवादियों का मुख्य और हर समय का काम है। आजकल जबकि राजनीति में, समाजवाद के सवालों में जनता के भारी हिस्सों में दिलचस्पी पैदा हो गयी है, इस तरह का प्रचार और आन्दोलन खास तौर से जरूरी काम है।" (लेनिन, **संक्षिप्त ग्रंथावली**, रूसी संस्करण, खण्ड 4, पृष्ठ 110)।

लेनिन का विचार था कि इस तरह के अखबार से सैद्धान्तिक रूप में ही पार्टी एक नहीं होगी बल्कि उसके भीतर स्थानीय संस्थाएँ भी संगठन की दृष्टि से एक होंगी। अखबार के लिए जो एजेण्टों और संवाददाताओं का जाल बिछ जायेगा, उससे एक ऐसा ढाँचा खड़ा होगा जिसके चारों तरफ संगठन की दृष्टि से पार्टी का निर्माण हो सकेगा। ये एजेण्ट और संवाददाता स्थानीय संगठनों के प्रतिनिधि होंगे। लेनिन का कहना था, "अखबार एक सामूहिक प्रचारक और एक सामूहिक आन्दोलनकर्ता ही नहीं है, बल्कि एक सामूहिक

संगठनकर्ता भी है।"

लेनिन ने उसी लेख में लिखा था :

> "एजेण्टों का यह जाल उस संगठन का ही ढाँचा बन जायेगा जिसकी हमें जरूरत है, यानी ऐसा ढाँचा जो इतना बड़ा हो कि सारे देश में फैला हो, इतना व्यापक और चौमुखी हो कि मेहनत का बँटवारा सख्ती के साथ और विस्तार के साथ हो सके। यह ढाँचा काफी परखा हुआ और तपाया हुआ हो ताकि सभी हालात में, सभी 'मोड़ों' पर और हर तरह की आकस्मिक परिस्थिति में अटल होकर अपना काम चलाता रहे। वह इतना लचीला हो कि बहुत ज्यादा ताकतवर दुश्मन से खुली लड़ाई लड़ने से बचे जबकि दुश्मन ने अपनी सारी ताकत एक जगह बटोर ली हो और फिर भी, इस दुश्मन के भोंड़ेपन का फायदा उठा सके और जहाँ भी और जिस समय भी उसे सबसे कम उम्मीद हो, हमला कर सके।" (उपर्युक्त, पृष्ठ 112)।

इस्क्रा ऐसा ही अखबार बनने वाला था।

और सचमुच, कुल रूसी पैमाने पर **इस्क्रा** ऐसा ही राजनीतिक अखबार बना कि जिसने पार्टी को विचारधारा और संगठन में मजबूत करने के लिए रास्ता तैयार किया।

जहाँ तक पार्टी की बनावट और ढाँचे का सम्बन्ध था, लेनिन का विचार था कि उसके दो हिस्से होने चाहिए-(अ) पार्टी के नियमित प्रमुख कार्यकर्ताओं का एक भीतरी व्यूह हो, जिसमें मुख्यकर पेशेवर क्रान्तिकारी हों, यानी पार्टी के ऐसे कार्यकर्ता जो पार्टी के काम के अलावा और सभी कामों से आजाद हों और जिनके पास कम से कम आवश्यक सैद्धान्तिक ज्ञान, राजनीतिक अनुभव हो, संगठन का अभ्यास और जार की पुलिस का मुकाबला करने तथा उससे बचने की कला हो; (आ) स्थानीय पार्टी-संगठनों का विशद जाल हो और पार्टी के सदस्यों की एक बड़ी तादाद हो, जिनकी तरफ लाखों मेहनतकशों की हमदर्दी हो और वे उनका समर्थन करते हों।

लेनिन का कहना था :

> "मेरा दावा है कि 1) कोई भी क्रान्तिकारी आन्दोलन नेताओं के ऐसे टिकाऊ संगठन के बिना, जो लगातार कायम रहे, चल नहीं सकता; 2) संघर्ष में आाम जनता जितना ही अपने आप कूदती है... उतना ही इस संगठन की जरूरत बढ़ जाती है और संगठन उतना ही मजबूत होना चाहिए।... 3) इस तरह के संगठन में मुख्यतः ऐसे लोग होने चाहिए जो क्रान्तिकारी काम में पेशेवर तरीके से लगे हों। 4) स्वेच्छाचारी राज्य में इस तरह के संगठन की सदस्यता को जितना ही हम ऐसे लोगों के लिए **सीमित** रखेंगे जो पेशेवर तरीके से क्रान्तिकारी काम में लगे हों और जिन्हें पेशे के तौर पर राजनीतिक पुलिस का मुकाबला करने की कला में शिक्षा हो, उतना ही इस तरह के संगठन को मिटाना मुश्किल होगा; और 5) उतना ही मजदूर वर्ग और समाज के दूसरे वर्गों के लोगों की तादाद, जो आन्दोलन में शामिल हो सकेंगे और उसमें सक्रिय भाग ले सकेंगे, **बड़ी होगी**।" (उपर्युक्त, पृष्ठ 456)

जहाँ तक बनाई जाने वाली पार्टी के स्वरूप का सम्बन्ध था और मजदूर वर्ग के

सम्बन्ध में उसकी भूमिका और उसके उद्देश्य और ध्येय का सवाल था, लेनिन का कहना था कि पार्टी मजदूर वर्ग की हिरावल हो, वह मजदूर आन्दोलन को रास्ता दिखाने वाली ताकत हो जो सर्वहारा के वर्ग-संघर्षों का संचालन करे और उन्हें आपस में मिलाये। पार्टी का अन्तिम ध्येय पूँजीवाद का खात्मा और समाजवाद कायम करना था। उसका फौरी ध्येय जारशाही का खात्मा और जनवादी व्यवस्था कायम करना था। चूँकि जारशाही को पहले खत्म किये बिना पूँजीवाद को खत्म करना नामुमकिन था, इसलिए उस वक्त पार्टी का मुख्य काम मजदूर वर्ग और तमाम जनता को जारशाही के खिलाफ संघर्ष के लिए उभारना था, उसके खिलाफ जनता के क्रान्तिकारी आन्दोलन को विकसित करना था और समाजवाद के रास्ते में उसे पहली और भारी अड़चन समझ कर खत्म करना था।

लेनिन ने लिखा था :

"इतिहास ने अब हमारे सामने एक फौरी काम रखा है। किसी भी देश के सर्वहारा के सामने जो **फौरी** काम हैं, उनमें यह **सबसे क्रान्तिकारी** है। इस काम के पूरा होने से, यूरोपीय प्रतिक्रियावाद ही नहीं, बल्कि (अब यह कहा जा सकता है कि) एशियाई प्रतिक्रियावाद के सबसे शक्तिशाली गढ़ के विनाश से रूसी सर्वहारा वर्ग अन्तरराष्ट्रीय क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग का हिरावल बन जायेगा।" (उपर्युक्त, पृ. 382)

और भी आगे :

"हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि आंशिक माँगों के लिए हुकूमत से संघर्ष, आंशिक रियायतों की जीत, दुश्मन से छोटी-मोटी मुठभेड़ ही है। यह बाहर की चौकियों पर छोटी टक्करें हैं, जबकि निपटारे की लड़ाई अभी होने को है। हमारे सामने अपनी भरपूर ताकत से सुसज्जित दुश्मन का किला खड़ा हुआ है। वह हम पर गोला-बारूद बरसा रहा है और हमारे सबसे अच्छे सिपाहियों को भूने डाल रहा है। इस किले पर हमें कब्जा करना है। हम उस पर कब्जा कर लेंगे, बशर्ते कि हम जागते हुए सर्वहारा की सभी ताकतों को रूसी क्रान्तिकारियों की ताकतों के साथ एक ही पार्टी में मिलाएँ, ऐसी पार्टी जो रूस में जो कुछ जीवित और ईमानदार है, उसे अपनी तरफ खींचे। और तभी रूस के मजदूर क्रान्तिकारी प्योत्र अलेक्सीयेव की महान भविष्यवाणी पूरी होगी : 'लाखों मेहनतकशों की सशक्त भुजा उठेगी और तानाशाही का किला, जिसकी हिफाजत सिपाहियों की संगीनें कर रही हैं, चूर-चूर हो जायेगा।'" (उपर्युक्त, पृष्ठ 59)।

निरंकुश जारशाही के रूस में मजदूर वर्ग की पार्टी बनाने के लिए, लेनिन की योजना इस तरह की थी।

लेनिन की योजना के खिलाफ जिहाद बोलने में 'अर्थवादियों' ने जरा भी देर नहीं लगायी।

उनका दावा था कि जारशाही के खिलाफ आम राजनीतिक संघर्ष चलाने में सभी वर्गों को दिलचस्पी है, लेकिन मुख्यतः पूँजीपतियों को है। और इसलिए, मजदूर वर्ग को उससे गहरी दिलचस्पी नहीं है क्योंकि मजदूरों का मुख्य हित ज्यादा तनख्वाह , काम करने की

बेहतर हालत वगैरह के लिए अपने मालिकों के खिलाफ आर्थिक लड़ाई लड़ने में है। इसलिए, सामाजिक-जनवादियों का पहला और मुख्य ध्येय जारशाही के खिलाफ राजनीतिक संघर्ष नहीं होना चाहिए, जारशाही का खात्मा नहीं होना चाहिए बल्कि "मालिकों और सरकार के खिलाफ मजदूरों के आर्थिक संघर्ष" का संगठन होना चाहिए। सरकार के खिलाफ आर्थिक संघर्ष से उनका मतलब ज्यादा अच्छे मिल-सम्बन्धी कानून बनवाने से था। 'अर्थवादियों' का कहना था कि इस तरह से "आर्थिक संघर्ष को ही राजनीतिक रूप देना" मुमकिन होगा।

'अर्थवादियों' की अब यह हिम्मत नहीं थी कि मजदूर वर्ग की राजनीतिक पार्टी की आवश्यकता का खुलकर विरोध करें। लेकिन वे समझते थे कि उसे मजदूर आन्दोलन की निर्देशक शक्ति नहीं होना चाहिए, उसे मजदूर वर्ग के अपने-आप चलने वाले आन्दोलन का संचालन करना तो दूर, उसमें दखल भी नहीं देना चाहिए, बल्कि उसे इस आन्दोलन के पीछे चलना चाहिए, उसका अध्ययन करना चाहिए और उससे सबक लेना चाहिए।

इसके अलावा, 'अर्थवादी' कहते थे कि मजदूर आन्दोलन के सचेत लोगों की भूमिका, समाजवादी चेतना और समाजवादी सिद्धान्त की संगठन और संचालन-सम्बन्धी भूमिका नगण्य है, या करीब-करीब नगण्य है। उनका कहना था कि सामाजिक-जनवादियों को मजदूरों के शऊर को समाजवादी चेतना के स्तर तक नहीं उठाना चाहिए, बल्कि उल्टा औसत दर्जे के मजदूरों, मजदूर वर्ग के ज्यादा पिछड़े हुए हिस्सों के स्तर तक उन्हें खुद झुकना चाहिए; उनसे अपनी पटरी बैठानी चाहिए। सामाजिक-जनवादियों को यह नहीं चाहिए कि मजदूर वर्ग में समाजवादी चेतना पैदा करें, बल्कि तब तक इन्तजार करना चाहिए जब तक कि मजदूर वर्ग का अपने आप चलने वाला आन्दोलन समाजवादी चेतना के स्तर तक खुद ही नहीं पहुँच जाये।

जहाँ तक पार्टी के संगठन के लिए लेनिन की योजना का सवाल था, 'अर्थवादी' उसे अपने आप चलने वाले आन्दोलन के खिलाफ करीब-करीब हिंसा का ही काम समझते थे।

इस्क्रा के कॉलमों में और खास तौर से अपनी प्रसिद्ध पुस्तक **क्या करें?** में, लेनिन ने 'अर्थवादियों' के इस अवसरवादी दर्शन पर कस कर हमला किया और उसे निर्मूल कर दिया।

1. लेनिन ने दिखलाया कि जारशाही के खिलाफ आम राजनीतिक संघर्ष से मजदूर वर्ग को हटाना और मालिकों और सरकार के खिलाफ आर्थिक संघर्ष तक उसका काम सीमित रखना, जबकि मालिक और सरकार दोनों बरकरार रहने दिये जायें, इसके मानी यह थे कि मजदूरों को हमेशा के लिए गुलामी करने के लिए छोड़ दिया जाये। मालिकों और सरकार के खिलाफ मजदूरों की आर्थिक लड़ाई पूँजीपतियों को अपनी श्रम-शक्ति बेचने में ज्यादा अच्छी शर्तें पाने के लिए एक ट्रेड यूनियन लड़ाई थी। लेकिन मजदूर पूँजीपतियों को अपनी श्रम-शक्ति बेचने में ज्यादा अच्छी शर्तों के लिए ही नहीं लड़ना चाहते थे बल्कि उस पूँजीवादी व्यवस्था के खात्मे के लिए भी लड़ना चाहते थे जो उन्हें पूँजीपतियों को अपनी श्रमशक्ति बेचने पर और शोषित होने पर मजबूर करती थी। लेकिन जब तक मजदूर आन्दोलन के रास्ते को पूँजीवाद के रखवाले कुत्ते जार शासन ने

रोक रखा था, तब तक मजदूर पूँजीवाद के खिलाफ अपना संघर्ष, समाजवाद के लिए अपना संघर्ष पूरी तरह विकसित नहीं कर सकते थे। इसलिए, पार्टी और मजदूर वर्ग का यह फौरी काम था कि रास्ते से जारशाही को हटाया जाये और इस तरह समाजवाद के लिए रास्ता साफ किया जाये।

2. लेनिन ने दिखलाया कि मजदूर आन्दोलन के अपने-आप चलने की तारीफ करना, इस बात से इनकार करना कि पार्टी को प्रमुख भूमिका अदा करनी है, सिर्फ घटनाओं का हिसाब रखने तक उसकी भूमिका घटा देना, पिछलगुआपन (*ख्वोस्तीवाद)* का प्रचार करना था, पार्टी को अपने-आप चलने वाले घटना-क्रम की दुम बना देने का प्रचार करना था, उसे आन्दोलन में एक निष्क्रिय ताकत बना देना था जो सिर्फ अपने-आप होने वाले घटना-क्रम को देखा भर करे और घटनाओं को अपने तरीके से होने दे। यह सब प्रचार करने का मतलब था-पार्टी के नाश के लिए काम करना, यानी मजदूर वर्ग को बिना पार्टी के कर देना, यानी मजदूर वर्ग को निहत्था छोड़ देना। लेकिन जारशाही जैसे दुश्मन के सामने, जो सिर से पैर तक हथियारों से लैस थी, और पूँजीपतियों जैसे दुश्मन के सामने, जो आधुनिक तरीके से संगठित थे और मजूदर वर्ग के खिलाफ अपना संघर्ष चलाने के लिए खुद अपनी पार्टी बनाये हुए थे, मजदूर वर्ग को निहत्था छोड़ने का मतलब था-उसके साथ गद्दारी करना।

3. लेनिन ने दिखलाया कि अपने-आप चलने वाले मजदूर आन्दोलन की पूजा करना और चेतना के महत्त्व को कम और समाजवादी सिद्धान्त के महत्त्व को तुच्छ बताना, सबसे पहले मजदूरों का अपमान करना था, जो चेतना की तरफ वैसे ही झुकते थे जैसे प्रकाश की तरफ। इसके अलावा, उसे तुच्छ बताने का मतलब था-पार्टी की नजर में सिद्धान्त की कीमत कम करना, यानी उस अस्त्र को ही तुच्छ बताना जिसकी मदद से पार्टी वर्तमान को समझ सकती थी और भविष्य को देख सकती थी। और तीसरे, चेतना को तुच्छ बताने का मतलब था-अवसरवाद के दलदल में पूरी तरह अटल रूप से फँस जाना।

लेनिन ने लिखा था :

> “क्रान्तिकारी सिद्धान्त के बिना कोई क्रान्तिकारी आन्दोलन नहीं चल सकता।.. . लड़ाकू हिरावल का काम ऐसी ही पार्टी कर सकती है जो सबसे आगे बढ़े हुए सिद्धान्त से अपना रास्ता पहचानती हो।” (लेनिन, **संक्षिप्त ग्रंथावली,** अंग्रेजी संस्करण, मास्को, 1947, खण्ड 1, पृ. 163, 164)।

4. लेनिन ने दिखलाया कि ‘अर्थवादी’ यह कहकर कि अपने-आप चलने वाले मजदूर आन्दोलन से समाजवादी विचारधारा पैदा हो सकती है, मजदूर वर्ग को धोखा दे रहे थे। कारण यह कि समाजवादी विचारधारा अपने-आप चलने वाले आन्दोलन से नहीं पैदा होती, बल्कि विज्ञान से पैदा होती है। मजदूर वर्ग में समाजवादी चेतना फैलाने की जरूरत से इनकार करके ‘अर्थवादी’ पूँजीवादी विचारधारा के लिए रास्ता साफ कर रहे थे। वे मजदूर वर्ग में पूँजीवादी विचारधारा को पहुँचाने और फैलाने का काम आसान बना रहे थे। और इसलिए, वे मजदूर आन्दोलन से समाजवाद को मिलाने के विचार को दफना रहे थे और इस तरह पूँजीपतियों की मदद कर रहे थे।

लेनिन ने कहा था :

“मजदूर आन्दोलन के अपने-आप चलने, स्वतःस्फूर्त होने की पूजा करने, ‘सचेत लोगों’ की भूमिका और सामाजिक-जनवाद की पार्टी की भूमिका को कम करने की सभी कोशिशों का मतलब है-**मजदूरों में पूँजीवादी विचारधारा के असर को मजबूत करना, और यह सवाल बिल्कुल दरकिनार है कि वह ऐसा करना चाहते हैं या नहीं।”** *(उपर्युक्त, पृ.* 173)।

और आगे :

“हमारे सामने एक ही रास्ता है : या तो पूँजीवादी विचारधारा या समाजवादी विचारधारा। बीच का रास्ता नहीं है।... इसलिए समाजवादी विचारधारा को किसी तरह कम करके बताना, **उससे जरा भी हटना**, पूँजीवादी विचारधारा को मजबूत करना है।” (*उपर्युक्त,* पृ. 174, 175)।

‘अर्थवादियों’ की इन तमाम भूलों का सार देते हुए, लेनिन इस नतीजे पर पहुँचे थे कि वे लोग पूँजीवाद से मजदूरों को मुक्त करने के लिए सामाजिक क्रान्ति की पार्टी नहीं चाहते थे, बल्कि ‘सामाजिक सुधार’ की पार्टी चाहते थे। ‘सामाजिक सुधार’ की पार्टी चाहने का मतलब था पूँजीवादी हुकूमत को बने रहने देना। इसलिए, ‘अर्थवादी’ सुधारवादी थे, जो सर्वहारा वर्ग के बुनियादी हितों के साथ गद्दारी कर रहे थे।

5. अन्त में, लेनिन ने दिखलाया कि रूस में ‘अर्थवाद’ आकस्मिक घटना नहीं है; ‘अर्थवादी’ मजदूर वर्ग पर पूँजीवादी असर डालने का साधन हैं। पश्चिमी यूरोप की सामाजिक-जनवादी पार्टियों में भी उनके साथी थे। अवसरवादी बर्न्सटाइन के अनुयायी, ‘संशोधनवादी’ उनके साथी थे। पश्चिमी यूरोप में सामाजिक-जनवादी पार्टियों के अन्दर अवसरवादी प्रवृत्ति जोर पकड़ रही थी। मार्क्स की “आलोचना करने की आजादी” के नाम पर, ये लोग मार्क्सवादी सिद्धान्तों में संशोधन करने की माँग करते थे। (इसलिए ‘संशोधनवादी’ शब्द बना)। ये लोग माँग करते थे कि क्रान्ति त्याग दी जाये, समाजवाद और सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व को त्याग दिया जाये। लेनिन ने दिखलाया कि रूसी ‘अर्थवादी’ भी क्रान्तिकारी संघर्ष को छोड़ने की, समाजवाद और सर्वहारा अधिनायकत्व त्यागने की वैसी ही नीति पर चल रहे थे।

क्या करें? नाम की पुस्तक में, लेनिन ने इस तरह के सैद्धान्तिक उसूलों का विवेचन किया था।

इस किताब के व्यापक रूप से पढ़े जाने से नतीजा यह हुआ कि रूसी सामाजिक-जनवादी पार्टी की दूसरी कांग्रेस तक, यानी प्रकाशित होने के साल भर के भीतर ही (मार्च, 1902 में वह प्रकाशित हुई थी), ‘अर्थवाद’ के उसूलों की एक कड़वी याद भर रह गयी। पार्टी के ज्यादातर सदस्य ‘अर्थवादी’ कहलाना अपमान की बात समझने लगे।

‘अर्थवाद’ की यह करारी सैद्धान्तिक हार थी; यह अवसरवाद, *पिछलग्गुआपन* और अपनेआप चलने वाले आन्दोलन की पूजा की करारी हार थी।

लेकिन, लेनिन की पुस्तक **क्या करें**? का महत्त्व यहीं खत्म नहीं हो जाता।

इस प्रसिद्ध पुस्तक का महत्त्व इस बात में है कि इसमें लेनिन ने :

1. मार्क्सवादी विचारों के इतिहास में पहली बार, अवसरवाद की सैद्धान्तिक जड़ों को उघार कर रख दिया और यह दिखलाया कि ये जड़ें सबसे अधिक अपने-आप चलने वाले मजदूर आन्दोलन की पूजा करने और मजदूर आन्दोलन में समाजवादी चेतना कम करने में हैं;

2. अपने आप चलने वाले मजदूर आन्दोलन में सिद्धान्त के, चेतना के और पार्टी के भारी महत्त्व को दिखाया कि वे क्रान्तिकारी तब्दीली करने वाली और रास्ता दिखाने वाली ताकत हैं;

3. इस बुनियादी मार्क्सवादी सूत्र को बहुत सुन्दर ढंग से पुष्ट किया कि मार्क्सवादी पार्टी समाजवाद से मजदूर आन्दोलन का मेल है;

4. मार्क्सवादी पार्टी की सैद्धान्तिक बुनियाद की बहुत सुन्दर व्याख्या की।

क्या करें? नाम की पुस्तक में सिद्धान्त के जो विचार रखे गये थे, वे आगे चलकर बोल्शेविक पार्टी की विचारधारा की बुनियाद बने।

सिद्धान्त की ऐसी निधि पास होने पर **इस्क्रा** पार्टी बनाने के लिए, अपनी ताकत बटोरने के लिए, दूसरी पार्टी कांग्रेस बुलाने के लिए, क्रान्तिकारी सामाजिक-जनवाद के समर्थन और 'अर्थवादियों', संशोधनवादियों और सभी तरह के अवसरवादियों के विरोध की लेनिन की योजना कारगर करने के लिए एक व्यापक आन्दोलन कर सका और हकीकत में ऐसा आन्दोलन उसने किया।

इस्क्रा ने जो एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात की, वह पार्टी-कार्यक्रम का मसौदा तैयार करना था। जैसा कि हम जानते हैं, मजदूरों की पार्टी का कार्यक्रम मजदूर वर्ग के संघर्ष के ध्येय और उद्देश्यों का संक्षेप में और वैज्ञानिक ढंग से लिखा हुआ बयान होता है। कार्यक्रम सर्वहारा वर्ग के क्रान्तिकारी आन्दोलन के अन्तिम उद्देश्य की व्याख्या भी करता है और इस अन्तिम उद्देश्य तक पहुंचने के रास्ते में जिन माँगों के लिए पार्टी लड़ती है, उनकी व्याख्या भी करता है। इसलिए, कार्यक्रम का मसौदा तैयार करना सबसे ज्यादा महत्त्व की बात थी।

कार्यक्रम का मसौदा तैयार करते हुए, **इस्क्रा** के सम्पादक-मण्डल में एक तरफ लेनिन और दूसरी तरफ प्लेखानोव और मण्डल के दूसरे सदस्यों के बीच गम्भीर मतभेद उठ खड़े हुए। इन मतभेदों और झगड़ों से लेनिन और प्लेखानोव का सम्बन्ध करीब-करीब टूटने को हो आया। लेकिन, उस वक्त बात यहाँ तक नहीं बढ़ी। लेनिन इस बात में सफल रहे कि कार्यक्रम के मसौदे में सर्वहारा अधिनायकत्व के बारे में एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण धारा रहे और क्रान्ति में मजदूर वर्ग की प्रमुख भूमिका के बारे में साफ बयान रहे।

लेनिन ने ही कार्यक्रम का खेती-सम्बन्धी हिस्सा लिखा था। उस समय ही, लेनिन जमीन के राष्ट्रीयकरण के पक्ष में थे। लेकिन, संघर्ष की पहली मंजिल में वह इस बात को जरूरी समझते थे कि किसानों की *अतरेज्की,* यानी किसानों की 'मुक्ति' के समय जमीन्दारों ने उनकी जमीन से जो हिस्से छाँट लिये थे, उन्हें वापस करने की माँग रखी जाये।

प्लेखानोव ने जमीन के राष्ट्रीयकरण की माँग का विरोध किया था।

लेनिन और प्लेखानोव में पार्टी-कार्यक्रम के बारे में जो झगड़े हुए, उन्होंने किसी हद तक बोल्शेविकों और मेन्शेविकों के भावी मतभेदों की रूपरेखा बनाई।

3. रूसी सामाजिक-जनवादी मजदूर पार्टी की दूसरी कांग्रेस। कार्यक्रम और नियमों की स्वीकृति और एक ही पार्टी का निर्माण। कांग्रेस में मतभेद और पार्टी के अन्दर दो प्रवृत्तियों का प्रकट होना : बोल्शेविक और मेन्शेविक।

इस तरह, लेनिन के सिद्धान्तों की जीत से और संगठन-सम्बन्धी लेनिन की योजना के लिए **इस्क्रा** के सफल संघर्ष से वे तमाम मुख्य बातें तैयार हो गयीं, जो कि पार्टी बनाने के लिए, या जैसा कि उस समय कहा जाता था, एक सच्ची पार्टी बनाने के लिए जरूरी थीं। रूस के सामाजिक-जनवादी संगठनों में इस्क्रावादी रुझान प्रमुख हो गया। अब दूसरी पार्टी कांग्रेस बुलाई जा सकती थी।

17 जुलाई (नयी शैली, 30 जुलाई) 1903 को रू.सा.ज.म.पा. की दूसरी कांग्रेस शुरू हुई। वह विदेश में गुप्त रूप से की गयी थी। पहले वह ब्रुसेल्स में हुई। बेल्जियम की पुलिस ने प्रतिनिधियों से देश छोड़ देने की प्रार्थना की। उसके बाद, कांग्रेस ने अपना अधिवेशन लन्दन में किया।

26 संगठनों से 43 प्रतिनिधि कांग्रेस में इकट्ठे हुए थे। हर कमेटी को अधिकार था कि दो प्रतिनिधि भेजे, लेकिन कुछ ने एक ही भेजा था। 43 प्रतिनिधियों के आपस में कुल मिला कर 51 वोट थे।

कांग्रेस का मुख्य उद्देश्य "एक सच्ची पार्टी बनाना था, जिसका आधार वे सिद्धान्त और संगठन हों जिन्हें **इस्क्रा** ने पेश किया था और जिनकी उसने विस्तार से व्याख्या की थी।" (लेनिन, सं.ग्रं.,अं.सं., मास्को, 1947, खण्ड 1, पृ. 273)।

कांग्रेस में आये हुए प्रतिनिधि तरह-तरह के थे। खुले हुए 'अर्थवादी' उनमें नहीं थे क्योंकि उनकी हार हो चुकी थी, लेकिन उसके बाद उन्होंने अपने विचारों को ऐसी चतुराई से नया लिबास पहनाया था कि अपने कई प्रतिनिधि कांग्रेस के भीतर भेज देने में वे कामयाब हुए। इसके सिवा, बुन्द के प्रतिनिधि 'अर्थवादियों' से सिर्फ ऊपरी तौर पर ही भिन्न थे। वास्तव में, वे 'अर्थवादियों' का समर्थन करते थे।

इस तरह, कांग्रेस में **इस्क्रा** के समर्थक ही नहीं थे बल्कि उसके विरोधी भी थे। 33 प्रतिनिधि, यानी बहुमत, **इस्क्रा** के समर्थक थे। लेकिन वे सभी लोग जो अपने को इस्क्रावादी समझते थे, सच्चे लेनिनपंथी **इस्क्रावादी** नहीं थे। प्रतिनिधि कई गुटों में बँट गये। लेनिन के समर्थकों, यानी पक्के **इस्क्रावादियों,** के 24 वोट थे। 9 **इस्क्रावादी** मारतोव के अनुयायी थे; ये कच्चे **इस्क्रावादी** थे। कुछ प्रतिनिधि **इस्क्रा** और उसके विरोधियों के बीच में ढुलमुलाते रहते थे। इनके 10 वोट थे और इनसे मिलकर 'केन्द्र' बना था : **इस्क्रा** के खुले विरोधियों के 8 वोट थे (3 'अर्थवादी' और 5 बुन्दवादी)। *इस्क्रावादियों* की कतारों में फूट का मतलब होता कि **इस्क्रा** के दुश्मनों की बन आती।

इससे देखा जा सकता है कि कांग्रेस में परिस्थिति कितनी उलझी हुई थी। **इस्क्रा** की

जीत पक्की करने के लिए लेनिन ने बहुत बड़ी शक्ति लगायी।

एजेण्डे पर सबसे महत्त्वपूर्ण बात पार्टी के कार्यक्रम की स्वीकृति थी। कार्यक्रम पर बहस के दौर में कांग्रेस के अवसरवादी लोगों को जिस खास बात पर आपत्ति थी, वह सर्वहारा-अधिनायकत्व का सवाल था। कार्यक्रम में कुछ बातें और थीं जिन पर अवसरवादी कांग्रेस के क्रान्तिकारी हिस्से से सहमत नहीं थे। लेकिन, उन्होंने सर्वहारा-अधिनायकत्व के सवाल पर मुख्य लड़ाई लड़ने का विचार किया। उनकी दलील यह थी कि विदेश की कई और सामाजिक-जनवादी पार्टियों के कार्यक्रम में सर्वहारा-अधिनायकत्व के बारे में कोई धारा नहीं है और इसलिए रूसी सामाजिक-जनवादी पार्टी के कार्यक्रम से भी उसे दूर रखा जा सकता है।

किसानों के सवाल पर भी अवसरवादी लोग पार्टी-कार्यक्रम में माँग रखने पर आपत्ति कर रहे थे। ये लोग क्रान्ति नहीं चाहते थे। इसलिए मजदूर वर्ग के सहयोगी-किसानों-के सवाल पर झेंपते थे और उनकी तरफ गैर-दोस्ताना भाव रखते थे।

बुन्दवादी और पोलैण्ड के सामाजिक-जनवादियों ने राष्ट्रीयताओं के आत्म-निर्णय के अधिकार पर आपत्ति की। लेनिन ने हमेशा सिखलाया था कि मजदूर वर्ग को राष्ट्रीय उत्पीड़न का मुकाबला करना चाहिए। कार्यक्रम में इस माँग को रखने पर आपत्ति करने का यही मतलब था कि सर्वहारा अन्तरराष्ट्रीयता के उसूल को छोड़ दिया जाये और राष्ट्रीय उत्पीड़न का साझीदार बना जाये।

लेनिन ने इन तमाम आपत्तियों को चुटकी से मसल दिया।

कांग्रेस ने **इस्क्रा** द्वारा पेश किये हुए कार्यक्रम को स्वीकार किया।

इस कार्यक्रम के दो हिस्से थे-एक तो अधिकतम कार्यक्रम और दूसरा अल्पतम कार्यक्रम। अधिकतम कार्यक्रम में मजदूर वर्ग की पार्टी के मुख्य ध्येय की चर्चा थी, यानी समाजवादी क्रान्ति, पूँजीपतियों की ताकत का खात्मा और सर्वहारा अधिनायकत्व की स्थापना की चर्चा थी। अल्पतम कार्यक्रम में पार्टी के फौरी उद्देश्यों की चर्चा थी, ऐसे उद्देश्यों की जो पूँजीवादी व्यवस्था के खात्मे और सर्वहारा अधिनायकत्व के कायम किये जाने से पहले हासिल किये जायेंगे, यानी निरंकुश जारशाही के खात्मे, जनवादी गणतंत्र की स्थापना, 8 घण्टों का दिन चालू करने, गाँवों में भूदास प्रथा के सभी अवशेषों को खत्म करने और जमीन्दारों द्वारा छीनी हुई सभी भूमि (*अतरेज्की*) किसानों को वापस देने की चर्चा थी।

आगे चलकर, *अतरेज्की* वापस करने की माँग के बदले बोल्शेविकों ने सभी जमीन्दारियों को छीन लेने की माँग कार्यक्रम में रखी।

दूसरी कांग्रेस ने जो कार्यक्रम स्वीकार किया, वह मजदूर वर्ग की पार्टी का इन्कलाबी कार्यक्रम था।

सर्वहारा क्रान्ति की जीत के बाद होने वाली, आठवीं पार्टी कांग्रेस तक यह कार्यक्रम चालू रहा। उस समय हमारी पार्टी ने नया कार्यक्रम स्वीकार किया।

कार्यक्रम स्वीकार करने के बाद, दूसरी पार्टी कांग्रेस ने पार्टी-नियमावली के मसौदे पर बहस शुरू की। चूँकि अब कांग्रेस ने एक कार्यक्रम मंजूर कर लिया था और पार्टी की सैद्धान्तिक एकता की बुनियाद डाल दी थी, इसलिए उसे पार्टी-नियमावली इस तरह अपनानी

थी कि मण्डलों के अधकचरेपन और उनके स्थानीय दृष्टिकोण का खात्मा हो जाये, संगठन-सम्बन्धी फूट और पार्टी में सख्त अनुशासन के अभाव का खात्मा हो जाये।

कार्यक्रम को स्वीकार करने का काम निस्बतन आसानी से हो गया था, लेकिन कांग्रेस में पार्टी-नियमों को लेकर भारी झगड़े उठ खड़े हुए। सबसे तीखे मतभेद नियमावली का पहला पैरा रचने के बारे में थे, जिसमें पार्टी सदस्यता की चर्चा थी। पार्टी सदस्य कौन हो सकता है, पार्टी की बनावट क्या हो, पार्टी के संगठन की शक्ल कैसी हो, वह एक संगठित इकाई हो या उसकी रूपरेखा अनिश्चित हो?- इस तरह के सवाल नियमावली के पहले पैरा के सिलसिले में उठ खड़े हुए। दो तरह के मसौदों में टक्कर थी : लेनिन का मसौदा, जिसका समर्थन प्लेखानोव और पक्के **इस्क्रावादी** कर रहे थे; और मारतोव का मसौदा, जिसका समर्थन अक्सेलरोद, जासूलिच, कच्चे **इस्क्रावादी,** त्रात्स्की और कांग्रेस में आये हुए सभी खुले अवसरवादी कर रहे थे।

लेनिन के मसौदे के अनुसार, जो पार्टी का कार्यक्रम माने, पैसे से पार्टी की मदद करे और उसके किसी संगठन का सदस्य हो, वही पार्टी सदस्य हो सकता था। मारतोव के मसौदे के अनुसार कार्यक्रम मानना और पैसे से पार्टी की मदद करना पार्टी सदस्यता के लिए लाजिमी शर्तें तो थीं, लेकिन किसी संगठन का सदस्य होना पार्टी सदस्य के लिए शर्त नहीं होनी चाहिए थी। उसका कहना था कि पार्टी सदस्य के लिए जरूरी नहीं है कि वह किसी पार्टी संगठन में हो ही।

लेनिन के अनुसार, पार्टी एक **संगठित** दस्ता थी। उसके सदस्य पार्टी में हर किसी तरह नाम नहीं लिखा सकते थे। वे पार्टी के किसी संगठन के जरिये ही उस में भर्ती हो सकते थे। इसलिए, उनके लिए पार्टी का अनुशासन मानना जरूरी था। दूसरी तरफ, मारतोव की नजरों में पार्टी कुछ ऐसी चीज थी जो संगठन के विचार से **रूपरेखाहीन** हो, जिसके सदस्य पार्टी में नाम लिखा लेते हों और इसलिए पार्टी अनुशासन मानने के लिए मजबूर न हों क्योंकि वे किसी पार्टी-संगठन में नहीं हैं।

इस तरह, लेनिन के मसौदे के खिलाफ मारतोव का मसौदा अस्थिर, गैर-सर्वहारा लोगों के लिए पार्टी का दरवाजा खुला छोड़ देता था। पूँजीवादी जनवादी क्रान्ति होने के ऐन पहले पूँजीवादी बुद्धिजीवियों में ऐसे लोग थे जो क्रान्ति से हमदर्दी रखते थे। समय-समय पर वे पार्टी की थोड़ी-बहुत सेवा भी कर देते थे। लेकिन इस तरह के लोग किसी संगठन में शामिल होने, पार्टी का अनुशासन मानने, पार्टी के दिये हुए कामों को पूरा करने और साथ के खतरे मोल लेने से आनाकानी करते थे। फिर भी, मारतोव और दूसरे मेन्शेविकों का प्रस्ताव था कि ऐसे लोगों को पार्टी का सदस्य माना जाये और पार्टी के काम पर असर डालने का हक और अवसर उन्हें दिया जाये। उन्होंने यह प्रस्ताव किया था कि किसी भी हड़ताली को पार्टी में 'नाम लिखाने' का हक दिया जाये, हालाँकि गैर-समाजवादी, अराजकतावादी और समाजवादी-क्रान्तिकारी भी हड़तालों में हिस्सा लेते थे।

इस तरह, यह हालत पैदा हुई कि एक गठी हुई और लड़ाकू पार्टी के बदले, जिसका एक स्पष्ट कार्यक्रम हो और जिसके लिए कांग्रेस में लेनिन और लेनिनवादी लड़े थे, मारतोवपंथी एक ऐसी पार्टी चाहते थे जिसमें हर तरह के लोग हों, जो शिथिल और

रूपरेखाहीन हो, जो और किसी सबब से नहीं तो तरह-तरह के लोगों के होने से ही दृढ़ अनुशासन वाली लड़ाकू पार्टी न बन सके।

पक्के इस्क्रावादियों से कच्चे **इस्क्रावादी** टूट गये और केन्द्रवादियों से मिल गये। इनके साथ खुले अवसरवादी हो गये। इसलिए, इस बात पर मारतोव के पक्ष में बहुमत हो गया। 22 के खिलाफ 28 वोट से,1 आदमी तटस्थ रहा,-कांग्रेस ने नियमावली के पहले पैरा पर मारतोव का रचा हुआ प्रस्ताव स्वीकार किया। नियमावली के पहले पैरा पर **इस्क्रावादियों** की कतार टूटने पर, कांग्रेस के भीतर संघर्ष और भी तेज हो गया। कांग्रेस एजेण्डा की आखिरी बात लेने वाली थी-पार्टी की प्रमुख संस्थाओं का चुनाव : पार्टी के केन्द्रीय पत्र (**इस्क्रा**) के सम्पादक-मण्डल और केन्द्रीय समिति का चुनाव। लेकिन चुनाव की नौबत आने से पहले ही, कुछ ऐसी घटनाएँ हुईं जिनसे कांग्रेस के भीतर का शक्ति-सन्तुलन बदल गया।

पार्टी-नियमावली के सिलसिले में, कांग्रेस को बुन्द का सवाल लेना था। बुन्द पार्टी के भीतर एक खास जगह का दावा करता था। उसकी माँग थी कि उसे रूस के यहूदी मजदूरों का एकमात्र प्रतिनिधि माना जाये। इस माँग को मानने का मतलब होता-पार्टी-संगठनों के भीतर कार्यकर्ताओं को जातीयता के आधार पर बाँटना और मजदूरों के सामान्य प्रदेशगत वर्ग-संगठनों का त्याग। कांग्रेस ने बुन्द द्वारा प्रस्तावित जातीय आधार पर संगठन की व्यवस्था को नामंजूर किया। इस पर बुन्दवादी कांग्रेस से उठ कर चले गये। दो 'अर्थवादी' भी कांग्रेस से उठ गये, जब कांग्रेस ने उनकी विदेशी लीग को बाहर की पार्टी का प्रतिनिधि मानने से इनकार किया।

इन सात अवसरवादियों के चले जाने से, कांग्रेस में शक्ति-सन्तुलन लेनिनवादियों के पक्ष में हो गया।

शुरू से ही लेनिन ने पार्टी की केन्द्रीय संस्थाओं की बनावट पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। उन्होंने इस बात को जरूरी समझा कि केन्द्रीय समिति में पक्के और सुसंगत क्रान्तिकारी हों। मारतोवपंथियों ने कोशिश की कि केन्द्रीय समिति में अस्थिर और अवसरवादी लोगों का बहुमत हो। इस सवाल पर, कांग्रेस के बहुमत ने लेनिन का समर्थन किया। जो केन्द्रीय समिति चुनी गयी, उसमें लेनिन के अनुयायी थे।

लेनिन के प्रस्ताव पर, **इस्क्रा** के सम्पादक-मण्डल में लेनिन, प्लेखानोव और मारतोव चुने गये। मारतोव ने माँग की थी कि **इस्क्रा** के सम्पादक-मण्डल के पिछले सभी 6 सदस्य चुने जायें, जिनमें से ज्यादातर मारतोव के अनुयायी थे। कांग्रेस के बहुमत ने इस माँग को नामंजूर किया। लेनिन के प्रस्तावित तीन नाम मंजूर किये गये। इस पर, मारतोव ने ऐलान किया कि वह केन्द्रीय पत्र के सम्पादक-मण्डल में शामिल नहीं होगा।

इस तरह, पार्टी की केन्द्रीय संस्थाओं पर अपने वोट से कांग्रेस ने मारतोव के अनुयायियों की हार और लेनिन के अनुयायियों की जीत पक्की कर दी।

उस समय से लेनिन के अनुयायी, जिन्हें कांग्रेस में चुनाव के वक्त ज्यादा वोट मिले, **बोल्शेविक** कहलाये (**बोल्शेन्स्त्वो** से, जिसका अर्थ है बहुमत) और लेनिन के विरोधी, जिन्हें कम वोट मिले, **मेन्शेविक (मेन्शेन्स्त्वो** से, जिसका अर्थ है अल्पमत) कहलाये।

दूसरी कांग्रेस के काम को सार रूप में पेश करते हुए, ये नतीजे निकाले जा सकते हैं :

1. कांग्रेस ने 'अर्थवाद' पर, खुले अवसरवाद पर मार्क्सवाद की जीत पक्की कर दी।
2. कांग्रेस ने एक कार्यक्रम और नियमावली स्वीकार की, सामाजिक-जनवादी पार्टी बनायी और इस तरह एक ही पार्टी का ढाँचा खड़ा किया।
3. कांग्रेस ने संगठन के सवालों पर गम्भीर मतभेदों का होना जाहिर किया। इनसे पार्टी दो हिस्सों में बँटी हुई थी-बोल्शेविक और मेन्शेविक। बोल्शेविक क्रान्तिकारी सामाजिक-जनवाद के संगठन-सम्बन्धी उसूलों का समर्थन करते थे, जबकि मेन्शेविक संगठन-सम्बन्धी शिथिलता और अवसरवाद के दलदल में फँसे हुए थे।
4. कांग्रेस ने दिखाया कि पुराने अवसरवादियों, 'अर्थवादियों' की जगह जिन्हें पार्टी पहले ही हरा चुकी थी, नये अवसरवादी, मेन्शेविक ले रहे थे।
5. संगठन के काम में, कांग्रेस अपनी जिम्मेदारी नहीं निभा सकी। उसने ढुलमुलपन दिखाया और कई बार मेन्शेविकों का बहुमत भी हो जाने दिया। हालाँकि आखीर की तरफ उसने अपनी हालत सुधार ली, फिर भी वह संगठन के मामलों में मेन्शेविकों के अवसरवाद का पर्दाफाश न कर सकी और उन्हें पार्टी के अन्दर अकेला न कर सकी। पार्टी के सामने वह इसे काम की शक्ल में भी न रख सकी।

यह आखिरी बात कांग्रेस के बाद बोल्शेविकों और मेन्शेविकों के संघर्ष के कम होने के बदले और भी तेज होने का एक मुख्य कारण बनी।

4. मेन्शेविक नेताओं का फूट का काम और दूसरी कांग्रेस के बाद पार्टी के भीतर संघर्ष का तेज होना। मेन्शेविकों का अवसरवाद। लेनिन की पुस्तक 'एक कदम आगे दो कदम पीछे।' मार्क्सवादी पार्टी के संगठन के सिद्धान्त।

दूसरी कांग्रेस के बाद, पार्टी के भीतर संघर्ष और तेज हो गया। मेन्शेविकों ने भरसक कोशिश की कि दूसरी कांग्रेस के फैसलों को नाकाम कर दें और पार्टी की केन्द्रीय संस्थाओं पर कब्जा कर लें। उनकी माँग थी कि **इस्क्रा** के सम्पादक-मण्डल और केन्द्रीय समिति में उनके सदस्य इतनी तादाद में लिये जायें जिससे कि सम्पादक-मण्डल में उनका बहुमत हो जाये और केन्द्रीय समिति में वे बोल्शेविकों के बराबर हो जायें। यह माँग दूसरी कांग्रेस के फैसलों की बिल्कुल उल्टी थी इसलिए बोल्शेविकों ने इसे ठुकरा दिया। इसके बाद, मेन्शेविकों ने पार्टी से छिपा कर खुद अपने पार्टी-विरोधी गुटबाज दल को संगठित किया जिसके अगुवा मारतोव, त्रात्स्की और अक्सेलरोद थे, और जैसा कि मारतोव ने लिखा था : "लेनिनवाद के खिलाफ बगावत शुरू कर दी।" पार्टी का विरोध करने के लिए उन्होंने जो तरीके अपनाये वे जैसा कि लेनिन ने कहा था, ऐसे थे कि "पार्टी का समूचा काम तितर-बितर हो जाये, पार्टी के उद्देश्य की हानि हो और सब जगह और सब कहीं अड़चन पैदा हो जाये।" रूसी सामाजिक-जनवादियों की विदेशी लीग में वे जम गये। इनमें से 90 फीसदी बाहर गये हुए बुद्धिजीवी थे। रूस में जो काम हो रहा था, उससे वे दूर थे।

लीग के अन्दर अपनी जगह से मेन्शेविकों ने पार्टी के खिलाफ, लेनिन और लेनिनवादियों के खिलाफ गोलाबारी शुरू की।

मेन्शेविकों को प्लेखानोव से काफी मदद मिली। दूसरी कांग्रेस में प्लेखानोव ने लेनिन का साथ दिया था, लेकिन दूसरी कांग्रेस के बाद उन्होंने अपने को मेन्शेविकों की फूट की धमकी से डर जाने दिया। उन्होंने किसी भी कीमत पर मेन्शेविकों के साथ 'सुलह करने' का फैसला किया। उनकी पहली अवसरवादी भूलों के भारी वजन ने प्लेखानोव को खींचकर मेन्शेविकों के स्तर पर ला दिया। अवसरवादी मेन्शेविकों से 'सुलह करने' का समर्थक होने के बाद, वह बहुत जल्द खुद भी मेन्शेविक हो गये। प्लेखानोव ने माँग की कि **इस्क्रा** के वे तमाम भूतपूर्व मेन्शेविक सम्पादक, जिन्हें कांग्रेस ने नामंजूर कर दिया था, सम्पादक-मण्डल में शामिल कर लिये जायें। अवश्य ही, लेनिन इससे सहमत नहीं हो सकते थे। उन्होंने **इस्क्रा** का सम्पादक-मण्डल छोड़ दिया, जिससे कि पार्टी की केन्द्रीय समिति में वह जम सकें और वहाँ से अवसरवादियों पर हमला कर सकें। अपनी ही ओर से, और कांग्रेस की मर्जी की अवज्ञा करते हुए, प्लेखानोव ने भूतपूर्व मेन्शेविक सम्पादकों को **इस्क्रा** के सम्पादक-मण्डल में शामिल कर लिया। उस घड़ी से, **इस्क्रा** के 52वें अंक के बाद से, मेन्शेविकों ने उसे अपना मुखपत्र बना लिया और उसके कॉलमों में अपने अवसरवादी मत का प्रचार करने लगे।

तभी से पार्टी में लेनिन के बोल्शेविक **इस्क्रा** को **पुराना इस्क्रा** कहा जाता है और मेन्शेविक, अवसरवादी **इस्क्रा** को **नया इस्क्रा** कहा जाता है।

जब **इस्क्रा** मेन्शेविकों के हाथ में आ गया तो वह लेनिन और बोल्शेविकों के खिलाफ लड़ाई का हथियार बन गया। वह मेन्शेविक अवसरवाद, सबसे पहले संगठन के सवालों पर अवसरवाद का प्रचारक बन गया। 'अर्थवादियों' और बुन्दवादियों से सहयोग करके, मेन्शेविकों ने **इस्क्रा** के कॉलमों में, जैसाकि वे कहते थे, लेनिनवाद के खिलाफ आन्दोलन शुरू किया। प्लेखानोव सुलह के समर्थक की जगह कायम न रह सके और जल्द ही वह भी इस आन्दोलन में शामिल हो गये। घटनाक्रम के तर्क की यह माँग थी ही कि ऐसा होता। अवसरवादियों के साथ जो भी सुलह करने के रुख पर जोर देता है, वह जरूर खुद भी अवसरवाद में फँस जाता है। नये इस्क्रा के कॉलमों में, लेख और बयान इस तरह निकलने लगे जैसे कल्पवृक्ष में फल लग रहे हों। और, इन लेखों और बयानों का दावा था कि पार्टी को एक संगठित इकाई नहीं बनना चाहिए, उसकी कतारों में आजाद गुटों और व्यक्तियों को आने देना चाहिये और उन पर उसकी संस्थाओं के फैसलों को मानने की मजबूरी नहीं डालनी चाहिए; हर बुद्धिजीवी जो पार्टी से हमदर्दी रखता हो और 'हर हड़ताली' और 'प्रदर्शन में हिस्सा लेने वाला हर कोई' अपने को पार्टी सदस्य कह सकता है; पार्टी के सभी फैसलों को मानने की माँग "नौकरशाही से भरी हुई और ऊपरी है"; अल्पमत बहुमत के मातहत रहे, इस माँग का मतलब है-पार्टी सदस्यों की इच्छा का 'यांत्रिक दमन'; सभी पार्टी सदस्य, नेता और साधारण सदस्य, दोनों ही बराबर पार्टी अनुशासन मानें, इस माँग का मतलब है-पार्टी के अन्दर 'भूदास प्रथा' कायम करना; 'हमें' पार्टी के अन्दर जिस चीज की जरूरत है वह केन्द्रीयता नहीं है बल्कि अराजकतावादी 'खुदमुख्तारी' है, जो

व्यक्तियों और पार्टी-संगठनों को पार्टी फैसले नहीं मानने की इजाजत दे।

संगठन-सम्बन्धी स्वेच्छाचार के लिए यह बेरोक-टोक प्रचार था, जो पार्टी सिद्धान्त और पार्टी अनुशासन की जड़ खोदता था; यह बुद्धिजीवियों के व्यक्तिवाद का गुणगान था और अनुशासन की तरफ अराजकतावादी घृणा को सही ठहराना था।

जाहिर है, मेन्शेविक कोशिश कर रहे थे कि पार्टी को दूसरी कांग्रेस की जगह से खींच कर पुराने संगठन-सम्बन्धी अलगाव तक ले आया जाये, मण्डलों के पुराने स्थानीय दृष्टिकोण और पुराने अधकचरे तरीकों की तरफ ले आया जाये। मेन्शेविकों पर एक जोरदार रद्दा जमाना जरूरी था।

लेनिन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक **एक कदम आगे दो कदम पीछे** में यह रद्दा जमाया। यह किताब मई 1904 में प्रकाशित हुई।

लेनिन ने अपनी इस पुस्तक में संगठन के जो मुख्य सिद्धान्त रखे और जो आगे चलकर बोल्शेविक पार्टी के संगठन की बुनियाद बने, वे यह हैं :

1. मार्क्सवादी पार्टी मजदूर वर्ग का एक हिस्सा, उसका एक दस्ता है। लेकिन, मजदूर वर्ग के बहुत से दस्ते हैं और इसलिए मजदूर वर्ग का हर हिस्सा उसकी पार्टी नहीं कहला सकता। मजदूर वर्ग के दूसरे दस्तों से पार्टी सबसे पहले इस बात में भिन्न है कि वह मामूली दस्ता नहीं है बल्कि **हिरावल** दस्ता है, एक **वर्ग-चेतन** दस्ता है, मजदूर वर्ग का एक **मार्क्सवादी** दस्ता है, जो सामाजिक जीवन के ज्ञान से सुसज्जित है, जो सामाजिक विकास के नियमों और वर्ग-संघर्ष के नियमों को जानता-पहचानता है और इस वजह से मजदूर वर्ग की अगुवाई कर सकता है और उसकी लड़ाई का संचालन कर सकता है। इसलिए, पार्टी और मजदूर वर्ग को उलझा नहीं देना चाहिए, जैसे कि किसी पूरी चीज और उसके हिस्से को उलझा नहीं देना चाहिए। हम यह माँग नहीं कर सकते कि हर हड़ताली अपने को पार्टी का सदस्य कह सके, क्योंकि जो कोई पार्टी और वर्ग को उलझाता है वह पार्टी की चेतना के स्तर को 'हर हड़ताली' की चेतना के स्तर तक नीचे ले आता है। वह मजदूर वर्ग के वर्ग-चेतन हिरावल के रूप में पार्टी का नाश करता है। पार्टी का काम यह नहीं है कि वह अपनी सतह 'हर हड़ताली' के स्तर तक **नीचे ले आये,** बल्कि पार्टी के स्तर तक आम मजदूरों को **ऊपर उठाये,** 'हर हड़ताली' को **ऊपर उठाये**।

लेनिन ने लिखा था :

> "हम एक वर्ग की पार्टी हैं, और इसलिए **करीब-करीब समूचे वर्ग को** (और युद्धकाल में, गृहयुद्ध के समय समूचे वर्ग को) हमारी पार्टी के नेतृत्व में काम करना चाहिए, जहाँ तक हो सके उसे हमारी पार्टी से सम्बन्धित रहना चाहिए। लेकिन, यह सोचना **मानिलोववाद**[1] और **'पिछलगुआपन'** होगा कि पूँजीवाद के रहते किसी समय समूचा वर्ग या करीब-करीब समूचा वर्ग अपने हिरावल दस्ते, अपनी सामाजिक-जनवादी पार्टी की चेतना और कार्रवाई के स्तर तक उठ सकेगा। किसी भी समझदार

---

1. गोगोल की रचना "मृत आत्माएँ" में एक पात्र मानिलोव से; परम आत्मसन्तोष, निष्क्रियता, बेकार ख्वाब देखना-अं. अनु.

सामाजिक-जनवादी को अभी तक इसमें शक नहीं रहा कि पूँजीवाद के रहते हुए ट्रेड यूनियन संगठनों में भी (जो ज्यादा सीधे संगठन हैं और अविकसित लोगों के लिए ज्यादा समझ में आने वाले हैं) समूचा या करीब-करीब समूचा मजदूर वर्ग सिमट कर नहीं आ पाता। हिरावल और उसकी तरफ खिंचकर आने वाले अवाम के भेद को भूल जाना, हिरावल के इस हमेशा के फर्ज को भूल जाना कि ज्यादा से ज्यादा लोगों को सबसे आगे बढ़े हुए लोगों के स्तर तक **उठाना** है, सिर्फ अपने को धोखा देना है, हमें जितने भारी काम करने हैं, उनकी तरफ आँखें बन्द करना है और इन कामों को संकुचित करना है।" (लेनिन, सं.ग्रं.,अं.सं., मास्को, 1947, खण्ड 1, पृष्ठ 294)।

2. पार्टी मजदूर वर्ग का हिरावल ही नहीं, उसका वर्ग-चेतन दस्ता ही नहीं, बल्कि मजदूर वर्ग का **संगठित** दस्ता है, जिसका अपना अनुशासन है और जो उसके अपने सदस्यों पर लागू होता है। इसलिए, पार्टी सदस्यों के लिए जरूरी है कि वे किसी पार्टी संगठन के सदस्य हों ही। अगर पार्टी वर्ग का **संगठित** दस्ता न होती, **संगठन की व्यवस्था** न होती बल्कि सिर्फ उन लोगों की एक जमात होती जो अपने को पार्टी सदस्य कहते हैं, लेकिन पार्टी संगठन में नहीं है और इसलिए **संगठित नहीं** हैं, इसलिए पार्टी के फैसले मानने के लिए मजबूर नहीं है, तो पार्टी की कभी संयुक्त इच्छा न होती, वह अपने सदस्यों की संयुक्त कार्रवाई कभी नहीं चला सकती और इसलिए वह मजदूर वर्ग के संघर्ष का संचालन ही नहीं कर सकती। पार्टी मजदूर वर्ग के अमली संघर्ष का नेतृत्व तभी कर सकती है और उसे एक ही उद्देश्य की तरफ ले जा सकती है, जब उसके सभी सदस्य एक ही सामान्य दस्ते में संगठित हों, इच्छा की एकता से आपस में संयुक्त हों, काम की एकता और अनुशासन की एकता से एक-दूसरे से जुड़े हुए हों।

मेन्शेविकों को आपत्ति थी कि ऐसा होने पर बहुत से बुद्धिजीवी-मिसाल के लिए प्रोफेसर लोग, यूनिवर्सिटी और हाईस्कूल के विद्यार्थी, वगैरह-पार्टी की कतारों से बाहर रहेंगे। कारण यह कि वे पार्टी के किसी भी संगठन में शामिल होना पसन्द नहीं करेंगे, चाहे इसलिए कि वे पार्टी के अनुशासन से कतराते हों, या जैसा कि प्लेखानोव ने दूसरी कांग्रेस में कहा था, इसलिए कि वे "किसी स्थानीय संगठन में शामिल होना अपनी शान के खिलाफ" समझते हों। मेन्शेविकों की यह आपत्ति उलट कर उन्हीं के सिर पड़ी। कारण यह कि पार्टी को ऐसे सदस्यों की जरूरत नहीं है जो पार्टी अनुशासन से कतराते हों और पार्टी-संगठन में शामिल होने से डरते हों। मजदूर अनुशासन और संगठन से नहीं डरते और अगर उन्होंने पार्टी सदस्य होने का फैसला कर लिया है तो वे खुशी से संगठन में शामिल हो जाते हैं। ये व्यक्तिवादी बुद्धिजीवी ही हैं जो अनुशासन और संगठन से डरते हैं, और वे दरअसल पार्टी की कतारों के बाहर रहेंगे। लेकिन यह तो अच्छा ही है, क्योंकि इससे पार्टी अस्थिर लोगों की भरमार से बच सकेगी। जब पूँजीवादी जनवादी क्रान्ति उठान पर थी, तब यह भरमार खास तौर से जोरों पर थी।

लेनिन ने कहा था :

"जब मैं कहता हूँ कि पार्टी को **संगठनों का जोड़** होना चाहिए (और सिर्फ गणित

का जोड़ नहीं बल्कि संश्लिष्ट जोड़)... तो मैं साफ-साफ और निश्चित शब्दों में अपनी इच्छा, अपनी यह माँग जाहिर करता हूँ कि वर्ग के हिरावल की तरह पार्टी यथासम्भव **संगठित हो**, पार्टी अपनी कतारों में ऐसे लोगों को ले **जो कम से कम अल्पतम संगठन मानने के लिए तैयार हों...।"** (उप. पृ. 292)।

और आगे :

"मारतोव का प्रस्ताव ऊपर से आम मजदूरों के हितों का समर्थन करता है, लेकिन **वास्तव में** वह **पूँजीवादी बुद्धिजीवियों** के हितों का समर्थन करता है, जो सर्वहारा अनुशासन और संगठन से कतराते हैं। कोई इस बात से इन्कार नहीं करेगा कि यह **उसका व्यक्तिवाद ही है** और अनुशासन और संगठन के लिए उसकी असमर्थता ही है जो मौजूदा पूँजीवादी समाज में आम तौर से **एक अलग स्तर के रूप में बुद्धिजीवी की** विशेषता जाहिर करती है।" (उप. पृ. 298-99)।

और भी :

"सर्वहारा वर्ग संगठन और अनुशासन से डरता नहीं है।... सर्वहारा वर्ग उन प्रतिष्ठित प्रोफेसरों और हाईस्कूल के विद्यार्थियों को पार्टी सदस्यता देने के लिए कुछ भी नहीं करेगा जो किसी संगठन में सिर्फ इसलिए शामिल नहीं होना चाहते कि उन्हें एक संगठन के नियंत्रण में काम करना पड़ेगा।... यह सर्वहारा वर्ग नहीं है, बल्कि हमारी पार्टी में **कुछ बुद्धिजीवी** हैं जिनमें, संगठन और अनुशासन की भावना में **आत्मशिक्षण** की कमी है।" (उप. पृ. 322)।

3. पार्टी सिर्फ संगठित दस्ता नहीं है, बल्कि मजदूर वर्ग के **"संगठन के सभी रूपों में सबसे ऊँचा"** है और उसका काम मजदूर वर्ग के दूसरे सभी संगठनों को रास्ता दिखाना है। पार्टी वर्ग के संगठन का सबसे ऊँचा रूप है, वर्ग के सबसे अच्छे लोग उसके अन्दर शामिल होते हैं, उसके पास आगे बढ़ा हुआ सिद्धान्त होता है, उसे वर्ग-संघर्ष के नियमों का ज्ञान होता है और उसे क्रान्तिकारी आन्दोलन का तजुर्बा होता है। इसलिए मजदूर वर्ग के सभी दूसरे संगठनों को पार्टी रास्ता दिखला सकती है, और उन्हें रास्ता दिखाना उसका फर्ज है। पार्टी की नेतृत्व की भूमिका को कम करने और तुच्छ समझने की मेन्शेविकों की कोशिश का असर यह होगा कि सर्वहारा वर्ग के वे दूसरे सभी संगठन कमजोर होंगे जिन्हें पार्टी रास्ता दिखाती है। उनकी कोशिश का असर यह होगा कि सर्वहारा वर्ग कमजोर और निहत्था बनेगा, क्योंकि "सत्ता के लिए संघर्ष में सर्वहारा के पास संगठन को छोड़कर दूसरा कोई हथियार नहीं है।" (उपर्युक्त, पृ. 340)।

4. पार्टी लाखों मजदूरों से मजदूर वर्ग के हिरावल के **सम्बन्ध का सजीव रूप** है। पार्टी चाहे जितनी अच्छी हिरावल हो और वह चाहे जितनी अच्छी तरह संगठित हो, गैर-पार्टी अवाम से सम्बन्ध कायम किये बिना और इस सम्बन्ध को बढ़ाये और मजबूत किये बिना वह न तो जीवित रह सकती है, न विकसित हो सकती है। ऐसी पार्टी जो अपने को अपने ही खोल में बन्द कर लेती है, आम जनता से अलग जा पड़ती है, अपने वर्ग से अपना सम्बन्ध खो देती है या ढीला कर लेती है, वह जरूर आम जनता का विश्वास और समर्थन

खो देगी और इसलिए खत्म भी जरूर हो जायेगी। पूरी तरह जिन्दा रहने और विकसित होने के लिए, यह जरूरी है कि पार्टी आम जनता से अपना सम्बन्ध बढ़ाये और अपने वर्ग के लाखों आदमियों का विश्वास हासिल करे।

लेनिन ने कहा था :

> "सामाजिक-जनवादी **पार्टी** होने के लिए जरूरी है कि हम ठीक **वर्ग** का ही **समर्थन** हासिल करें।" (लेनिन ग्रंथावली, रूसी संस्करण, खण्ड 6, पृ. 208)।

5. उचित ढंग से काम करने के लिए और बाकायदा आम जनता का नेतृत्व करने के लिए, पार्टी को **केन्द्रीयता** के उसूल पर संगठित होना चाहिए। उसकी एक सी नियमावली और एक सा पार्टी अनुशासन होना चाहिए। उसकी एक ही प्रमुख संस्था होनी चाहिए-पार्टी कांग्रेस और कांग्रेसों के बीच में पार्टी की केन्द्रीय कमेटी। अल्पमत को बहुमत की आज्ञा माननी चाहिए, विभिन्न संगठनों को केन्द्र की आज्ञा माननी चाहिए और नीचे के संगठनों को ऊपर के संगठनों की आज्ञा माननी चाहिए। ये शर्तें पूरी न होने पर, मजदूर वर्ग की पार्टी सच्ची पार्टी नहीं बन सकती और वर्ग का नेतृत्व करने का अपना काम पूरा नहीं कर सकती।

यह ठीक है कि निरंकुश जारशाही में पार्टी गैर-कानूनी थी, इसलिए उन दिनों नीचे से चुनाव के उसूलों पर पार्टी के संगठन नहीं बनाये जा सकते थे। इसलिए, पार्टी को संगठन का काम कड़ाई से, छिप कर करना पड़ता था। लेकिन, लेनिन का विचार था कि पार्टी जीवन का यह **अस्थायी** लक्षण जारशाही को निर्मूल करते ही खत्म हो जायेगा। तब पार्टी खुल कर और कानूनी बनकर काम कर सकेगी। तब, पार्टी के संगठन, जनवादी चुनाव के उसूल पर, **जनवादी केन्द्रीयता** के उसूल पर बनाये जा सकेंगे।

लेनिन ने लिखा था :

> "**पहले** हमारी पार्टी बाकायदा एक संगठित इकाई नहीं थी, बल्कि अलग-थलग गुटों का जोड़ भर थी। इसलिए, इन गुटों में सैद्धान्तिक असर के अलावा और कोई सम्बन्ध मुमकिन नहीं थे। **अब** हम एक संगठित पार्टी बन चुके हैं। इसका मतलब यह है कि अधिकारी भाव (ऑथोरिटी) कायम हो गया है, विचारों की शक्ति, अधिकारी भाव की शक्ति में बदल गयी है, पार्टी की नीचे की संस्थाएँ पार्टी की ऊपर की संस्थाओं के मातहत हैं।" (उपर्युक्त, पृ. 291)।

मेन्शेविकों पर संगठन-सम्बन्धी ध्वंसवाद और रईसी अराजकतावाद का आरोप लगाते हुए, जो उन्हें पार्टी के अधिकारी भाव और उसके अनुशासन को मानने से रोकता था, लेनिन ने लिखा था :

> "रूसी ध्वंसवादियों (निहिलिस्टों) में यह रईसी अराजकतावाद खास तौर से देखा जाता है। वे समझते हैं कि पार्टी-संगठन एक भयानक 'कारखाना' है। उनकी नजर में, अंश का पूरी इकाई के मातहत होना और अल्पमत का बहुमत की बात मानना 'भूदास प्रथा' है।... एक ही केन्द्र की देखरेख में काम का बँटवारा देखकर, वह कुछ करुण, कुछ हास्यास्पद स्वर में चीत्कार कर उठता है कि लोग 'मशीन के कलपुर्जे' बने

जा रहे हैं (सम्पादकों को पत्रिका के लेखक बना देना खास तौर से ऐसी तब्दीली की भयानक मिसाल समझी जाती है)। पार्टी के संगठन-सम्बन्धी नियमों का जिक्र होने पर, वह नफरत से मुँह बनाता है और घृणा से कहता है कि नियमों के बिना ही काम चल सकता है (यह बात वह 'नियमवादियों' के लिए कहता है)।" (लेनिन, सं.ग्रं.,अं. सं., मास्को, 1947 खं. 1, पृ. 324)।

6. अपने अमली काम में अगर पार्टी अपनी कतारों की **एकता** कायम रखना चाहती है तो उसे समान सर्वहारा अनुशासन लागू करना होगा, जिसकी पाबन्दी सभी पार्टी के सदस्यों के लिए, नेता और साधारण दोनों के लिए, बराबर हो। इसलिए, पार्टी के अन्दर कुछ 'चुने हुए' लोग जिन पर अनुशासन न लागू हो, और 'बाकी तमाम लोग' जिन पर अनुशासन लागू होता हो, ऐसा बँटवारा नहीं होना चाहिए। यह शर्त पूरी नहीं की जायेगी तो पार्टी की भीतरी दृढ़ता और उसकी कतारों की एकता कायम नहीं रखी जा सकेगी।

लेनिन ने लिखा था :

"कांग्रेस ने जो सम्पादक-मण्डल नियुक्त किया था, उसके खिलाफ मारतोव एण्ड कम्पनी की तरफ बुद्धिसंगत दलीलों का नितान्त अभाव सबसे अच्छी तरह उन्हीं के इस नारे से जाहिर होता है : 'हम गुलाम नहीं हैं।'... पूँजीवादी बुद्धिजीवी की जहनियत, जो अपने को जन-संगठन और जन-अनुशासन से ऊपर 'चुने हुओं' में समझता है, बहुत ही स्पष्टता से यहाँ जाहिर होती है।... बुद्धिजीवियों के व्यक्तिवाद को दिखाई देता है... कि **सभी** सर्वहारा संगठन और अनुशासन गुलामी है।" (**लेनिन ग्रंथावली,** रूसी संस्करण, खण्ड 6, पृ. 282)।

और आगे :

"जैसे-जैसे हम एक **वास्तविक** पार्टी बनाने के काम में आगे बढ़ते हैं, वैसे-वैसे वर्ग-चेतन मजदूर को पूँजीवादी बुद्धिजीवी और सर्वहारा फौज के सिपाही के मानसिक गठन का भेद करना सीखना चाहिए। पूँजीवादी बुद्धिवादी अराजकतावादी बातों का तूमार बाँध देता है। वर्ग-चेतन मजदूर को चाहिए कि वह इस बात पर **अड़ जाये** कि पार्टी सदस्य का फर्ज न सिर्फ साधारण सदस्य बल्कि 'ऊपर के लोग' भी पूरा करें।" (लेनिन, सं.ग्रं., अं.सं., मास्को, 1947, खण्ड 1, पृ. 326)।

मतभेदों की छानबीन का सार देते हुए और मेन्शेविकों की हैसियत को "संगठन के मामलों में अवसरवाद" बतलाते हुए, लेनिन ने कहा था कि मेन्शेविकवाद का एक बहुत ही गम्भीर अपराध इस बात में है कि वह मुक्ति के लिए सर्वहारा वर्ग के संघर्ष में **एक ही** हथियार के तौर पर पार्टी-संगठन के महत्त्व को कम करके आँकता है। मेन्शेविकों का कहना था कि क्रान्ति की जीत के लिए सर्वहारा वर्ग के **पार्टी संगठन** का बहुत बड़ा महत्त्व नहीं है। मेन्शेविकों के खिलाफ, लेनिन का मत था कि सर्वहारा वर्ग की **सैद्धान्तिक** एकता ही जीत के लिए **काफी** नहीं है। अगर जीत हासिल करनी है तो सैद्धान्तिक एकता को सर्वहारा वर्ग के "संगठन की भौतिक एकता" से **"दृढ करना"** होगा। लेनिन का विचार था कि इस शर्त के पूरी होने पर ही सर्वहारा वर्ग अजेय शक्ति बन सकता है।

लेनिन ने लिखा था :

"सत्ता के लिए संघर्ष में, सर्वहारा के पास संगठन छोड़ कर दूसरा हथियार नहीं है। पूँजीवादी संसार में अराजक होड़ के नियम से छिन्न-भिन्न होकर, पूँजी के लिए जर्बदस्ती की मेहनत में पीसे जाकर, बार-बार बेहद तबाही, बर्बरता और पतन के 'गड्ढे' में ढकेले जाकर, सर्वहारा वर्ग अजेय शक्ति तभी बन सकता है और जरूर बनेगा जब मार्क्सवाद के उसूलों के आधार पर उसकी सैद्धान्तिक एकता ऐसे संगठन की भौतिक एकता से दृढ़ हो जायेगी जो लाखों मेहनतकशों को मजदूर वर्ग की एक फौज बना दे। रूसी जारशाही का चरमराता हुआ शासन और अन्तरराष्ट्रीय पूँजी की खूसट हुकूमत, कोई भी शक्ति इस फौज का मुकाबला नहीं कर सकेगी।" (उप., पृ. 340)।

लेनिन की इस भविष्यवाणी के साथ यह किताब समाप्त होती है।

ये थे संगठन के बुनियादी सिद्धान्त, जिन्हें लेनिन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक **एक कदम आगे दो कदम पीछे** में पेश किया था।

इस किताब का महत्त्व मुख्यतः इस बात में है कि उसने मण्डल बनाने के सिद्धान्त के खिलाफ सफलता से पार्टी सिद्धान्त का समर्थन किया और असंगठनवादियों के खिलाफ पार्टी सिद्धान्त को सही साबित किया। संगठन के सवालों पर, उसने मेन्शेविकों के अवसरवाद को कुचल दिया और बोल्शेविक पार्टी की संगठन-सम्बन्धी बुनियाद डाली।

लेकिन, इससे उसका महत्त्व खत्म नहीं होता। उसका ऐतिहासिक महत्त्व इस बात में है कि लेनिन ने मार्क्सवाद के इतिहास में पहली बार उसमें इस **सिद्धान्त** की विस्तृत व्याख्या की कि **पार्टी** सर्वहारा वर्ग का प्रमुख संगठन है, वह सर्वहारा वर्ग का मुख्य **हथियार** है जिसके बिना सर्वहारा वर्ग की अधिनायकत्व के लिए लड़ाई नहीं जीती जा सकती।

लेनिन की किताब **एक कदम आगे, दो कदम पीछे** पार्टी के कार्यकर्ताओं में घुमायी जाने पर स्थानीय संगठनों में अधिकांश लेनिन की तरफ हो गये।

लेकिन जितना ही ये संगठन बोल्शेविकों के नजदीक खिंच आये, उतना ही मेन्शेविक नेताओं का व्यवहार द्वेषपूर्ण हो गया।

1904 की गर्मियों में, प्लेखानोव की मदद से और क्रासिन और नोस्कोव नाम के दो पस्तहिम्मत बोल्शेविकों की दगेबाजी से, मेन्शेविकों ने केन्द्रीय समिति में अपना बहुमत कायम कर दिया। जाहिर था कि मेन्शेविक फूट के रास्ते पर चल रहे थे। इस्क्रा और केन्द्रीय समिति के हाथ से निकल जाने पर, बोल्शेविक कठिनाई में पड़ गये। उनके लिए जरूरी हो गया कि वे अपना बोल्शेविक पत्र संगठित करें। यह जरूरी हो गया कि नयी पार्टी कांग्रेस, तीसरी कांग्रेस का इन्तजाम किया जाये, जिससे कि नयी केन्द्रीय समिति कायम की जाये और मेन्शेविकों से हिसाब-किताब बराबर किया जाये।

लेनिन के नेतृत्व में बोल्शेविकों ने यही करना शुरू किया।

बोल्शेविकों ने तीसरी पार्टी कांग्रेस बुलाने के लिए आन्दोलन करना शुरू किया। अगस्त 1904 में, लेनिन की देखरेख में 22 बोल्शेविकों का सम्मेलन स्विट्जरलैण्ड में हुआ। सम्मेलन ने 'पार्टी के नाम' एक अपील मंजूर की। तीसरी कांग्रेस बुलाने के लिए संघर्ष में इस अपील

ने बोल्शेविकों के लिए कार्यक्रम का काम दिया।

बोल्शेविक कमेटियों (दक्षिणी, काकेशस की, और उत्तरी) के तीन प्रादेशिक सम्मेलनों में, बहुमत की तरफ से कमेटियों की एक ब्यूरो चुनी गयी जिसने तीसरी पार्टी कांग्रेस के लिए अमली तैयारी का काम सँभाला।

4 जनवरी, 1905 को बोल्शेविक अखबार **व्पर्योद** (**आगे बढ़ो**) निकला।

इस तरह, पार्टी के अन्दर दो विभिन्न दल पैदा हुए, बोल्शेविक और मेन्शेविक, जिनमें से हरेक की अपनी केन्द्रीय संस्था थी और अपना अखबार था।

सारांश

1901-'04 के दिनों में क्रान्तिकारी मजदूर आन्दोलन की बढ़त के साथ, रूस में मार्क्सवादी सामाजिक-जनवादी संगठन बढ़े और मजबूत हुए। सिद्धान्तों के लिए डटकर लड़ने के बाद, लेनिन के **इस्क्रा** की क्रान्तिकारी नीति विजयी हुई। यह लड़ाई 'अर्थवादियों' के खिलाफ हुई थी। सैद्धान्तिक उलझन और "काम के अधकचरे तरीके" खत्म किये गये।

इस्क्रा ने बिखरे हुए सामाजिक-जनवादी मण्डलों और गुटों को एक सूत्र में जोड़ा और दूसरी पार्टी कांग्रेस बुलाने के लिए रास्ता साफ किया। 1903 में होने वाली दूसरी कांग्रेस में रूसी सामाजिक-जनवादी मजदूर पार्टी बनायी गयी, पार्टी कार्यक्रम और नियमावली मंजूर की गई और पार्टी की केन्द्रीय प्रमुख संस्थाएँ नियुक्त की गयीं।

दूसरी कांग्रेस में रू.सा.ज.म.पा. के अन्दर **इस्क्रा** के रुझान के लिए जो संघर्ष किया गय, उससे दो दल पैदा हुए-बोल्शेविक दल और मेन्शेविक दल।

दूसरी कांग्रेस के बाद, बोल्शेविकों और मेन्शेविकों के बीच मुख्य मतभेद संगठन के सवालों को लेकर था।

मेन्शेविक 'अर्थवादियों' के नजदीक खिंच आये और पार्टी के अन्दर उनकी जगह ले ली। फिलहाल मेन्शेविकों का अवसरवाद संगठन के सवालों पर जाहिर हुआ। मेन्शेविक लेनिन की बतायी हुई लड़ाकू क्रान्तिकारी पार्टी का विरोध करते थे। वे एक ढीली-ढाली, असंगठित पिछलगुआ पार्टी चाहते थे। उन्होंने पार्टी की कतारें तोड़ने के लिए काम किया। प्लेखानोव की मदद से, उन्होंने **इस्क्रा** और केन्द्रीय समिति पर कब्जा जमा लिया और इन केन्द्रीय संस्थाओं को वे अपने उद्देश्यों के लिए, पार्टी में फूट डालने के लिए काम में लाये।

यह देखकर कि मेन्शेविक फूट का खतरा पैदा कर रहे हैं, बोल्शेविकों ने फूटपरस्तों को रोकने के लिए उपाय किये। उन्होंने तीसरी कांग्रेस बुलाने की माँग का समर्थन करने के लिए स्थानीय संगठनों को बटोरा और अपना अखबार **व्पर्योद** निकाला।

इस तरह, पहली रूसी क्रान्ति होने से पहले, जबकि रूस-जापान युद्ध शुरू हो चुका था, बोल्शेविक और मेन्शेविक दो विभिन्न राजनीतिक दलों की तरह काम कर रहे थे।

तीसरा अध्याय

रूस-जापान युद्ध और पहली रूसी क्रान्ति के समय बोल्शेविक और मेन्शेविक (1904-1907)

1. रूस-जापान युद्ध। रूस में क्रान्तिकारी आन्दोलन की और प्रगति। सेण्ट पीटर्सबर्ग में हड़तालें। 9 जनवरी, 1905 को शरद प्रासाद के सामने मजदूरों का प्रदर्शन। प्रदर्शन पर गोलियों की बौछार। क्रान्ति का आरम्भ।

उन्नीसवीं सदी के आखीर में, साम्राज्यवादी राज्यों ने प्रशान्त महासागर पर अधिकार पाने के लिए और चीन का बँटवारा करने के लिए तेज लड़ाई शुरू की। जारशाही रूस ने इस लड़ाई में हिस्सा लिया। 1900 में जापानी, जर्मन, ब्रिटिश और फ्रांसीसी फौजों के साथ जारशाही फौज ने अभूतपूर्व बर्बरता के साथ विदेशी साम्राज्यवादियों के खिलाफ चीनी जनता के विद्रोह का दमन किया। इसके पहले भी, जार सरकार ने चीन को मजबूर किया था कि वह लियाओ तुङ प्रायद्वीप और पोर्ट आर्थर का किला रूस के हवाले कर दे। रूस ने चीन की धरती पर रेलें बनाने का अधिकार हासिल कर लिया। उत्तरी मंचूरिया में चाइनीज-ईस्टर्न रेलवे नाम की रेल बनायी गयी और उसकी रक्षा करने के लिए वहाँ पर रूसी फौजें रखी गयीं। उत्तरी मंचूरिया पर जारशाही रूस का फौजी कब्जा हो गया। जारशाही कोरिया की तरफ बढ़ रही थी। रूसी पूँजीपति मंचूरिया में 'पीला रूस' बनाने के लिए योजनाएँ गढ़ रहे थे।

सुदूर पूर्व में राज्य विस्तार करने से, जारशाही की मुठभेड़ एक दूसरे डाकू से हुई। जापान बहुत तेजी से एक साम्राज्यवादी देश बन गया था। एशिया के महाद्वीप में, वह राज्य-विस्तार करने पर तुला हुआ था और सबसे पहले चीन में राज्य-विस्तार करना चाहता था। जारशाही रूस की तरह, जापान भी कोरिया और मंचूरिया पर कब्जा करने की घात लगाये था। उस समय भी, जापान ख्वाब देख रहा था कि सखालिन और रूस के सुदूर पूर्वी हिस्सों पर कब्जा जमा ले। ब्रिटेन सुदूर पूर्व में जारशाही रूस की बढ़ती हुई शक्ति से डरता था। वह छिपे तौर से जापान का साथ दे रहा था। रूस और जापान के बीच लड़ाई की तैयारी हो रही थी। बड़े पूँजीपतियों ने जार सरकार को इस लड़ाई में ठेल

दिया। ये पूँजीपति नये बाजार ढूँढ़ रहे थे। जमीन्दार वर्ग के ज्यादा प्रतिक्रियावादी हिस्सों ने भी जार सरकार को इस लड़ाई में ठेला।

इस बात का इन्तजार किये बिना कि जार सरकार लड़ाई का ऐलान करे, जापान ने खुद ही युद्ध छेड़ दिया। रूस में उसका जासूसी काम अच्छा था और उसे पहले से मालूम था कि उसका दुश्मन लड़ाई के लिए तैयार नहीं होगा। जनवरी 1904 में, लड़ाई का ऐलान किये बिना, जापान ने पोर्ट आर्थर के रूसी किले पर अचानक हमला कर दिया और बन्दरगाह में खड़े हुए रूसी बेड़े को भारी हानि पहुँचायी।

इस तरह रूस-जापान युद्ध शुरू हुआ।

जार सरकार समझती थी कि लड़ाई से उसकी राजनीतिक स्थिति दृढ़ होगी और क्रान्ति की रोकथाम होगी। लेकिन, उसने गलत हिसाब लगाया। युद्ध ने जार सरकार के पाये पहले से भी ज्यादा हिला दिये।

रूसी फौज के पास हथियारों की कमी थी। उसे लड़ाई की शिक्षा अच्छी नहीं मिली थी। उसके सेनापति अयोग्य और बेईमान थे। रूसी फौज हार पर हार खाती गयी।

पूँजीपति, सरकारी हाकिम और जनरल लड़ाई से रकमें काटते रहे। सट्टेबाजी का बाजार गर्म था। फौजों को सामान बहुत कम मिलता था। जब फौज के पास गोला-बारूद की कमी थी तब, मानो उसे चिढ़ाने के लिए, गाड़ियों भर देवताओं की मूर्तियाँ और तस्वीरें भेज दी जाती थीं। फौज के सिपाही क्षुब्ध होकर कहते थे : "जापानी हम पर गोले बरसा रहे हैं; हम उन्हें मूर्तियाँ भेंट करेंगे।" स्पेशल गाड़ियाँ घायलों को मैदान से हटाने के बदले जार के सेनापतियों द्वारा लूटी हुई सम्पत्ति से लदी रहती थीं।

जापानियों ने पोर्ट आर्थर को घेर लिया और बाद में उस पर कब्जा कर लिया। जार की फौज को कई बार हराने के बाद, अन्त में उन्होंने मुकदन के पास उसे खदेड़ दिया। इस लड़ाई में जार की फौज के तीन लाख आदमियों में से एक लाख बीस हजार हताहत हुए, या बन्दी बनाये गये। इसके बाद, सुशीमा के जलडमरूमध्य में पोर्ट आर्थर की मदद के लिए बाल्टिक समुद्र से भेजा हुआ जारशाही बेड़ा पूरी तरह से परास्त किया गया और नष्ट कर दिया गया। सुशीमा की हार घातक थी। जार ने जो 20 युद्धपोत भेजे थे, उनमें से 13 डुबा दिये गये या नष्ट कर दिये गये और 4 पर जापानियों का कब्जा हो गया। युद्ध में जारशाही रूस की पक्की हार हो चुकी थी।

जार सरकार को मजबूरन जापान से अपमानजनक सन्धि करनी पड़ी। जापान ने कोरिया पर कब्जा कर लिया और रूस से पोर्ट आर्थर और सखालिन का आधा द्वीप ले लिया।

जनता युद्ध नहीं चाहती थी और जानती थी कि देश के लिए वह कितना हानिकर होगा। जारशाही रूस के पिछड़ेपन के लिए, उसे भारी कीमत चुकानी पड़ी।

बोल्शेविकों और मेन्शेविकों ने युद्ध की तरफ अलग-अलग रुख अपनाया।

मेन्शेविक, जिनमें त्रात्स्की भी था, सुरक्षावाद की तरफ गिर रहे थे। इसका मतलब था-जार, जमीन्दारों और पूँजीपतियों की 'पितृभूमि' की रक्षा की जाये।

दूसरी तरफ, लेनिन और बोल्शेविकों का यह मत था कि इस डाकू-संग्राम में जार

सरकार की हार लाभदायी होगी, क्योंकि उससे जारशाही कमजोर होगी और क्रान्ति मजबूत होगी।

जारशाही फौजों की हार ने लोगों की आँखें खोल दीं, और उन्होंने देखा कि जारशाही कितनी सड़ियल है। जारशाही के लिए उनकी नफरत दिन पर दिन तेज होती गयी। लेनिन ने लिखा था कि पोर्ट आर्थर का पतन निरंकुश सत्ता के पतन की शुरुआत है।

जार चाहता था कि लड़ाई को क्रान्ति का गला घोंट देने के लिए इस्तेमाल करे। उसने इसका उल्टा ही भर पाया। रूस-जापान युद्ध ने क्रान्ति शुरू करने में और जल्दी की।

जारशाही रूस में पूँजीवाद का जुआ जारशाही के बोझ से और भारी हो गया था। मजदूर पूँजीवादी शोषण से ही, अमानवीय मेहनत से ही परेशान नहीं होते थे, बल्कि तमाम जनता के साथ सभी तरह के अधिकारों के अभाव से भी पीड़ित थे। इसलिए, राजनीतिक रूप से आगे बढ़े हुए मजदूर जारशाही के खिलाफ शहर और देहात के सभी जनवादी लोगों के क्रान्तिकारी आन्दोलनों को चलाने की कोशिश करते थे। किसान जमीन के अभाव और भूदास प्रथा के अनगिनत अवशेषों की वजह से बड़ी मुसीबत में थे। वे जमीन्दारों और धनी किसानों की गुलामी के दिन काटते थे। जारशाही रूस में रहने वाली राष्ट्रीयताएँ दुहरी मार से कराहती थीं-पहली मार तो खुद उनके जमीन्दारों और पूँजीपतियों की और दूसरी मार रूस के जमीन्दारों और पूँजीपतियों की। 1900-03 के आर्थिक संकट ने मेहनतकश जनता की कठिनाइयाँ बढ़ा दी थीं। युद्ध से वे और बढ़ गयीं। युद्ध में हारने से, जारशाही के खिलाफ जनता की नफरत और प्रबल हो उठी। लोगों का धैर्य छूटने लगा था।

जैसाकि हम देख सकते हैं, क्रान्ति के लिए काफी से ज्यादा सामान मौजूद था।

दिसम्बर 1904 में, बाकू में मजदूरों की एक भारी और सुसंगठित हड़ताल हुई। इसका संचालन बोल्शेविकों की बाकू-कमेटी ने किया। हड़ताल में मजदूर जीते। मालिकों और तेल-मजदूरों के बीच एक सामूहिक समझौता हुआ। रूस के मजदूर आन्दोलन के इतिहास में यह समझौता अपने ढंग का पहला था।

बाकू-हड़ताल ट्रांस-काकेशिया और रूस के विभिन्न हिस्सों में क्रान्तिकारी उठान की शुरुआत थी।

> "बाकू की हड़ताल समूचे रूस में जनवरी और फरवरी की शानदार कार्रवाई का संकेत थी।" (**स्तालिन**)।

यह हड़ताल बादलों की गड़गड़ाहट की तरह थी, जो इस बात की सूचना देती थी कि एक भारी क्रान्तिकारी तूफान आने वाला है।

9 जनवरी, (नई शैली, 22 जनवरी) 1905 को, सेण्ट पीटर्सबर्ग की घटनाओं के साथ क्रान्तिकारी तूफान फूट पड़ा।

3 जनवरी, 1905 को सेण्ट पीटर्सबर्ग में पुतिलोव (अब किरोव) नाम के सबसे बड़े कारखाने में हड़ताल शुरू हो गयी। चार मजदूरों को निकालने की वजह से हड़ताल शुरू हुई थी। वह तेजी से बढ़ी और सेण्ट पीटर्सबर्ग की दूसरी मिलें और कारखाने उसमें शामिल हो गये। वह आम हड़ताल हो गयी। आन्दोलन शक्तिशाली बनता गया। जार सरकार

ने उसकी शुरुआत में ही उसे कुचल देने का फैसला किया।

1904 में, पुतिलोव-हड़ताल के पहले, पुलिस ने गेपन नाम के एक पादरी जासूस से काम लेने की कोशिश की थी। उसके जरिये 'रूसी मिल-मजदूरों का संघ' नाम से मजदूरों का एक संगठन खड़ा करने की कोशिश की गयी थी। इस संगठन की शाखाएँ सेण्ट पीटर्सबर्ग के सभी जिलों में थीं। जब हड़ताल शुरू हुई, तो इस संगठन की सभाओं में पादरी गेपन ने एक विश्वासघाती योजना रखी कि सभी मजदूर 9 जनवरी को इकट्ठा हों और गिरजे के झण्डे और जार की तस्वीरें लेकर, शान्तिपूर्ण जुलूस में शरद प्रासाद की तरफ चलें और अपनी जरूरतें बताते हुए जार के सामने एक अर्जी पेश करें; जार लोगों के सामने आयेगा, उनकी बातें सुनेगा और उनकी माँगें पूरी करेगा। गेपन ने जारशाही **ओखराना** से वादा किया कि वह मजदूरों पर गोली चलाने के लिए बहाना ढूँढ़कर उसकी मदद करेगा और वह मजदूर आन्दोलन को खून में डुबो सकेगी। लेकिन, पुलिस का यह षड़यंत्र जार सरकार के सिर पर ही फूटा।

मजदूरों की सभाओं में अर्जी पर विचार किया गया और संशोधन पेश किये गये। इन सभाओं में बिना अपने को खुल्लमखुल्ला जाहिर किये हुए बोल्शेविक बोले। उनके असर से अर्जी में ये माँगें जोड़ दी गयीं-अखबार निकालने की आजादी हो, भाषण करने की आजादी हो, मजदूरों को सभाएँ बनाने की आजादी हो, रूस की राजनीतिक व्यवस्था को बदलने के लिए विधानसभा बुलायी जाये, कानून के सामने सबको बराबर माना जाये, राज्य से चर्च को अलग किया जाये, युद्ध बन्द किया जाये, मजदूरी के आठ घण्टे हों और जमीन किसानों को दी जाये।

इन सभाओं में, बोल्शेविकों ने मजदूरों को समझाया कि जार के सामने अर्जियाँ भेजने से आजादी नहीं मिलेगी। आजादी हथियारों की ताकत से मिलेगी। बोल्शेविकों ने मजदूरों को आगाह किया कि उन पर गोली चलायी जायेगी। लेकिन, वे शरद प्रासाद की तरफ जुलूस का जाना न रोक सके। मजदूरों का एक बड़ा हिस्सा अब भी यह समझता था कि जार उनकी मदद करेगा। आन्दोलन ने आम जनता पर पक्का असर कायम कर लिया था।

सेण्ट पीटर्सबर्ग के मजदूरों की अर्जी में कहा गया था :

> "हम सेण्ट पीटर्सबर्ग के मजदूर, हमारी बीवियाँ, हमारे बच्चे और हमारे बूढ़े माँ-बाप तेरे पास आये हैं कि ऐ हमारे बादशाह, तू हमारे साथ इंसाफ कर और हमारी रक्षा कर। हम गरीबी से तबाह हैं, सताये हुए हैं, हम पर असह्‌य मेहनत का बोझ है। हमारी बेइज्जती होती है और हमारे साथ इनसानों जैसा सुलूक नहीं होता।... हमने धीरज में यह सब सहा है, लेकिन गरीबी, अधिकारहीनता और अज्ञान के दलदल में हम और गहरे धँसते जाते हैं। निरंकुश सत्ता और अत्याचार हमारा गला घोंट रहे हैं। ... हमारा धीरज छूट चला है। वह भयानक घड़ी आ पहुँची है जब हम इन असहनीय तकलीफों को और बर्दाश्त करने के बदले मर जाना बेहतर समझेंगे।..."

9 जनवरी, 1905 को सुबह तड़के मजदूर शरद प्रासाद की तरफ चले, जहाँ पर उन दिनों

जार रहता था। वे अपने पूरे परिवारों के साथ आये। उनकी बीवियाँ, बच्चे और बूढ़े साथ थे। उनके हाथों में जार की तस्वीरें और चर्च के झण्डे थे। जुलूस में चलते हुए, वे धार्मिक गीत गा रहे थे। वे निहत्थे थे। सड़कों पर 1,40,000 आदमी इकट्ठा हुए।

जार निकोलस द्वितीय ने उनके साथ दुश्मनी का व्यवहार किया। उसने निहत्थे मजदूरों पर गोली चलाने का हुक्म दिया। उस रोज जार की फौज के हाथ से एक हजार से ऊपर मजदूर मारे गये और दो हजार से ऊपर घायल हुए। सेण्ट पीटर्सबर्ग की सड़कें मजदूरों के खून से लाल हो गयीं।

बोल्शेविक मजदूरों के साथ गये थे। उनमें से बहुत से मारे गये या गिरफ्तार कर लिये गये। वहाँ मजदूरों के खून से लाल सड़कों पर, बोल्शेविकों ने मजदूरों को समझाया कि इस हत्या का अपराध किसके सिर पर है और उससे कैसे लड़ना चाहिए।

9 जनवरी का नाम 'खूनी इतवार' पड़ गया। उस रोज मजदूरों को एक खूनी सबक मिला। उस रोज गोलियों ने जार में उनकी श्रद्धा को ही छलनी कर डाला। उन्होंने महसूस किया कि वे लड़ कर ही अपने अधिकार हासिल कर सकते हैं। उस दिन की शाम को मजदूर इलाकों में सड़कों पर मोर्चेबन्दी शुरू हो गयी। मजदूरों ने कहा : "जार हमसे निपट चुका है; अब हम उससे निपटेंगे।"

जार के खूनी अपराध का भयानक समाचार चारों तरफ फैल गया। समूचा मजदूर वर्ग, तमाम देश, क्रोध और घृणा से भर गया। कोई ऐसा शहर नहीं था जहाँ जार की इस नीचता के विरोध में लोगों ने हड़ताल न की हों और राजनीतिक माँगें न पेश की हों। "जारशाही मुर्दाबाद!" का नारा लगाते हुए मजदूर अब सड़कों पर निकल आये। जनवरी में, हड़तालियों की तादाद चार लाख चालीस हजार के भारी अंकों तक पहुँच गयी। पिछले दस सालों में जितने मजदूरों ने हड़तालें न की थीं, उतने मजदूरों ने एक महीने में हड़तालें कीं। मजदूर आन्दोलन अभूतपूर्व ऊँचाई तक पहुँच गया।

रूस में क्रान्ति शुरू हो गयी थी।

2. मजदूरों की राजनीतिक हड़तालें और प्रदर्शन। किसानों में क्रान्तिकारी आन्दोलन की बढ़त। युद्ध-पोत 'पोतेमकिन' पर बगावत।

9 जनवरी के बाद, मजदूरों का क्रान्तिकारी संघर्ष और तेज हुआ और उसने राजनीतिक रूप ले लिया। मजदूर आर्थिक हड़तालें और हमदर्दी में हड़तालें करने से आगे बढ़कर राजनीतिक हड़तालें, प्रदर्शन और कहीं-कहीं पर जारशाही फौज का हथियारबन्द मुकाबला करने लगे। सेण्ट पीटर्सबर्ग, मास्को, वारसा, रीगा और बाकू जैसे बड़े शहरों में जहाँ भारी संख्या में मजदूर केन्द्रित थे, हड़तालें अच्छी तरह से संगठित थीं और खास तौर से जम कर लड़ी गयीं। लड़ाकू सर्वहारा की अगली कतारों में धातु के मजदूर चल रहे थे। अपनी हड़तालों से मजदूरों के हिरावल ने कम वर्ग-चेतन हिस्सों को जगाया और संघर्ष के लिए समूचे मजदूर वर्ग को उभारा। सामाजिक-जनवाद का असर तेजी से बढ़ा।

कई शहरों में मई दिवस के प्रदर्शनों में पुलिस और फौज से टक्करें हुईं। वारसा में प्रदर्शन

पर गोली चलायी गयी और कई सौ आदमी हताहत हुए। पोलैण्ड के सामाजिक-जनवादियों के आह्वान पर, मजदूरों ने विरोध में आम हड़ताल करके गोली-काण्ड का जवाब दिया। मई के महीने में हड़तालें और प्रदर्शन बन्द नहीं हुए। उस महीने, समूचे रूस में दो लाख से ऊपर मजदूरों ने हड़ताल की। बाकू, लोत्स और इवानोवोवज्नेसेंस्क में आम हड़तालें हुई। हड़ताली और प्रदर्शनकारी जारशाही फौज से अधिकाधिक टक्करें लेने लगे। कई शहरों में-ओदेसा, वारसा, रीगा, लोत्स वगैरह में-इस तरह की टक्करें हुईं।

लोत्स में संघर्ष खास तौर से तेज हुआ। पोलैण्ड का यह एक बड़ा औद्योगिक केन्द्र था। मजदूरों ने शहर की सड़कों पर बीसों जगह मोर्चेबन्दी की और तीन दिनों तक (22-24 जून, 1905) जारशाही फौज से सड़कों पर लड़ते रहे। यहाँ पर हथियारबन्द लड़ाई आम हड़ताल में घुल-मिल गयी। लेनिन के अनुसार, ये लड़ाइयाँ रूस के मजदूरों की पहली हथियारबन्द कार्रवाई थी।

उस साल, गर्मियों की सबसे बड़ी हड़ताल इवानोवोवज्नेसेंस्क के मजदूरों की थी। यह करीब ढाई महीने, मई के आखिर से अगस्त 1905 के शुरू तक चली। लगभग सत्तर हजार मजदूरों ने, जिनमें स्त्रियाँ भी थीं, हड़ताल में हिस्सा लिया। इसका नेतृत्व बोल्शेविकों की उत्तरी कमेटी ने किया था। करीब हर रोज शहर के बाहर ताल्का नदी के किनारे हजारों मजदूर इकट्ठे होते थे। इन सभाओं में वे अपनी जरूरतों पर विचार करते थे। मजदूरों की सभाओं में बोल्शेविक भाषण देते थे। जारशाही अधिकारियों ने फौज को हुक्म दिया कि मजदूरों को तितर-बितर करें और उन पर गोली चलायें। बीसियों मजदूर मारे गये और कई सौ घायल हुए। शहर में संकट की हालत का ऐलान कर दिया गया। लेकिन, मजदूर अडिग रहे और काम पर नहीं लौटे। वे और उनके परिवार भूखों मरने लगे, लेकिन वे घुटने टेकने को तैयार नहीं थे। सिर्फ बेहद कमजोर हो जाने के बाद, आखिर में उन्हें मजबूरन काम पर आना पड़ा। हड़ताल ने मजदूरों को दृढ़ बना दिया। मजदूर वर्ग के साहस, दृढ़ता, धीरज और एकता की यह मिसाल थी। इवानोवोवज्नेसेंस्क के मजदूरों के लिए यह सच्ची राजनीतिक शिक्षा थी।

हड़ताल के दौर में, इवानोवोवज्नेसेंस्क के मजदूरों ने प्रतिनिधियों की एक समिति बनायी, जो दरअसल रूस में मजदूरों के प्रतिनिधियों की पहली सोवियत थी।

मजदूरों की राजनीतिक हड़तालों से सारा देश आन्दोलित हो उठा। शहरों के पीछे गाँव भी उठ खड़े होने लगे। वसन्त में, किसानों में असन्तोष फूट पड़ा। बड़े-बड़े झुण्ड बना कर किसान जमीन्दारों के खिलाफ चलने लगे। वे उनकी जागीरों, शक्कर साफ करने के कारखानों और शराब बनाने की भट्टियों को घेर लेते थे और उनकी गढ़ी और कोठियों में आग लगा देते थे। कई जगह किसानों ने जमीन्दारों की जमीनें छीन लीं, जंगल के जंगल काटने शुरू कर दिये और यह माँग की कि उनकी जागीरें जनता के हवाले की जायें। उन्होंने जमीन्दारों के गल्ले और दूसरी जिन्सों के गोदामों पर कब्जा कर लिया और उन्हें भूखों मरने वालों में बाँट दिया। जमीन्दार बदहवास होकर शहरों में भाग आये। जार सरकार ने किसानों का विद्रोह कुचलने के लिए सिपाही और कज्जाक भेजे। फौज ने किसानों पर गोली चलायी, उनके 'सरदारों' को पकड़ लिया और उन्हें पीटा और तरह-तरह

से यंत्रणा दी। लेकिन, किसानों ने अपनी लड़ाई बन्द नहीं की।

किसान आन्दोलन रूस के मध्य भाग में वोल्गा-प्रदेश और ट्रांस-काकेशिया में, खास तौर से जार्जिया में, बराबर फैलता गया।

सामाजिक-जनवादी सुदूर गाँवों में पहुँच गये। पार्टी की केन्द्रीय कमेटी ने किसानों के नाम अपील निकाली : 'किसानो, हमें तुमसे ये शब्द कहने हैं!' त्वेर, सरातोव, पोल्तावा, चर्निगोव, एकातेरिनोस्लाव, तिफलिस और दूसरे बहुत से सूबों की सामाजिक-जनवादी कमेटियों ने किसानों के नाम अपीलें निकालीं। सामाजिक-जनवादी गाँवों में सभाएँ करते, किसानों में मण्डल संगठित करते और किसान कमेटियाँ कायम करते। 1905 की गर्मियों में, सामाजिक-जनवादियों की संगठित की हुई खेत-मजदूरों की हड़तालें बहुत जगह हुईं।

लेकिन, यह किसान-संघर्ष की शुरुआत ही थी। किसान-आान्दोलन की लपेट में सिर्फ 85 उयेज्द (जिले) ही आये थे, यानी मोटे तौर से जारशाही रूस के यूरोपीय भाग के कुल उयेज्दों का 1/7 हिस्सा ही आया था।

मजदूरों और किसानों के आन्दोलन और रूस-जापान युद्ध में रूसी फौजों की हार का असर फौज पर भी पड़ा। जारशाही का यह गढ़ डावाँडोल हो उठा।

जून 1905 में, काले समुद्र के बेड़े के **पोतेमिकन** नामक युद्धपोत पर विद्रोह फूट पड़ा। युद्धपोत उस समय ओदेसा के नजदीक था, जहाँ मजदूरों की आम हड़ताल चालू थी। बागी जहाजियों ने अपने ज्यादा घृणित अफसरों से बदला लिया और जहाज को ओदेसा ले आये। युद्धपोत **पोतेमकिन** क्रान्ति की तरफ आ गया था।

लेनिन ने इस बगावत को बहुत ही महत्त्वपूर्ण बतलाया। उन्होंने बोल्शेविकों के लिए जरूरी समझा कि वे इस आन्दोलन का नेतृत्व अपने हाथों में लें और मजदूरों, किसानों तथा स्थानीय छावनियों के आन्दोलन से उसे जोड़ दें।

जार ने **पोतेमकिन** के खिलाफ कई युद्धपोत भेजे, लेकिन इन जहाजों के जहाजियों ने अपने विद्रोही भाइयों पर गोली चलाने से इन्कार किया। कई दिनों तक युद्धपोत **पोतेमकिन** के मस्तूल पर क्रान्ति का लाल निशान फहराता रहा। लेकिन, उन दिनों 1905 में आन्दोलन की अगुवाई करने वाली बोल्शेविक पार्टी ही एक पार्टी न थी, जैसा कि आगे 1917 में हुआ। **पोतेमकिन** पर मेन्शेविक, समाजवादी-क्रान्तिकारी और अराजकतावादी भी काफी तादाद में थे। इसका नतीजा यह हुआ कि हालाँकि सामाजिक-जनवादियों ने व्यक्तिगत रूप से विद्रोह में हिस्सा लिया, फिर भी उसमें योग्य और काफी अनुभवी नेतृत्व की कमी थी। ऐन मौके पर, जहाजियों का एक हिस्सा ढुलमुल हो गया। काले समुद्र के बेड़े के दूसरे जहाजों ने **पोतेमकिन** की बगावत में साथ नहीं दिया। कोयला और सामान कम पड़ जाने पर, क्रान्तिकारी युद्धपोत को रूमानिया के तट की तरफ बढ़ना पड़ा और वहाँ पर अधिकारियों के आगे आत्म-समर्पण करना पड़ा।

युद्धपोत **पोतेमकिन** के जहाजियों की बगावत का अन्त हार में हुआ। आगे चलकर जो जहाजी जार सरकार के हाथ में पड़ गये, उन पर मुकदमा चलाया गया। कुछ को प्राणदण्ड दिया गया और बाकी को निर्वासन और कड़ी मेहनत की सजा दी गयी। लेकिन, यह बगावत अपने आप में एक बड़ी महत्त्वपूर्ण घटना थी। **पोतेमकिन** का विद्रोह फौज और

बेड़े में आम जनता की क्रान्तिकारी कार्रवाई की पहली मिसाल थी। यह पहला मौका था जब जार की फौज की एक बड़ी टुकड़ी क्रान्ति की तरफ आयी थी। इस विद्रोह से मजदूर और किसान इस बात को समझ गये और यह बात उनके दिल में बैठ गयी कि फौज और जहाजी बेड़ा मजदूर वर्ग और जनता का साथ दे सकते हैं; खास तौर से खुद फौजियों और जहाजियों ने इस बात को समझा।

मजदूरों का आम राजनीतिक हड़तालें और प्रदर्शन करना, किसान आन्दोलन की बढ़त, पुलिस और फौज से जनता की हथियाबन्द टक्करें और अन्त में काले समुद्री बेड़े की बगावत, इन सबसे जाहिर होता था कि जनता के सशस्त्र विद्रोह के लिए हालत तैयार हो रही है। इससे उदारपंथी पूँजीपति भी मैदान में आये। क्रान्ति से डरते हुए और साथ ही क्रान्ति के हौवे से जार को डराते हुए, उन्होंने चाहा कि क्रान्ति के खिलाफ जार से समझौता कर लें। उन्होंने 'जनता के लिए' मामूली सुधारों की माँग की जिससे कि जनता को 'शान्त किया जाये', क्रान्ति की ताकतों में फूट डाली जाये और इस तरह से 'क्रान्ति की विभीषिका' से बचा जाये। उदारपंथी जमीन्दार कहते थे : "सर देने से थोड़ी जमीन दे देना बेहतर है।" उदारपंथी पूँजीपति जार के साथ सत्ता में हिस्सा बँटाने की तैयारी कर रहे थे! मजदूर वर्ग की कार्यनीति और उदारपंथी पूँजीपतियों की कार्यनीति के सिलसिले में, उन दिनों लेनिन ने लिखा था : "सर्वहारा वर्ग लड़ रहा है; पूँजीपति चोरी-चोरी सत्ता हथियाने के लिए बढ़ रहे हैं।"

जार सरकार पाशविक बर्बरता से मजदूरों और किसानों का दमन करती रही। लेकिन, उसे यह दिखाई दिये बिना न रहा कि वह दमन से ही क्रान्ति की रोकथाम नहीं कर सकती। इसलिए दमन बन्द किये बिना, उसने दाँव-पेंच से काम लेने की नीति अपनाई। एक तरफ, वह जासूसों की मदद से रूसी राष्ट्रीयताओं को एक-दूसरे के खिलाफ भड़काती थी, यहूदियों के कत्लेआम और आर्मीनियनों और तातारों के आपसी हत्याकाण्ड कराती थी। दूसरी तरफ, उसने वादा किया कि वह *जेम्स्की सोबोर*[1] *या* राज्य परिषद (दूमा) के रूप में एक प्रतिनिधि संस्था बुलायेगी। उसने मंत्री बुलिगिन को आदेश दिया कि ऐसी दूमा के लिए वह एक योजना बनाये। साथ ही, उसने यह ख्याल रखा कि दूमा के पास कानून बनाने के अधिकार न हों। ये सब उपाय इसलिए किये गये थे कि क्रान्ति की शक्तियों में फूट डाल दी जाये और जनता के नरम विचार के लोगों को उससे अलग कर दिया जाये।

बोल्शेविकों ने जनता के प्रतिनिधित्व के इस स्वाँग को खत्म करने के लिए बुलिगिन दूमा के बायकाट का ऐलान किया।

दूसरी तरफ, मेन्शेविकों ने फैसला किया कि वे दूमा भंग नहीं करेंगे और उन्होंने उसमें हिस्सा लेना जरूरी समझा।

---

1. सरकार के साथ विचार करने के लिए 16-17वीं सदी में बुलाई जाने वाली उच्च स्तरों की सभा-अं. अनु.

3. बोल्शेविकों और मेन्शेविकों के कार्यनीति-सम्बन्धी मतभेद। तीसरी पार्टी कांग्रेस। लेनिन की पुस्तक 'जनवादी क्रान्ति में सामाजिक-जनवाद की दो कार्यनीतियाँ'। मार्क्सवादी पार्टी की कार्यनीति-सम्बन्धी बुनियाद।

क्रान्ति ने समाज के सभी वर्गों को गतिशील बना दिया था। देश के राजनीतिक जीवन में क्रान्ति से जो तब्दीली हुई, उससे वे अपनी पुरानी जानी-पहचानी जगहों से बिछुड़ गये। नयी परिस्थिति के अनुकूल, उन्हें फिर से व्यवस्थित होने के लिए मजबूर होना पड़ा। हर वर्ग और हर पार्टी ने अपनी कार्यनीति, अपने काम की लाइन, दूसरे वर्गों की तरफ अपना रुख और हुकूमत की तरफ अपना रवैया बनाने की कोशिश की। जार सरकार को भी मजबूर होकर नयी और बेपहचानी कार्यनीति गढ़नी पड़ी, जिसकी मिसाल बुलिगिन दूमा जैसी 'प्रतिनिधि संस्था' को बुलाने के वादे से मालूम होती है।

सामाजिक-जनवादी पार्टी को भी अपनी कार्यनीति बनानी थी। क्रान्ति के बढ़ते हुए ज्वार से यह जरूरत पैदा हुई थी और इसलिए पैदा हुई थी कि सर्वहारा वर्ग के सामने ऐसे अमली सवाल आये थे जिन्हें हल करने में देर नहीं की जा सकती थीः हथियारबन्द विद्रोह का संगठन, जार सरकार का खात्मा, अस्थायी क्रान्तिकारी सरकार का निर्माण, इस सरकार में सामाजिक-जनवादियों का हिस्सा लेना, किसानों और उदारपंथी पूँजीपतियों की तरफ रुख, इत्यादि। सामाजिक-जनवादियों को अपने लिए ध्यानपूर्वक सोच कर और एक-जैसी मार्क्सवादी कार्यनीति बनानी थी।

लेकिन, मेन्शेविकों के अवसरवाद और उनकी फूट की कार्रवाई की वजह से रूसी सामाजिक-जनवादी पार्टी उस समय दो दलों में बँटी हुई थी। इनका अलगाव अभी पूरा नहीं समझा जा सकता था और **नियमानुसार** दोनों दल अभी दो पार्टियाँ नहीं थे। लेकिन **वास्तव में** वे दो अलग पार्टियों से बहुत ज्यादा मिलते-जुलते थे जिनमें से हरेक का अपना नेतृत्व केन्द्र और अपना अखबार हो।

जिस बात से फूट और बढ़ गयी, वह यह थी कि **संगठन के** सवालों पर पार्टी के बहुमत से अपने पुराने मतभेदों में मेन्शेविकों ने अब नये मतभेद, **कार्यनीति के** सवालों पर मतभेद भी जोड़ दिये गये थे।

संयुक्त पार्टी नहीं होने से, पार्टी की एक-जैसी कार्यनीति भी नहीं थी।

इस परिस्थिति से निकलने का एक रास्ता था कि तुरन्त एक और कांग्रेस, पार्टी की तीसरी कांग्रेस बुलायी जाती। यह कांग्रेस सामान्य कार्यनीति तय करती और अल्पमत को इस बात के लिए बाध्य करती कि वह कांग्रेस के फैसलों को, बहुमत के फैसलों को, ईमानदारी से पूरा करे। मेन्शेविकों के सामने बोल्शेविकों ने यह प्रस्ताव रखा। लेकिन, मेन्शेविक तीसरी कांग्रेस बुलाने की बात सुनने को तैयार नहीं थे। बोल्शेविकों ने सोचा कि पार्टी को ऐसी कार्यनीति के बिना और ज्यादा छोड़ना अपराध होगा जिसे पार्टी ने स्वीकृत किया हो और जिसे तमाम पार्टी सदस्य मानने के लिए बाध्य हों। इसलिए, उन्होंने तीसरी कांग्रेस बुलाने में पहल करने का काम अपने हाथों में लिया।

सभी पार्टी संगठन, बोल्शेविक और मेन्शेविक दोनों ही, कांग्रेस में बुलाये गये। लेकिन,

मेन्शेविकों ने तीसरी कांग्रेस में हिस्सा लेने से इनकार कर दिया और तय किया कि खुद अपनी कांग्रेस करेंगे। उनकी कांग्रेस में थोड़े ही प्रतिनिधि आये, इसलिए उन्होंने उसे कान्फ्रेंस का नाम दिया। लेकिन, दरअसल वह एक कांग्रेस थी, मेन्शेविक पार्टी की कांग्रेस, जिसके फैसले सभी मेन्शेविकों के लिए मान्य थे।

रूसी सामाजिक-जनवादी पार्टी की तीसरी कांग्रेस अप्रैल 1905 में लन्दन में हुई। उसमें 20 बोल्शेविक कमेटियों की तरफ से 24 प्रतिनिधि शामिल हुए थे। उसमें पार्टी के सभी बड़े संगठनों का प्रतिनिधित्व था।

कांग्रेस ने मेन्शेविकों की यह कह कर निन्दा की कि "वे एक ऐसा गुट हैं जो पार्टी से टूट कर अलग हो गया है," और इसके बाद कांग्रेस ने मुख्य काम सँभाला, यानी, पार्टी की कार्यनीति का निर्माण।

जिस समय यह कांग्रेस हुई, उसी समय मेन्शेविकों ने अपनी कान्फ्रेंस जिनेवा में की।

लेनिन ने परिस्थिति का सार बतलाते हुए कहा था : "दो कांग्रेसें-दो पार्टियाँ।"

कांग्रेस और कान्फ्रेंस दोनों ने वस्तुतः कार्यनीति के एक ही सवालों पर बहस की, लेकिन उन्होंने जो फैसले किये, वे एक-दूसरे के बिल्कुल उलटे थे। कांग्रेस और कान्फ्रेंस ने क्रमशः जो दो तरह के फैसले मंजूर किये, उनसे तीसरी पार्टी कांग्रेस और मेन्शेविक कान्फ्रेंस के बीच के, बोल्शेविकों और मेन्शेविकों के बीच के, कार्यनीति-सम्बन्धी भेद की पूरी गहराई जाहिर हुई।

मतभेद की मुख्य बातें यह हैं।

तीसरी पार्टी कांग्रेस की कार्यनीति-सम्बन्धी लाइन। कांग्रेस का विचार था कि यद्यपि उस समय होने वाली क्रान्ति का रूप पूँजीवादी जनवादी था और पूँजीवाद के ढाँचे के अन्दर जो कुछ मुमकिन था, उसकी सीमाओं से बाहर वह नहीं जा सकती थी, फिर भी सर्वहारा वर्ग ही मुख्य रूप से उसकी पूरी जीत में दिलचस्पी रखता था। सबब यह कि इस क्रान्ति की जीत से सर्वहारा वर्ग अपने को संगठित कर सकता था, राजनीतिक रूप से बढ़ सकता था, मेहनतकश अवाम का राजनीतिक नेतृत्व करने में योग्यता और अनुभव हासिल कर सकता था और पूँजीवादी क्रान्ति से समाजवादी क्रान्ति की तरफ बढ़ सकता था।

पूँजीवादी-जनवादी क्रान्ति की पूरी जीत हासिल करने के लिए सर्वहारा वर्ग ने जो कार्यनीति अपनायी थी, उसका समर्थन किसान ही कर सकते थे। किसान जमीन्दारों से अपना हिसाब-किताब तब तक तय नहीं कर सकते थे और अपनी जमीन पर तब तक अधिकार नहीं पा सकते थे जब तक कि क्रान्ति की पूरी विजय न हो। इसलिए, किसान सर्वहारा वर्ग के स्वाभाविक सहयोगी थे।

उदारपंथी पूँजीपतियों को क्रान्ति की पूरी जीत में दिलचस्पी नहीं थी। वे मजदूरों और किसानों से जितना डरते थे उतना और किसी चीज से नहीं, और इन्हीं के खिलाफ बतौर कोड़े के उन्हें जारशाही की जरूरत थी। वे कोशिश करते कि जारशाही कायम रहे, सिर्फ उसके अधिकार सीमित कर दिये जायें। इसलिए, उदारपंथी पूँजीपति वैधानिक सम्राटवाद के आधार पर जार से समझौता करके मामला रफा-दफा करने की कोशिश करते थे।

क्रान्ति तभी विजयी होगी जब सर्वहारा वर्ग उसका नेतृत्व करेगा; जब क्रान्ति के नेता

की तरह सर्वहारा वर्ग किसानों का सहयोग हासिल करेगा; जब उदारपंथी पूँजीपति अकेले कर दिये जायेंगे; जब सामाजिक-जनवादी पार्टी जारशाही के खिलाफ जनता के विद्रोह के संगठन में सक्रिय हिस्सा लेगी; जब सफल विद्रोह के बाद एक अस्थायी क्रान्तिकारी सरकार कायम की जायेगी जो क्रान्ति-विरोध को जड़ से उखाड़ कर फेंक सकेगी और तमाम जनता का प्रतिनिधित्व करने वाली विधानसभा बुलायेगी; जब परिस्थिति अनुकूल होने पर क्रान्ति को अन्तिम ध्येय तक पहुँचाने के लिए सामाजिक-जनवादी पार्टी अस्थायी क्रान्तिकारी हुकूमत में हिस्सा लेने से इन्कार नहीं करेगी।

मेन्शेविक कान्फ्रेंस की कार्यनीति-सम्बन्धी लाइन। क्रान्ति पूँजीवादी क्रान्ति थी, इसलिए उदारपंथी पूँजीपति उसके नेता हो सकते थे। सर्वहारा वर्ग को किसानों से नजदीकी सम्बन्ध न कायम करने चाहिए बल्कि उदारपंथी पूँजीपतियों से कायम करने चाहिए। मुख्य बात यह है कि क्रान्तिकारी जोश दिखलाकर उदारपंथी पूँजीपतियों को डरा न देना चाहिए और क्रान्ति से हटने के लिए उन्हें बहाना न देना चाहिए, क्योंकि अगर वे क्रान्ति से हट गये तो क्रान्ति कमजोर पड़ जायेगी।

यह मुमकिन था कि विद्रोह विजयी हो। लेकिन, विद्रोह की जीत के बाद सामाजिक-जनवादी पार्टी को अलग हट जाना चाहिए, जिससे कि उदारपंथी पूँजीपति डर न जायें। यह मुमकिन था कि विद्रोह के फलस्वरूप एक अस्थायी क्रान्तिकारी सरकार कायम की जाये। लेकिन, सामाजिक-जनवादी पार्टी को किसी भी हालत में उसमें हिस्सा लेना न चाहिए क्योंकि यह सरकार समाजवादी नहीं होगी, और यह मुख्य बात थी, सरकार में हिस्सा लेकर, तथा अपने क्रान्तिकारी जोश से, सामाजिक-जनवादी पार्टी उदारपंथी पूँजीपतियों को डरा सकती है। और, इस तरह से क्रान्ति कमजोर पड़ सकती है।

क्रान्ति की भावी प्रगति के लिए यह ज्यादा अच्छा होगा कि **जेम्स्की सोबोर** या राज्य दूमा की तरह की कोई प्रतिनिधि सभा बुलायी जाये, जिस पर बाहर से मजदूर वर्ग का दबाव डाला जा सके और उसे विधानसभा में तब्दील किया जा सके, या उसे विधानसभा बुलाने के लिए प्रेरित किया जाये।

सर्वहारा वर्ग के अपने स्पष्ट और शुद्ध मजदूरी कमाने वालों के हित हैं। उसे इन्हीं हितों की तरफ ध्यान देना चाहिए और पूँजीवादी क्रान्ति का नेता बनने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। यह पूँजीवादी क्रान्ति एक आम राजनीतिक क्रान्ति है, इसलिए उसका सभी वर्गों से सम्बन्ध है, न कि सिर्फ सर्वहारा वर्ग से। संक्षेप में, रूसी सामाजिक-जनवादी मजदूर पार्टी के दो दलों की ये दो कार्यनीतियाँ थीं।

अपनी ऐतिहासिक पुस्तक **जनवादी क्रान्ति में सामाजिक-जनवाद की दो कार्यनीतियाँ** में, लेनिन ने मेन्शेविकों की कार्यनीति की पक्की आलोचना की थी और बोल्शेविक कार्यनीति का सुन्दर प्रतिपादन किया था।

यह किताब जुलाई 1905 में, यानी तीसरी पार्टी कांग्रेस के दो महीने बाद प्रकाशित हुई थी। उसके नाम से सोचा जा सकता है कि उसमें लेनिन ने पूँजीवादी जनवादी क्रान्ति के दौर के कार्यनीति-सम्बन्धी सवालों पर ही प्रकाश डाला होगा और उनका ध्यान सिर्फ रूसी मेन्शेविकों पर ही रहा होगा। लेकिन वास्तव में, जब उन्होंने मेन्शेविकों की कार्यनीति

की आलोचना की, तो उन्होंने साथ ही अन्तरराष्ट्रीय अवसरवाद की कार्यनीति का भी पर्दाफाश किया। जब उन्होंने पूँजीवादी जनवादी क्रान्ति के दौर की मार्क्सवादी कार्यनीति का प्रतिपादन किया और पूँजीवादी क्रान्ति और समाजवादी क्रान्ति का भेद किया, तो उन्होंने साथ ही पूँजीवादी क्रान्ति से समाजवादी क्रान्ति की तरफ बढ़ने के दौर की मार्क्सवादी कार्यनीति के बुनियादी सिद्धान्तों की स्थापना की।

लेनिन ने **जनवादी क्रान्ति में सामाजिक-जनवाद की दो कार्यनीतियाँ** नाम की अपनी पुस्तक में कार्यनीति के जिन बुनियादी उसूलों का प्रतिपादन किया, वे इस प्रकार हैं :

1. कार्यनीति का मुख्य सिद्धान्त, जो लेनिन की पूरी किताब में मिलता है, यह है कि सर्वहारा वर्ग को पूँजीवादी क्रान्ति का नेता होना चाहिए और वह हो सकता है) उसे रूस में पूँजीवादी जनवादी क्रान्ति की **रास्ता दिखाने वाली शक्ति** होना चाहिए और वह हो सकता है।

लेनिन ने इस क्रान्ति के पूँजीवादी रूप को स्वीकार किया था, क्योंकि जैसा उन्होंने कहा था, वह "एक शुद्ध जनवादी क्रान्ति की सीमाओं को सीधे लाँघने में असमर्थ है।" फिर भी, उनका कहना था कि यह ऊपर के वर्गों की क्रान्ति नहीं बल्कि जनता की क्रान्ति है, जो तमाम जनता, समूचे मजदूर वर्ग, तमाम किसानों को गतिशील बनायेगी। इसलिए, मेन्शेविकों द्वारा सर्वहारा वर्ग के लिए पूँजीवादी क्रान्ति के महत्त्व को कम करके दिखाना, उसमें सर्वहारा वर्ग की भूमिका को तुच्छ बताना और उससे सर्वहारा को दूर रखना, लेनिन की राय में सर्वहारा वर्ग के हितों से गद्दारी थी।

लेनिन ने लिखा था :

> "मार्क्सवाद सर्वहारा वर्ग को सिखलाता है कि वह पूँजीवादी क्रान्ति से अलग न रहे, उसकी तरफ उदासीन न हो, क्रान्ति का नेतृत्व पूँजीपतियों के हाथ में न जाने दे। इसके विपरीत, वह पूरी ताकत से उसमें हिस्सा ले, खूब डट कर सुसंगत सर्वहारा जनतंत्र के लिए लड़े, क्रान्ति को उसके आखिरी नतीजे तक ले जाने के लिए लड़े।" (लेनिन, सं.ग्रं., अं.सं., मास्को, 1947, खं. 1, पृ. 369)।

लेनिन ने आगे लिखा था :

> "हमें याद रखना चाहिए कि आज के जमाने में समाजवाद को नजदीक लाने के लिए पूरी राजनीतिक आजादी के अलावा, जनवादी गणतंत्र के अलावा, दूसरा कोई रास्ता न है, न हो सकता है।" (उप., पृ. 414)।

लेनिन ने देखा कि क्रान्ति के दो परिणाम हो सकते हैं :

(अ) या तो वह जारशाही पर पूरी जीत से, जारशाही की पराजय और जनवादी गणतंत्र की स्थापना से खत्म होगी,

(आ) या अगर शक्तियाँ नाकाफी हुईं तो जनता के हितों की बलि देकर जार और पूँजीपतियों के बीच के समझौते से, किसी तरह के सीमित विधान, या बहुत मुमकिन है विधान के स्वाँग से खत्म हो।

सर्वहारा वर्ग इन दोनों से बेहतर नतीजे में दिलचस्पी रखता था, यानी वह चाहता था

कि जारशाही पर पूरी जीत हो। लेकिन, इस तरह का नतीजा तभी मुमकिन होगा जब सर्वहारा वर्ग क्रान्ति का नेता और उसका पथ प्रदर्शक बन पाये।

लेनिन ने कहा था :

> "क्रान्ति का नतीजा इस बात पर निर्भर है कि मजदूर वर्ग पूँजीपतियों के मातहत अपनी भूमिका निभाता है, इस तरह मातहत कि जारशाही पर हमला करने में तो उसकी शक्ति प्रबल हो लेकिन राजनीतिक रूप से वह अपाहिज हो, या कि वह जनता की क्रान्ति के नेता की भूमिका निभाता है।" (उप., पृ. 344)।

लेनिन का कहना था कि सर्वहारा वर्ग के पास हर तरह की सम्भावना है कि वह पूँजीपतियों के मातहत बनने से बचे और पूँजीवादी-जनवादी क्रान्ति का नेता बन जाये। लेनिन के अनुसार, यह सम्भावना इस बात से पैदा होती थी-

पहले तो, "सर्वहारा वर्ग अपनी स्थिति की वजह से ही सबसे आगे बढ़ा हुआ वर्ग और एकमात्र सुसंगत क्रान्तिकारी वर्ग है। इस वजह से ही, रूस के आम जनवादी क्रान्तिकारी आन्दोलन में उसे मुख्य भूमिका अदा करनी होगी।" (उप., पृ. 386)।

दूसरे, सर्वहारा वर्ग की अपनी राजनीतिक पार्टी है। यह पार्टी पूँजीपतियों से स्वतंत्र है और सर्वहारा वर्ग के लिए यह मुमकिन बनाती है कि वह अपने को "एक संयुक्त और स्वतंत्र राजनीतिक शक्ति के रूप में" सुगठित कर सके। (उप., पृ. 386)।

तीसरे, पूँजीपतियों के मुकाबले में सर्वहारा वर्ग को क्रान्ति की निश्चित जीत में ज्यादा दिलचस्पी है। इस लिहाज से, "**एक अर्थ में** पूँजीवादी क्रान्ति पूँजीपतियों से ज्यादा सर्वहारा वर्ग के लिए लाभकारक है।" (उप. पृष्ठ 368)।

लेनिन ने लिखा था :

> "सर्वहारा वर्ग के मुकाबले में पूँजीपतियों को राज्यतंत्र, स्थायी फौज वगैरह जैसी अतीत की कुछ बची-खुची चीजों का सहारा लेने में लाभ है। पूँजीपतियों को इसमें फायदा है कि पूँजीवादी क्रान्ति पुराने जमाने के अवशेषों को बहुत दृढ़ता से साफ न कर दे, बल्कि उनमें से कुछ को रहने दे, यानी अगर यह क्रान्ति पूरी तरह से संगत न हो, अगर वह पूरी न हो, अगर वह दृढ़ता और निर्ममता से चलने वाली न हो तो इससे पूँजीपतियों को फायदा है।... पूँजीपतियों के लिए यह ज्यादा लाभदायी है यदि पूँजीवादी जनतंत्र की दिशा में जरूरी परिवर्तन और भी धीरे, और क्रमशः और फूँक-फूँक कर, कम दृढ़ता से, सुधारों के जरिये हों और क्रान्ति के जरिये न हों... यदि ये परिवर्तन आम जनता, यानी किसानों और खास तौर से मजदूरों की स्वतंत्र क्रान्तिकारी कार्रवाई, पहल और शक्ति को कम से कम विकसित करें। ऐसा न होने पर, मजदूरों के लिए आसान होगा कि, जैसा कि फ्रांसीसी कहते हैं, 'एक कन्धे से उठा कर बन्दूक दूसरे कन्धे पर रख ली', यानी पूँजीवादी क्रान्ति उनके हाथों में जो बन्दूकें देगी, जो आजादी क्रान्ति लायेगी, भूदास प्रथा से धरती पाक होने पर वहाँ जो जनवादी संस्थाएँ पनपेंगी, उन्हें वे पूँजीपतियों के खिलाफ इस्तेमाल करेंगे। दूसरी तरफ, मजदूरों के लिए इस बात में ज्यादा फायदा है कि पूँजीवादी जनतंत्र की दिशा में जो परिवर्तन जरूरी

हैं, वे क्रान्ति के जरिये हों और सुधारों के जरिये न हों। सुधारों का तरीका देर लगाने का तरीका है, मामला टालने का तरीका है, जातीय जीवन के सड़े-गले तबकों के दर्दनाक, धीमे-धीमे घुलने का तरीका है। सर्वहारा वर्ग और किसान भी इस सड़ाँध से सबसे पहले तकलीफ उठाते हैं। क्रान्तिकारी तरीका तुरन्त चीर-फाड़ का तरीका है, जो सर्वहारा वर्ग के लिए सबसे कम दर्दनाक है। यह तरीका गलते हुए हिस्सों को सीधे हटा देने का तरीका है, यह तरीका राज्यतंत्र और उसके साथ चलने वाली घृणित, घटिया, सड़ी हुई और छूत फैलाने वाली संस्थाओं को कम से कम रियायतें देने का और उनका कम से कम लिहाज करने का तरीका है।" (उप. पृ. 368-69)।

लेनिन ने आगे लिखा है :

"इसी वजह से, सर्वहारा वर्ग जनवाद के लिए अगली कतारों में लड़ता है और इस मूर्खतापूर्ण और अपने लिए अयोग्य सलाह को घृणा से ठुकरा देता है कि वह पूँजीपतियों को डरा कर भगा न देने का ध्यान रखे।" (उप. पृ. 405)।

सर्वहारा वर्ग क्रान्ति का नेता बने, इस **सम्भावना** को **वास्तविकता** का रूप देने के लिए, इसके लिए कि सर्वहारा वर्ग **हकीकत** में पूँजीवादी क्रान्ति का नेता, उसकी पथ-प्रदर्शक शक्ति बने, लेनिन के अनुसार कम से कम दो शर्तें जरूरी थीं।

पहले तो, सर्वहारा वर्ग के लिए एक ऐसे सहयोगी की जरूरत थी जिसे जारशाही पर पूरी जीत हासिल करने से दिलचस्पी हो और जो सर्वहारा वर्ग का नेतृत्व स्वीकार कर सकता हो। नेतृत्व के ही विचार से यह बात पैदा होती थी, क्योंकि किसी का नेतृत्व ही न करना हो तो नेता नेता न रह जाये। रास्ता देखने के लिए कोई न हो तो रास्ता दिखाने वाला भी नाममात्र को रह जायेगा। लेनिन का विचार था कि किसान ऐसे ही सहयोगी हैं।

दूसरे यह जरूरी था कि जो वर्ग क्रान्ति के नेतृत्व के लिए सर्वहारा वर्ग से लड़ रहा था और उसका एकमात्र नेता बनने की कोशिश कर रहा था, उसे नेतृत्व के मैदान से हटा दिया जाये और अकेला कर दिया जाये। यह बात भी नेतृत्व के ही विचार से पैदा होती थी, क्योंकि क्रान्ति के दो नेता होने की सम्भावना उस विचार से बाहर थी। लेनिन का मत था कि उदारपंथी पूँजीपतियों का वर्ग ऐसा ही वर्ग है।

लेनिन ने लिखा था :

"सर्वहारा वर्ग ही जनतंत्र के लिए सुसंगत रूप से लड़ने वाला हो सकता है। जनतंत्र के लिए वह तभी विजयी लड़ाका हो सकता है जब आम किसान उसके क्रान्तिकारी संघर्ष में हिस्सा लें।" (उप., पृ. 376)।

और आगे :

"किसानों में अर्द्ध-सर्वहारा की बहुत बड़ी तादाद है और निम्न-पूँजीवादी लोग भी हैं। इस वजह से, किसान अस्थिर होते हैं और सर्वहारा वर्ग को मजबूर होकर बिल्कुल एक वर्ग-पार्टी में संगठित होना पड़ता है। लेकिन, किसानों की अस्थिरता पूँजीपतियों की अस्थिरता से बुनियादी तौर पर भिन्न है। कारण यह कि मौजूदा वक्त में किसानों

को व्यक्तिगत सम्पत्ति की पूर्ण रक्षा से इतनी दिलचस्पी नहीं है जितनी जमीन्दारों की जागीरें जब्त करने से है, जो कि व्यक्तिगत सम्पत्ति का एक मुख्य रूप है। इससे किसान समाजवादी नहीं हो जाते, न उनका मध्यवित्त होना खत्म होता है। फिर भी, किसान जनवादी क्रान्ति के दिल से समर्थक और उसके सबसे उग्र समर्थक हो सकते हैं। किसान लाजिमी तौर से ऐसे समर्थक तभी बनेंगे जब क्रान्तिकारी घटनाओं की प्रगति, जिनसे उनकी चेतना जागती है, पूँजीपतियों की गद्दारी और सर्वहारा वर्ग की हार से बहुत जल्द भंग न हो जाये। इस शर्त के पूरी होने पर, किसान अनिवार्य रूप से क्रान्ति और जनवाद के दृढ़ समर्थक बन जायेंगे। पूरी तरह से विजयी क्रान्ति ही कृषि सुधारों के क्षेत्र में किसानों को **सब कुछ** दे सकती है-**सब कुछ** जो किसान चाहते हैं, जिसका सपना देखते हैं और जिसकी उन्हें दरअसल जरूरत है।" (उप., पृ. 405)।

मेन्शेविकों की आपत्तियाँ थीं कि बोल्शेविक कार्यनीति से "पूँजीवादी वर्ग क्रान्ति से हट जायेंगे और इस तरह उसका प्रवाह कम हो जायेगा।" इन आपत्तियों की छानबीन करते हुए, लेनिन ने उन्हें "क्रान्ति से गद्दारी की कार्यनीति" और ऐसी "कार्यनीति जो सर्वहारा वर्ग को पूँजीवादी वर्गों का तुच्छ पिछलगुआ बना देगी" बताया था। लेनिन ने लिखा था :

"जो लोग दरअसल एक विजयी रूसी क्रान्ति में किसानों की भूमिका समझते हैं, वे यह ख्वाब में भी न कहेंगे कि अगर पूँजीपति उससे हट गये तो क्रान्ति का प्रवाह कम हो जायेगा। वास्तव में, रूसी क्रान्ति का सच्चा प्रवाह तभी शुरू होगा, पूँजीवादी-जनवादी क्रान्ति के युग में उसमें विशालतम क्रान्तिकारी प्रवाह तभी पैदा होगा जब पूँजीपति उससे हट जायेंगे और जब आम किसान सर्वहारा वर्ग के साथ-साथ सक्रिय क्रान्तिकारियों के रूप में आगे आयेंगे। हमारी जनवादी क्रान्ति सुसंगत रूप से अपने परिणाम तक ले जायी जाये, इसके लिए जरूरी है कि वह उन्हीं ताकतों पर निर्भर रहे जो पूँजीपतियों की लाजिमी असंगति को बेकार कर दे, यानी जो उन्हें 'क्रान्ति से हटाने में ही' कामयाब हो सके।" (उप. पृ. 406)।

लेनिन ने अपनी किताब **जनवादी क्रान्ति में सामाजिक-जनवाद की दो कार्यनीतियाँ** में कार्यनीति का यह मुख्य सिद्धान्त रखा था। यह सिद्धान्त सर्वहारा वर्ग के बारे में था, जो पूँजीवादी क्रान्ति का नेता होगा। यह कार्यनीति का बुनियादी सिद्धान्त पूँजीवादी क्रान्ति में सर्वहारा वर्ग के एकछत्र नेतृत्व (प्रमुख भूमिका) के बारे में था।

पूँजीवादी जनवादी क्रान्ति में कार्यनीतिक सवालों पर मार्क्सवादी पार्टी की यह एक नयी लाइन थी। मार्क्सवाद की टकसाल में कार्यनीति की जो लाइनें अभी तक थीं, उनसे यह बुनियादी तौर से भिन्न थी। पूँजीवादी क्रान्तियों में-मिसाल के लिए पश्चिमी यूरोप में-अब तक हालत यह थी कि मुख्य भूमिका पूँजीपतियों की होती थी। सर्वहारा वर्ग चाहे या न चाहे, उनके मातहत का पार्ट अदा करता था और किसान पूँजीपतियों की रिजर्व का काम देते थे। इस तरह के परस्पर सम्बन्ध को मार्क्सवादी बहुत कुछ अनिवार्य मानते थे। साथ ही, यह ख्याल रखते थे कि जहाँ तक हो सके, सर्वहारा अपनी फौरी वर्गगत माँगों के लिए लड़े

और उसकी अपनी राजनीतिक पार्टी हो। अब नयी ऐतिहासिक परिस्थितियों में, लेनिन के अनुसार, हालत जब यों बदल रही थी कि सर्वहारा वर्ग पूँजीवादी क्रान्ति की प्रमुख शक्ति बन रहा था, पूँजीवादी वर्ग क्रान्ति के नेतृत्व से हटाया जा रहा था और किसान सर्वहारा वर्ग की रिजर्व सेना बन रहे थे।

यह दावा कि प्लेखानोव "भी" सर्वहारा वर्ग के एकछत्र नेतृत्व का "समर्थन करते थे", एक भ्रम पर निर्भर है। यह सही है कि प्लेखानोव सर्वहारा नेतृत्व की कल्पना से खेल करते थे और उसे जबानी तौर पर मानने में भी उन्हें आनाकानी न थी, लेकिन दरअसल तत्व रूप में इस विचार के वह विरोधी थे। सर्वहारा वर्ग के एकछत्र नेतृत्व का मतलब है-पूँजीवादी क्रान्ति में सर्वहारा वर्ग की प्रमुख भूमिका, उसके साथ सर्वहारा वर्ग और किसानों के सहयोग की नीति हो और उदारपंथी पूँजीपतियों को अकेले कर देने की नीति हो। लेकिन प्लेखानोव जैसाकि हमें मालूम है, उदारपंथी पूँजीपतियों को **अकेले** कर देने की नीति का **विरोध करते थे**, उदारपंथी पूँजीपतियों से **समझौते** की नीति का **समर्थन करते** थे और सर्वहारा वर्ग और किसानों के सहयोग की नीति का **विरोध** करते थे। वास्तव में, प्लेखानोव की कार्यनीति की लाइन मेन्शेविक लाइन थी जो सर्वहारा नेतृत्व अस्वीकार करती थी।

2. लेनिन का विचार था कि जारशाही को खत्म करने और जनवादी गणतंत्र कायम करने का सबसे कारगर तरीका जनता का विजयी सशस्त्र विद्रोह है। मेन्शेविकों के खिलाफ, लेनिन का कहना था कि "आम जनवादी क्रान्तिकारी आन्दोलन ने सशस्त्र विद्रोह की **जरूरत अभी भी पैदा कर दी है,"** कि "विद्रोह के लिए सर्वहारा वर्ग का संगठन" अभी भी "फौरी कामों में आ चुका है। वह पार्टी का जरूरी मुख्य और **अनिवार्य** काम है।" और यह जरूरी है कि "सर्वहारा वर्ग को हथियारबन्द करने के लिए **पूरा जोर** लगाया जाये और विद्रोह का सीधे नेतृत्व करने की सम्भावना पक्की करने के लिए जोरदार उपाय किये जायें।" (उप., पृ. 386)।

विद्रोह की तरफ जनता को ले जाने और उसे समूची जनता का विद्रोह बना देने के लिए, लेनिन ने यह जरूरी समझा कि ऐसे नारे दिये जायें, जनता के नाम ऐसी अपीलें निकाली जायें जिनसे कि उसकी क्रान्तिकारी पहलकदमी को पूरी छूट मिले, वह विद्रोह के लिए संगठित हो और जारशाही सत्ता के कलपुर्जे ढीले पड़ जायें। उनका विचार था कि ये नारे तीसरी पार्टी कांग्रेस के कार्यनीति-सम्बन्धी फैसलों से मिलते हैं, जिनके समर्थन में उन्होंने अपनी किताब **जनवादी क्रान्ति में सामाजिक-जनवाद की दो कार्यनीतियाँ** लिखी थी।

उनके विचार से, वे नारे ये थे :

(क) "आम राजनीतिक हड़तालें, जो शुरू में और विद्रोह के दौर में भी बहुत महत्त्व की हो सकती हैं" (उप., पृ. 386);

(ख) "क्रान्तिकारी ढंग से 8 घण्टों का दिन और मजदूर वर्ग की दूसरी फौरी माँगें तुरन्त हासिल करना" (उप., पृ. 357);

(ग) क्रान्तिकारी ढंग से "सभी जनवादी परिवर्तन" करने के लिए, जिनमें जागीरों की जमीन छीनना भी शामिल हो, "क्रान्तिकारी किसान कमेटियाँ तुरन्त संगठित

करना"; (उप., पृ. 398);

(घ) मजदूरों को हथियारबन्द करना।

यहाँ दो बातें खास दिलचस्पी की हैं। पहली तो, शहरों में 8 घण्टों का दिन हासिल करने और गाँवों में जनवादी परिवर्तन करने के **क्रान्तिकारी ढंग** की कार्यनीति। दूसरे शब्दों में, यह ऐसी कार्यनीति थी जो अधिकारियों की परवाह नहीं करती, कानून की परवाह नहीं करती, जो अधिकारियों और कानून दोनों को भुला देती है, मौजूदा कानूनों को तोड़ती है और अनधिकारी कामों से एक नयी व्यवस्था कायम करती है। यह नयी व्यवस्था एक किये जा चुके काम के रूप में सामने आती है। यह कार्यनीति का एक नया तरीका था, जिसके इस्तेमाल से जारशाही सत्ता के कलपुर्जे ठप पड़ गये और आम जनता की कार्रवाई और रचनात्मक पहलकदमी को छूट मिली। इस कार्यनीति से शहरों में क्रान्तिकारी हड़ताल कमेटियाँ बनीं और गाँवों में क्रान्तिकारी किसान कमेटियाँ बनीं। पहली तरह की कमेटियाँ आगे चल कर मजदूर प्रतिनिधियों की सोवियतें बनीं, और दूसरी तरह की कमेटियाँ किसान प्रतिनिधियों की सोवियतें बनीं।

दूसरी बात **आम राजनीतिक हड़तालों** का इस्तेमाल है। क्रान्ति के दौर में आगे चलकर आम राजनीतिक हड़तालें जनता को क्रान्तिकारी ढंग से बटोरने के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण साबित हुईं। सर्वहारा वर्ग के हाथ में यह एक नया और बहुत ही महत्त्वपूर्ण हथियार था। यह एक ऐसा हथियार था जो मार्क्सवादी पार्टियों के अमल में अभी तक अनजाना रहा था और जो आगे चलकर सुपरिचित हो गया।

लेनिन का कहना था कि जनता का सफल विद्रोह होने के बाद, जार सरकार की जगह एक अस्थायी क्रान्तिकारी सरकार कायम करनी चाहिए। अस्थायी क्रान्तिकारी सरकार का यह काम होगा कि क्रान्ति में मिली हुई सफलताओं को पक्का करे, क्रान्ति-विरोधियों की मुखालिफत को कुचल दे और सामाजिक-मजदूर मजदूर पार्टी के अल्पतम कार्यक्रम को पूरा करे। लेनिन का कहना था कि जब तक ये काम पूरे न किये जायेंगे, तब तक जारशाही को पूरी तरह से हराना नामुमकिन होगा। और इन कामों को पूरा करने के लिए और जारशाही पर पूरी विजय हासिल करने के लिए, यह जरूरी होगा कि अस्थायी क्रान्तिकारी सरकार कोई मामूली तरह की सरकार नहीं हो बल्कि विजयी वर्गों के, मजदूरों और किसानों के, अधिनायकत्व की सरकार हो। यह सर्वहारा और किसानों का क्रान्तिकारी अधिनायकत्व हो। मार्क्स का यह प्रसिद्ध सूत्र पेश करते हुए कि "क्रान्ति के बाद राज्य के हर अस्थायी संगठन को एक अधिनायकत्व की जरूरत होती है और वह भी एक शक्तिशाली अधिनायकत्व की, लेनिन ने यह नतीजा निकाला कि अगर अस्थायी क्रान्तिकारी सरकार को जारशाही पर अपनी पूरी जीत पक्की करनी है तो वह सर्वहारा वर्ग और किसानों का अधिनायकत्व के अलावा कुछ नहीं हो सकती।

लेनिन ने लिखा था :

"जारशाही पर क्रान्ति की पूरी जीत का मतलब है-**सर्वहारा वर्ग और किसानों का क्रान्तिकारी जनवादी अधिनायकत्व।**... और, इस तरह की जीत एक अधिनायकत्व ही होगी, यानी उसे फौजी ताकत पर लाजिमी तौर से निर्भर होना पड़ेगा, आम जनता को

हथियाबन्द करने पर, विद्रोह पर निर्भर करना पड़ेगा और 'कानून' या 'शान्तिपूर्ण' तरीके से कायम की हुई जैसी-तैसी संस्थाओं से काम नहीं चलेगा। यह अधिनायकत्व ही होगा; क्योंकि जब सर्वहारा वर्ग और किसानों के लिए तुरन्त जरूरी और एकदम आवश्यक तब्दीलियाँ करनी होगीं तो जमीन्दार जान पर खेल कर विरोध करेंगे, बड़े पूँजीपति और जारशाही प्राणप्रण से विरोध करेंगे। अधिनायकत्व के बिना, उस विरोध को तोड़ना और क्रान्ति-विरोधी कोशिशों को विफल करना असम्भव है। लेकिन अवश्य ही, वह एक जनवादी अधिनायकत्व होगा, न कि समाजवादी अधिनायकत्व। (क्रान्तिकारी विकास की बीच की कई मंजिलें पार किये बिना) वह पूँजीवाद की बुनियाद पर असर न डाल सकेगा। ज्यादा से ज्यादा, किसानों के पक्ष में वह जागीरों की जमीन का आमूल नया बँटवारा कर सकता है। वह सुसंगत और पूर्ण जनतंत्र कायम कर सकता है, जिसमें जनवाद कायम करना भी शामिल है। वह एशियाई गुलामी के तमाम सताने वाले रूप खत्म कर सकता है, न सिर्फ गाँवों में बल्कि कारखानों की जिन्दगी में भी। वह मजदूरों की हालत में पूरी उन्नति के लिए नींव डाल सकता है और उनकी जिन्दगी के स्तर को ऊँचा करने के लिए नींव डाल सकता है। और अन्त में-और इस अन्तिम कार्य का महत्त्व कम नहीं है-यूरोप में क्रान्ति की लपटें पहुँचा सकता है। इस तरह की जीत अभी किसी तरह हमारी पूँजीवादी क्रान्ति को समाजवादी क्रान्ति का रूप न दे देगी। जनवादी क्रान्ति पूँजीवादी सामाजिक और आर्थिक सम्बन्धों की हदें सीधे न लाँघ जायेगी। फिर भी, इस तरह की जीत का जो महत्त्व रूस के भावी विकास के लिए और तमाम दुनिया के भावी विकास के लिए होगा, वह बहुत ज्यादा है। कोई भी चीज दुनिया के सर्वहारा की क्रान्तिकारी शक्ति को इस तरह नहीं उभारेगी, कोई भी चीज इस हद तक उसकी पूरी जीत की मंजिल तक उसका रास्ता कम न करेगी जैसा कि इस क्रान्ति की पूरी जीत, जो अब रूस में शुरू हुई है।" (उप. , पृ. 373)।

अस्थायी क्रान्तिकारी सरकार की तरफ सामाजिक-जनवादियों का रुख क्या हो और उसमें वे हिस्सा ले सकेंगे या नहीं, इन सवालों पर लेनिन ने तीसरी पार्टी कांग्रेस के प्रस्ताव का पूरी तरह समर्थन किया, जिसमें कहा गया था :

"हमारी पार्टी के प्रतिनिधि अस्थायी क्रान्तिकारी सरकार में हिस्सा ले सकते हैं। शर्त यह होगी कि शक्तियों का आपसी सम्बन्ध अनुकूल हो और वे दूसरी बातें अनुकूल हों जो पहले से ठीक-ठीक निश्चित नहीं की जा सकतीं। पार्टी के प्रतिनिधि इस सरकार में इसलिए हिस्सा लेंगे कि वे तमाम क्रान्ति-विरोधी कोशिशों के खिलाफ डट कर लड़ सकें और मजदूर वर्ग के स्वतंत्र हितों की रक्षा कर सकें। इस तरह का हिस्सा लेने के लिए एक लाजिमी शर्त यह है कि पार्टी अपने प्रतिनिधियों पर कठोरता से नियंत्रण रखे। सामाजिक-जनवादी पार्टी पूरी समाजवादी क्रान्ति के लिए कोशिश कर रही है और इसलिए, सभी पूँजीवादी पार्टियों के प्रति, वह बिना किसी मेल-मुलाहिजे के, शत्रु-भाव रखती है। उस लाजिमी शर्त में सामाजिक-जनवादी पार्टी की आजादी

को पूरी-पूरी तरह बनाये रखना जरूरी होगा। अस्थायी क्रान्तिकारी सरकार में सामाजिक-जनवादियों का हिस्सा लेना मुमकिन हो चाहे न हो, हमें आम सर्वहारा में इस बात का प्रचार करना चाहिए कि क्रान्ति की जीत की रक्षा करने के लिए, उसे सुदृढ़ करने और उसका विस्तार करने के लिए सामाजिक-जनवादी पार्टी के नेतृत्व में हथियारबन्द सर्वहारा का अस्थायी सरकार पर टिकाऊ दबाव डालना जरूरी होगा।" (उप., पृ. 348-49)।

मेन्शेविकों को आपत्ति थी कि अस्थायी सरकार पूँजीवादी सरकार ही होगी। सामाजिक-जनवादी ऐसी सरकार में हिस्सा नहीं लेंगे वरना वह वही गलती करेंगे जो फ्रांस के समाजवादी मिलेरां ने फ्रांस की पूँजीवादी सरकार में शामिल होकर की थी। लेनिन ने इस आपत्ति का जवाब यह कहकर दिया कि मेन्शेविक यहाँ दो भिन्न चीजों को उलझा रहे हैं और यह दिखला रहे हैं कि मार्क्सवादियों की तरह वे इस सवाल पर विचार करने में असमर्थ हैं। फ्रांस में सवाल था कि क्या समाजवादी ऐसे समय में जबकि देश में कोई **क्रान्तिकारी परिस्थिति नहीं थी,** एक **प्रतिक्रियावादी** पूँजीवादी सरकार में हिस्सा लें। ऐसी हालत में, समाजवादियों के लिए यह लाजिमी था कि ऐसी सरकार में वे हिस्सा नहीं लें। दूसरी तरफ, रूस में यह सवाल था कि क्या समाजवादी ऐसे समय में जब कि क्रान्ति **पूरी उठान** पर हो, एक क्रान्तिकारी पूँजीवादी सरकार में हिस्सा लें जो **क्रान्ति की जीत** के लिए लड़ रही हो। ऐसी हालत में, सामाजिक-जनवादियों के लिए ऐसी सरकार में हिस्सा लेना उचित ही नहीं होगा बल्कि अनुकूल हालत में **लाजिमी** भी होगा, जिससे कि वह क्रान्ति-विरोध के खिलाफ न सिर्फ 'नीचे से', न सिर्फ बाहर से, बल्कि ऊपर से भी, हुकूमत के अन्दर से प्रहार कर सकें।

पूँजीवादी क्रान्ति की जीत और जनवादी गणतंत्र हासिल करने का समर्थन करते हुए, लेनिन की यह जरा भी इच्छा नहीं थी कि जनवादी मंजिल पर ही रुक जायें और पूँजीवादी-जनवादी काम पूरे करने तक क्रान्तिकारी आन्दोलन का दायरा सीमित कर दिया जाये। इसके विपरीत, लेनिन का कहना था कि जनवादी काम पूरे होने पर सर्वहारा वर्ग और दूसरे शोषित अवाम को संघर्ष शुरू करना होगा। इस बार, यह संघर्ष **समाजवादी** क्रान्ति के लिए होगा। लेनिन यह जानते थे और इसे सामाजिक-जनवादियों का कर्त्तव्य समझते थे कि वे इस बात के लिए भरसक कोशिश करें कि पूँजीवादी जनवादी क्रान्ति समाजवादी क्रान्ति की मंजिल में प्रवेश करे। लेनिन का कहना था कि सर्वहारा वर्ग और किसानों का अधिनायकत्व इसलिए जरूरी नहीं थी कि जारशाही पर क्रान्ति की विजय पूरी होते ही उसे खत्म कर दिया जाये बल्कि इसलिए कि जहाँ तक हो सके क्रान्ति की हालत को बढ़ाया जाये, क्रान्ति-विरोध के आखिरी अवशेष खत्म कर दिये जायें, क्रान्ति की लपटें यूरोप में फैलायी जायें और इसी बीच सर्वहारा वर्ग को यह मौका देकर कि वह राजनीतिक रूप से अपने को शिक्षित करे और एक बड़ी फौज में अपने को संगठित करे, समाजवादी क्रान्ति की तरफ सीधे बढ़ चलने का काम शुरू किया जाये।

पूँजीवादी क्रान्ति का दायरा क्या हो और मार्क्सवादी पार्टी उसे क्या रूप दे, इन सवालों पर रोशनी डालते हुए लेनिन ने लिखा था :

“सर्वहारा वर्ग को चाहिए कि आम किसानों का सहयोग हासिल करके जनवादी क्रान्ति को पूरा करे, जिससे कि वह निरंकुश सत्ता के विरोध को बलपूर्वक कुचल दे और पूँजीपतियों की अस्थिरता नाकाम कर दे। सर्वहारा वर्ग को चाहिए कि जनता के आम अर्द्ध-सर्वहारा लोगों का सहयोग हासिल करके समाजवादी क्रान्ति पूरी करे, जिससे कि वह पूँजीपतियों के विरोध को बलपूर्वक कुचल दे और किसानों और मध्यवित्त लोगों की अस्थिरता नाकाम कर दे। सर्वहारा वर्ग के ये काम हैं, जिन्हें **नये इस्क्रावादी** (यानी मेन्शेविक-सं.) अपनी दलीलों में और क्रान्ति के दायरे के बारे में अपने प्रस्तावों में इतनी संकीर्णता से पेश करते हैं।” (उप., पृ. 406)।

और आगे :

“पूरी आजादी के लिए, सुसंगत जनवादी क्रान्ति के लिए, जनतंत्र के लिए-तमाम जनता के सिरे पर और खास तौर से किसानों के सिरे पर! समाजवाद के लिए-तमाम मेहनतकशों और शोषितों के सिरे पर!-क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग की नीति अमल में ऐसी होनी चाहिए। यह है वर्ग-नारा जो कार्यनीति की हर समस्या का हल निश्चित करे और उस हल में मौजूद हो, जो क्रान्ति के दौर में मजदूरों की पार्टी के हर अमली कदम पर असर डाले और उसे निश्चित करे।” (उप., पृ. 415)।

कोई भी बात अस्पष्ट न रह जाये, इसलिए दो **कार्यनीतियाँ** छपने के दो महीने बाद लेनिन ने एक लेख लिखा-**“किसान आन्दोलन की तरफ सामाजिक-जनवादियों का रुख।”** इसमें उन्होंने समझाया :

“जनवादी क्रान्ति से हम तुरन्त समाजवादी क्रान्ति की मंजिल में प्रवेश करना शुरू कर देंगे। यह काम हमारी शक्ति के अनुसार, वर्ग-चेतन और संगठित सर्वहारा की शक्ति के अनुसार होगा। हम अविराम क्रान्ति के समर्थक हैं। हम बीच में नहीं रुकेंगे।” (उप., पृ. 442)।

पूँजीवादी क्रान्ति और समाजवादी क्रान्ति के सम्बन्ध के सवाल पर यह एक नई लाइन थी, सर्वहारा वर्ग के चारों तरफ शक्तियों को फिर से संगठित करने का एक नया सिद्धान्त था, जिससे कि पूँजीवादी क्रान्ति के खत्म होते-होते समाजवादी क्रान्ति की तरफ सीधे बढ़ा जाये। यह पूँजीवादी-जनवादी क्रान्ति के समाजवादी क्रान्ति की मंजिल में प्रवेश करने का सिद्धान्त था।

यह नयी लाइन निकालने में, लेनिन ने सबसे पहले मार्क्स के अविराम क्रान्ति-सम्बन्धी प्रसिद्ध सूत्र को अपना आधार बनाया। 1850 के कुछ पहले कम्युनिस्ट लीग के सामने भाषण देते हुए, मार्क्स ने यह सूत्र पेश किया था। दूसरे, मार्क्स ने 1856 में एंगेल्स को एक खत में किसानों के क्रान्तिकारी आन्दोलन को सर्वहारा क्रान्ति से मिलाने की आवश्यकता पर अपनी प्रसिद्ध स्थापना लिखी थी। लेनिन ने उसे अपना आधार बनाया। मार्क्स ने लिखा था : “जर्मनी में सारी बात इस पर निर्भर होगी कि हम किसान युद्ध के किसी दूसरे संस्करण से सर्वहारा क्रान्ति की मदद कर सकते हैं या नहीं।” फिर भी, मार्क्स के ये श्रेष्ठ विचार मार्क्स और एंगेल्स की रचनाओं में आगे चलकर विकसित नहीं किये गये थे और

दूसरे इन्टरनेशनल के सिद्धान्तकारों ने उन्हें भरसक दफना देने और हमेशा के लिए भुला देने की कोशिश की। लेनिन पर यह जिम्मेदारी पड़ी कि वह मार्क्स के इन भुलाये हुए विचारों को फिर से रोशनी मे लायें और उन्हें वाजिब जगह दिलायें। लेकिन, मार्क्स के इन विचारों को बहाल करने में, लेनिन उन्हें सिर्फ दुहराने तक अपने को सीमित न कर सकते थे, न उन्होंने किया। उन्होंने उन्हें आगे विकसित किया और समाजवादी क्रान्ति के एक सांगोपांग सिद्धान्त में उन्हें ढाला। इसके लिए उन्होंने एक नया तत्व जोड़ा, जो समाजवादी क्रान्ति का लाजिमी तत्व था। यह तत्व शहर और देहात के अर्द्ध-सर्वहारा लोगों के साथ सर्वहारा वर्ग का सहयोग था, और यह सहयोग सर्वहारा क्रान्ति की जीत की शर्त थी।

इस लाइन ने पश्चिमी यूरोप की सामाजिक-जनवादी पार्टियों की कार्यनीति की जड़ काट दी। ये पार्टियाँ मान बैठी थीं कि पूँजीवादी क्रान्ति के बाद किसान अवाम, गरीब किसानों समेत, जरूर ही क्रान्ति से भाग खड़े होंगे। इसका नतीजा यह होगा कि पूँजीवादी क्रान्ति के बाद एक लम्बा अवकाश का समय आयेगा, एक लम्बी चुप्पी का समय जो ज्यादा नहीं तो 50 या 100 साल तक चलेगा। इस बीच सर्वहारा वर्ग का 'शान्ति के साथ' शोषण होगा और पूँजीपति 'कानूनी तौर से' धनी बनते जायेंगे जब तक कि एक नयी क्रान्ति, समाजवादी क्रान्ति, का समय न आये।

यह एक नया सिद्धान्त था, जिसका दावा था कि समूचे पूँजीवादी वर्ग के खिलाफ सर्वहारा वर्ग अकेले रह कर समाजवादी क्रान्ति न करेगा। सर्वहारा वर्ग प्रमुख वर्ग के रूप में, जिसके सहयोगी जनता के अर्द्ध-सर्वहारा लोग, "करोड़ों शोषित और मेहनतकश" होंगे, समाजवादी क्रान्ति पूरी करेगा।

इस सिद्धान्त के अनुसार, पूँजीवादी क्रान्ति में कायम होने वाला सर्वहारा वर्ग का एकछत्र नेतृत्व-जब सर्वहारा वर्ग और किसानों का **परस्पर सहयोग** होगा-समाजवादी क्रान्ति में सर्वहारा वर्ग का एकछत्र नेतृत्व बन जायेगा, जबकि सर्वहारा वर्ग का सहयोग दूसरे मेहनतकश और शोषित अवाम के साथ होगा। साथ ही, सर्वहारा और किसानों का जनवादी अधिनायकत्व सर्वहारा वर्ग के समाजवादी अधिनायकत्व के लिए जमीन तैयार करेगी।

पश्चिमी यूरोप के सामाजिक-जनवादी शहर और देहात के अर्द्ध-सर्वहारा अवाम की छिपी हुई क्रान्तिकारी शक्ति अस्वीकार करते थे। वे यह मान बैठे थे कि "पूँजीपतियों और सर्वहारा से अलग, हमें अपने देश में ऐसी सामाजिक ताकतें नहीं दिखाई पड़तीं जिनसे विरोधी या क्रान्तिकारी दल मदद ले सकें" (ये प्लेखानोव के शब्द थे, जो पश्चिमी यूरोप के सामाजिक-जनवादियों के मनोभाव प्रकट करते थे)। लेनिन के सिद्धान्त ने पश्चिमी यूरोप के सामाजिक-जनवादियों में प्रचलित इन विचारों का खण्डन किया।

पश्चिमी यूरोप के सामाजिक-जनवादियों का कहना था कि समाजवादी क्रान्ति में **तमाम** पूँजीपतियों के खिलाफ सर्वहारा वर्ग **अकेला होगा**। उसके कोई सहयोगी न होंगे और वह **सभी** गैर-सर्वहारा वर्गों और स्तरों के खिलाफ होगा। वह इस बात पर ध्यान न देते थे कि पूँजी सर्वहारा का ही शोषण नहीं करती बल्कि शहर और देहात के करोड़ों अर्द्ध-सर्वहारा का भी शोषण करती है। पूँजीवाद इनको कुचलता है और वे पूँजीवादी गुलामी से समाज को मुक्त करने के संघर्ष में सर्वहारा वर्ग के सहयोगी हो सकते हैं। इसलिए,

पश्चिमी यूरोप के सामाजिक-जनवादियों का कहना था कि यूरोप में समाजवादी क्रान्ति के लिए हालत अभी तैयार नहीं है। हालत तभी तैयार समझी जायेगी जबकि सर्वहारा वर्ग समाज के और भी आर्थिक विकास के फलस्वरूप राष्ट्र का बहुसंख्यक हिस्सा, समाज का बहुसंख्यक हिस्सा, बन जाये।

समाजवादी क्रान्ति के बारे में, लेनिन के सिद्धान्त ने पश्चिमी यूरोप के सामाजिक-जनवादियों के इस सर्वहारा विरोधी झूठे मत को एकदम उलट दिया।

लेनिन के सिद्धान्त में अभी इस बारे में कोई प्रत्यक्ष परिणाम न निकाला गया था कि अकेले किसी एक देश में समाजवाद की जीत हो सकती है। लेकिन, उसमें सभी या लगभग सभी आवश्यक बुनियादी तत्व मौजूद थे, जिनसे आगे-पीछे यह नतीजा निकाला जा सकता था।

जैसा कि हमें मालूम है, दस साल बाद 1915 में, लेनिन ने यह परिणाम निकाला।

अपनी ऐतिहासिक कृति **जनवादी क्रान्ति में सामाजिक-जनवाद की दो कार्यनीतियाँ** में लेनिन ने कार्यनीति के जिन बुनियादी उसूलों का प्रतिपादन किया, वे इस प्रकार हैंः

इस पुस्तक का ऐतिहासिक महत्त्व सबसे ज्यादा इस बात में है कि लेनिन ने सैद्धान्तिक रूप से मेन्शेविकों की निम्न-पूँजीवादी कार्यनीति की लाइन को चूर कर दिया। उन्होंने पूँजीवादी-जनवादी क्रान्ति की अगली प्रगति के लिए रूस के मजदूर वर्ग को सैद्धान्तिक रूप से सशस्त्र कर दिया, जारशाही पर नये हमले के लिए उसे लैस कर दिया। उन्होंने रूसी सामाजिक-जनवादियों को एक साफ रास्ता दिखाया कि पूँजीवादी क्रान्ति का समाजवादी क्रान्ति की मंजिल में प्रवेश करना जरूरी है।

लेकिन, इससे लेनिन की पुस्तक का महत्त्व खत्म नहीं होता। उसका अमूल्य महत्त्व इस बात में है कि उसने मार्क्सवाद को क्रान्ति के एक नये सिद्धान्त से समृद्ध किया। उसने बोल्शेविक पार्टी की क्रान्तिकारी कार्यनीति की नींव डाली, जिसकी मदद से 1917 में हमारे देश के सर्वहारा वर्ग ने पूँजीवाद पर विजय प्राप्त की।

4. क्रान्ति की उठान में प्रगति। अक्टूबर 1905 की अखिल रूसी राजनीतिक हड़ताल। जारशाही का पीछे हटना। जार का घोषणापत्र। मजदूर प्रतिनधियों की सोवियतों का जन्म।

1905 की शरद तक, क्रान्तिकारी आन्दोलन सारे देश में फैल गया था और अब उसका वेग बहुत ही प्रखर हो गया था।

19 सितम्बर को, मास्को में प्रेस-कर्मचारियों की एक हड़ताल हुई। वह सेण्ट पीटर्सबर्ग और दूसरे कई शहरों में फैल गयी। खुद मास्को में दूसरे उद्योग-धन्धों के मजदूरों ने प्रेस-कर्मचारियों की हड़ताल का समर्थन किया और वह बढ़ कर एक आम राजनीतिक हड़ताल बन गयी।

अक्टूबर के आरम्भ में, मास्को-कजान रेलवे में हड़ताल शुरू हुई। दो दिनों में ही, मास्को रेलवे जंक्शन के सभी रेल कर्मचारी उसमें शामिल हो गये और बहुत जल्द ही सारे देश की रेलें हड़ताल की गिरफ्त में आ गयीं। डाक और तार का काम ठप्प हो गया। रूस

के विभिन्न शहरों में मजदूर बड़ी-बड़ी सभाओं में इकट्ठे हुए और उन्होंने काम बन्द करने का फैसला किया। एक कारखाने से दूसरे कारखाने तक, एक मिल से दूसरी मिल तक, एक शहर से दूसरे शहर तक और एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश तक हड़ताल फैलती गयी। छोटे कर्मचारी, विद्यार्थी और बुद्धिजीवी-वकील, इंजीनियर और डाक्टर मजदूरों के साथ शामिल हो गये।

अक्टूबर की राजनीतिक हड़ताल अखिल रूसी हड़ताल बन गयी। लगभग पूरा देश उसकी लपेट में आ गया। दूर-दूर के जिले और करीब-करीब सभी मजदूर, जिनमें सबसे पिछड़े हुए मजदूर भी थे, हड़ताल में शामिल हुए। अकेले दस लाख औद्योगिक मजदूरों ने आम हड़ताल में हिस्सा लिया। इनमें रेल-कर्मचारियों, डाक और तार-कर्मचारियों वगैरह की गिनती नहीं है। सारे देश का जीवन ठप हो गया। सरकार पंगु बन गयी।

निरंकुश सत्ता के खिलाफ, आम जनता के संघर्ष के सिरे पर मजदूर वर्ग था।

बोल्शेविकों ने जो आम राजनीतिक हड़ताल का नारा दिया था, वह सफल हुआ।

अक्टूबर की आम हड़ताल ने सर्वहारा आन्दोलन की ताकत और उसके कस-बल का पता दिया। उसने बेहद डरे हुए जार को मजबूर किया कि वह 17 अक्टूबर, 1905 को अपना घोषणापत्र निकाले। इस घोषणापत्र में वादा किया गया था कि जनता को "नागरिक स्वाधीनता के दृढ़ आधार मिलेंगे : व्यक्ति की वास्तविक स्वाधीनता, और विचार, भाषण, सभा और संगठन की स्वाधीनता।" उसमें वादा किया गया था कि वैधानिक दूमा बुलायी जायेगी और जनता के सभी वर्गों को वोट देने का हक मिलेगा।

इस तरह से बुलिगिन-दूमा, जिसे सिर्फ विचार करने का अधिकार था, क्रान्ति के ज्वार में बह गयी। बुलिगिन-दूमा का बायकाट करने की बोल्शेविक कार्यनीति सही साबित हुई।

फिर भी, 17 अक्टूबर का घोषणापत्र जनता के साथ एक फरेब था। जार का यह एक पैंतरा था, जिससे उसे कुछ मोहलत मिल जाये। वह चाहता था कि इस मोहलत में वह सीधे-सादे लोगों को चुप कर दे और अपनी ताकत बटोरने के लिए उसे वक्त मिले और उसके बाद, वह क्रान्ति पर हमला करे। जार सरकार ने शब्दों में स्वाधीनता देने का वादा किया, लेकिन अमल में उसने कोई ठोस चीज न दी। अभी तक मजदूरों और किसानों को वादे ही वादे मिले थे। आम राजनीतिक रिहाई के बदले, जिसका वादा किया गया था, 21 अक्टूबर को राजनीतिक बन्दियों में से सिर्फ थोड़े लोग छोड़े गये। इसके साथ ही, जनता की ताकतों में फूट डालने के विचार से हुकूमत ने यहूदियों के कई खूनी कत्लेआम कराये। इनमें कई हजार आदमी मारे गये। क्रान्ति को कुचलने के लिए, उसने पुलिस की देखरेख में कई गुण्डा-संगठन बनवाये जिनका नाम रूसी जनसंघ और देवदूत-माइकेल संघ था। इन संगठनों में प्रतिक्रियावादी जमीन्दार, सौदागर, पुरोहित और आवारा किस्म के अर्द्ध-जरायम पेशा लोग मुख्य भाग लेते थे। लोगों ने इनका नाम 'यमदूत सभा' ('ब्लैक हण्ड्रेड') रखा था। पुलिस की मदद से, ये 'यमदूत सभाएँ' आगे बढ़े हुए मजदूरों को खुलेआम पीटतीं और उनकी हत्या करती थीं। उनका यही सलूक क्रान्तिकारी बुद्धिजीवियों और विद्यार्थियों के साथ होता था। वे सभा-स्थलों को जला देतीं और नागरिकों की सभाओं पर गोलियाँ चलाती थीं। जार के घोषणापत्र के अभी तक यही नतीजे निकले थे :

उस समय एक लोकप्रिय गीत रचा गया था :

"बदहवास होकर, यों बोल उठा जार :
मुर्दों को आजादी और जिन्दा गिरफ्तार!"

बोल्शेविकों ने जनता को समझाया कि 17 अक्टूबर का घोषणापत्र एक जाल था। उन्होंने हुकूमत के व्यवहार को, जो उसने घोषणापत्र निकालने के बाद किया था, उकसावा पैदा करने वाला बतलाया। बोल्शेविकों ने मजदूरों का आह्वान किया-हथियार उठाओ, सशस्त्र विद्रोह की तैयारी करो!

मजदूर पहले से भी ज्यादा मुस्तैदी से लड़ाकू जत्थे बनाने लगे। वह अच्छी तरह समझ गये कि 17 अक्टूबर को आम राजनीतिक हड़ताल करके उन्होंने जो आजादी हासिल की थी, उसके लिए और कोशिश करना जरूरी है। जारशाही का खात्मा करने के लिए संघर्ष जारी रखना जरूरी है।

लेनिन का विचार था कि 17 अक्टूबर का घोषणापत्र एक हद तक शक्तियों का अस्थायी सन्तुलन जाहिर करता है। सर्वहारा वर्ग और किसानों ने जार को घोषणापत्र निकालने पर मजबूर किया था, लेकिन वे **अभी इतने मजबूत न थे** कि जारशाही का तख्ता उलट दें। उधर, जारशाही अब पुराने तरीकों से ही **और ज्यादा दिन हुकूमत नहीं कर सकती थी।** उसे मजबूर होकर 'नागरिक स्वाधीनता' और 'कानून बनाने वाली' दूमा का कागजी वादा करना पड़ा था।

अक्टूबर की राजनीतिक हड़ताल के तूफानी दिनों में, जारशाही के खिलाफ संघर्ष की आग में मजदूर जनता की क्रान्तिकारी रचनात्मक पहलकदमी ने एक नया और शक्तिशाली हथियार गढ़ा। यह हथियार था-मजदूर प्रतिनिधियों की सोवियतें।

मजदूर प्रतिनिधियों की सोवियतें सभी मिलों और कारखानों के प्रतिनिधियों की सभाएँ थीं। यह मजदूर वर्ग का ऐसा आम राजनीतिक संगठन था जैसाकि दुनिया में पहले कभी न देखा गया था। 1905 में, ये सोवियतें सबसे पहले बनीं। इनका रूप उस सोवियत सत्ता से काफी मिलता-जुलता था जिसे बोल्शेविक पार्टी के नेतृत्व में सर्वहारा वर्ग ने 1917 में कायम किया। ये सोवियतें जनता की रचनात्मक पहलकदमी का एक नया क्रान्तिकारी रूप थीं। उन्हें जनता के सिर्फ क्रान्तिकारी हिस्सों ने कायम किया था। जारशाही के खिलाफ जो जनता लड़ने के लिए उठ रही थी, उसकी स्वतंत्र कार्रवाई का वे सबूत थीं।

बोल्शेविक सोवियतों को क्रान्तिकारी सत्ता का बीज रूप समझते थे।

उनका कहना था कि सोवियतों की ताकत और उनका महत्त्व विद्रोह की शक्ति और सफलता पर ही निर्भर करेगा।

मेन्शेविक सोवियतों को न तो क्रान्तिकारी सत्ता की संस्थाओं का बीज रूप मानते थे, न उन्हें विद्रोह की संस्थाएँ मानते थे। वे सोवियतों को स्थानीय खुदमुख्तार हुकूमत की संस्था मानते थे, जो म्युनिसिपल शासन की जनतांत्रिक संस्थाओं जैसी थी।

सेण्ट पीटर्सबर्ग की सभी मिलों और कारखानों में 13 (नई शैली, 26) अक्टूबर, 1905 को मजदूर प्रतिनिधियों की सोवियत के चुनाव हुए। सोवियत का पहला अधिवेशन उसी

दिन रात को हुआ। मजदूर प्रतिनिधियों की सोवियत बनाने में मास्को ने सेण्ट पीटर्सबर्ग का अनुसरण किया।

सेण्ट पीटर्सबर्ग रूस का सबसे महत्त्वपूर्ण औद्योगिक और क्रान्तिकारी केन्द्र था। वह जारशाही रूस की राजधानी था। इसलिए, वहाँ पर मजदूर प्रतिनिधियों की सोवियत को 1905 की क्रान्ति में एक निर्णायक भूमिका अदा करनी चाहिए थी। लेकिन बुरे मेन्शेविक नेतृत्व की वजह से, उसने यह काम पूरा नहीं किया। जैसा कि हमें मालूम है, लेनिन उस समय तक सेण्ट पीटर्सबर्ग में नहीं आये थे। वे अभी विदेश में थे। मेन्शेविकों ने लेनिन की गैर-हाजिरी का फायदा उठाया और वे सेण्ट पीटर्सबर्ग-सोवियत में घुस आये और उसके नेतृत्व पर उन्होंने कब्जा कर लिया। ऐसी हालत में, कोई ताज्जुब नहीं जो मेन्शेविक ख्रुस्तालेव, त्रात्स्की, पारबुस और दूसरों ने सेण्ट पीटर्सबर्ग-सोवियत को विद्रोह की नीति के खिलाफ मोड़ दिया। बजाय इसके कि वे सिपाहियों को सोवियत के नजदीकी सम्पर्क में लायें और सामान्य लड़ाई से उनका सम्बन्ध जोड़ें, उन्होंने माँग की कि सिपाही सेण्ट पीटर्सबर्ग से हटाये जायें। मजदूरों को हथियारबन्द करने और विद्रोह के लिए तैयार करने के बदले, सोवियत सिर्फ टाल-मटोल करती रही। वह विद्रोह की तैयारी के खिलाफ थी।

मजदूर प्रतिनिधियों की मास्को-सोवियत ने जो भूमिका निभायी, वह इससे बिल्कुल भिन्न थी। शुरू से ही, मास्को-सोवियत ने भरपूर क्रान्तिकारी नीति का पालन किया। मास्को-सोवियत का नेतृत्व बोल्शेविकों के हाथ में था। उन्हीं की वजह से, मजदूर प्रतिनिधियों की सोवियत के साथ-साथ मास्को में सैनिक प्रतिनिधियों की सोवियत का भी जन्म हुआ। मास्को-सोवियत सशस्त्र विद्रोह की संस्था बन गयी।

अक्टूबर से दिसम्बर 1905 तक के दिनों में, कई बड़े शहरों में और करीब-करीब सभी मजदूर केन्द्रों में मजदूर प्रतिनिधियों की सोवियतें कायम की गयीं। कोशिश की गयी कि सैनिकों और जहाजियों की सोवियतें भी संगठित की जायें और मजदूर प्रतिनिधियों की सोवियतों से उनका एका कायम किया जाये। कई जगह मजदूरों और किसानों के प्रतिनिधियों की सोवियतें बनायी गयीं।

सोवियतों का बेहर असर पड़ा। अकसर वे अपने-आप उठ खड़ी होती थीं, उनका ढाँचा निश्चित नहीं था और संगठन ढीला होता था, फिर भी उन्होंने शासन-सत्ता की तरह काम किया। बिना कानूनी अधिकार के, उन्होंने प्रेस की स्वाधीनता और 8 घण्टों का दिन चालू कर दिया। उन्होंने जनता का आह्वान किया कि जार सरकार को टैक्स न दें। कई जगह उन्होंने सरकारी धन जब्त कर लिया और क्रान्ति की आवश्यकताओं के लिए उसे इस्तेमाल किया।

5. दिसम्बर का सशस्त्र विद्रोह। विद्रोह की पराजय। क्रान्ति का पीछे हटना। पहली राज्य दूमा। चौथी (एकता) पार्टी कांग्रेस।

अक्टूबर और नवम्बर 1905 में, आम जनता का क्रान्तिकारी संघर्ष खूब जोर-शोर से

बढ़ता गया। मजदूरों की हड़तालें जारी रहीं।

जमीन्दारों के खिलाफ किसानों के संघर्ष ने 1905 की शरद में विशाल रूप धाारण किया। देश के एक-तिहाई से ऊपर जिले किसान आन्दोलन की लपेट में आ गये। सरातोव, ताम्बोव, चार्निगोव, तिफलिस, कुताइस और दूसरे कई सूबे सचमुच किसान विद्रोह के रंगस्थल बन गये। फिर भी, किसान जनता का हमला नाकाफी था। किसान आन्दोलन में संगठन और नेतृत्व की कमी थी।

कई शहरों के सैनिकों में-तिफलिस, व्लादिवस्तोक, ताशकन्द, समरकन्द, कुर्स्क, सुखुन, वारसा, कीव और रीगा में-बेचैनी बढ़ी। क्रोन्स्तात और सेवास्तोपोल में काले समुद्री बेड़े के जहाजियों में विद्रोह फूट पड़े (नवम्बर 1905)। लेकिन, ये विद्रोह अलग-थलग थे और जार सरकार उन्हें दबाने में सफल हुई।

फौज और जलसेना के दस्तों में अकसर विद्रोह इस वजह से हो जाते थे कि अफसरों का व्यवहार जंगली होता था, खाना बहुत ही खराब मिलता था ("साग-सब्जी के विद्रोह") और ऐसी ही दूसरी बातें होती थीं। जो जहाजी और सैनिक विद्रोह करते थे, वे अभी साफ-साफ यह महसूस न करते थे कि जार सरकार का तख्ता उलटना जरूरी है, कि हथियारबन्द लड़ाई को जोरदार तरीके से आगे चलाना है। वे अब भी बहुत ही शान्तिपूर्ण और आत्मसन्तुष्ट थे। विद्रोह के शुरू में जिन अफसरों को वे पकड़ लेते थे, वे उन्हें छोड़ देने की गलती अकसर करते थे। ऊपर वालों के वादों की मीठी बोली से वे अपना दिल पिघल जाने देते थे।

क्रान्तिकारी आन्दोलन हथियारबन्द बगावत की सीमा तक आ पहुँचा था। बोल्शेविकों ने आम जनता का आह्वान किया-जार और जमीन्दारों के खिलाफ हथियार लेकर उठ खड़े हो! उन्होंने समझाया कि यह सब होकर रहेगा। बोल्शेविकों ने सशस्त्र विद्रोह की तैयारी के लिए अथक रूप से काम किया। सैनिकों और जहाजियों में क्रान्तिकारी काम किया और फौज में पार्टी के सैनिक संगठन कायम किये गये। कई शहरों में मजदूरों के लड़ाकू जत्थे बनाये गये और उनके सदस्यों को हथियारों का इस्तेमाल करना सिखाया गया। विदेश में हथियार खरीदने और गुप्त रूप से उन्हें रूस भेजने का प्रबन्ध किया गया। उन्हें लाने का इन्तजाम करने में पार्टी के प्रमुख सदस्यों ने हिस्सा लिया।

नवम्बर 1905 में, लेनिन रूस लौट आये। जार की सशस्त्र पुलिस और जासूसों से बचते हुए, लेनिन ने सशस्त्र विद्रोह की तैयारी में खुद हिस्सा लिया। बोल्शेविक अखबार **नोवाया जीज्न (नवजीवन)** में उनके लेखों ने पार्टी को रोज-बरोज के काम में रास्ता दिखाया।

इन्हीं दिनों, कामरेड स्तालिन ट्रांस-काकेशिया में भारी क्रान्तिकारी काम कर रहे थे। उन्होंने मेन्शेविकों को क्रान्ति और सशस्त्र विद्रोह का दुश्मन बताते हुए, उनका पर्दाफाश किया और उनकी अच्छी तरह मरम्मत की। निरंकुश सत्ता के खिलाफ फैसले की लड़ाई के लिए उन्होंने मजदूरों को दृढ़ता से तैयार किया। जिस दिन जार का घोषणापत्र निकला था, उसी दिन तिफलिस के मजदूरों की एक सभा में भाषण देते हुए, स्तालिन ने कहा था :

"दरअसल जीतने के लिए हमें क्या चाहिए? हमें तीन चीजें चाहिए : पहले-हथियार,

दूसरे-हथियार, तीसरे-हथियार, और फिर हथियार!"

दिसम्बर 1905 में, फिनलैण्ड के तामरफोर्स नगर में एक बोल्शेविक कान्फ्रेंस हुई। हालाँकि बोल्शेविक और मेन्शेविक नियमानुसार एक ही सामाजिक-जनवादी पार्टी में थे, लेकिन वास्तव में वे दो अलग पार्टियाँ थे जिनमें से हरेक का अपना नेतृत्व-केन्द्र था। इस कान्फ्रेंस में लेनिन और स्तालिन पहली बार मिले। तब तक उन्होंने आपसी सम्पर्क पत्र-व्यवहार और साथियों के जरिये कायम रखा था।

तामरफोर्स कान्फ्रेंस के फैसलों में दो ध्यान देने योग्य हैं। पहला पार्टी की एकता कायम करने के बारे में था; पार्टी वास्तव में टूट कर दो पार्टियाँ बन गयी थीं। दूसरा, पहली दूमा के बायकाट के बारे में था, जिसे वित्ते दूमा कहते थे।

उस समय तक मास्को में सशस्त्र विद्रोह शुरू हो चुका था, इसलिए लेनिन की सलाह पर, कान्फ्रेंस ने अपना काम जल्दी समाप्त किया और सभी चल दिये, जिससे कि प्रतिनिधि विद्रोह में व्यक्तिगत रूप से हिस्सा ले सकें।

लेकिन, जार सरकार भी ऊँघ न रही थी। वह भी फैसले की लड़ाई के लिए तैयारी कर रही थी। जापान से सुलह करने के बाद, और इस तरह अपनी कठिनाइयाँ कम करने के बाद, जार सरकार ने मजदूरों और किसानों के खिलाफ हमला शुरू किया। उसने कई सूबों में, जहाँ किसान विद्रोह तेजी पर थे, फौजी कानून जारी कर दिया। उसने सिपाहियों को यह क्रूर आज्ञा दी : "गिरफ्तार मत करो" और "कारतूस खर्च करने में न हिचको।" उसने क्रान्तिकारी आन्दोलन के नेताओं को पकड़ने और मजदूर प्रतिनिधियों की सोवियतों को भंग कर देने की आज्ञा दी।

इसके जवाब में, मास्को के बोल्शेविकों ने और उनके नेतृत्व में चलने वाली मजदूर प्रतिनिधियों की मास्को-सोवियत ने, जिनका आम मजदूरों से सम्बन्ध था, फैसला किया कि सशस्त्र विद्रोह के लिए तुरन्त तैयारी की जाये। 5 (18) दिसम्बर को, मास्को की बोल्शेविक कमेटी ने फैसला किया कि आम राजनीतिक हड़ताल करने के लिए सोवियत का आह्वान करे। उद्देश्य यह था कि संघर्ष के दौरान उसे विद्रोह का रूप दे दिया जाये। आम मजदूरों की सभाओं में इस फैसले का समर्थन किया गया। मास्को-सोवियत ने मजदूर वर्ग की इच्छा को स्वीकार किया और एकमत होकर आम राजनीतिक हड़ताल शुरू करने का फैसला किया।

मास्कों के सर्वहारा वर्ग ने जब विद्रोह शुरू किया तब करीब एक हजार योद्धाओं का उसका लड़ाकू संगठन था, जिनमें से आधे से ज्यादा बोल्शेविक थे। इसके सिवा, मास्को के कई कारखानों में कई लड़ाकू जत्थे थे। कुल मिला कर, विद्रोहियों की शक्ति दो हजार योद्धाओं की थी। मजदूरों को उम्मीद थी कि वे छावनी के सिपाहियों को तटस्थ कर देंगे और उनमें से एक हिस्सा अपनी तरफ कर लेंगे।

7 (20) दिसम्बर को, मास्को में राजनीतिक हड़ताल शुरू हुई। फिर भी, उसे सारे देश में फैलाने की कोशिशें नाकाम हुई। सेण्ट पीटर्सबर्ग में उसे नाकाफी समर्थन मिला और इससे आरम्भ से ही विद्रोह की सफलता की सम्भावनाएँ कम हो गयीं। निकोलायेव्स्काया (अब, अक्टूबर) रेलवे जार सरकार के हाथ में रही। इस लाइन पर आमदरफ्त बन्द न हुई,

जिससे हुकूमत विद्रोह को दबाने के लिए सेण्ट पीटर्सबर्ग से गार्ड फौजें मास्को ले आयी।

खुद मास्को में छावनी के सिपाही आगा-पीछा करते रहे। मजदूरों ने जब विद्रोह शुरू किया था तब उन्हें आंशिक रूप से उम्मीद थी कि छावनी से मदद मिलेगी। लेकिन, क्रान्तिकारियों ने बहुत देर कर दी थी और हुकूमत छावनी के असन्तोष की रोकथाम कर सकी।

9 (22) दिसम्बर को, मास्को की सड़कों पर पहली मोर्चाबन्दी हुई। जल्दी ही शहर की सड़कें बैरीकेडों से भर गयीं। जार सरकार मैदान में तोपें ले आयी। विद्रोहियों की जितनी ताकत थी, उससे कई गुनी ज्यादा ताकत उसने जुटायी। नौ दिनों तक लगातार कई हजार हथियारबन्द मजदूर वीरता से लड़ते रहे। सेण्ट पीटर्सबर्ग, त्वेर और पश्चिमी प्रदेश से फौजें लाकर ही, जार सरकार विद्रोह दबा सकी। लड़ाई शुरू होने से पहले ही, विद्रोह के कुछ नेता तो पकड़ लिये गये और कुछ अकेले पड़ गये। मास्को की बोल्शेविक कमेटी के सदस्य गिरफ्तार कर लिये गये। हथियारबन्द कार्रवाई ने अलग-अलग जिलों में एक-दूसरे से अलग विद्रोहों का रूप धारण कर लिया। संचालन केन्द्र न होने पर और समूचे नगर के लिए सामान्य योजना के अभाव में, जिलों ने अपना काम मुख्यतः रक्षा करने तक सीमित कर लिया। मास्को विद्रोह की कमजोरी का यह मुख्य कारण था, और जैसा कि लेनिन ने बाद में बताया था, उसकी हार का एक कारण था।

मास्को के क्रासनाया-प्रेस्न्या जिले में विद्रोह ने खास तौर से कट्टर और घनघोर संघर्ष का रूप ले लिया। यह विद्रोह का मुख्य गढ़ और केन्द्र था। यहाँ पर सबसे अच्छे लड़ाकू जत्थे बोल्शेविकों के नेतृत्व में थे। लेकिन, क्रासनाया-प्रेस्न्या को संगीनों और गोलियों के बल से ही दबाया जा सका। वह खून में तर कर दिया गया और तोपों के गोलों की आग से जल उठा। मास्को विद्रोह कुचल दिया गया।

विद्रोह मास्को तक ही सीमित नहीं था। कई और शहरों और जिलों में क्रान्तिकारी विद्रोह फूट पड़े। क्रासनोयार्स्क, मोतोविलीखा (पर्म), नोवोरोसिस्क, सामोर्मोवो, सेवास्तोपोल और क्रोन्स्तात में भी सशस्त्र विद्रोह हुए।

रूस की उत्पीड़ित राष्ट्रीयताएँ भी हथियारबन्द लड़ाई करने के लिए उठ खड़ी हुईं। लगभग समूचे जार्जिया ने हथियार उठा लिये। उक्रेन में दोन्येत्स प्रदेश के गोर्लोव्का, अलेक्सान्द्रोव्स्क और लुगान्स्क (अब वोरोशिलोवग्राद) नाम के शहरों में भारी विद्रोह हुआ। लातविया में जम कर लड़ाई हुई। फिनलैण्ड में मजदूरों ने अपना रेड गार्ड बनाया और विद्रोह में उठ खड़े हुए।

लेकिन मास्को विद्रोह की तरह, इन सभी विद्रोहों को सत्ता ने निरंकुश पाशविक बर्बरता के साथ कुचल दिया।

दिसम्बर के सशस्त्र विद्रोह का मूल्यांकन मेन्शेविकों और बोल्शेविकों ने अलग-अलग तरीकों से किया।

विद्रोह के बाद, मेन्शेविक प्लेखानोव ने पार्टी को यह कह कर फटकारा : "तुम्हें हथियार उठाने ही नहीं चाहिए थे।" मेन्शेविकों की दलील थी कि विद्रोह अनावश्यक और हानिकारक है। क्रान्ति में उसके बिना काम चल सकता है। सफलता हथियारबन्द विद्रोह

से नहीं, बल्कि संघर्ष के शान्तिपूर्ण तरीकों से मिलेगी।

बोल्शेविकों ने इस दृष्टिकोण की निन्दा करते हुए कहा कि यह गद्दारी है। उनका कहना था कि मास्को के सशस्त्र विद्रोह के अनुभव ने यही बात पक्की कर दी है कि मजदूर वर्ग सफलतापूर्वक हथियारबन्द लड़ाई लड़ सकता है। प्लेखानोव की फटकार-"तुम्हें हथियार उठाने ही नहीं चाहिए थे"-के जवाब में, लेनिन ने कहा :

> "इसके विपरीत, हमें और दृढ़ता से, शक्ति से और हमलावर तरीके से हथियार उठाने चाहिए थे। हमें आम जनता को समझाना चाहिए था कि अपने को शान्तिपूर्ण हड़ताल तक सीमित रखना असम्भव है, और निडर होकर और जम कर हथियारबन्द लड़ाई चलाना अनिवार्य है।" (लेनिन, **संक्षिप्त ग्रंथावली**, अं. सं., मास्को, 1947, खण्ड 1, पृष्ठ 446)।

दिसम्बर 1905 के विद्रोह में क्रान्ति अपने चरम उत्कर्ष तक पहुँच गयी। निरंकुश जारशाही ने विद्रोह को हरा दिया। उसके बाद, क्रान्ति ने पल्टा खाया और पीछे हटने लगी। क्रान्ति का ज्वार धीरे-धीरे शान्त हो गया।

जार सरकार ने इस हार से तुरन्त ही फायदा उठा कर क्रान्ति पर आखिरी हमला करने का विचार किया। जार के जेलर और जल्लाद अपने खूनी काम में लग गये। पोलैण्ड, लातविया, एस्तोनिया, ट्रांस-काकेशिया और साइबेरिया में दण्ड देने वाले दस्ते धमाचौकड़ी मचाने लगे।

लेकिन, क्रान्ति अभी कुचली नहीं गयी थी। मजदूर और क्रान्तिकारी किसान लड़ते हुए धीरे-धीरे पीछे हटे। मजदूरों के नये हिस्से लड़ाई में शामिल हुए। दस लाख से ऊपर मजदूरों ने 1906 की हड़तालों में हिस्सा लिया और सात लाख चालीस हजार ने 1907 की हडतालों में। किसान आन्दोलन 1906 के पूर्वार्द्ध में जारशाही रूस के लगभग आधे उयेज्दों में फैल गया और 1906 के उत्तरार्द्ध में 1/5 जिलों में चलता रहा। फौज और जल सेना में असन्तोष जारी रहा।

जार सरकार ने क्रान्ति की रोकथाम करने में अपने को दमन तक ही सीमित नहीं रखा। दमन में प्रारम्भिक सफलता पाने के बाद नयी दूमा, "कानून बनाने वाली" दूमा, बुला कर उसने क्रान्ति पर नया प्रहार करने का फैसला किया। उसे उम्मीद थी कि इस तरह किसान क्रान्ति से अलग हो जायेंगे और क्रान्ति खत्म हो जायेगी। दिसम्बर 1905 में, जार सरकार ने एक कानून बनाया जिसके अनुसार एक नयी "कानून बनाने वाली" दूमा बुलायी जा सकती थी। यह दूमा पुरानी "विचार करने वाली" बुलिगिन दूमा से भिन्न थी, जिसे बोल्शेविक बायकाट ने रास्ते से हटा दिया था। जार का चुनाव कानून जनतंत्र विरोधी तो था ही। चुनाव सार्वजनिक न थे। आधी आबादी से ज्यादा लोग-मिसाल के लिए स्त्रियाँ और बीस लाख मजदूर-वोट देने का हक पा ही नहीं सके थे। चुनावों में समानता का अधिकार नहीं था। मतदाता चार विभागों-या जैसा कि उनका नाम था, क्यूरियों-में बँटे हुए थे : ग्रामीण (जमीन्दार), शहरी (पूँजीपति), किसान और मजदूर क्यूरियां। चुनाव सीधे नहीं, बल्कि कई मंजिलों में होते थे। वास्तव में, गुप्त मतदान था ही नहीं। चुनाव कानून से दूमा में करोड़ों मजदूरों और किसानों पर मुट्ठीभर जमीन्दारों और पूँजीपतियों का जबर्दस्त

बहुमत पक्का हो जाता था।

जार ने सोचा कि आम जनता को क्रान्ति से हटाने के लिए दूमा का इस्तेमाल किया जाये। उन दिनों बहुत काफी किसानों को विश्वास था कि दूमा के जरिये जमीन मिल सकती है। संवैधानिक जनवादी, मेन्शेविक और समाजवादी-क्रान्तिकारी मजदूरों और किसानों को यह कह कर धोखा देते थे कि जनता को जिस व्यवस्था की जरूरत है, वह बिना विद्रोह के, बिना क्रान्ति के मिल सकती है। जनता के साथ इस फरेब का मुकाबला करने के लिए, बोल्शेविकों ने पहली राज्य दूमा के बायकाट की कार्यनीति का ऐलान किया और उसका पालन किया। तामरफोर्स कान्फ्रेंस ने जो फैसला किया था, यह उसके अनुकूल था।

जारशाही के खिलाफ लड़ाई में, मजदूरों ने पार्टी की शक्तियों की एकता की मांग की, सर्वहारा वर्ग की पार्टी की एकता की माँग की। तामरफोर्स कान्फ्रेंस के एकता-सम्बन्धी फैसले से सज्जित होकर, बोल्शेविकों ने मजदूरों की इस माँग का समर्थन किया और मेन्शेविकों के सामने यह प्रस्ताव रखा कि पार्टी की एकता कांग्रेस बुलाई जाये। मजदूरों के दबाव की वजह से, मेन्शेविकों को एकता के लिए राजी होना पड़ा।

लेनिन एकता के पक्ष में थे, लेकिन सिर्फ ऐसी एकता के पक्ष में, जो क्रान्ति की समस्याओं पर जो मतभेद थे उन पर पर्दा नहीं डाले। समझौतावादियों (बोग्दानोव, क्रासिन वगैरह) ने पार्टी का काफी नुकसान किया। वे यह साबित करना चाहते थे कि बोल्शेविकों और मेन्शेविकों में कोई गम्भीर मतभेद नहीं था। लेनिन ने समझौतावादियों से संघर्ष किया और इस बात पर जोर दिया कि कांग्रेस में बोल्शेविक अपनी अलग नीति लेकर आयें, जिससे कि मजदूर साफ-साफ देख सकें कि बोल्शेविक क्या कहते हैं और किस आधार पर एकता कायम की जा रही है। बोल्शेविकों ने कांग्रेस के लिए अपनी नीति तय की और पार्टी सदस्यों के सामने उसे बहस के लिए रखा।

रू.सा.ज.म.पा. की चौथी कांग्रेस, जिसका नाम एकता कांग्रेस था, अप्रैल 1906 में स्टॉकहोम (स्वीडेन) में हुई। इसमें पार्टी के 57 स्थानीय संगठनों की तरफ से 111 प्रतिनिधि आये, जिन्हें वोट देने का हक था। इनके अलावा, कौमी सामाजिक-जनवादी पार्टियों के प्रतिनिधि थे : 3 बुन्द से, 3 पोलैण्ड की सामाजिक-जनवादी पार्टी से और 3 लातविया के सामाजिक-जनवादी संगठन से।

दिसम्बर विद्रोह के दौर में और उसके बाद, बोल्शेविक संगठनों के कुचले जाने की वजह से ये सभी संगठन प्रतिनिधि न भेज सके। इसके अलावा, 1905 के "आजादी के दिनों" में मेन्शेविकों ने अपनी कतार में निम्न-पूँजीवादी बुद्धिजीवियों की बड़ी तादाद भरती कर ली थी। क्रान्तिकारी मार्क्सवाद से इन लोगों का कोई भी सम्बन्ध न था। इतना कहना काफी होगा कि तिफलिस के मेन्शेविकों ने (और तिफलिस में बहुत कम औद्योगिक मजदूर थे) कांग्रेस में उतने ही प्रतिनिधि भेजे थे जितने कि सबसे बड़े सर्वहारा संगठन, सेण्ट पीटर्सबर्ग संगठन, ने भेजे थे। नतीजा यह हुआ कि स्टॉकहोम कान्फ्रेंस में मेन्शेविकों का बहुमत रहा, हालाँकि यह सही है कि वह नगण्य था।

कांग्रेस की इस बनावट ने कई सवालों पर लिये जाने वाले फैसलों का मेन्शेविक रूप निश्चित कर दिया।

इस कांग्रेस में केवल ऊपरी एकता कायम हुई। वास्तव में, बोल्शेविकों और मेन्शेविकों ने अपने मत और अपने स्वतंत्र संगठन कायम रखे।

चौथी कांग्रेस में जिन मुख्य सवालों पर बहस हुई, वे खेती का सवाल, मौजूदा हालत और सर्वहारा के वर्गगत काम, राज्य दूमा की तरफ नीति और संगठन के सवाल थे।

कांग्रेस में यद्यपि मेन्शेविकों का बहुमत था, फिर भी पार्टी नियमावली के पहले पैराग्राफ पर जो मसौदा लेनिन ने रखा उससे उन्हें सहमत होना पड़ा, जिससे कि मजदूर उनके विरोधी न हो जायें।

खेती के सवाल पर, लेनिन ने जमीन के **राष्ट्रीयकरण** का समर्थन किया। उनका कहना था कि क्रान्ति की जीत से ही, जारशाही का तख्ता उलटने पर ही, जमीन का राष्ट्रीयकरण सम्भव होगा। ऐसी हालत में जमीन का राष्ट्रीयकरण सर्वहारा वर्ग के लिए यह काम आसान कर देगा कि गरीब किसानों के सहयोग से वह समाजवादी क्रान्ति की मंजिल में प्रवेश करे। जमीन के राष्ट्रीयकरण का मतलब था-बिना मुआवजा दिये तमाम जागीरों की जमीन जब्त कर लेना और उन्हें किसानों को दे देना। बोल्शेविकों के खेती-सम्बन्धी कार्यक्रम ने किसानों का आह्वान किया कि वे जार और जमीन्दारों के खिलाफ क्रान्ति के लिए उठ खड़े हों।

मेन्शेविकों का दृष्टिकोण दूसरा था। वे **म्युनिसिपलीकरण** के कार्यक्रम का समर्थन करते थे। इनके कार्यक्रम के अनुसार, जागीरी जमीन ग्राम समाजों को न दी जाती, न उन्हें काम के लिए ही उठाया जाता, बल्कि वह म्युनिसिलपलिटी के हाथ में रहती (यानी खदुमुख्तार हुकूमत की स्थानीय संस्थाओं या जेम्स्त्वो के हाथ में रहती) और हर किसान इस जमीन से अपने बूते के अनुसार **लगान पर** हिस्सा ले लेता।

मेन्शेविकों का म्युनिसिपलीकरण का कार्यक्रम, समझौते का कार्यक्रम था और इसलिए क्रान्ति के लिए हानिकर था। वह किसानों को क्रान्तिकारी संघर्ष के लिए नहीं बटोर सकता था और जमीन पर जमीन्दारों के सम्पत्ति-सम्बन्धी अधिकारों को पूरी तरह खत्म नहीं कर सकता था। मेन्शेविक कार्यक्रम ऐसे रचा गया था कि क्रान्ति को अधबीच में ही रोक दे। मेन्शेविक किसानों को क्रान्ति के लिए उभारना नहीं चाहते थे।

कांग्रेस में मेन्शेविक कार्यक्रम को बहुमत प्राप्त हुआ।

मेन्शेविकों ने अपना सर्वहारा-विरोधी, अवसरवादी रूप खास तौर से तब प्रकट किया जबकि मौजूदा हालत और राज्य दूमा के प्रस्ताव पर बहस हो रही थी। मेन्शेविक मार्तिनोव क्रान्ति में सर्वहारा वर्ग के एकछत्र नेतृत्व के खिलाफ खुल कर बोला। मेन्शेविकों का जवाब देते हुए, कामरेड स्तालिन ने इस बारे में दो टूक बात कही :

> "या तो सर्वहारा का एकछत्र नेतृत्व हो, या जनवादी पूँजीपतियों का हो-पार्टी में सवाल का रूप यही है और यहीं हमारा मतभेद है।"

जहाँ तक राज्य दूमा का सम्बन्ध था, मेन्शेविकों ने अपने प्रस्ताव में उसे क्रान्ति की समस्याएँ हल करने और जारशाही से जनता को आजाद करने का सबसे अच्छा साधन बता कर, उसकी तारीफ की। इसके विपरीत, बोल्शेविकों का विचार था कि दूमा जारशाही

का बेकार पुछल्ला है। जारशाही के पाप छिपाने के लिए पर्दा है और जैसे ही उसे सुविधा हुई, जारशाही उसे उतार फेंकेगी।

चौथी कांग्रेस में जो केन्द्रीय समिति चुनी गयी, उसमें 3 बोल्शेविक और 6 मेन्शेविक थे। केन्द्रीय अखबार के सम्पादक-मण्डल में सिर्फ मेन्शेविक थे।

यह बात साफ थी कि पार्टी का अन्दरूनी संघर्ष जारी रहेगा।

चौथी कांग्रेस में, बोल्शेविकों और मेन्शेविकों का परस्पर संघर्ष नये जोरशोर से फूट पड़ा। स्थानीय संगठनों में, जो सिर्फ ऊपरी तौर पर एक थे, अकसर दो-दो वक्ताओं ने कांग्रेस की रिपोर्ट पेश की : एक बोल्शेविकों में से और दूसरा मेन्शेविकों में से। दोनों लाइनों की बहस का नतीजा यह हुआ कि ज्यादातर संगठनों का बहुमत बोल्शेविकों के साथ हुआ।

घटनाक्रम ने साबित कर दिया कि बोल्शेविक सही थे। चौथी कांग्रेस में जो मेन्शेविक केन्द्रीय समिति चुनी गयी थी, वह अधिकाधिक अपना अवसरवाद और आम जनता के क्रान्तिकारी संघर्ष का नेतृत्व करने की पूर्ण अयोग्यता जाहिर करने लगी। 1906 की ग्रीष्म और शरद में, आम जनता के क्रान्तिकारी संघर्ष ने नया जोर पकड़ा। क्रोन्स्तात और स्वीयाबोर्ग में जहाजियों के विद्रोह हुए। जमीन्दारों के खिलाफ किसानों की लड़ाई भड़क उठी। फिर भी, मेन्शेविक केन्द्रीय समिति अवसरवादी नारे देती रही, जिनका जनता ने अनुसरण नहीं किया।

6. पहली राज्य दूमा भंग होना। दूसरी राज्य दूमा का अधिवेशन। पाँचवीं पार्टी कांग्रेस। दूसरी राज्य दूमा का भंग होना। पहली रूसी क्रान्ति की हार के कारण।

पहली राज्य दूमा काफी आज्ञाकारी न साबित हुई, इसलिए जार सरकार ने उसे भंग कर दिया। हुकूमत ने जनता के खिलाफ और भी तीव्र दमन शुरू किया। सजा देने वाले दस्तों की तबाही ढाने वाली कार्रवाई सारे देश में फैला दी गयी। जार सरकार ने थोड़े ही दिनों में दूसरी राज्य दूमा बुलाने के फैसले का ऐलान किया। जाहिर था कि जार सरकार पर सत्ता का मद और भी चढ़ रहा था। उसे अब क्रान्ति से डर न लगता था, क्योंकि वह देख रही थी कि क्रान्ति का ज्वार अब खत्म हो रहा है।

बोल्शेविकों को फैसला करना था कि दूसरी दूमा में हिस्सा लें या उसका बायकाट करें। बायकाट से आम तौर पर बोल्शेविकों का मतलब सक्रिय बायकाट होता था, न कि सिर्फ चुनाव में निष्क्रिय रूप से वोट न देना। बोल्शेविकों की नजर में सक्रिय बायकाट जनता को सावधान करने का एक क्रान्तिकारी साधन था। जार यह कोशिश कर रहा था कि जनता को क्रान्ति के रास्ते से हटा कर जारशाही 'विधान' के रास्ते पर लाया जाये। इस कोशिश के खिलाफ, जनता को आगाह करने का वह क्रान्तिकारी साधन था। इस तरह की कोशिश नाकाम करने और जारशाही के खिलाफ जनता का नया आक्रमण संगठित करने का वह क्रान्तिकारी साधन था।

बुलिगिन-दूमा के बायकाट के तर्जुबे ने दिखा दिया था कि 'बायकाट' ही उस समय सही कार्यनीति थी, और घटना-क्रम से वह कतई सही साबित हुआ।" (लेनिन, सं.ग्र., अं.सं., मास्को, 1947, खण्ड 1, पृष्ठ 450)।

यह बायकाट इसी लिए सफल नहीं हुआ कि उसने जारशाही विधानवाद की राह के खतरे से जनता को सावधान किया, बल्कि इसलिए भी कि उसने दूमा के जन्म को ही व्यर्थ कर दिया। बायकाट इसलिए सफल हुआ कि वह क्रान्ति के **उठते हुए ज्वार** के समय किया गया था और इस ज्वार का उसे समर्थन प्राप्त था। वह उस समय नहीं किया गया था जबकि क्रान्ति का ज्वार बैठ रहा हो। दूमा का बुलाना तभी नाकाम किया जा सकता था जब क्रान्ति का **ज्वार वेग पर हो।**

वित्ते-दूमा, यानी पहली दूमा का बायकाट दिसम्बर विद्रोह की पराजय के बाद हुआ, उस समय जबकि जार विजयी साबित हुआ, यानी ऐसे समय जबकि यह विश्वास करने के लिए कारण थे कि क्रान्ति का ज्वार बैठने लगा है।

लेनिन ने लिखा था :

> "लेकिन, कहना न होगा कि उस समय अब यह समझने का कोई कारण न था कि यह जीत (जार की जीत-सं) निर्णायक जीत है। दिसम्बर 1905 के विद्रोह के बाद, 1906 की गर्मियों में कई अलग-थलग और आंशिक सैनिक विद्रोह और हड़तालें हुईं। वित्ते-दूमा का बायकाट करने का आह्वान इस बात के लिए आह्वान था कि इन विद्रोहों को केन्द्रित किया जाये और उन्हें आम बनाया जाये।" (लेनिन ग्रंथावली, रूसी संस्करण, खण्ड 12, पृष्ठ 20)।

वित्ते-दूमा का बायकाट उसके अधिवेशन को नाकाम न कर सका, हालाँकि इससे उसका असर काफी कम हुआ और जनता के एक हिस्से का विश्वास उसमें शिथिल हो गया। बायकाट दूमा का अधिवेशन इसलिए नाकाम न कर सका क्योंकि जैसा कि आगे चलकर स्पष्ट हो गया, वह ऐसे समय हुआ जबकि क्रान्ति का ज्वार बैठ रहा था, जब उसका प्रवाह मन्द पड़ रहा था। इस वजह से, 1906 में पहली दूमा का बायकाट असफल रहा। इस सिलसिले में, लेनिन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तिका **'वामपंथी' कम्युनिज्म, एक बचकाना मर्ज** में लिखा था।

> "1905 में, 'संसद' के बोल्शेविक बायकाट ने क्रान्तिकारी सर्वहारा को बहुत ही मूल्यवान राजनीतिक अनुभव से समृद्ध किया। उसने दिखलाया कि कानूनी और गैर-कानूनी संघर्ष के रूपों को, संसदीय और गैर-संसदीय रूपों को, मिलाने में कभी-कभी यह लाभदायी और आवश्यक भी हो जाता है कि संसदीय रूपों को ठुकरा दिया जाये।... फिर भी, 1906 में बोल्शेविकों द्वारा दूमा का बायकाट एक गलती थी, हालाँकि यह एक छोटी गलती थी और उसका आसानी से सुधार हो सकता था।... जो बात व्यक्तियों पर लागू होती है, वह-आवश्यक तब्दीली के साथ-राजनीति और पार्टियों पर भी लागू होती है। बुद्धिमान वह नहीं है जो गलतियाँ ही न करे। ऐसे आदमी न तो होते हैं और न हो सकते हैं। बुद्धिमान वह है जो बहुत गम्भीर गलतियाँ

नहीं करता और जो उन्हें आसानी से और तुरन्त सुधारना जानता है।" (लेनिन, सं.ग्र., अं.सं., मास्को, 1947, खण्ड 2, पृष्ठ 582-83)।

जहाँ तक दूसरी राज्य दूमा का सवाल है, लेनिन का कहना था कि बदली हुई हालत और क्रान्ति के ज्वार के मन्द पड़ने को ध्यान में रखते हुए बोल्शेविकों को "राज्य दूमा के बायकाट के सवाल पर फिर से विचार करना चाहिए।" (उप., खण्ड 1, पृष्ठ 450)।

लेनिन ने लिखा था :

> "इतिहास ने दिखा दिया है कि दूमा का अधिवेशन होने पर ऐसा अवसर मिलता है कि दूमा के अन्दर और उसके बारे में बाहर भी लाभदायी आन्दोलन किया जा सके। संवैधानिक जनवादियों के खिलाफ, क्रान्तिकारी किसानों के साथ सहयोग करने की नीति दूमा में भी लागू की जा सकती है।" (उप., पृष्ठ 453)।

इस सबसे जाहिर होता था कि हमें यही नहीं जानना चाहिए कि जब क्रान्ति उभार पर हो तब कैसे दृढ़ता से आगे बढ़ा जाये, कैसे अगली कतारों में रह कर आगे बढ़ा जाये, बल्कि जब क्रान्ति उभार पर न रहे तब कैसे क्रम से पीछे हटा जाये, कैसे सबसे पीछे वाली कतारों में रह कर हटा जाये और बदलती हुई हालत के अनुसार अपने दाँव-पेंच बदले जायें, ताबड़तोड़ पीछे न हटा जाये, बल्कि संगठित रूप से, शान्ति के साथ और बिना भगदड़ के पीछे हटा जाये, दुश्मन की मार से अपने कार्यकर्ताओं को बचाने के लिए छोटे से छोटे अवसर से भी लाभ उठाया जाये, अपनी कतार फिर से बनायी जाये, अपनी शक्तियों को फिर बटोरा जाये और दुश्मन के खिलाफ नया हमला करने की तैयारी की जाये।

बोल्शेविकों ने फैसला किया कि वे दूसरी दूमा के चुनाव में हिस्सा लेंगे।

लेकिन, बोल्शेविक दूमा के अन्दर ठोस "कानून बनाने" का काम करने के लिए वहाँ नहीं गये थे। मेन्शेविकों ने इसी काम के लिए वहाँ पर संवैधानिक जनवादियों के साथ दल बनाया था। इसके खिलाफ, बोल्शेविकों का उद्देश्य था कि क्रान्ति के हितों में उसे एक मंच की तरह इस्तेमाल करें।

इसके विपरीत, मेन्शेविक केन्द्रीय समिति इस बात पर जोर दे रही थी कि संवैधानिक जनवादियों के साथ चुनाव-सम्बन्धी समझौते किये जायें और दूमा में उनका समर्थन किया जाये, क्योंकि उनकी निगाह में दूमा एक कानून बनाने वाली संस्था थी, जो जार सरकार पर लगाम लगा सकती थी।

पार्टी-संगठनों के बहुमत ने मेन्शेविक केन्द्रीय समिति की नीति का विरोध किया।

बोल्शेविकों ने माँग की कि नयी पार्टी कांग्रेस बुलायी जाये।

मई 1907 में, लन्दन में पाँचवीं पार्टी कांग्रेस हुई। इस कांग्रेस के वक्त रू.सा.ज.म.पा. में (कौमी सामाजिक-जनवादी संगठनों को मिला कर) डेढ़ लाख सदस्य थे। कुल मिलाकर, कांग्रेस में 336 प्रतिनिधि थे, जिनमें से 105 बोल्शेविक और 97 मेन्शेविक थे। बाकी प्रतिनिधि कौमी सामाजिक-जनवादी संगठनों की तरफ से, पोलैण्ड और लातविया के सामाजिक-जनवादियों और बुन्द की तरफ से-जो पिछली कांग्रेस में रू.सा.ज.म.पा. में भर्ती

किये गये थे-आये थे। त्रात्स्की ने कांग्रेस में अपना एक अलग गुट, एक मध्यमार्गी यानी अर्द्ध-मेन्शेविक गुट बनाने की कोशिश की, लेकिन उसे अनुयायी न मिले।

पोलैण्ड और लातविया के प्रतिनिधि बोल्शेविकों के साथ थे, इसलिए कांग्रेस में उनका दृढ़ बहुमत था। कांग्रेस में बहस के लिए एक मुख्य सवाल पूँजीवादी पार्टियों की तरफ नीति अपनाने का था। इस सवाल पर, दूसरी कांग्रेस में ही बोल्शेविकों और मेन्शेविकों में संघर्ष चल चुका था। पाँचवीं कांग्रेस ने सभी गैर-सर्वहारा पार्टियों का बोल्शेविक मूल्यांकन पेश किया-यमदूत सभाएँ, अक्टूबरपंथी (17 अक्टूबर की यूनियन), संवैधानिक जनवादी और समाजवादी-क्रान्तिकारी-और, इन पार्टियों के बारे में बोल्शेविक कार्यनीति का मसौदा रखा।

कांग्रेस ने बोल्शेविकों की नीति मंजूर की और फैसला किया कि वह यमदूत सभा पार्टियों के खिलाफ-रूसी जनसंघ, सम्राटवादियों, अभिजातवर्गीय संयुक्त मण्डल के खिलाफ-और अक्टूबरपंथियों, व्यापार और उद्योग-धन्धों की पार्टी और शान्तिपूर्ण सुधार की पार्टी के खिलाफ भी डटकर संघर्ष चलायेगी। ये सब पार्टियाँ खुल्लमखुल्ला क्रान्ति-विरोधी थीं।

जहाँ तक उदारपंथी पूँजीपतियों का सम्बन्ध था, संवैधानिक जनवादी पार्टी का सम्बन्ध था, कांग्रेस ने बिना समझौते के उनका पर्दाफाश करने की नीति की सिफारिश की। संवैधानिक जनवादी पार्टी के झूठ और मक्कारी से भरे हुए जनतंत्र का पर्दाफाश करना था और उदारपंथी पूँजीपतियों की किसान आन्दोलन पर कब्जा करने की कोशिश का मुकाबला करना था।

जहाँ तक नरोद्निक या त्रुदोविक[1] पार्टियों (पॉपुलर सोशलिस्ट, त्रुदोविक गुट और समाजवादी-क्रान्तिकारियों) का सम्बन्ध था, कांग्रेस ने सिफारिश की कि समाजवादियों का नकाब पहनने की उनकी कोशिशों का पर्दाफाश किया जाये। इसके साथ ही, कांग्रेस यह उचित समझती थी कि जब तब इन पार्टियों के साथ जारशाही और संवैधानिक जनवादी पूँजीपतियों के खिलाफ संयुक्त और एक साथ हमला करने के लिए समझौते किये जा सकते हैं। कारण यह कि उस समय ये पार्टियाँ जनवादी पार्टियाँ थीं और शहर और देहात के निम्न-पूँजीवादियों के हित प्रकट करती थीं।

इस कांग्रेस से पहले भी, मेन्शेविकों ने प्रस्ताव रखा था कि एक तथाकथित मजदूर कांग्रेस बुलायी जाये। मेन्शेविकों का विचार था कि ऐसी कांग्रेस बुलायी जाये जिसमें सामाजिक-जनवादियों, समाजवादी-क्रान्तिकारियों और अराजकवादियों-सभी का प्रतिनिधित्व हो। यह “मजदूर” कांग्रेस कुछ “गैर-पार्टीजन पार्टी” जैसी चीज, या एक “व्यापक” निम्न-पूँजीवादी मजदूर पार्टी बनाये, जिसका कोई कार्यक्रम न हो। लेनिन ने मेन्शेविकों की इस घातक कोशिश का पर्दाफाश किया, जो सामाजिक-जनवादी मजदूर पार्टी को खत्म करने और मजदूर वर्ग के हिरावल को निम्न-पूँजीवादी अवाम में घुलमिल जाने देने की कोशिश थी। कांग्रेस ने ‘मजदूर-कांग्रेस’ बुलाने की मेन्शेविक योजना का जोरों से खण्डन किया।

---

1. 1906 में बनने वाला एक निम्न-पूँजीवादी गुट, जिसमें अंशतः पहली राज्य दूमा के किसान सदस्य थे जिनके सिरे पर समाजवादी-क्रान्तिकारी बुद्धिजीवी थे।

कांग्रेस में, ट्रेड यूनियनों के विषय पर खास तौर से ध्यान दिया गया।

मेन्शेविक ट्रेड यूनियनों की 'तटस्थता' का समर्थन करते थे, दूसरे शब्दों में, वे इस बात का विरोध करते थे कि पार्टी उनमें नेतृत्व की भूमिका अदा करे। कांग्रेस ने मेन्शेविकों का प्रस्ताव रद्द कर दिया और बोल्शेविकों के पेश किये हुए प्रस्ताव को मंजूर कर लिया। इस प्रस्ताव में कहा गया था कि पार्टी को ट्रेड यूनियनों में सैद्धान्तिक और राजनीतिक नेतृत्व हासिल करना चाहिए।

पाँचवीं कांग्रेस मजदूर आन्दोलन में बोल्शेविकों के लिए भारी जीत थी। लेकिन, बोल्शेविकों ने न तो इसकी खुशी में अपने को बहने ही दिया, न उन्होंने अपनी विजय पर ही सन्तोष कर लिया। लेनिन ने उन्हें यह न सिखाया था। बोल्शेविक जानते थे कि मेन्शेविकों से अभी और संघर्ष होगा।

"एक प्रतिनिधि के नोट" नाम के लेख में, जो 1907 में प्रकाशित हुआ था, कामरेड स्तालिन ने कांग्रेस के नतीजों का इस तरह मूल्यांकन किया था :

> "**क्रान्तिकारी** सामाजिक-जनवाद के झण्डे के नीचे रूस के तमाम आगे बढ़े हुए मजदूरों का एक ही अखिल रूसी पार्टी में वास्तविक एकीकरण-लन्दन कांग्रेस का यह महत्त्व है, यह उसकी आम विशेषता है।"

इस लेख में, कामरेड स्तालिन ने आँकड़े देकर कांग्रेस की बनावट पर प्रकाश डाला। आँकड़ों से पता चलता था कि मुख्यतः बड़े औद्योगिक केन्द्रों (सेण्ट पीटर्सबर्ग, मास्को, यूराल, इवानोवोवज्नेसेंस्क वगैरह) ने कांग्रेस को बोल्शेविक प्रतिनिधि भेजे थे। उधर मेन्शेविक उन जिलों की तरफ से भेजे गये थे जहाँ छोटे पैमाने का उत्पादन चालू था, जहाँ दस्तकार, अर्द्ध-सर्वहारा बहुतायत से थे, और कुछ विशुद्ध देहाती इलाकों से भी मेन्शेविक भेजे गये थे।

कामरेड स्तालिन ने कांग्रेस के नतीजों का सार देते हुए कहा था :

> "यह स्पष्ट है कि बोल्शेविकों की कार्यनीति बड़े उद्योग-धन्धों के सर्वहारा वर्ग की कार्यनीति है, उन इलाकों की कार्यनीति है जहाँ वर्ग-विरोध खास तौर से साफ है और वर्ग-संघर्ष खास तौर से तीखा है। बोल्शेविज्म सच्चे सर्वहारा वर्ग की कार्यनीति है। दूसरी तरफ, यह भी कम स्पष्ट नहीं है कि मेन्शेविकों की कार्यनीति मुख्यतः दस्तकारों और अर्द्ध-सर्वहारा किसानों की कार्यनीति है, उन इलाकों की कार्यनीति है जहाँ वर्ग-विरोध बहुत साफ नहीं है और वर्ग-संघर्ष छिपा हुआ है। मेन्शेविज्म सर्वहारा वर्ग के अन्दर अर्द्ध-पूँजीवादी लोगों की कार्यनीति है। आँकड़े यही कहते हैं।" (**रू.सा.ज. म.पा. की पाँचवीं कांग्रेस की शब्दशः रिपोर्ट,** रू.सं., 1935, पृष्ठ 11-12)।

जब जार ने पहली दूमा भंग की तो उसे उम्मीद थी कि दूसरी दूमा ज्यादा ताबेदार होगी। लेकिन, दूसरी दूमा ने भी उसकी उम्मीदों पर पानी फेर दिया। इस पर, जार ने उसे भी भंग कर देने का फैसला किया। उसने ज्यादा संकुचित मताधिकार की बुनियाद पर, तीसरी दूमा बुलाने का निश्चय किया। उसे आशा थी कि यह दूमा ज्यादा आज्ञाकारी साबित होगी।

पाँचवीं कांग्रेस के कुछ ही दिन बाद, जार सरकार ने 3 जून को **बलपूर्वक सत्ताहरण** किया। 3 जून 1907 को, जार ने दूसरी राज्य दूमा को भंग कर दिया। दूमा के सामाजिक-जनवादी गुट के 65 प्रतिनिधि गिरफ्तार कर लिये गये और साइबेरिया में निर्वासित कर दिये गये। एक नया चुनाव-कानून लागू किया गया। मजदूरों और किसानों के अधिकार और भी सीमित कर दिये गये। जार सरकार ने अपना हमला जारी रखा।

जार के मंत्री स्तोलिपिन ने मजदूरों और किसानों के खिलाफ खूनी बदला लेने की मुहिम और तेज की। सजा देने वाले दस्तों ने हजारों क्रान्तिकारी मजदूरों और किसानों को गोली से उड़ा दिया, या फाँसी पर लटका दिया। जार की कालकोठरियों में क्रान्तिकारियों को मानसिक और शारीरिक रूप से तिल-तिल कर मारा गया। मजदूर संगठनों, खास तौर से बोल्शेविकों पर, दमन चक्र बहुत ही बर्बरता से चला। जार के कुत्ते लेनिन को ढूँढ़ रहे थे, जो उस समय फिनलैण्ड में छिपे हुए थे। वे क्रान्ति के नेता से बैर निकालना चाहते थे। दिसम्बर 1907 में, लेनिन भारी खतरा उठा कर विदेश जा सके और फिर निर्वासित हो गये।

स्तोलिपिन प्रतिक्रियावाद का दुस्समय आरम्भ हो गया।

इस तरह, पहली रूसी क्रान्ति का अन्त पराजय में हुआ।

जिन कारणों से यह पराजय हुई, वे इस प्रकार थे :

1. क्रान्ति में जारशाही के खिलाफ अभी मजदूरों और किसानों का पक्का सहयोग कायम नहीं हुआ था। किसानों ने जमीन्दारों के खिलाफ विद्रोह किया और वे उनके विरुद्ध मजदूरों से सहयोग करने के लिए तैयार थे। लेकिन, उन्होंने अभी यह महसूस नहीं किया था कि जब तक जार का तख्ता नहीं उलटा जायेगा, तब तक जमीन्दारों को नहीं पछाड़ा जा सकता। उन्होंने यह महसूस नहीं किया था कि जार और जमीन्दारों की मिलीभगत है। किसानों की बहुत बड़ी तादाद को अब भी जार में विश्वास था और उनकी आशाएँ जारशाही राज्य दूमा पर लगी हुई थीं। यही सबब है कि किसानों का काफी हिस्सा जारशाही का खात्मा करने के लिए, मजदूरों से सहयोग करने के लिए अनिच्छुक था। किसानों को समझौतापरस्त समाजवादी-क्रान्तिकारियों पर ज्यादा भरोसा था और सच्चे क्रान्तिकारियों पर-बोल्शेविकों पर-कम था। इसका नतीजा यह हुआ कि जमीन्दारों के खिलाफ किसानों का संघर्ष काफी संगठित नहीं था। लेनिन ने कहा था :

> "...किसानों की कार्रवाई बहुत ही बिखरी हुई, बहुत ही असंगठित और नाकाफी तौर से हमलावर थी; और क्रान्ति की पराजय का यह एक **बुनियादी कारण था।**" (**लेनिन ग्रंथावली,** रूसी संस्करण, खण्ड 19, पृष्ठ 354)।

2. किसानों का काफी बड़ा हिस्सा जारशाही का खात्मा करने के लिए मजदूरों से सहयोग करने में अनिच्छुक था। उसका असर फौज के व्यवहार पर भी पड़ा। फौज में ज्यादातर सिपाहियों की वर्दी पहने हुए किसानों के बेटे थे। जार की फौज के कई दस्तों में असन्तोष और विद्रोह फूट पड़ा, लेकिन अधिकांश सैनिकों ने अब भी मजदूरों की हड़तालें और विद्रोह दबाने में जार की मदद की।

3. मजदूरों की कार्रवाई भी काफी सुगठित नहीं थी। मजदूर वर्ग के आगे बढ़े हुए हिस्सों ने 1905 में वीरतापूर्ण क्रान्तिकारी संघर्ष शुरू किया। ज्यादा पिछड़े हुए हिस्से-उन सूबों के मजदूर जहाँ का औद्योगीकरण कम हुआ था, वे लोग जो गाँव में रहते थे-कार्रवाई में और विलम्ब से आये। क्रान्तिकारी संघर्ष में वे 1906 में ज्यादा सक्रिय रूप से हिस्सा लेने लगे, लेकिन उस समय तक मजदूर वर्ग का हिरावल काफी कमजोर हो चुका था।

4. मजदूर वर्ग क्रान्ति की पहली और प्रमुख शक्ति था) लेकिन मजदूर वर्ग की पार्टी की कतारों में आवश्यक एकता और दृढ़ता का अभाव था। रू.सा.ज.म.पा.-मजदूर वर्ग की पार्टी-दो दलों में बँटी हुई थी : बोल्शेविक और मेन्शेविक। बोल्शेविक सुसंगत क्रान्तिकारी लाइन पर चलते थे। उन्होंने जारशाही का खात्मा करने के लिए मजदूरों का आह्वान किया था। मेन्शेविकों ने अपनी समझौतापरस्त कार्यनीति से क्रान्ति में बाधा डाली, मजदूरों की बड़ी तादाद के मन में उलझन पैदा कर दी और मजदूर वर्ग में फूट डाली। इसलिए, मजदूरों ने क्रान्ति में हमेशा एकजुट होकर काम नहीं किया। अभी खुद अपनी कतारों में एकता नहीं होने की वजह से, मजदूर वर्ग क्रान्ति का सच्चा नेता नहीं बन सका।

5. निरंकुश जारशाही को 1905 की क्रान्ति का दमन करने में पश्चिमी यूरोप के साम्राज्यवादियों से मदद मिली। विदेशी पूँजीपति रूस में लगाई हुई पूँजी और अपने भारी मुनाफों के लिए चिन्तित थे। इसके सिवा, उन्हें डर था कि अगर रूसी क्रान्ति सफल हुई तो दूसरे देशों के मजदूर भी क्रान्ति करने के लिए उठ खड़े होंगे। इसलिए, पश्चिमी यूरोप के साम्राज्यवादी जल्लाद जार की मदद के लिए आ गये। फ्रांस के बैंक-साहूकारों ने क्रान्ति को दबाने के लिए जार को भारी रकम उधार दी। जर्मनी का कैसर रूसी जार की मदद के लिए दखलन्दाजी करने को एक बड़ी फौज तैयार रखता था।

6. सितम्बर 1905 में, जापान से शान्ति-सन्धि हो जाने पर जार को काफी मदद मिली। लड़ाई में हार और क्रान्ति की खतरनाक बढ़त से, जार को सन्धि करने में जल्दी करनी पड़ी। युद्ध में हारने से जारशाही कमजोर हुई। सन्धि होने से, जार का पाया मजबूत हुआ।

सारांश

पहली रूसी क्रान्ति हमारे देश के विकास में एक पूरी ऐतिहासिक मंजिल थी। इस ऐतिहासिक मंजिल के दो दौर थे। पहला दौर वह था जब अक्टूबर की आम हड़ताल से क्रान्ति का ज्वार उठा और दिसम्बर के सशस्त्र विद्रोह तक पहुँच गया। इस समय क्रान्ति के ज्वार ने जार की कमजोरी से फायदा उठाया, जो मंचूरिया के युद्ध क्षेत्रों में हार खा चुका था। कमजोरी से फायदा उठा कर, बुलिगिन-दूमा रास्ते से हटा दी गयी और जार से एक के बाद दूसरी रियायतें हासिल की गयीं। दूसरा दौर वह था जब जारशाही ने, जापान के साथ सन्धि करने के बाद सँभल कर, उदार पूँजीपतियों के क्रान्ति से डरने का फायदा उठाया, किसानों के ढुलमुलपन का फायदा उठाया, वित्ते-दूमा के रूप में उनके सामने एक टुकड़ा डाला और मजदूर वर्ग के खिलाफ, क्रान्ति के खिलाफ हमला शुरू किया।

क्रान्ति के तीन वर्षों की छोटी अवधि (1905-1907) में ही, मजदूर वर्ग और किसानों

ने इतनी भरपूर राजनीतिक शिक्षा प्राप्त की जैसी उन्हें साधारण शान्तिपूर्ण विकास के तीस वर्षों में भी नहीं मिल सकती थी। क्रान्ति के थोड़े ही वर्षों ने वे सब बातें स्पष्ट कर दीं जो बीसों वर्षों के शान्तिमय विकास के दौर में नहीं हो सकती थीं।

क्रान्ति ने दिखला दिया कि जारशाही जनता की कट्टर दुश्मन है, कि जारशाही कहावतों के उस कुबड़े की तरह है जिसकी पीठ कब्र में ही सीधी होती है।

क्रान्ति ने दिखला दिया कि उदारपंथी पूँजीपति जार से, न कि जनता से, सहयोग करने की फिक्र में हैं। वे एक क्रान्ति-विरोधी शक्ति हैं, जिनसे समझौता करना जनता से गद्दारी करने के समान है।

क्रान्ति ने दिखला दिया कि सिर्फ मजदूर वर्ग पूँजीवादी जनवादी क्रान्ति का नेता हो सकता है। सिर्फ मजदूर वर्ग उदारपंथी संवैधानिक-जनवादी पूँजीपतियों को बलपूर्वक हटा सकता है, किसानों पर उनका असर खत्म कर सकता है और जमीन्दारों को खदेड़ सकता है, क्रान्ति को आखिरी मंजिल तक पहुँचा सकता है और समाजवाद के लिए रास्ता साफ कर सकता है।

अन्त में, क्रान्ति ने दिखला दिया कि मेहनतकश किसान ही, ढुलमुलपन के बावजूद, वह महत्त्वपूर्ण शक्ति हैं जो मजदूर वर्ग के साथ सहयोग कर सकते हैं।

क्रान्ति के दौरान, रू.सा.ज.म.पा. के अन्दर दो लाइनें एक दूसरे से टक्कर ले रही थीं। एक लाइन बोल्शेविकों की थी और दूसरी लाइन मेन्शेविकों की। बोल्शेविकों का रास्ता क्रान्ति को फैलाने का रास्ता था, सशस्त्र विद्रोह के जरिये जारशाही के खात्मे, मजदूर वर्ग के एकछत्र नेतृत्व, संवैधानिक जनवादी पूँजीपतियों को अकेले करने, किसानों से सहयोग, मजदूरों और किसानों के प्रतिनिधियों से बनी हुई अस्थायी क्रान्तिकारी हुकूमत के निर्माण, क्रान्ति को जीत की मंजिल तक ले जाने का रास्ता था। दूसरी तरफ, मेन्शेविकों का रास्ता क्रान्ति के विसर्जन का रास्ता था। विद्रोह के जरिये जारशाही का तख्ता उलटने के बदले, उन्होंने उसे सुधारने और 'उन्नत करने' का प्रस्ताव रखा। उन्होंने सर्वहारा वर्ग के एकछत्र नेतृत्व के बदले, उदारपंथी पूँजीपतियों के एकछत्र नेतृत्व का प्रस्ताव रखा। किसानों से सहयोग के बदले, उन्होंने संवैधानिक जनवादी पूँजीपतियों से सहयोग का प्रस्ताव रखा। अस्थायी क्रान्तिकारी सरकार, जो देश की 'क्रान्तिकारी शक्तियों' का केन्द्र बने, के बदले उन्होंने राज्य दूमा का प्रस्ताव रखा।

इस तरह, मेन्शेविक समझौते के दलदल में फँसते गये और मजदूर वर्ग पर पूँजीवादी असर के साधन बने, वे मजदूर वर्ग के अन्दर वस्तुतः पूँजीपतियों के दलाल बन गये।

बोल्शेविक ही पार्टी के अन्दर और देश में क्रान्तिकारी मार्क्सवादी शक्ति साबित हुए।

यह स्वाभाविक था कि ऐसे गम्भीर मतभेद होने की वजह से रू.सा.ज.म.पा. दरअसल दो पार्टियों में बँटी हुई साबित हुई-बोल्शेविकों की पार्टी और मेन्शेविकों की पार्टी। चौथी पार्टी कांग्रेस ने पार्टी की वास्तविक अन्दरूनी हालत में कोई तब्दीली नहीं की। उसने सिर्फ पार्टी की ऊपरी एकता कायम रखी और उसे कुछ-कुछ मजबूत किया। पाँचवीं पार्टी कांग्रेस ने पार्टी में **वास्तविक** एकता की तरफ एक कदम उठाया, ऐसी एकता जो बोल्शेविक झण्डे के नीचे हासिल की गयी थी।

क्रान्तिकारी आन्दोलन का मूल्यांकन करते हुए, पाँचवीं पार्टी कांग्रेस ने मेन्शेविक लाइन को समझौते की लाइन कह कर उसकी निन्दा की और बोल्शेविक लाइन को क्रान्तिकारी मार्क्सवादी लाइन कह कर उसका समर्थन किया। ऐसा करके, उसने उसी बात को पक्का किया जिसे पहली रूसी क्रान्ति की समूची प्रगति ने पक्का किया था।

क्रान्ति ने दिखला दिया कि बोल्शेविक परिस्थिति की माँग पर आगे बढ़ना जानते हैं, कि उन्होंने अगली कतारों में आगे बढ़ना और हमले में समूची जनता का नेतृत्व करना सीख लिया है; लेकिन क्रान्ति ने यह भी दिखलाया कि जब परिस्थिति प्रतिकूल हो जाये, जब क्रान्ति का वेग मन्द पड़ जाये तब बोल्शेविक व्यवस्थित ढंग से पीछे हटना जानते हैं, कि बोल्शेविकों ने उचित रूप से बिना भगदड़ या हड़बड़ाहट के पीछे हटना सीख लिया है, जिससे कि वे अपने कार्यकर्ताओं को बनाये रख सकें, अपनी शक्तियों को बटोर सकें और नयी परिस्थिति के अनुसार अपनी कतार फिर से जोड़ कर एक बार फिर दुश्मन पर धावा बोल सकें।

बिना यह जाने हुए कि सही तौर पर हमला कैसे करना चाहिए, दुश्मन को हराना असम्भव है।

बिना यह जाने हुए कि सही तौर पर कैसे पीछे हटना चाहिए, कैसे बिना भगदड़ और हड़बड़ाहट के पीछे हटना चाहिए, हार होने पर सर्वनाश से बचना असम्भव है।

चौथा अध्याय

स्तोलिपिन प्रतिक्रियावाद के दौर में मेन्शेविक और बोल्शेविक। बोल्शेविकों द्वारा स्वतंत्र मार्क्सवादी पार्टी का निर्माण।
(1908-1912)

1. स्तोलिपिन प्रतिक्रियावाद। विरोधी बुद्धिजीवियों में फूट। पतन। पार्टी के बुद्धिजीवियों के एक हिस्से का मार्क्सवाद के दुश्मनों से जाकर मिलना और मार्क्सवाद के सिद्धान्त में संशोधन करने के प्रयत्न। लेनिन द्वारा अपनी पुस्तक 'भौतिकवाद और अनुभवसिद्ध आलोचना' में संशोधनवादियों का खण्डन और मार्क्सवादी पार्टी के सैद्धान्तिक आधारों का समर्थन।

जार सरकार ने 3 जून 1907 को दूसरी राज्य दूमा भंग कर दी। इतिहास में इसे आम तौर से 3 जून का **बलपूर्वक सत्ताहरण** कहते हैं। जार सरकार ने तीसरी राज्य दूमा के चुनाव के लिए एक नया कानून बनाया। इस तरह, उसने 17 अक्टूबर के खुद अपने घोषणापत्र को तोड़ा, जिसमें कहा गया था कि दूमा की सहमति से ही नये कानून जारी किये जा सकेंगे। दूसरी दूमा के सामाजिक-जनवादी गुट के सदस्यों पर मुकदमा चलाया गया। मजदूर वर्ग के प्रतिनिधियों को कैद- बामशक्कत और निर्वासन का दण्ड मिला।

नये चुनाव-कानून का मसौदा इस तरह तैयार किया गया कि दूमा में जमीन्दारों और व्यापारिक और औद्योगिक पूँजीपतियों के प्रतिनिधियों की तादाद काफी बढ़ जाये। इसके साथ ही, किसानों और मजदूरों का प्रतिनिधित्व, जो पहले ही कम था, अब पहले की संख्या का बहुत ही छोटा सा अंश कर दिया गया।

तीसरी दूमा में यमदूत सभाओं और संवैधानिक जनवादियों की बहुतायत थी। कुल 442 प्रतिनिधियों में, 171 दक्षिणपंथी (यमदूत सभा वाले), 113 अक्टूबरपंथी या इन्हीं जैसे गुटों के सदस्य, 101 संवैधानिक जनवादियों या इन्हीं जैसे गुटों के सदस्य, 13 त्रुदोविक और 18 सामाजिक-जनवादी थे।

दक्षिणपंथी (दूमा में दाहिनी तरफ बैठने की वजह से उनका यह नाम पड़ा था) मजदूरों और किसानों के सबसे कट्टर दुश्मनों-यमदूत सभा वाले सामन्ती जमीन्दारों-के प्रतिनिधि थे। इन कट्टर दुश्मनों ने किसान आन्दोलन का दमन करते हुए, किसानों को सामूहिक तौर से बेंतों से पीटा और गोलियों से उड़ाया था। वे यहूदियों के कत्लेआम, प्रदर्शनकारी मजदूरों को पीटने, क्रान्ति के दौर में सभा-स्थलों को बर्बरता से जलाने के संगठनकर्ता थे। दक्षिणपंथियों का मत भा कि मेहतनकश जनता का खूब कठोरता से दमन किया जाये और जार के पास अपरिमित अधिकार हों। 17 अक्टूबर 1905 के जार के घोषणापत्र का वे विरोध करते थे।

अक्टूबरपंथी पार्टी, या 17 अक्टूबर की यूनियन, दूमा में दक्षिणपंथियों की निकट अनुवर्ती थी। अक्टूबरपंथी बड़ी औद्योगिक पूँजी के हितों और पूँजीवादी ढंग से अपनी जागीरें चलाने वाले बड़े जमीन्दारों के हितों के प्रतिनिधि थे (1905 की क्रान्ति के आरम्भ में बड़े जमीन्दारों की एक भारी तादाद, जो पहले संवैधानिक जनवादी पार्टी में थी, अक्टूबरपंथियों की ओर हो गयी)। अक्टूबर पंथियों को जो बात दक्षिणपंथियों से अलग जाहिर करती थी, वह 17 अक्टूबर के घोषणापत्र की स्वीकृति-वह भी सिर्फ शब्दों में-थी। अक्टूबरपंथी जार सरकार की घरेलू और वैदेशिक नीति का पूरी तरह समर्थन करते थे।

पहली और दूसरी दूमा के मुकाबले में, संवैधानिक जनवादी पार्टी को तीसरी दूमा में कम सीटें मिलीं। इसका सबब यह था कि जमीन्दारों के वोट का एक हिस्सा संवैधानिक जनवादियों के बदले अक्टूबरपंथियों को मिल गया था।

तीसरी दूमा में मध्यवित्त जनवादियों का एक छोटा गुट था, जिसे त्रुदोविक कहते थे। वे संवैधानिक जनवादियों और मजदूर-जनवादियों (बोल्शेविकों) के बीच में फिसलते रहते थे। लेनिन ने बतलाया था कि हालाँकि त्रुदोविक दूमा में बहुत ही कमजोर थे, फिर भी वे आम जनता के, किसान जनता के प्रतिनिधि थे। संवैधानिक जनवादियों और मजदूर जनवादियों के बीच त्रुदोविकों का फिसलना, छोटे मालिकों की वर्ग-स्थिति का लाजिमी नतीजा था। लेनिन ने बोल्शेविक प्रतिनिधियों, मजदूर-जनवादियों के सामने यह काम रखा कि वे "कमजोर मध्यवित्त जनवादियों की मदद करें, उन्हें उदारपंथियों के असर से निकाल लें, सिर्फ दक्षिणपंथियों के खिलाफ नहीं, बल्कि क्रान्ति-विरोधी संवैधानिक जनवादियों के खिलाफ भी जनवादी खेमे को बटोरें...।" (लेनिन, सं.ग्रं., अं.सं., मास्को, 1947, खण्ड 1, पृ. 535)।

1905 की क्रान्ति के दौर में, और उसकी हार के बाद खास तौर से, संवैधानिक जनवादियों ने दिन पर दिन जाहिर कर दिया कि वे एक क्रान्ति-विरोधी शक्ति हैं। अधिकाधिक अपनी 'जनवादी' नकाब उतारते हुए, वे वस्तुतः सम्राटवादियों की तरह, जारशाही के समर्थकों की तरह, काम करने लगे। 1909 में, प्रमुख संवैधानिक जनवादी लेखकों के एक गुट ने एक लेख-संग्रह छापा, जिसका नाम था **वेखी (मार्ग चिह्न)**। इसमें पूँजीपतियों की तरफ से उन्होंने जार का शुक्रिया अदा किया कि उसने क्रान्ति को कुचल दिया है। लाठी और फाँसी की सरकार जार की हुकूमत के सामने घुटने टेकते हुए और जीभ निकालते हुए, संवैधानिक जनवादियों ने इस किताब में सीधे-सीधे लिख दिया कि "हमें

इस सरकार की जय मनानी चाहिए, जो अपनी संगीनों और जेलों की बदौलत जनता के क्रोध से हमारी (उदारपंथी पूँजीपतियों की) एकमात्र रक्षक है।"

दूसरी राज्य दूमा भंग करने के बाद और दूमा के सामाजिक-जनवादी गुट को ठिकाने लगाने के बाद, जार सरकार जोश के साथ सर्वहारा वर्ग के राजनीतिक और आर्थिक संगठनों को तोड़ने में लग गयी। कैद-बामशक्कत के जेलखाने, किले और निर्वासन की जगहें क्रान्तिकारियों से ठसाठस भर गयीं। जेलखानों में वे निर्दयता से पीटे जाते थे और उन्हें तरह-तरह से यंत्रणा और यातनाएँ दी जाती थीं। यमदूत सभाओं का आतंक बेरोकटोक जारी रहा। जार के मंत्री स्तोलिपिन ने सारे देश में फाँसी के तख्ते लगा दिये। कई हजार क्रान्तिकारियों को मार डाला गया। उन दिनों फाँसी का नाम 'स्तोलिपिन की नेकटाई' पड़ गया था।

मजदूरों और किसानों के क्रान्तिकारी आन्दोलन को कुचलने की कोशिश में, जार सरकार अपना काम दमन, सजा के दस्ते, गोलीकाण्ड, जेल और कैद-बामशक्कत की सजाओं तक सीमित नहीं रख सकी। उसने भय के साथ महसूस किया कि 'छोटे पिता, जार' में किसानों की भोलीभाली श्रद्धा बराबर खत्म हो रही है। इसलिए, उसने एक बड़ा पैंतरा चलने का विचार किया। उसने अपने लिए देहात में ग्रामीण पूँजीपतियों के बड़े वर्ग, धनी किसानों, में अपने लिए दृढ़ समर्थक पैदा करने की सोची।

9 नवम्बर 1906 को, स्तोलिपिन ने एक नया खेती का कानून बनाया, जिससे कि किसान कम्यून छोड़ सकते थे और अलग खेती कर सकते थे। स्तोलिपिन के कृषि-कानून ने सामूहिक भूमि-अधिकार की व्यवस्था तोड़ दी। किसानों से कहा गया कि वे अपने हिस्सों पर निजी सम्पत्ति की तरह अधिकार कर लें और कम्यूनों से अलग हो जायें। अब वे अपने हिस्से बेच सकते थे, जिसके लिए पहले उन्हें आज्ञा नहीं थी। जब किसान अपना कम्यून छोड़ता था, तब कम्यून इसके लिए बाध्य था कि जमीन का एक मिला-जुला टुकड़ा (**खुतोर, अत्रूब**) उसे दे।

धनी किसानों-कुलकों-को अब अवसर मिला कि कम कीमत पर गरीब किसानों की जमीन खरीद लें। कुछ ही साल कानून लागू हुआ था कि दस लाख से ऊपर गरीब किसान अपनी जमीन से पूरी तरह हाथ धो बैठे और एकदम तबाह हो गये। जैसे-जैसे गरीब किसानों के हाथ से उनकी जमीन गयी, वैसे-वैसे कुलकों के खेत बढ़ने लगे। कहीं-कहीं पर बाकायदा जागीरें बन गयीं, जहाँ बड़े पैमाने पर किराये की मजदूरी-खेत मजदूरों से काम कराया जाता था। सरकार किसानों को मजबूर करती थी कि कम्यून की सबसे अच्छी जमीन कुलक किसानों को दी जाये।

किसानों की 'मुक्ति' के दौरान, जमीन्दारों ने किसानों से उनकी जमीन लूट ली थी। अब कुलक कम्यूनों से उनकी जमीन लूटने लगे। वे सबसे अच्छी जमीन पाने लगे और कम कीमत पर गरीब किसानों के हिस्से खरीदने लगे।

जार सरकार ने जमीन खरीदने के लिए और अपने खेत सुसज्जित करने के लिए कुलकों को भारी रकमें उधार दीं। स्तोलिपिन चाहता था कि कुलक छोटे जमीन्दार बन जायें, निरंकुश जारशाही के वफादार समर्थक बन जायें।

1906-1915 तक, नौ वर्षों में ही बीस लाख से ऊपर कुटुम्ब कम्यूनों से अलग हुए।

जिन किसानों के पास जमीन के छोटे हिस्से आये थे, उनकी और गरीब किसानों की हालत स्तोलिपिन की नीति के फलस्वरूप पहले से भी बदतर हो गयी। किसानों में विभेदीकरण की प्रक्रिया और स्पष्ट दिखाई देने लगी। किसान कुलकों से टक्कर लेने लगे।

इसके साथ ही, किसानों ने अनुभव किया कि वे जागीरी जमीन पर तब तक कब्जा नहीं पायेंगे जब तक कि जार सरकार, जमीन्दारों और संवैधानिक जनवादियों की राज्य दूमा बनी रहेगी।

जिस समय बड़ी तादाद में कुलक फार्म बन रहे थे, उस समय (1907-1909) किसान आन्दोलन मन्द पड़ने लगा था। लेकिन तुरन्त बाद ही, 1910-1911 में और उसके बाद गाँव के कम्यून के सदस्यों और कुलकों की टक्करों की वजह से जमीन्दारों और कुलकों के खिलाफ किसान आन्दोलन की तेजी बढ़ गयी।

क्रान्ति के बाद, उद्योग-धन्धों में भी बड़े परिवर्तन हुए। उद्योग-धन्धों का केन्द्रीकरण, यानी दिन पर दिन शक्तिशाली बनते हुए पूँजीवादी गुटों के हाथ में उद्योग-धन्धों का केन्द्रीकरण और कारखानों का विशाल बनना, और तेजी के साथ हुआ। 1905 की क्रान्ति के पहले भी, पूँजीपति इस उद्देश्य से संघ बनाने लगे थे कि देश में चीजों का भाव ऊँचा किया जाये और इस तरह जो भारी मुनाफे मिले उनसे निर्यात व्यापार बढ़ाया जाये। इस तरह, वे चाहते थे कि विदेश में कम कीमत पर अपना माल भर दें और विदेशी बाजारों पर कब्जा कर लें। पूँजीपतियों के ये संघ (इजारेदारी), ट्रस्ट और सिण्डीकेट कहलाते थे। क्रान्ति के बाद, उनकी संख्या और भी बढ़ गयी। बड़े बैंकों की तादाद में भी बढ़त हुई। उद्योग-धन्धों में इनकी भूमिका और महत्त्वपूर्ण हो गयी। रूस में विदेशी पूँजी का आयात बढ़ गया।

इस तरह, रूस में पूँजीवाद बढ़ते हुए पैमाने पर इजारेदार पूँजीवाद, साम्राज्यवादी पूँजीवाद बन रहा था। कई साल के गतिरोध के बाद, उद्योग-धन्धे फिर से चेतने लगे। कोयला, धातुएँ, तेल, सूती कपड़ा और शक्कर की पैदावार बढ़ गयी। गल्ले का निर्यात व्यापार बहुत बड़े पैमाने पर होने लगा।

हालाँकि रूस ने इस समय कुछ औद्योगिक उन्नति की, फिर भी पश्चिमी यूरोप के मुकाबले में वह पिछड़ा हुआ था और अब भी विदेशी पूँजीपतियों पर निर्भर था। रूस मशीनें और मशीनों के पुर्जे नहीं बनाता था-वे बाहर से मंगवाये जाते थे। उसके पास मोटरों के या रसायन के धन्धे नहीं थे। रासायनिक खाद भी वहाँ तैयार नहीं होती थी। लड़ाई का सामान तैयार करने में भी रूस दूसरे पूँजीवादी देशों से पिछड़ा हुआ था।

लेनिन ने बतलाया था कि धातुओं के खर्च के स्तर का नीचा होना देश के पिछड़े होने की निशानी है। लेनिन ने लिखा था :

> "किसानों की मुक्ति के बाद, पचास साल में रूस में लोहे का खर्च पाँच गुना बढ़ा है। फिर भी, रूस अभूतपूर्व ढंग से और अविश्वसनीय रूप से पिछड़ा हुआ, निर्धन और अर्द्ध-संस्कृत है। इंगलैण्ड के मुकाबले में, उत्पादन के आधुनिक साधन उसके पास एक चौथाई हैं, जर्मनी के मुकाबले में, 1/5 और अमरीका के मुकाबले में 1/10

हैं।" (**लेनिन ग्रंथावली**, रू.सं., खण्ड 16, पृष्ठ 543)।

रूस के आर्थिक और राजनीतिक रूप से पिछड़े होने का एक सीधा परिणाम यह था कि रूसी पूँजीवादी और खुद जारशाही दोनों ही पश्चिमी यूरोप के पूँजीवाद पर निर्भर थे।

यह इस बात से जाहिर होता था कि ऐसे महत्त्वपूर्ण उद्योग-धन्धे जैसे कि कोयला, तेल, बिजली का सामान और धातुओं की पैदावार-ये सब विदेशी पूँजी के हाथ में थे। जारशाही रूस को अपने लिये लगभग सभी मशीनें और मशीनों का सामान बाहर से मंगवाना पड़ता था।

यह इससे भी जाहिर होता था कि विदेशी ऋण की बेड़ी पड़ी हुई थी। इस ऋण का ब्याज देने के लिए, जारशाही हर साल जनता से करोड़ों रूबल दुह लेती थी।

इसके अलावा, यह इस बात से जाहिर होता था कि रूस के 'मित्रों' से गुप्त सन्धियाँ की गयी थीं जिनसे जार सरकार ने वायदा किया था कि लड़ाई होने पर लाखों रूसी सिपाही साम्राज्यवादी मोर्चो पर 'मित्रों' की मदद के लिए और अंग्रेज और फ्रांसीसी पूँजीपतियों के भारी मुनाफों की रक्षा करने के लिए पहुँच जायेंगे।

स्तोलिपिन प्रतिक्रियावाद के दौर में, हथियारबन्द सिपाहियों और पुलिस ने खास तौर से मजदूर वर्ग पर खूँख्वार हमले किये। जार के उकसावा पैदा करने वाले जासूसों ने और यमदूत सभा के गुण्डों ने हमले किये। लेकिन, अकेले जार के लगुओं-भगुओं ने ही मजदूरों को परेशान नहीं किया और सताया बल्कि इस मामले में कारखानेदारों और मिलमालिकों ने भी कम जोश नहीं दिखलाया। औद्योगिक गतिरोध और बढ़ती हुई बेकारी के दिनों में मजदूर वर्ग के खिलाफ इनके हमले ने खास तौर से जोर पकड़ा। कारखानेदारों ने तालेबन्दी का ऐलान किया और वर्ग-चेतन मजदूरों की, जो हड़तालों में सक्रिय हिस्सा लेते थे, काली फेहरिस्तें बनाईं। एक बार आदमी का नाम इन फेहरिस्तों में आ जाये तो किसी खास धन्धे के कारखानेदारों के संघ के कारखाने में उसे काम नहीं मिल सकता था। 1908 में ही, तनख्वाह में दस से पन्द्रह फीसदी तक कटौती हुई। हर जगह काम के घण्टे 10 से 12 तक बढ़ा दिये गये। भारी जुर्माने करने की प्रथा फिर जोरों से चल पड़ी।

1905 की क्रान्ति की पराजय से, क्रान्ति के सहयात्रियों की कतारों में विघटन और पतन का सिलसिला शुरू हो गया। खास तौर से बुद्धिजीवियों में अस्वस्थ और पतनशील रुझान बढ़ चले। जो सहयात्री पूँजीवादी खेमे से क्रान्ति की उठान के दिनों में आन्दोलन के साथ आ गये थे, वे प्रतिक्रियावाद के दिनों में पार्टी से अलग हो गये। उनमें से कुछ ने क्रान्ति के खुले दुश्मनों का साथ दिया। दूसरे लोग अब तक के बचे-खुचे कानूनी तौर से चलने वाले मजदूर वर्ग के सभा-समाजों में जम गये। वे कोशिश करने लगे कि सर्वहारा वर्ग को क्रान्ति के रास्ते से हटा दें और सर्वहारा वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी को बदनाम करें। क्रान्ति का साथ छोड़कर, सहयात्री कोशिश करने लगे कि वे प्रतिक्रियावादियों के स्नेहभाजन बनें और जारशाही के साथ शान्ति का सम्बन्ध कायम करके दिन बितायें।

जार सरकार ने क्रान्ति की हार से फायदा उठा कर, क्रान्ति के सहयात्रियों में से जो ज्यादा कायर और स्वार्थी थे, उन्हें अपना उकसावा पैदा करने वाला जासूस बनाया। ये नीच गद्दार जार की **ओखराना** की तरफ से मजदूर वर्ग और पार्टी-संगठनों में भेजे जाते थे,

जहाँ वे भीतर घुस कर जासूसी करते थे और क्रान्तिकारियों को पकड़वा देते थे।

क्रान्ति-विरोध का हमला सैद्धान्तिक मोर्चे पर भी हुआ। ऐसे फैशनेबल लेखकों का पूरा गिरोह सामने आया जो मार्क्सवाद की 'आलोचना' करता था और उसका 'खण्डन' करता था। यह गिरोह क्रान्ति का मजाक बनाता था, उसकी खिल्लियाँ उड़ाता था, गद्दारी की तारीफ करता था और 'व्यक्तिवाद' के नाम पर कामुक दुराचार की तारीफ करता था।

दर्शन के क्षेत्र में मार्क्सवाद की 'आलोचना' करने और उसमें संशोधन करने की कोशिशें बढ़ती गयीं। अर्द्ध-वैज्ञानिक सिद्धान्तों का नकाब ओढ़े, तरह-तरह के मजहबी सुझाव भी सामने आये।

मार्क्सवाद की 'आलोचना' करना फैशन में शामिल हो गया।

इन सभी सज्जनों का उद्देश्य एक ही था, हालाँकि उनके लिबास अलग-अलग थे। वह उद्देश्य था-जनता को क्रान्ति के रास्ते से हटाना।

पतनशीलता और सन्देहवाद का असर पार्टी-बुद्धिजीवियों के एक हिस्से पर भी पड़ा। ये वह लोग थे जो अपने को मार्क्सवादी कहते थे, लेकिन मार्क्सवाद के कभी दृढ़ समर्थक नहीं रहे थे। इनमें बोग्दानोव, बजारोव, लुनाचार्स्की (जिसने 1905 में बोल्शेविकों का साथ दिया था), यूश्केविच और वलेन्तिनोव (ये दोनों मेन्शेविक थे)। जैसे लेखक थे। इन्होंने एक तरफ तो अपनी आलोचना का हल्ला मार्क्सवादी सिद्धान्त के दार्शनिक आधार, यानी द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, के खिलाफ बोला और साथ ही दूसरी तरफ ऐतिहासिक विज्ञान के बुनियादी मार्क्सवादी उसूलों यानी ऐतिहासिक भौतिकवाद के खिलाफ बोला। आम तौर से जो आलोचना होती थी, उससे यह आलोचना इस बात में भिन्न थी कि वह खुल कर और मैदान में आकर नहीं की जाती थी। वह नकाब डालकर और बेईमानी से मार्क्सवाद के बुनियादी उसूलों के 'समर्थन' के बहाने की जाती थी। ये लोग दावा करते थे कि मुख्यतः वे मार्क्सवादी हैं, लेकिन मार्क्सवाद को और 'उन्नत' करना चाहते हैं। वे उसे उन्नत करना चाहते थे, उसके कुछ बुनियादी उसूलों को निकाल कर। वास्तव में, वे मार्क्सवाद के विरोधी थे। उन्होंने उसके सैद्धान्तिक आधार को कमजोर बनाने की कोशिश की, हालाँकि वे बेईमानी से, मार्क्सवाद का विरोधी होना मंजूर नहीं करते थे। वे दुरंगी नीति से अपने को मार्क्सवादी कहते थे। इस बेईमानी से भरी हुई आलोचना का खतरा इस बात में था कि उससे पार्टी के साधारण सदस्य बरगलाये जा सकते थे और वे रास्ते से भटक सकते थे। मार्क्सवाद के सैद्धान्तिक आधार को कमजोर बनाने के उद्देश्य से, यह आलोचना जितनी ही धूर्ततापूर्ण बनती गयी, उतनी ही वह पार्टी के लिए ज्यादा खतरनाक बनती गयी। कारण यह कि वह उतनी ही पार्टी के खिलाफ, क्रान्ति के खिलाफ, प्रतिक्रियावादियों के आम आन्दोलन से घुलमिल गयी। कुछ बुद्धिजीवी, जो मार्क्सवाद से नाता तोड़ चुके थे, एक नया धर्म तक कायम करने का समर्थन करने लगे (ये लोग 'देवताओं को खोजने वाले' और 'देवताओं को बनाने वाले' कहलाये)।

मार्क्सवादियों के लिए यह बहुत जरूरी हो गया कि मार्क्सवादी सिद्धान्त के प्रति इन गद्दारी करने वालों को मुँहतोड़ जवाब दिया जाये, उनके चेहरों से नकाब खींच ली जाये, पूरी तरह उनका पर्दाफाश किया जाये और इस तरह मार्क्सवादी पार्टी के सैद्धान्तिक आधार

की रक्षा की जाये।

उम्मीद की जा सकती थी कि प्लेखानोव और उनके मेन्शेविक दोस्त, जो अपने को 'उच्चकोटि का मार्क्सवादी सिद्धान्तकार' समझते थे, यह काम उठायेंगे, लेकिन उन्होंने अखबारी किस्म की एक-दो आलोचनात्मक टिप्पणियों के छर्रे दाग कर ही मैदान छोड़ देना ज्यादा अच्छा समझा।

1909 में प्रकाशित अपनी प्रसिद्ध कृति **भौतिकवाद और अनुभवसिद्ध आलोचना** में, यह काम लेनिन ने किया।

लेनिन ने लिखा था :

> "छह महीने से भी कम में चार किताबें निकली हैं, जिनमें मुख्यतः और करीब-करीब अकेले द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद पर हमले किये गये हैं। इनमें सबसे पहले बजारोव, बोग्दानोव, लुनाचार्स्की, बरमान, हैलफोण्ड, यूश्केविच और सुवोरोव का लेख-संग्रह है। इसका नाम है-*मार्क्सवादी दर्शन* का (ज्यादा उचित शीर्षक होता मार्क्सवादी दर्शन के 'खिलाफ') *अध्ययन,* (सेण्ट पीटर्सबर्ग, 1908)। दूसरी किताब यूश्केविच की **भौतिकवाद और आलोचनात्मक यथार्थवाद** है। तीसरी बरमान की **आधुनिक ज्ञान मीमांसा के प्रकाश में द्वन्द्ववाद** है, और चौथी वलेन्तिनोव की **मार्क्सवाद की दार्शनिक रूपरेखा**... । ये सभी लोग तीव्र राजनीतिक मतभेद होते हुए भी द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का विरोध करने में एक हैं। इसके साथ ही, वे अपने को दर्शन में मार्क्सवादी भी कहते हैं! बरमान का कहना है कि एंगेल्स का द्वन्द्ववाद 'रहस्यवाद' है। बजारोव ने चलते-फिरते कहा है कि "एंगेल्स के विचार पुराने पड़ गये हैं", मानो यह कोई स्वयंसिद्ध बात हो। इस तरह, मालूम होता है कि हमारे साहसी योद्धाओं ने भौतिकवाद का खण्डन कर दिया है। ये लोग गर्व के साथ 'आधुनिक ज्ञान मीमांसा' 'नवीन दर्शन' (या 'पिछले दिनों का पॉजिटिविज्म'), 'आधुनिक प्रकृति-विज्ञान का दर्शन', या 'बीसवीं सदी के प्रकृति-विज्ञान का दर्शन' का भी हवाला देते हैं। (लेनिन, **भौतिकवाद और अनुभवसिद्ध आलोचना**, अं.सं., मास्को, 1947, पृष्ठ 9)।

लुनाचार्स्की ने अपने दोस्तों-दर्शनशास्त्र के संशोधनवादियों-की हिमायत में कहा था : "शायद हम भटक गये हैं, लेकिन रास्ता ढूँढ रहे हैं।" लेनिन ने लुनाचार्स्की को जवाब देते हुए कहा था :

> "जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मैं भी दर्शनशास्त्र में कुछ "ढूँढ़ रहा हूँ"। इन टिप्पणियों (यानी **भौतिकवाद और अनुभवसिद्ध आलोचना**-सं.) में, मैंने अपने सामने यह काम रखा है कि इस बात का पता लगाऊँ कि इन लोगों के सामने ऐसी कौन सी अड़चनें थीं जिनकी वजह से मार्क्सवाद के लिबास में इन्होंने जो कुछ पेश किया है, वह इतना उलझा हुआ, घपले में पड़ा हुआ और प्रतिक्रियावादी है कि उस पर विश्वास नहीं होता।" (उप., पृष्ठ 10)।

वास्तव में, लेनिन की किताब इस विनम्र कर्त्तव्य से बहुत आगे जा पहुँची। दरअसल, यह किताब बोग्दानोव, यूश्केविच, बजारोव और वलेन्तिनोव और उनके दर्शन-गुरुओं

अवेनारिउस और माख-की आलोचना से बढ़ कर भी कुछ और है। ये दर्शन-गुरु कोशिश करते थे कि अपनी कृतियों में मार्क्सवादी भौतिकवाद के खिलाफ नफीस और सुसंस्कृत भाववाद पेश करें। लेनिन की किताब में मार्क्सवाद के सैद्धान्तिक आधार-द्वन्द्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवाद-का समर्थन भी है। एंगेल्स की मृत्यु से लेकर लेनिन की भौतिकवाद और अनुभवसिद्ध आलोचना के निकलने तक, इस समूचे ऐतिहासिक दौर में विज्ञान ने जो कुछ तत्व और महत्त्व की बातें ढूँढ़ निकाली थीं, और खास तौर से प्रकृति-विज्ञान ने ढूँढ़ निकाली थीं, उन सबसे लेनिन ने भौतिकवादी ढंग से आम नतीजे निकाल कर इस किताब में इकट्ठे किये थे।

इस किताब में रूसी अनुभवसिद्ध आलोचकों और उनके विदेशी गुरुओं की समुचित आलोचना करने के बाद, लेनिन ने दार्शनिक और सैद्धान्तिक संशोधनवाद के बारे में निम्नलिखित नतीजे निकाले हैं :

1. "मार्क्सवाद के लिबास में मार्क्सवाद को और भी चतुराई से झुठलाना, भौतिकवाद-विरोधी सिद्धान्तों को और भी चतुराई से पेश करना-अर्थशास्त्र में, कार्यनीति के सवालों पर और दर्शनशास्त्र में आम तौर से-आधुनिक संशोधनवाद की यह विशेषता है।" (उप., पृष्ठ 342-43)।

2. "माख और अवेनारिउस की पूरी-पूरी विचारधारा भाववाद की तरफ बढ़ रही है।" (उप., पृष्ठ 370)।

3. "हमारे सभी माखवादी भाववाद के जाल में फँस गये हैं।" (उप. पृष्ठ 359)।

4. "अनुभवसिद्ध आलोचना के तमाम ज्ञान-सम्बन्धी शास्त्रार्थ के पीछे दर्शन के क्षेत्र में पार्टियों के संघर्ष को नहीं देखना असम्भव है। यह संघर्ष ऐसा है जो छानबीन करने पर अन्त में मौजूदा समाज के विरोधी वर्गों के रुझान और विचारधारा को जाहिर करता है।" (उप., पृष्ठ 371)।

5. "अनुभवसिद्ध आलोचना की वस्तुगत, वर्गगत भूमिका पूरी तरह इस बात में है कि वह श्रद्धावादियों (प्रतिक्रियावादियों, जो श्रद्धा को विज्ञान से बढ़ कर मानते थे-सं.) की वफादारी से सेवा करती है। यह सेवा भौतिकवाद के खिलाफ आम तौर से, और ऐतिहासिक भौतिकवाद के खिलाफ खास तौर से, श्रद्धावादियों के संघर्ष में प्रकट होती है।" (उप., पृष्ठ 371)।

6. "दार्शनिक भाववाद... धर्म-सम्बन्धी अन्धविश्वास तक पहुँचने के लिए एक सड़क है।" (**लेनिन ग्रंथावली**, रूसी संस्करण, खण्ड 13, पृष्ठ 304)।

यह जानने के लिए कि हमारी पार्टी के इतिहास में लेनिन की पुस्तक ने कैसी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की और यह समझने के लिए कि स्तोलिपिन प्रतिक्रियावाद के दौर में संशोधनवादियों और गद्दारों की रंग-बिरंगी जमात से लेनिन ने किस सैद्धान्तिक निधि की रक्षा की, हमें द्वन्द्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवाद के बुनियादी उसूलों से, संक्षेप में ही सही, परिचित हो जाना चाहिए।

यह सब इसलिए और भी जरूरी है कि द्वन्द्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवाद कम्युनिज्म का सैद्धान्तिक आधार है, वह मार्क्सवादी पार्टी का सैद्धान्तिक आधार है और इसलिए, हमारी

पार्टी के हर सक्रिय सदस्य का कर्त्तव्य है कि वह इन उसूलों को जाने और उनका अध्ययन करे।

तब, 1. द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद और 2. ऐतिहासिक भौतिकवाद हैं क्या?

2. द्वन्द्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवाद।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टी का विश्व-दर्शन है। इसे द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद इसलिए कहते हैं कि प्रकृति के घटना-प्रवाह की तरफ इसका रुख, उसका अध्ययन करने और उसे समझने का इसका तरीका द्वन्द्ववादी है। प्रकृति के घटना-प्रवाह की व्याख्या करने, इस घटना-प्रवाह के बारे में उसके विचार, उसके सिद्धान्त भौतिकवादी हैं।

ऐतिहासिक भौतिकवाद सामाजिक जीवन में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के उसूलों को लागू करता है। वह सामाजिक जीवन के घटना-प्रवाह में, समाज और उसके इतिहास के अध्ययन में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के उसूलों को लागू करता है।

मार्क्स और एंगेल्स जब अपनी द्वन्द्वात्मक पद्धति का वर्णन करते हैं तो वे आम तौर से दार्शनिक हीगेल का हवाला देते हैं, जिसने द्वन्द्ववाद के मुख्य लक्षण बतलाये थे। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि मार्क्स और एंगेल्स का द्वन्द्ववाद हीगेल के द्वन्द्ववाद से बिल्कुल मिलता-जुलता है। दरअसल, मार्क्स और एंगेल्स ने हीगेल के द्वन्द्ववाद से उसका 'बुद्धिसंगत तत्व' ही लिया था। उन्होंने हीगेल के भाववाद का छिलका अलग कर दिया था। उन्होंने द्वन्द्ववाद को और आगे विकसित किया था, जिससे उसे एक आधुनिक वैज्ञानिक रूप मिले।

मार्क्स ने कहा था :

> "मेरा द्वन्द्ववादी तरीका हीगेल के तरीके से भिन्न ही नहीं है, बल्कि उसका ठीक उल्टा है। हीगेल... विचार करने की प्रक्रिया को 'विचार' के नाम पर एक स्वतंत्र विषय तक बना देते हैं। उनके लिए यही चिन्तन वास्तविक संसार की प्रेरणा-शक्ति (उसका रचयिता) है। उनके लिए वास्तविक संसार सिर्फ 'विचार' का बाहरी, घटना-प्रवाह वाला रूप है। इसके विपरीत, मेरे लिए विचार इसके सिवा कुछ नहीं है कि भौतिक संसार ही इनसान के दिमाग में प्रतिबिम्बित हुआ है और विचार के रूपों में तब्दील हो गया है।" (कार्ल मार्क्स, पूँजी, खण्ड 1, पृष्ठ 30, जार्ज एलेन एण्ड अनविन लिमिटेड, 1938)।

अपने भौतिकवाद का वर्णन करते हुए, मार्क्स और एंगेल्स अकसर दार्शनिक फायरबाख का हवाला देते हैं, जिसने भौतिकवाद को उसके उचित अधिकार दिलाये थे। लेकिन, इसका यह मतलब नहीं है कि मार्क्स और एंगेल्स का भौतिकवाद फायरबाख के भौतिकवाद से बिल्कुल मिलता-जुलता है। दरअसल, मार्क्स और एंगेल्स ने फायरबाख के भौतिकवाद से उसका 'आन्तरिक तत्व' निकाल लिया था। उन्होंने उसे भौतिकवाद के वैज्ञानिक दार्शनिक सिद्धान्त के रूप में विकसित किया। उन्होंने उसके भाववादी और धार्मिक-नैतिक

लवाजमे को फेंक दिया। फायरबाख बुनियाादी तौर से भौतिकवादी था, लेकिन हम जानते हैं कि वह भौतिकवाद नाम पर आपत्ति करता था। एंगेल्स ने कई बार कहा था कि भौतिकवादी "बुनियाद के बावजूद फायरबाख भाववाद की परम्परागत बेड़ियों में जकड़ा रहा" और "फायरबाख का असली भाववाद वैसे ही जाहिर हो जाता है जैसे ही हम धर्म और नैतिकता के उसके दर्शन के नजदीक पहुँचते हैं।" (कार्ल मार्क्स, सं.ग्रं., अं.सं., मास्को, 1946, खण्ड 1, पृष्ठ 373-375)।

दियालेक्तिका (द्वन्द्ववाद) शब्द ग्रीक धातु दियालेगो से बना है, जिसका अर्थ है चर्चा करना, वाद-विवाद करना। पुराने जमाने में, द्वन्द्ववाद वह कला थी जिससे विरोधी की दलीलों में असंगतियाँ दिखला कर और उन असंगतियों को दूर करके सत्य तक पहुँचा जा सकता था। पुराने जमाने में, ऐसे दार्शनिक थे जो समझते थे कि चिन्तन की असंगतियाँ प्रकट करना और विरोधी विचारों का टकराना सच्चाई तक पहुँचने का सबसे अच्छा तरीका है। चिन्तन का यह द्वन्द्ववादी तरीका, जो बाद में प्रकृति के घटना-प्रवाह पर भी लागू किया गया, विकसित होकर प्रकृति को जानने-पहचानने का द्वन्द्ववादी तरीका बन गया। इस तरीके के अनुसार, प्रकृति का घटना-प्रवाह सदा ही गतिशील है और सदा ही परिवर्तनशील है। इस तरीके के अनुसार, प्रकृति का विकास प्रकृति की असंगतियों के विकास का ही नतीजा है, प्रकृति के भीतर विरोधी शक्तियों के घात-प्रतिघात का ही नतीजा है।

तत्व रूप से, द्वन्द्ववाद अधिभूतवाद (मेटाफिजिक्स) का ठीक उल्टा है।

1. **मार्क्सवादी द्वन्द्वात्मक पद्धति** के मुख्य लक्षण ये हैं :

(क) अधिभूतवाद के विपरीत, द्वन्द्ववाद प्रकृति को वस्तुओं का आकस्मिक संग्रह नहीं मानता, उसे एक-दूसरे से विच्छिन्न, एक-दूसरे से अलग और स्वतंत्र घटना-प्रवाह नहीं मानता। उसके अनुसार, प्रकृति एक सुसम्बद्ध और अविच्छिन्न इकाई है जिसमें वस्तुएँ, घटना-प्रवाह एक-दूसरे से आन्तरिक रूप से सम्बन्धित हैं, एक-दूसरे पर निर्भर हैं और एक-दूसरे की रूपरेखा निश्चित करती हैं।

इसलिए द्वन्द्ववादी तरीके के अनुसार, प्रकृति के किसी भी घटना-प्रवाह को अकेले लेकर, आसपास के घटना-प्रवाह से अलग करके नहीं समझा जा सकता। कारण यह कि प्रकृति के क्षेत्र में कोई भी घटना-प्रवाह आसपास की परिस्थितियों के सन्दर्भ में नहीं देखा जाये, बल्कि उनसे अलग करके देखा जाये तो वह हमारे लिए अर्थहीन हो जाता है। इसी तरह, कोई भी घटना-प्रवाह यदि अपने आसपास के घटना-प्रवाह के अटूट सन्दर्भ में देखा जाये, आसपास के घटना-प्रवाह से उसकी रूपरेखा निश्चित होती है, यह ध्यान में रख कर देखा जाये, तो वह समझा जा सकता है और उसकी व्याख्या की जा सकती है।

(ख) अधिभूतवाद के खिलाफ, द्वन्द्ववाद का कहना है कि प्रकृति स्थिरता और गतिहीनता, ठहराव और अपरिवर्तनशीलता की दशा नहीं है। वह सतत गतिशीलता और परिवर्तनशीलता, सतत नवीनता और विकास की दशा है। वह ऐसी दशा है जिसमें कोई चीज हमेशा उगती और विकसित होती रहती है और कोई चीज हमेशा जर्जर होती और मरती रहती है।

इसलिए, द्वन्द्ववादी तरीके की माँग है कि घटना-प्रवाह पर इसी दृष्टि से विचार नहीं किया

जाये कि वह दूसरे से सम्बन्धित और उस पर निर्भर है, बल्कि इस दृष्टि से भी कि वह गतिशील है, बदलता है, विकसित होता है, जन्मता है और मरता है।

द्वन्द्वात्मक पद्धति के अनुसार, सबसे ज्यादा महत्त्व उस चीज का नहीं है जो किसी खास समय टिकाऊ तो मालूम होती है लेकिन जिसका ह्रास शुरू हो चुका है। सबसे महत्त्व की चीज वह है जो उग रही है और विकसित हो रही है, भले ही किसी खास समय वह टिकाऊ नहीं मालूम होती हो। द्वन्द्ववादी तरीका उसी को अजेय मानता है जो उग रही हो और विकासमान हो।

एंगेल्स ने लिखा है :

> "छोटी से छोटी चीज से लेकर बड़ी से बड़ी तक, बालू के कण से लेकर सूरज तक, प्रोटिस्टा (सूक्ष्म जीव वर्ग-सं.) से लेकर मनुष्य तक, प्रकृति जन्म और मरण की निरन्तर दशा में है। वह एक चिरन्तन गतिशीलता, गति और परिवर्तन की अविराम दशा में है।" (एंगेल्स, **प्रकृति की द्वन्द्वात्मकता**)।

इसलिए, एंगेल्स का कहना है कि द्वन्द्ववाद "वस्तुओं को और उनके गोचर प्रतिरूपों को तत्व रूप से एक-दूसरे से सम्बन्धित, उनके संयोग, उनकी गतिशीलता उनके जन्म और निर्वाण की दशा में देखता है।" (एंगेल्स, **ड्यूहरिंग मत खण्डन**)।

(ग) अधिभूतवाद के विपरीत, द्वन्द्ववाद के लिए विकास का सिलसिला साधारण प्रगति का सिलसिला नहीं है। वह ऐसा सिलसिला नहीं है जिसमें परिमाण की तब्दीली से गुण में तब्दीली नहीं होती। वह ऐसा विकास है जो परिमाण में बहुत ही मामूली और करीब-करीब नहीं दिखाई देने वाली तब्दीली से खुली, बुनियादी तब्दीली की तरफ, गुण में तब्दीली की तरफ बढ़ जाता है। वह ऐसा विकास है जिसमें गुण में तब्दीली धीरे-धीरे नहीं होती, बल्कि तेजी से और सहसा होती है, वह एक दशा से दूसरी दशा तक छलाँग का रूप लेती है। यह तब्दीली आकस्मिक नहीं होती, बल्कि परिमाण में प्रायः अस्पष्ट और धीरे-धीरे होने वाली तब्दीली के संचय का स्वाभाविक नतीजा होती है।

इसलिए, द्वन्द्ववादी तरीके का कहना है कि विकास के सिलसिले को एक ही चक्र में घूमने वाली गति की तरह, जो पहले ही हो चुका है उसी के मामूली दुहराव की तरह नहीं समझना चाहिए। विकास के सिलसिले को आगे की तरफ और ऊपर की तरफ गति के रूप में समझना चाहिए। उसे पुरानी गुणात्मक दशा से एक नयी गुणात्मक दशा की तरफ आगे बढ़ने के रूप में समझना चाहिए। उसे ऐसा विकास समझना चाहिए जो साधारण से संश्लिष्ट की तरफ, निम्न से उच्चतर की तरफ होता है।

एंगेल्स का कहना है :

> "द्वन्द्ववाद की कसौटी प्रकृति है। कहना पड़ेगा कि आधुनिक प्रकृति-विज्ञान ने इस कसौटी के लिए बहुत ही भरी-पूरी सामग्री दी है, जो दिन पर दिन बढ़ती जाती है। इस तरह, आधुनिक प्रकृति-विज्ञान ने साबित कर दिया है कि आखिर तक छानबीन करने पर प्रकृति का क्रम द्वन्द्ववादी है, नहीं कि अधिभूतवादी। यह क्रम सदा के लिए समान और सदा ही दुहराये जाने वाले घेरे में नहीं होता, बल्कि उसके विकास

का सच्चा इतिहास है। यहाँ पर सबसे पहले डारविन का जिक्र करना चाहिए, जिसने प्रकृति के बारे में अधिभूतवादी विचार पर करारी चोट की। उसने साबित किया कि आज का जीवित संसार, पौधे और पशु और फलतः मनुष्य भी, सभी ऐसे विकास-क्रम की उपज हैं जिसकी प्रगति लाखों साल से होती आयी है।" (उप.)।

द्वन्द्वात्मक विकास परिमाण की तब्दीली से गुण की तब्दीली की तरफ बढ़ता है, यह बतलाते हुए एंगेल्स ने कहा है :

"भौतिक विज्ञान में... हर तब्दीली परिमाण की गुण में तब्दीली है। यह तब्दीली गति के किसी रूप की परिमाण-सम्बन्धी तब्दीली का नतीजा होती है। गति का यह रूप या तो किसी वस्तु में निहित होता है या बाहर से उसे दिया जाता है। मिसाल के लिए, पानी की गरमी का पहले उसकी तरलता पर कोई असर नहीं होता। लेकिन जैसे-जैसे द्रवित जल की गरमी बढ़ती या कम होती है, एक क्षण ऐसा आता है जब यह भीतरी दशा बदल जाती है और पानी या तो भाप बन जाता है या बरफ बन जाता है।... प्लैटिनम के तार को एक निश्चित अल्पतम करेण्ट की जरूरत होती है। हर धातु तापमान के किसी बिन्दु पर पहुँच कर गलने लगती है। हरेक द्रव पदार्थ एक बिन्दु पर पहुँच कर जमने लगता है और एक निश्चित दबाव पड़ने पर खौलने लगता है। और, हम प्राप्य साधनों से इन आवश्यक तापमानों तक पहुँच सकते हैं। इसी तरह, हरेक गैस का भी एक ऐसा विशेष बिन्दु होता है जहाँ जरूरी दबाव या ठण्डक पहुँचाने से उसे हम द्रव पदार्थ में बदल सकते हैं।.. भौतिक विज्ञान में जिन्हें हम 'कान्स्टेण्ट' (स्थिर बिन्दु) (वह बिन्दु जहाँ एक दशा दूसरी में तब्दील हो जाती है- सं.) कहते हैं, वे ज्यादातर 'नोडल पॉइन्ट' (चरम बिन्दु) के नाम हैं, जहाँ पर परिमाण की (तब्दीली-सं., गति की घटती या बढ़ती किसी वस्तु की दशा में गुणात्मक तब्दीली पैदा कर देती है और इसके फलस्वरूप जहाँ पर परिमाण गुण में बदल जाता है।" (**प्रकृति की द्वन्द्वात्मकता**)।

आगे, रसायनविज्ञान की तरफ आकर एंगेल्स कहते हैं :

"रसायन के लिए कहा जा सकता है कि यह गुणात्मक तब्दीलियों का विज्ञान है। परिमाण-सम्बन्धी बनावट की तब्दीली के फलस्वरूप, वस्तुओं में गुणात्मक तब्दीली होती है। हीगेल को इस बात का तभी पता था।... मिसाल के लिए, 'आक्सीजन' लीजिये। अगर इसके अणु में सहज दो के बदले तीन परमाणु हों तो 'ओजोन' बन जाता है। यह वस्तु अपनी गन्ध और प्रतिक्रिया में मामूली 'आक्सीजन' से निश्चित रूप से भिन्न होती है। और, इस बात का जिक्र ही क्या कि अलग-अलग तादाद में अगर 'आक्सीजन' को 'नाइट्रोजन' या गन्धक से मिलाया जाये तो हर बार ऐसी चीज बनेगी जो गुण में उसे बनाने वाली सभी चीजों से भिन्न होगी।" (उप.)।

अन्त में, एंगेल्स ने इस सिलसिले में ड्यूहरिंग की आलोचना की है। ड्यूहरिंग ने पूरा जोर लगाकर हीगेल को डाँट-फटकार बतलाई थी, लेकिन उसने चोरी-चोरी हेगेल का यह प्रसिद्ध विचार ले लिया था कि अचेतन संसार से चेतन की तरफ प्रगति, निर्जीव पदार्थों

के संसार से सजीव पदार्थों के संसार की तरफ प्रगति, एक नयी दिशा की तरफ छलाँग भरना है।

एंगेल्स ने लिखा है :

> "यह हीगेल की माप-सम्बन्धी 'नोडल लाइन' (चरम रेखा) ही है। किसी निश्चित चरम बिन्दु तक पहुँच कर सिर्फ परिमाण की घटती या बढ़ती से **गुणात्मक छलाँग** पैदा हो जाती है। मिसाल के लिए, जब पानी को गरम करते हैं या ठण्डा करते हैं तो उसके खौलने और जमने के बिन्दु वे चरम बिन्दु हैं जहाँ पर-सहज दबाव पड़ने पर-एक पूर्ण नयी दशा की तरफ छलाँग भरी जाती है और इसके फलस्वरूप, जहाँ परिमाण गुण में बदल जाता है।" (एंगेल्स, **'ड्यूहरिंग मत खण्डन**)।

(घ) अधिभूतवाद के खिलाफ, द्वन्द्ववाद का कहना है कि सभी वस्तुओं और प्रकृति के सभी घटना-प्रवाहों में अन्तरविरोध निहित हैं। उन सभी का आस्ति पक्ष और नास्ति पक्ष होता है, भूत और भविष्य होता है, कुछ तत्व मरते और कुछ तत्व विकासमान होते हैं। इन विरोधी तत्वों का संघर्ष, पुराने और नये का संघर्ष, मरणशील और अभ्युदयशील का संघर्ष, मरणशील और विकासमान का संघर्ष विकासक्रम की भीतरी विषयवस्तु है, वह परिमाण में तब्दीलियों के गुण में तब्दीलियाँ बनने की भीतरी विषयवस्तु है।

इसलिए, द्वन्द्ववादी तरीके का कहना है कि निम्न से उच्चतर की तरफ विकास का सिलसिला घटना-प्रवाह की शान्तिमय प्रगति का रूप नहीं लेता। वह वस्तुओं और घटना-प्रवाह में निहित असंगतियों के प्रकट होने का रूप लेता है, वह उन विरोधी रुझानों के 'संघर्ष' का रूप लेता है जो रुझान इन असंगतियों के आधार पर क्रियाशील होते हैं।

लेनिन का कहना है :

> "अपने सही अर्थ में, द्वन्द्ववाद **वस्तुओं के मूल तत्व में ही** असंगतियों का अध्ययन है।" (लेनिन, **दर्शन-सम्बन्धी नोटबुक,** रूसी संस्करण, पृष्ठ 263)।

और आगे :

> "विकास परस्पर विरोधी तत्वों के बीच का 'संघर्ष' है।" (**लेनिन ग्रंथावली,** रूसी संस्करण, खण्ड 13, पृष्ठ 301)।

मार्क्सवादी द्वन्द्वात्मक पद्धति के मुख्य लक्षण, संक्षेप में, ये हैं :

यह समझना आसान है कि द्वन्द्वात्मक पद्धति के उसूलों को सामाजिक जीवन और समाज के इतिहास के अध्ययन पर लागू करना कितना महत्त्वपूर्ण है और समाज के इतिहास और सर्वहारा वर्ग की पार्टी की अमली कार्रवाई पर उन्हें लागू करना कितने भारी महत्त्व की बात है।

अगर संसार में अलग-अलग घटना-प्रवाह नहीं हैं, अगर सभी घटना-प्रवाह परस्पर निर्भर और सम्बन्धित हैं, तो यह बात साफ है कि किसी समाज-व्यवस्था या इतिहास के किसी सामाजिक आन्दोलन का मूल्यांकन 'शाश्वत न्याय' के विचार से और किसी पूर्व निश्चित धारणा के अनुसार नहीं करना चाहिए, जैसा कि इतिहासकार बहुत बार करते हैं।

यह मूल्यांकन उन परिस्थितियों के लिहाज से करना चाहिए जिन्होंने उस व्यवस्था को या उस सामाजिक आन्दोलन को जन्म दिया था और जिससे वे सम्बन्धित हैं।

आजकल की परिस्थितियों में गुलामी की प्रथा निरर्थक, मूर्खतापूर्ण और अस्वाभाविक होगी। लेकिन उन परिस्थितियों में, जब आदिम साम्यवादी व्यवस्था टूट रही थी, तब गुलामी की प्रथा बिल्कुल सार्थक और एक स्वाभाविक घटना-प्रवाह थी। कारण यह कि उस समय वह आदिम साम्यवादी व्यवस्था से आगे बढ़ी हुई व्यवस्था थी।

जब जारशाही और पूँजीवादी समाज 1905 के रूस में मौजूद थे, तब पूँजीवादी-जनवादी गणतंत्र की माँग एक बिल्कुल सार्थक, उचित और क्रान्तिकारी माँग थी क्योंकि उस समय पूँजीवादी जनतंत्र एक आगे बढ़ा हुआ कदम होता। लेकिन, अब सोवियत संघ की परिस्थितियों में पूँजीवादी-जनवादी गणतंत्र की माँग एक निरर्थक और क्रान्ति-विरोधी माँग होगी) क्योंकि सोवियत जनतंत्र के मुकाबले में पूँजीवादी जनतंत्र पीछे की तरफ कदम होगा।

सब कुछ परिस्थितियों पर, देश और काल पर निर्भर है।

यह बात साफ है कि सामाजिक घटना-प्रवाह की तरफ इस **ऐतिहासिक** रुख के बिना इतिहास-विज्ञान का अस्तित्व और विकास नामुमकिन है। यही रुख इतिहास-विज्ञान को इस बात से बचाता है कि वह केवल घटना-संग्रह और बेहद भद्दी भूलों की सूची न बन जाये।

और भी, अगर संसार सतत गतिशीलता और विकास की दशा में है, अगर प्राचीन का मरना और नवीन की बढ़त विकास का नियम है, तो यह बात साफ है कि कोई भी समाज-व्यवस्था 'अजर-अमर' नहीं है, व्यक्तिगत सम्पत्ति और शोषण के कोई भी 'अमर सिद्धान्त' नहीं हैं, कोई भी ऐसे 'शाश्वत विचार' नहीं हैं जिनके अनुसार किसान जमीन्दार की, और मजदूर पूँजीपति की गुलामी करे।

इसलिए, समाजवादी व्यवस्था पूँजीवादी व्यवस्था की जगह ले सकती है, वैसे ही, जैसे एक समय पूँजीवादी व्यवस्था ने सामन्ती व्यवस्था की जगह ली थी।

इसलिए, हमें अपने दृष्टिकोण का आधार समाज के उन स्तरों को नहीं बनाना चाहिए जो अब विकसित नहीं हो रहे हैं, भले ही वह इस समय एक प्रमुख शक्ति हों। हमें उन स्तरों को अपना आधार बनाना चाहिए जो विकसित हो रहे हैं और जिनके सामने भविष्य है, भले ही इस समय वे प्रमुख शक्ति न बन पाये हों।

1880 के लगभग, जब मार्क्सवादियों और नरोदवादियों में संघर्ष हो रहा था तब रूस का सर्वहारा वर्ग आबादी का एक तुच्छ अल्पसंख्यक भाग था, और निजी मिल्कियत वाले किसान आबादी का भारी बहुसंख्यक हिस्सा थे। लेकिन, वर्ग रूप में सर्वहारा विकसित हो रहा था, जबकि वर्ग रूप में किसान टूट रहे थे। और, इसी वजह से कि वर्ग रूप में सर्वहारा विकसित हो रहा था, मार्क्सवादियों ने सर्वहारा को अपने दृष्टिकोण का आधार बनाया। और, इसमें उन्होंने भूल नहीं की थी क्योंकि, जैसा हम जानते हैं, सर्वहारा वर्ग आगे चलकर एक नगण्य शक्ति से बढ़ कर प्रथम कोटि की ऐतिहासिक और राजनीतिक शक्ति बन गया।

इसलिए नीति में गलती न करने के लिए, यह जरूरी है कि हमारी दृष्टि आगे की तरफ

हो न कि पीछे की तरफ।

और भी, अगर धीरे-धीरे होने वाली परिमाण की तब्दीली तेजी से और सहसा होने वाली गुण की तब्दीली बन जाती है और यह विकास का नियम है, तो यह बात साफ है कि पीड़ित वर्ग जब क्रान्ति करते हैं तो यह काम एकदम स्वाभाविक और लाजिमी घटना होता है।

इसलिए, पूँजीवाद से समाजवाद की तरफ प्रगति और पूँजीवाद की गुलामी से मजदूर वर्ग की मुक्ति धीमी-धीमी तब्दीली से, सुधारों से, नहीं हो सकती बल्कि पूँजीवादी व्यवस्था के गुण में ही तब्दीली से, क्रान्ति से ही हो सकती है।

इसलिए नीति में गलती न करने के लिए, यह जरूरी है कि हम क्रान्तिकारी हों न कि सुधारवादी।

और भी, अगर विकास का सिलसिला भीतरी असंगतियों के उभर कर सामने आने से चलता है, इन असंगतियों के आधार पर विरोधी शक्तियों की टक्कर से होता है और इन असंगतियों को खत्म करके होता है, तो यह बात साफ है कि सर्वहारा का वर्ग-संघर्ष एक बिल्कुल स्वाभाविक और लाजिमी घटना है।

इसलिए, हमें पूँजीवादी व्यवस्था की असंगतियों पर पर्दा नहीं डालना चाहिए बल्कि उन्हें उभारना और प्रकट करना चाहिए। हमें वर्ग-संघर्ष को रोकना नहीं चाहिए, बल्कि उसके परिणाम तक उसे ले जाना चाहिए।

इसलिए नीति में गलती न करने के लिए, जरूरी है कि हम बिना समझौते की सर्वहारा की वर्ग-नीति का पालन करें, हम मजदूरों और पूँजीपतियों के हितों के सामंजस्य की सुधारवादी नीति का पालन न करें, हम समझौतावादियों की इस नीति का पालन न करें कि "पूँजीवाद बढ़ते-बढ़ते समाजवाद में बदल जायेगा।"

सामाजिक जीवन पर, समाज के इतिहास पर लागू किया जाने वाला मार्क्सवादी द्वन्द्वात्मक तरीका यही है।

जहाँ तक मार्क्सवादी दार्शनिक भौतिकवाद का सम्बन्ध है, वह बुनियादी तौर से दार्शनिक भाववाद का ठीक उल्टा है।

(2) **मार्क्सवादी दार्शनिक भौतिकवाद** के मुख्य लक्षण इस प्रकार हैं :

(क) भाववाद के अनुसार, संसार एक 'निरपेक्ष विचार', एक 'सर्वव्यापी आत्मा', 'चेतना' का मूर्त स्वरूप है। इसके खिलाफ, मार्क्स के दार्शनिक भौतिकवाद का कहना है कि संसार अपने स्वभाव से ही **भौतिक** है, संसार के विभिन्न घटना-प्रवाह गतिशील पदार्थ के विभिन्न रूप हैं। द्वन्द्ववादी पद्धति ने घटना-प्रवाहों का जो परस्पर सम्बन्ध और निर्भरता कायम की है, वह गतिशील पदार्थ के विकास का नियम है। संसार पदार्थ की गति के नियमों के अनुसार विकसित होता है और उसे 'विश्वव्यापी आत्मा' की कोई जरूरत नहीं है।

एंगेल्स ने लिखा है :

> "प्रकृति के बारे में भौतिकवादी दर्शन का इसके सिवा कोई मतलब नहीं है कि प्रकृति जैसी है, बिना किसी बाहरी मिलावट के, वैसी ही समझी जाये।" (एंगेल्स,

लुडविग फायरबाख, अं.सं., मास्को, 1934, पृष्ठ 79)।

प्राचीन दार्शनिक हिरेक्लाइटस का मत था कि "संसार को, अनेक की एकता को, किसी देवता या मनुष्य ने नहीं रचा था बल्कि वह एक सजीव ज्योति थी, है और हमेशा रहेगी, जो नियमित रूप से जल उठती है और नियमित रूप से ही ठण्डी पड़ जाती है।" इस मत की चर्चा करते हुए, लेनिन ने टिप्पणी की थी : "द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के मूल तत्वों की यह बहुत अच्छी व्याख्या है।" (लेनिन, **दर्शन-सम्बन्धी नोटबुक,** रूसी संस्करण, पृष्ठ 318)।

(ख) भाववाद का दावा है कि वास्तव में केवल हमारी चेतना की ही सत्ता है; भौतिक संसार, सत्ता, प्रकृति, केवल हमारी चेतना में, हमारे संवेदनों में, विचारों और गोचरता में रहती है। इसके खिलाफ, मार्क्सवादी भौतिकवादी दर्शन का कहना है कि पदार्थ, प्रकृति, सत्ता एक वस्तुगत सच्चाई है। उसका अस्तित्व हमारी चेतना से बाहर और स्वतंत्र होता है। मूल वस्तु पदार्थ है क्योंकि वही संवेदनों, विचारों और चेतना का स्रोत है। चेतना गौण है, उसी से उत्पन्न है क्योंकि वह पदार्थ का प्रतिबिम्ब है, सत्ता का प्रतिबिम्ब है। विचार पदार्थ की ही उपज है, ऐसा पदार्थ जो अपने विकास में पूर्णता के ऊँचे स्तर तक, यानी दिमाग तक, पहुँच गया है। दिमाग चिन्तन करने की इन्द्रिय है। इसलिए चिन्तन को पदार्थ से अलग करना भारी गलती करना है। एंगेल्स ने लिखा था :

> "चिन्तन से सत्ता के सम्बन्ध का सवाल, प्रकृति से आत्मा के सम्बन्ध का सवाल, तमाम दर्शन का मुख्य सवाल है।...इस सवाल का दार्शनिकों ने जवाब दिया, उसमें वे दो बड़े दलों में बँट गये। जो कहते थे कि प्रकृति के मुकाबले में आत्मा मूल है... वे **भाववाद** के दल में शामिल हुए। दूसरे लोग जो कहते थे कि प्रकृति मूल है, वे **भौतिकवाद** के विभिन्न स्कूलों में शामिल हैं।" (कार्ल मार्क्स, सं.ग्रं., अं.सं., मास्को, 1946, खण्ड 1, पृष्ठ 366-67)।

और आगे :

> "वह संसार जो भौतिक है, जिसे इन्द्रियों से जाना जाता है, जिसमें हम स्वयं मौजूद हैं, एकमात्र सच्चाई है। हमारी चेतना और चिन्तन, वे इन्द्रियों से जितने चाहे परे, अतीन्द्रिय मालूम पड़ें, वे एक भौतिक, शारीरिक इन्द्रिय-दिमाग-की उपज हैं। पदार्थ चेतना की उपज नहीं है, बल्कि चेतना ही खुद पदार्थ की सबसे ऊँची उपज है।" (कार्ल मार्क्स, सं.ग्र., रू.सं., खण्ड 1, पृष्ठ 332)।

पदार्थ और चिन्तन के सवाल पर, मार्क्स ने लिखा है :

> "**चिन्तनशील पदार्थ से चिन्तन को अलग करना असम्भव है।** तमाम परिवर्तनों की विषय-वस्तु पदार्थ ही है।" (उप., पृष्ठ 335)।

मार्क्सवादी दार्शनिक भौतिकवाद का वर्णन करते हुए, लेनिन ने लिखा है :

> "आम तौर से भौतिकवाद वस्तुगत रूप से वास्तविक सत्ता (पदार्थ) को चेतना, संवेदना और अनुभव से स्वतंत्र मानता है।... चेतना सत्ता का ही प्रतिबिम्ब है, अधिक

से अधिक वह सत्ता का लगभग सच्चा (पर्याप्त, बिल्कुल वैसा ही) प्रतिबिम्ब है" (लेनिन, **भौतिकवाद और अनुभवसिद्ध आलोचना,** अं.सं., मास्को, 1947, पृष्ठ 337-38)।

और आगे :

-"भूत वह है जो हमारी इन्द्रियों पर आघात करके संवेदना पैदा करता है, पदार्थ वह वस्तुगत सच्चाई है जो हमें संवेदना से मिलती है... पदार्थ, प्रकृति, सत्ता, भौतिक जगत-मूल है; और आत्मा, चेतना, संवेदन, मानसिक जगत-गौण है।" (उप., पृष्ठ 145-146)।

-"संसार का दृश्य इस बात का दृश्य है कि पदार्थ में गति कैसे होती है और **पदार्थ चिन्तन** कैसे करता है।" (उप. पृ. 367)।

-"दिमाग चिन्तन की इन्द्रिय है।" (उप., पृ. 152)।

(ग) भाववाद इस बात को अस्वीकार करता है कि हम संसार और उसके नियमों को जान सकते हैं। उसे हमारे ज्ञान की प्रामाणिकता पर विश्वास नहीं है। वह वस्तुगत सच्चाई को स्वीकार नहीं करता। उसका कहना है कि संसार 'अज्ञेय वस्तुओं' से भरा हुआ है, जिन्हें विज्ञान कभी नहीं जान सकता। भाववाद के खिलाफ, मार्क्सवादी भौतिकवाद का कहना है कि संसार और उसके नियम पूरी तरह से जाने जा सकते हैं। प्रकृति के नियमों का हमारा ज्ञान, जिसे हम प्रयोग और अभ्यास से परखते हैं, सच्चा ज्ञान है। उसकी प्रामाणिकता वस्तुगत सच्चाई की सी है। संसार में ऐसी वस्तुएँ नहीं हैं जो जानी नहीं जा सकें। संसार में केवल ऐसी वस्तुएँ है जो अभी तक जानी नहीं गयीं, लेकिन जो विज्ञान और व्यवहार के प्रयत्नों से प्रकट की जायेंगी और जानी जायेंगी।

एंगेल्स ने काण्ट और दूसरे भाववादियों की इस धारणा की आलोचना की थी कि संसार अज्ञेय है और उसमें ऐसी 'अज्ञेय वस्तुएँ' हैं जो जानी नहीं जा सकतीं। एंगेल्स ने इस प्रसिद्ध भौतिकवादी धारणा का समर्थन किया था कि हमारा ज्ञान प्रामाणिक ज्ञान है। इस सिलसिले में उन्होंने लिखा था :

"इस धारणा और इसी तरह की दूसरी दार्शनिक उड़ानों का सबसे जोरदार खण्डन व्यवहार है, यानी प्रयोग और प्रयास है। किसी प्राकृतिक क्रम की अपनी समझ को अगर हम खुद उस क्रम को रच कर सही साबित कर दें, उसकी परिस्थितियों से उसे निकाल कर उसे जन्म दे दें और घाते में उससे अपना काम भी निकाल लें, तो उससे काण्ट की न समझ में आने वाली, 'अज्ञेय वस्तु' का खात्मा हो जाता है। पौधों और पशुओं की देह में पैदा होने वाले रासायनिक पदार्थ ऐसी ही 'अज्ञेय वस्तुएँ' रहीं जब तक कि कायिक रसायनशास्त्र ने उन्हें एक के बाद एक बनाना शुरू नहीं कर दिया। उसके बाद, वे 'अज्ञेय वस्तुएँ' हमारे लिए वस्तुएँ बन गयीं। मिसाल के लिए, मजीठ का रंग देने वाला पदार्थ 'अलीजरीन' होता है। उसे हम खेत में मजीठ की जड़ों में नहीं उगाते। अब उसे हम ज्यादा सस्ते और सीधे ढंग से बना लेते हैं। तीन सौ साल तक कोपरनिकस का सौर मण्डल एक कल्पना रहा। उसके पक्ष में सौ, हजार, या दस हजार बातें हो सकती थीं और विपक्ष में एक ही, फिर भी वह कल्पना ही रहा। लेकिन,

> जब लवेरियर ने सौर मण्डल से प्राप्त सामग्री के जरिये एक अज्ञात नक्षत्र के होने की जरूरत ही नहीं निकाल ली बल्कि उस जगह का भी हिसाब लगा लिया जहाँ आकाश में इस नक्षत्र को जरूर ही होना था और जब गाले ने सचमुच वह नक्षत्र ढूँढ़ निकाला तब कोपरनिकस का सौर मण्डल सिद्ध हो गया।" (कार्ल मार्क्स, सं.ग्रं., अं.सं., मास्को, 1946, खण्ड 1, पृष्ठ 368)।

लेनिन ने बोग्दानोव, बजारोव, यूश्केविच और माख के दूसरे अनुयायियों पर श्रद्धावादी होने का आरोप लगाया था। उन्होंने इस प्रसिद्ध भौतिकवादी स्थापना का समर्थन किया कि प्रकृति के नियमों का हमारा विज्ञान-सम्मत ज्ञान प्रामाणिक ज्ञान है और विज्ञान के नियम वस्तुगत सत्य जाहिर करते हैं। इस सिलसिले में लेनिन ने लिखा था :

> "आजकल का श्रद्धावाद विज्ञान को तो नहीं ठुकराता। वह सिर्फ 'बढ़े-चढ़े दावों' को ठुकराता है, यानी यह दावा कि विज्ञान वस्तुगत सच्चाई दे सकता है। अगर वस्तुगत सच्चाई है (जैसाकि भौतिकवादी समझते हैं), अगर मनुष्य के 'अनुभव' में, बाहरी संसार को प्रतिबिम्बित करते हुए, प्रकृति-विज्ञान ही हमें वस्तुगत सच्चाई दे सकता है, तो सभी श्रद्धावाद का पूरी तरह खण्डन हो जाता है।" (लेनिन, **भौतिकवाद और अनुभवसिद्ध आलोचना,** अं.सं., मास्को, 1947, पृष्ठ 123-24)।

संक्षेप में, मार्क्सवादी दार्शनिक भौतिकवाद के मुख्य लक्षण ये हैं।

यह समझना आसान है कि सामाजिक जीवन के अध्ययन पर, समाज के इतिहास के अध्ययन पर, दार्शनिक भौतिकवाद के उसूलों को लागू करना कितने भारी महत्त्व की बात है और समाज के इतिहास और सर्वहारा वर्ग की पार्टी की अमली कार्रवाई पर उन्हें लागू करना कितने भारी महत्त्व की बात है।

अगर प्रकृति के घटना-प्रवाह परस्पर सम्बन्धित और निर्भर हैं और यह प्रकृति के विकास का नियम है, तो इससे नतीजा निकलता है कि सामाजिक जीवन के घटना-प्रवाहों का परस्पर सम्बन्ध और निर्भरता समाज के विकास का नियम है और आकस्मिक बात नहीं है।

इसलिए सामाजिक जीवन, समाज का इतिहास, 'आकस्मिक घटनाओं' का संग्रह नहीं है। वह निश्चित नियमों के अनुसार समाज के विकास का इतिहास बन जाता है और सामाजिक इतिहास के अध्ययन का विज्ञान बन जाता है।

इसलिए, सर्वहारा वर्ग की पार्टी की अमली कार्रवाई का आधार 'महापुरुषों' की शुभ कामनाओं को नहीं बनाना चाहिए, 'बुद्धि' की पुकार को नहीं बनाना चाहिए, 'विश्वजनीन नैतिकता' वगैरह को नहीं बनाना चाहिए, बल्कि सामाजिक विकास के नियमों को और इन नियमों के अध्ययन को बनाना चाहिए।

और भी, अगर संसार जाना जा सकता है और प्रकृति के विकास के नियमों की हमारी जानकारी प्रामाणिक जानकारी है, जिसकी प्रामाणिकता वस्तुगत सच्चाई जैसी है, तो उससे नतीजा निकलता है कि सामाजिक जीवन, सामाजिक विकास भी जाना जा सकता है और सामाजिक विकास के नियमों के बारे में विज्ञान की दी हुई सामग्री सच्ची सामग्री है जिसकी

प्रामाणिकता वस्तुगत सच्चाई जैसी है।

इसलिए, समाज के इतिहास का विज्ञान, सामाजिक जीवन के पेचीदा घटना-प्रवाह के बावजूद, उतना ही निश्चयात्मक विज्ञान हो सकता है जितना, मिसाल के लिए, प्राणिविज्ञान, और वह अमली उद्देश्य के लिए सामाजिक विकास के नियमों से लाभ उठा सकता है।

इसलिए, सर्वहारा वर्ग की पार्टी को अपनी अमली कार्रवाई में अनिश्चित उद्देश्यों से अपना रास्ता नहीं निश्चित करना चाहिए बल्कि सामाजिक विकास के नियमों से, और इन नियमों से अमली नतीजे निकाल कर, निश्चित करना चाहिए।

इसलिए, समाजवाद मानव जाति के सुन्दर भविष्य के लिए एक सपना न रह कर विज्ञान बन जाता है।

इसलिए, विज्ञान और अमली कार्रवाई का सम्बन्ध, सिद्धान्त और अमल का सम्बन्ध, उनकी एकता, सर्वहारा वर्ग की पार्टी के लिए ध्रुव नक्षत्र बन जानी चाहिए।

और भी, अगर प्रकृति, सत्ता, भौतिक संसार मूल है और चेतना, विचार गौण है, उससे उत्पन्न है, अगर भौतिक संसार ऐसी वस्तुगत सच्चाई है जो मनुष्यों की चेतना से स्वतंत्र है, जबकि चेतना इसी वस्तुगत सच्चाई का प्रतिबिम्ब है, तो नतीजा यह निकलता है कि समाज का भौतिक जीवन, उसकी सत्ता भी मूल है और उसका मानसिक जीवन गौण है, उससे उत्पन्न है, और समाज का भौतिक जीवन ऐसी वस्तुगत सच्चाई है जो मनुष्यों की इच्छा से स्वतंत्र है, जबकि समाज का मानसिक जीवन इस वस्तुगत सच्चाई का प्रतिबिम्ब है, सत्ता का प्रतिबिम्ब है।

इसलिए, समाज के मानसिक जीवन के निर्माण का स्रोत, सामाजिक विचारों, सामाजिक सिद्धान्तों, राजनीतिक मतों और राजनीतिक संस्थाओं का स्रोत खुद विचारों, सिद्धान्तों, मतों और राजनीतिक संस्थाओं में नहीं ढूँढ़ना चाहिए बल्कि समाज के भौतिक जीवन की परिस्थितियों में, सामाजिक सत्ता में ढूँढ़ना चाहिए, जिनका प्रतिबिम्ब ये विचार, सिद्धान्त, मत वगैरह हैं।

इसलिए, सामाजिक इतिहास के विभिन्न युगों में विभिन्न सामाजिक विचार, सिद्धान्त, मत और राजनीतिक संस्थाएँ देखी जाती हैं। अगर गुलामी की प्रथा वाले समाज में कोई खास सामाजिक विचार, सिद्धान्त, मत और राजनीतिक संस्थाएँ मिलती हैं, सामन्तशाही में दूसरी मिलती हैं और पूँजीवाद में और भी दूसरी, तो इसका कारण विचारों, सिद्धान्तों, मतों और राजनीतिक संस्थाओं की खुद उनकी 'प्रकृति', उनके 'गुणों' में नहीं है बल्कि इसका कारण सामाजिक विकास के विभिन्न युगों में, समाज के भौतिक जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में है।

समाज की जो भी सत्ता होती है, समाज के भौतिक जीवन की जो भी परिस्थितियाँ होती हैं, वैसे ही उस समाज के विचार, सिद्धान्त, राजनीतिक मत और राजनीतिक संस्थाएँ होती हैं।

इस सिलसिले में, मार्क्स ने लिखा है :

> "मनुष्यों की चेतना उनकी सत्ता की नियामक नहीं है बल्कि इसके विपरीत, उनकी सामाजिक सत्ता उनकी चेतना की नियामक है।" (कार्ल मार्क्स, सं.ग्र., अं.सं.

मास्को, 1946, खण्ड 1, पृष्ठ 300)।

इसलिए नीति में गलती नहीं करने के लिए जरूरी है, हम निष्क्रिय सपने देखने वालों की जगह नहीं ले लें। इसके लिए जरूरी है कि सर्वहारा वर्ग की पार्टी अपनी कार्रवाई का आधार 'मानव विवेक के' हवाई 'सिद्धान्तों' को नहीं बनाये बल्कि समाज के भौतिक जीवन की ठोस परिस्थितियों को बनाये, जो कि सामाजिक विकास की नियामक शक्ति है; 'महापुरुषों' की शुभ कामनाओं को नहीं बनाये बल्कि समाज के भौतिक जीवन के विकास की सच्ची आवश्यकताओं को बनाये।

कल्पनावादियों, जिनमें नरोदवादी शामिल हैं, अराजकतावादियों और समाजवादी-क्रान्तिकारियों का पतन इसलिए भी हुआ कि वे सामाजिक विकास में समाज के भौतिक जीवन की परिस्थितियों की प्रमुख भूमिका को नामंजूर करते थे। भाववाद के स्तर तक उतर कर, वे अपनी अमली कार्रवाई का आधार समाज के भौतिक जीवन के विकास की आवश्यकताओं को नहीं बनाते थे बल्कि इन आवश्यकताओं से स्वतंत्र और उनके बावजूद 'आदर्श योजनाओं' और 'व्यापक कार्यक्रम' को बनाते थे, जो समाज के वास्तविक जीवन से दूर थे।

मार्क्सवाद-लेनिनवाद की शक्ति और सजीवता इस बात में है कि उसकी अमली कार्रवाई का आधार समाज के भौतिक जीवन के विकास की आवश्यकताएँ हैं। वह अपने को समाज के वास्तविक जीवन से कभी अलग नहीं करता।

लेकिन, मार्क्स के शब्दों से यह नतीजा नहीं निकलता कि समाज के जीवन में सामाजिक, विचारों, सिद्धान्तों, राजनीतिक मतों और राजनीतिक संस्थाओं का कोई महत्त्व नहीं, और वे बदले में सामाजिक सत्ता, सामाजिक जीवन की भौतिक परिस्थितियों के विकास पर असर नहीं डालतीं। अभी तक हम सामाजिक विचारों, सिद्धान्तों, मतों और राजनीतिक संस्थाओं के **स्रोत** की बात कर रहे थे, **उनका जन्म कैसे होता है**-इसकी चर्चा कर रहे थे, समाज का मानसिक जीवन उसके भौतिक जीवन की परिस्थितियों का प्रतिबिम्ब है-इसकी चर्चा कर रहे थे। जहाँ तक सामाजिक विचारों, सिद्धान्तों, मतों और राजनीतिक संस्थाओं के महत्त्व का सवाल है, इतिहास में उनकी **भूमिका** का सवाल है, वहाँ उसे अस्वीकार करना तो दूर, ऐतिहासिक भौतिकवाद सामाजिक जीवन में, समाज के **इतिहास** में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका और उनके महत्त्व पर जोर देता है।

सामाजिक विचार और सिद्धान्त तरह-तरह के होते हैं। पुराने विचार और सिद्धान्त होते हैं, जिनके दिन बीत चुके हैं और जो समाज की उन शक्तियों का हित साधते हैं जिनकी गति रुक गयी है। उनका महत्त्व इस बात में है कि वे समाज के विकास, उसकी प्रगति को रोकते हैं। फिर, नये और आगे बढ़े हुए विचार और सिद्धान्त होते हैं, जो समाज की आगे बढ़ी हुई शक्तियों का हित साधते हैं। उनका महत्त्व इस बात में है कि वे समाज के विकास, उसकी प्रगति को आसान बनाते हैं। उनका महत्त्व उतना ही बढ़ जाता है जितना ही सही-सही वे समाज के भौतिक जीवन के विकास की आवश्यकताओं को प्रकट करते हैं।

नये सामाजिक विचार और सिद्धान्त तभी पैदा होते हैं जब समाज के भौतिक जीवन

का विकास समाज के सामने नये काम पेश कर चुका होताा है। लेकिन, एक बार पैदा हो जाने पर वह बहुत ही समर्थ शक्ति बन जाते हैं। यह शक्ति उन नये कामों को पूरा करने में मदद देती है जिन्हें समाज के भौतिक जीवन के विकास ने पेश किया था। वह ऐसी शक्ति है जो समाज की प्रगति में मदद देती है। ठीक यहीं पर नये विचारों, नये सिद्धान्तों, नये राजनीतिक मतों और नयी राजनीतिक संस्थाओं का भारी संगठन करने वाला, बटोरने वाला और तब्दीली करने वाला मूल्य प्रकट होता है। नये सामाजिक विचार ठीक इसीलिए पैदा होते हैं कि वे समाज के लिए जरूरी हैं, इसलिए कि अगर वह संगठित करने, बटोरने और तब्दील करने का काम नहीं करें तो समाज के भौतिक जीवन के विकास के लिए जरूरी काम पूरे करना **नामुमकिन** हो जाये। नये सामाजिक विचार और सिद्धान्त उन नये कामों से पैदा होते हैं जिन्हें समाज के भौतिक जीवन का विकास पेश करता है। फिर वे अपना रास्ता बना लेते हैं, वे आम जनता की सम्पत्ति बन जाते हैं, समाज की गतिहीन शक्तियों के खिलाफ उसे बटोरते और संगठित करते हैं और इस तरह, समाज के भौतिक जीवन को रोकने वाली इन शक्तियों को परास्त करने में मदद देते हैं।

इस तरह, सामाजिक विचार, सिद्धान्त और राजनीतिक संस्थाएँ समाज के भौतिक जीवन के विकास, सामाजिक सत्ता के विकास के जरूरी कामों के आधार पर पैदा होते हैं। उसके बाद वे खुद सामाजिक सत्ता पर, समाज के भौतिक जीवन पर असर डालते हैं। वे ऐसी परिस्थितियाँ तैयार करते हैं जो समाज के भौतिक जीवन के लिए जरूरी कामों को पूरी तरह करने के लिए और समाज के भौतिक जीवन का अगला विकास मुमकिन बनाने के लिए आवश्यक होती हैं।

इस सिलसिले में मार्क्स ने लिखा है :

"जनता के हृदय में घर कर लेने पर, सिद्धान्त एक भौतिक शक्ति बन जाते हैं।" (**हीगेल के दर्शन की आलोचना**)।

इसलिए, समाज के भौतिक जीवन की परिस्थितियों पर असर डालने के लिए और उनके विकास और सुधार की गति को तेज करने के लिए, सर्वहारा वर्ग की पार्टी को ऐसे सामाजिक सिद्धान्त का भरोसा करना चाहिए जो सही तौर पर समाज के भौतिक जीवन के विकास की आवश्यकताओं को जाहिर करता हो और इसलिए, जो इस योग्य हो कि विशाल जनता को गतिशील बना सके और सर्वहारा पार्टी की भारी फौज के रूप में उन्हें बटोर सके और संगठित कर सके। यह ऐसी फौज होगी जो प्रतिक्रियावादी शक्तियों का ध्वंस करने के लिए और समाज की प्रगतिशील शक्तियों का रास्ता साफ करने के लिए तैयार हो।

'अर्थवादियों' और मेन्शेविकों का पतन इसलिए भी हुआ कि वे प्रगतिशील सिद्धान्त और प्रगतिशील विचारों की बटोरने वाली, संगठित करने वाली और तब्दीली करने वाली भूमिका को नामंजूर करते थे। घटिया भौतिकवाद के स्तर पर आकर, उन्होंने इन चीजों की भूमिका नहीं के बराबर कर दी थी और इस तरह पार्टी को निष्क्रिय और निठल्ली बनी रहने के लिए छोड़ दिया था।

मार्क्सवाद-लेनिनवाद की शक्ति और सजीवता इस बात में है कि वह प्रगतिशील सिद्धान्त का सहारा लेता है, ऐसे सिद्धान्त का जो समाज के भौतिक जीवन के विकास की आवश्यकताओं को सही तौर पर प्रतिबिम्बित करता है। वह सिद्धान्त को उचित स्तर तक उठाता है और अपना कर्त्तव्य समझता है कि इस सिद्धान्त में जो बटोरने, संगठित करने और तब्दील करने की ताकत है, उसे रत्ती-रत्ती इस्तेमाल कर ले। सामाजिक सत्ता और सामाजिक चेतना का सम्बन्ध क्या है, भौतिक जीवन के विकास की परिस्थितियों और समाज के मानसिक जीवन के विकास का सम्बन्ध क्या है, इस सवाल का सही जवाब ऐतिहासिक भौतिकवाद देता है।

अब एक सवाल का जवाब देना बाकी रह गया है : ऐतिहासिक भौतिकवाद के दृष्टिकोण से 'समाज के भौतिक जीवन की परिस्थितियों' का क्या मतलब है, जो आखिरी छानबीन में समाज का रूप, उसके विचार, मत, राजनीतिक संस्थाएँ वगैरह निश्चित करती हैं।

आखिर, यह 'समाज के भौतिक जीवन की परिस्थितियाँ' हैं क्या, उनके विशेष लक्षण क्या हैं?

इसमें कोई सन्देह नहीं कि 'समाज के भौतिक जीवन की परिस्थितियों'-इस धारणा में प्रकृति शामिल है जो समाज को घेरे हुए है, भौगोलिक परिस्थितियाँ शामिल हैं जो समाज के भौतिक जीवन के लिए एक लाजिमी और सदा रहने वाली शर्त हैं और जो अवश्य ही समाज के विकास पर असर डालती हैं। सामाजिक विकास में भौगोलिक परिस्थिति कौन सी भूमिका अदा करती है? क्या भौगोलिक परिस्थिति वह मुख्य शक्ति है जो समाज के रूप को, मनुष्य की समाज-व्यवस्था के रूप को, एक व्यवस्था से दूसरी व्यवस्था की ओर प्रगति को निश्चित करती है?

ऐतिहासिक भौतिकवाद इस सवाल के जवाब में कहता है-नहीं।

निस्सन्देह, भौगोलिक परिस्थितियाँ सामाजिक विकास के लिए एक लाजिमी और हमेशा रहने वाली शक्ति हैं और अवश्य ही सामाजिक विकास पर असर डालती हैं, उस विकास की गति तेज करती हैं या उसे रोकती हैं। लेकिन, उनका असर **नियामक** नहीं है। कारण यह कि समाज के परिवर्तन और विकास, भौगोलिक परिस्थितियों के परिवर्तन और विकास से निस्बतन कहीं ज्यादा तेज होते हैं। तीन हजार साल की अवधि में, तीन विभिन्न समाज-व्यवस्थाएँ यूरोप में एक के बाद एक आ चुकी हैं : आदिम साम्यवादी व्यवस्था, गुलामी की व्यवस्था और सामन्ती व्यवस्था। यूरोप के पूर्वी हिस्से में, सोवियत संघ में चार व्यवस्थाएँ एक के बाद एक आ चुकी हैं। लेकिन, इसी अवधि में, यूरोप की भौगोलिक परिस्थितियाँ या तो बदली ही नहीं हैं या इतनी कम बदली हैं कि भूगोल ने उन पर ध्यान ही नहीं दिया है, और यह बिल्कुल स्वाभाविक है। भौगोलिक परिस्थिति में महत्त्वपूर्ण तब्दीली के लिए लाखों वर्ष चाहिए, जब कि मानव समाज की व्यवस्था में बहुत ही महत्त्वपूर्ण तब्दीलियों के लिए भी कुछ शताब्दियाँ या एक-दो हजार साल काफी होते हैं।

इससे नतीजा यह निकलता है कि भौगोलिक परिस्थितियाँ सामाजिक विकास का मुख्य कारण, उसका नियामक नहीं कही जा सकतीं। जो वस्तु स्वयं लाखों साल तक अपरिवर्तित रहे, वह उस चीज के विकास का मुख्य कारण नहीं हो सकती जिसमें कुछ शताब्दियों में

ही बुनियादी तब्दीली हो।

और भी, इसमें सन्देह नहीं कि 'समाज के भौतिक जीवन की परिस्थितियाँ'-इस धारणा में जनसंख्या की बढ़ोत्तरी भी शामिल है, आबादी का कमोबेश घना होना भी शामिल है, क्योंकि इनसान समाज के भौतिक जीवन की परिस्थितियों का जरूरी तत्व है और बिना एक निश्चित अल्पतम जनसंख्या के समाज का भौतिक जीवन हो ही नहीं सकता। तब क्या जनसंख्या की बढ़ोत्तरी वह मुख्य शक्ति नहीं है जो मनुष्य की समाज व्यवस्था का रूप निश्चित करती है?

ऐतिहासिक भौतिकवाद इस सवाल के जवाब में भी कहता है-नहीं।

अवश्य ही, जनसंख्या की बढ़ोत्तरी समाज के विकास पर असल डालती है, समाज के विकास की गति को तेज करने या रोकने में मदद देती है। लेकिन, वह सामाजिक विकास की मुख्य शक्ति नहीं हो सकती और सामाजिक विकास पर उसका असर **नियामक** नहीं हो सकता। कारण यह कि सिर्फ जनसंख्या की वृद्धि से इस सवाल का जवाब नहीं मिलता कि किसी समाज-व्यवस्था के बदले कोई विशेष नयी समाज-व्यवस्था ही क्यों आती है और कोई, दूसरी क्यों नहीं आती। आदिम साम्यवादी व्यवस्था के बदले ठीक गुलामी की व्यवस्था ही क्यों आती है, गुलामी की व्यवस्था के बदले सामन्ती व्यवस्था और सामन्ती व्यवस्था के बदले पूँजीवादी व्यवस्था ही क्यों आती है, कोई दूसरी क्यों नहीं आती।

अगर जनसंख्या की बढ़त सामाजिक विकास की नियामक शक्ति हो तो जनसंख्या के अधिक घने होने से वैसी ही ऊँचे स्तर की समाज-व्यवस्था भी पैदा हो जाये। लेकिन, हम देखते हैं कि ऐसा नहीं होता। चीन की आबादी अमरीका से चार गुना ज्यादा घनी है, फिर भी सामाजिक विकास-क्रम में अमरीका चीन से ऊपर है। कारण यह कि चीन में अर्द्धसामन्ती व्यवस्था अब भी चालू है जबकि अमेरिका बहुत पहले पूँजीवाद के उच्चतम विकास की मंजिल तक पहुँच गया है। बेल्जियम की आबादी अमरीका से 19 गुना घनी है, फिर भी अमरीका सामाजिक विकास-क्रम में बेल्जियम से ऊपर है। जहाँ तक सोवियत संघ का सवाल है, बेल्जियम हमारे देश से एक ऐतिहासिक युग पीछे है; क्योंकि बेल्जियम में पूँजीवादी व्यवस्था चालू है जब कि सोवियत संघ ने पहले ही पूँजीवादी व्यवस्था खत्म कर दी है और समाजवादी व्यवस्था कायम कर ली है।

इससे यह नतीजा निकलता है कि जनसंख्या की बढ़ोत्तरी सामाजिक विकास की मुख्य शक्ति, ऐसी शक्ति जो समाज का रूप, समाज-व्यवस्था का रूप निश्चित करती हो, न है और न हो सकती है।

(क) तब समाज के भौतिक जीवन की परिस्थितियों के व्यूह में वह मुख्य शक्ति कौन सी है जो समाज का रूप, समाज-व्यवस्था का रूप निश्चित करती है, जो एक से दूसरी व्यवस्था की ओर समाज की प्रगति निश्चित करती है।

ऐतिहासिक भौतिकवाद का कहना है कि यह शक्ति मानव जीवन के लिए आवश्यक **जिन्दगी के साधनों को हासिल करने का तरीका है, यह भौतिक मूल्यों के उत्पादन का तरीका है**-खाना, कपड़ा, जूते, घर, ईंधन, उत्पादन के साधन वगैरह-जो सामाजिक जीवन और विकास के लिए अनिवार्य हैं।

जिन्दा रहने के लिए जरूरी है कि लोगों के पास खाना, कपड़ा, जूते, रहने की जगह, ईंधन वगैरह हों। इन भौतिक मूल्यों को हासिल करने के लिए यह जरूरी है कि लोग उन्हें पैदा करें। उन्हें पैदा करने के लिए जरूरी है कि लोगों के पास उत्पादन के साधन हों, जिनसे कि खाना-कपड़ा, जूते, रहने की जगह ईंधन वगैरह पैदा किये जाते हों। यह जरूरी है कि लोग इन साधनों को पैदा कर सकें और उन्हें काम में ला सकें।

उत्पादन के साधन, जिनसे भौतिक मूल्य पैदा किये जाते हैं, वे लोग जो उत्पादन के साधनों को काम में लाते हैं और एक निश्चित **उत्पादन के अनुभव** और **श्रम कौशल** से भौतिक मूल्यों का उत्पादन करते जाते हैं-ये सब तत्व कुल मिला कर समाज की **उत्पादक शक्तियाँ** हैं।

लेकिन, उत्पादक शक्तियाँ उत्पादन का सिर्फ एक पहलू हैं, उत्पादन के तरीके का सिर्फ एक पहलू हैं। यह ऐसा पहलू है जो मनुष्यों के और प्रकृति की वस्तुओं और शक्तियों के सम्बन्ध को प्रकट करता है। इन वस्तुओं और शक्तियों को इन्सान भौतिक मूल्य पैदा करने के लिए काम में लाते हैं। उत्पादन का दूसरा पहलू, उत्पादन के तरीके का दूसरा पहलू उत्पादन-प्रक्रिया में मनुष्यों का आपसी सम्बन्ध हैं, मनुष्यों के **उत्पादन-सम्बन्ध** हैं। भौतिक मूल्यों को पैदा करने के लिए मनुष्य जब प्रकृति से संघर्ष करते हैं और प्रकृति को काम में लाते हैं तो वे एक-दूसरे से अलग-थलग रहकर, व्यक्तिगत रूप से अलग रह कर नहीं करते बल्कि मिल कर, गुटों में, समाजों में ऐसा करते हैं। इसलिए, उत्पादन सभी समय और सभी परिस्थितियों में **सामाजिक** उत्पादन होता है। भौतिक मूल्यों के उत्पादन में उत्पादन प्रक्रिया के भीतर मनुष्य आपस में एक या दूसरी तरह के सम्बन्ध कायम करते हैं, वे एक या दूसरी तरह के उत्पादन-सम्बन्ध कायम करते हैं। ये सम्बन्ध इस तरह के लोगों में, जो शोषण से मुक्त हैं, सहयोग और परस्पर सहायता के सम्बन्ध हो सकते हैं। वे प्रभुत्व और पराधीनता के सम्बन्ध हो सकते हैं, और अन्त में उत्पादन-सम्बन्धों के एक रूप से दूसरे रूप की तरफ बढ़ने की दशा के हो सकते हैं। लेकिन, उत्पादन-सम्बन्धों का जो भी रूप हो, वे हमेशा और हर व्यवस्था में उत्पादन का वैसा ही जरूरी हिस्सा होते हैं, जैसा कि समाज की उत्पादक शक्तियाँ।

मार्क्स ने लिखा था :

> "उत्पादन में इनसान प्रकृति पर ही नहीं बल्कि एक-दूसरे पर भी अपना प्रभाव डालते हैं। किसी निश्चित तरीके से सहयोग करके ही और अपनी कार्रवाई की परस्पर अदला-बदली करके ही, वह उत्पादन कर सकते हैं। उत्पादन करने के लिए, वे एक-दूसरे से निश्चित सम्पर्क और सम्बन्ध स्थापित करते हैं और इन सामाजिक सम्पर्क और सम्बन्धों के भीतर ही प्रकृति पर प्रभाव पड़ता है, उनका उत्पादन होता है।" (कार्ल मार्क्स, सं.ग्रं., अं. सं., मास्को, 1946, खण्ड 1, पृष्ठ 211)।

नतीजा यह कि उत्पादन में, उत्पादन के तरीके में, दोनों चीजें शामिल हैं-समाज की उत्पादक शक्तियाँ और मनुष्यों के उत्पादन-सम्बन्ध। इस तरह, उत्पादन, उत्पादन का तरीका, भौतिक मूल्यों के उत्पादन-प्रक्रिया में उत्पादक शक्तियों और उत्पादन-सम्बन्धों की एकता का

मूर्त रूप है।

(ख) उत्पादन का **पहला लक्षण** यह है कि वह ज्यादा समय के लिए किसी एक जगह स्थिर नहीं रहता। वह हमेशा परिवर्तन और विकास की दशा में रहता है। इसके सिवा, उत्पादन के तरीके में तब्दीली होने से लाजिमी तौर पर समूची समाज-व्यवस्था में, सामाजिक विचारों, राजनीतिक मतों और राजनीतिक संस्थाओं में तब्दीली होती है; समूची सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था की फिर से रचना होती है। विकास की विभिन्न मंजिलों में लोग उत्पादन के विभिन्न तरीके इस्तेमाल करते हैं, या मोटे रूप में कहें, विभिन्न तरह की जिन्दगी बसर करते हैं। आदिम कम्यून में, उत्पादन का एक तरीका होता है, गुलामी की प्रथा में उत्पादन का दूसरा तरीका होता है, सामन्तशाही में उत्पादन का तीसरा तरीका होता है, इत्यादि। और, इसी के अनुकूल मनुष्यों की समाज-व्यवस्था, मनुष्यों का मानसिक जीवन, उनके मत और राजनीतिक संस्थाएँ भी बदलती हैं।

किसी समाज के उत्पादन का तरीका जैसा होता है, मुख्य रूप से वैसा ही वह समाज होता है, वैसे ही उसके विचार और सिद्धान्त, उसके राजनीतिक मत और संस्थाएँ होती हैं।

या, मोटे रूप में कहें-इनसान की जैसी जिन्दगी होती है, वैसे ही उसके विचार होते हैं।

इसका अर्थ यह है कि सामाजिक विकास का इतिहास सबसे पहले उत्पादन के विकास का इतिहास है, उत्पादन के उन तरीकों का इतिहास है जो शताब्दियों के दौरान एक के बाद एक आते हैं; उत्पादक शक्तियों और मनुष्यों के उत्पादन-सम्बन्धों के विकास का इतिहास है।

इसलिए, सामाजिक विकास का इतिहास साथ ही खुद भौतिक मूल्य पैदा करने वालों का भी इतिहास है, उस श्रमिक जनता का इतिहास है जो उत्पादन-प्रक्रिया की मुख्य शक्ति है और जो समाज की जिन्दगी के लिए आवश्यक भौतिक मूल्यों का उत्पादन जारी रखती है।

इसलिए, अगर इतिहास के विज्ञान को सचमुच विज्ञान बनना है तो वह सामाजिक विकास के इतिहास को घटा कर राजाओं और सेनापतियों की कार्रवाई, 'विजेताओं' और दूसरे राज्यों को 'पराधीन करने वालों' का इतिहास नहीं बनाया जा सकता। इतिहास-विज्ञान को सबसे पहले भौतिक मूल्य पैदा करने वालों के इतिहास, श्रमिक जनता के इतिहास, जन-साधारण के इतिहास की तरफ ध्यान देना होगा।

इसलिए, समाज के इतिहास के नियमों का अध्ययन करने के लिए इनसान के दिमागों में, समाज के मतों और विचारों में सूत्र नहीं खोजना चाहिए बल्कि उत्पादन के तरीके में ढूँढ़ना चाहिए, जो किसी विशेष ऐतिहासिक युग में समाज के अन्दर प्रचलित हो। वह सूत्र समाज के आर्थिक जीवन में ढूँढ़ना चाहिए।

इसलिए, इतिहास-विज्ञान का मुख्य काम यह है कि उत्पादन के नियमों, उत्पादक शक्तियों और उत्पादन-सम्बन्धों के विकास के नियमों, समाज के आर्थिक विकास के नियमों का अध्ययन करे और उन्हें जाहिर करे।

इसलिए, सर्वहारा वर्ग की पार्टी को अगर सच्ची पार्टी बनना है तो उसे सबसे पहले

उत्पादन के विकास के नियमों का, समाज के आर्थिक विकास के नियमों का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

इसलिए नीति में गलती नहीं करने के लिए, यह जरूरी है कि सर्वहारा वर्ग की पार्टी अपने कार्यक्रम का मसौदा बनाने में और अमली कार्रवाई में भी सबसे पहले उत्पादन के विकास के नियमों के आधार पर, समाज के आर्थिक विकास के नियमों के आधार पर आगे बढ़े।

(ग) उत्पादन का **दूसरा लक्षण** यह है कि उसकी तब्दीली और विकास हमेशा उत्पादक शक्तियों की तब्दीली और विकास से शुरू होता है और, सबसे पहले, उत्पादन के साधनों में तब्दीली और विकास से शुरू होता है। इसलिए, उत्पादक शक्तियाँ उत्पादन का सबसे गतिशील और क्रान्तिकारी तत्व हैं। पहले समाज की उत्पादक शक्तियाँ बदलती और विकसित होती हैं और उसके बाद, इन्हीं तब्दीलियों पर **निर्भर** और इन्हीं के अनुकूल, मनुष्यों के उत्पादन-सम्बन्ध, उनके आर्थिक सम्बन्ध बदलते हैं। लेकिन, इसका यह मतलब नहीं है कि उत्पादन-सम्बन्धों का असर उत्पादक शक्तियों के विकास पर नहीं पड़ता और ये उत्पादक शक्तियाँ उत्पादन-सम्बन्धों पर निर्भर नहीं हैं। उत्पादन सम्बन्धों का विकास उत्पादक शक्तियों के विकास पर निर्भर जरूर है, लेकिन वे खुद भी उत्पादक शक्तियों के विकास पर असर डालते हैं, उनकी गति को तेज करते हैं या रोकते हैं। इस सिलसिले में, इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि उत्पादन के सम्बन्ध बहुत दिनों तक उत्पादक शक्तियों की बढ़त से पीछे और उनसे विरोध की दशा में नहीं रह सकते। कारण यह कि उत्पादक शक्तियाँ पूरी तरह से तभी बढ़ सकती हैं जब उत्पादन के सम्बन्ध उनके रूप से, उनकी दशा से मेल खाते हों और उन्हें पूरी तरह विकसित होने का मौका देते हों। इसलिए, उत्पादन के सम्बन्ध उत्पादक शक्तियों के विकास के चाहे जितने पीछे रहें, उन्हें आगे-पीछे उत्पादक शक्तियों के विकास के स्तर के अनुकूल, उत्पादक शक्तियों के रूप के अनुकूल बनना ही पड़ेगा-और दरअसल वे उसके अनुकूल बन जाते हैं। ऐसा नहीं हो तो उत्पादन की व्यवस्था में उत्पादक शक्तियों और उत्पादन के सम्बन्धों की एकता बुनियादी तौर से टूट जाये, समूचे उत्पादन में तोड़-फोड़ हो जाये, उत्पादन में संकट आ जाये, उत्पादक शक्तियों का नाश हो जाये।

इस बात की मिसाल, जबकि उत्पादन के सम्बन्ध उत्पादक शक्तियों के रूप के अनुकूल नहीं होते, उनसे टक्कर लेते हैं, पूँजीवादी देशों का आर्थिक संकट है। वहाँ उत्पादन के साधनों की निजी पूँजीवादी मिल्कियत उत्पादन-प्रक्रिया के सामाजिक रूप, उत्पादक शक्तियों के रूप की खुल्लमखुल्ला विरोधी है। इससे आर्थिक संकट पैदा होते हैं, जिनसे उत्पादक शक्तियों का नाश होता है। और भी, यह विरोध खुद सामाजिक क्रान्ति का आर्थिक आधार बन जाता है। इस क्रान्ति का उद्देश्य होता है, उत्पादन के मौजूदा सम्बन्धों को खत्म करना और उत्पादन के ऐसे नये सम्बन्ध रचना जो उत्पादक शक्तियों के रूप के अनुकूल हों।

इसके विपरीत, इस बात की मिसाल, जहाँ उत्पादन के सम्बन्ध उत्पादक शक्तियों के रूप के पूरी तरह अनुकूल हैं, सोवियत संघ की समाजवादी राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था है।

यहाँ पर उत्पादन के साधनों की सामाजिक मिल्कियत उत्पादन-प्रक्रिया के सामाजिक रूप के पूरी तरह अनुकूल है और इस वजह से, यहाँ आर्थिक संकट और उत्पादक शक्तियों के विनाश का नाम नहीं है।

नतीजा यह कि उत्पादक शक्तियाँ न सिर्फ उत्पादन का सबसे गतिशील और क्रान्तिकारी तत्व हैं, बल्कि उत्पादन के विकास का नियामक तत्व भी हैं।

जैसी उत्पादक शक्तियाँ होती हैं, वैसे ही उत्पादन के सम्बन्ध होते हैं।

उत्पादक शक्तियों की दशा क्या है, इससे इस बात का पता चलता है कि मनुष्य अपने लिए आवश्यक भौतिक मूल्यों को उत्पादन के किन साधनों से उत्पन्न करते हैं। उत्पादन के साधनों की दशा क्या है, इससे एक दूसरी बात का पता चलता है कि **उत्पादन के साधनों** (जमीन, जंगल, जलाशय, खानें, कच्चा माल, उत्पादन के साधन, उत्पादन की जगह, यातायात और समाचार भेजने के साधन वगैरह) का मालिक कौन है और उत्पादन के साधन किसके अधिकार में हैं, पूरे समाज के अधिकार में हैं या अलग-थलग लोगों, गुटों या वर्गों के हाथ में हैं, जो उन्हें दूसरे लोगों, गुटों या वर्गों का शोषण करने के लिए इस्तेमाल करते हैं?

पुराने जमाने से लेकर आज तक उत्पादक शक्तियों के विकास की एक मोटी रूपरेखा यह है। भोंड़े पत्थर के औजारों से लोग धनुष-बाण की तरफ बढ़े और उसके साथ ही, शिकारियों की जिन्दगी छोड़ कर पशुपालन और आदिम चरागाहों की तरफ बढ़े। लोग पत्थर के औजार छोड़ कर धातुओं के औजार (लोहे की कुल्हाड़ी, लोहे का फाल लगा हुआ लकड़ी का हल वगैरह) की तरफ बढ़े और उसके साथ ही जोतने, बोने और खेती की तरफ बढ़े। इसके बाद, सामान तैयार करने के लिए धातु के औजारों में और सुधार हुआ, लोहार की धौंकनी काम में लायी जाने लगी, मिट्टी के बर्तन बनने शुरू हुए, उसके साथ ही दस्तकारी का विकास हुआ, दस्तकारी खेती से जुदा हुई, दस्तकारी के स्वतंत्र उद्योग विकसित हुए और आगे चलकर कारखाने कायम हुए। दस्तकारी से औजार छोड़ कर लोग मशीनों की तरफ आये और दस्तकारी और कारखानों का उत्पादन मशीनों के उद्योग-धन्धों में बदल गया। इसके बाद, लोग मशीनों की व्यवस्था की तरफ बढ़े और आधुनिक, बड़े पैमाने पर मशीनों से चलने वाले उद्योग-धन्धे कायम हुए। मानव इतिहास के दौर में समाज की उत्पादक शक्तियों के विकास की यह मोटी और अपूर्ण रूपरेखा है। इससे साफ हो जायेगा कि उत्पादन के साधनों का विकास और उनमें सुधार उन लोगों ने किया जिनका उत्पादन से सम्बन्ध था, यह विकास और सुधार उनसे स्वतंत्र नहीं हुआ। यह काम मनुष्यों से स्वतंत्र नहीं हुआ। नतीजा यह कि उत्पादन के साधनों की तब्दीली और विकास के साथ उत्पादक शक्तियों के सबसे महत्त्वपूर्ण तत्व इनसानों में तब्दीली और विकास हुए, उनके उत्पादन के अनुभव, उनके श्रम-कौशल, उत्पादन के साधनों को इस्तेमाल करने की उनकी योग्यता में तब्दीली और विकास हुआ।

इतिहास के दौर में, समाज की उत्पादक शक्तियों के विकास और परिवर्तन के अनुकूल, मनुष्यों के उत्पादन-सम्बन्ध, उनके आर्थिक सम्बन्ध भी बदले और विकसित हुए।

इतिहास में उत्पादन सम्बन्धों के पाँच **मुख्य रूप** मिलते हैं : आदिम साम्यवादी, गुलामी

की प्रथा, सामन्ती, पूँजीवादी और समाजवादी।

आदिम साम्यवादी व्यवस्था में उत्पादन के सम्बन्धों की बुनियाद यह है कि उत्पादन के साधनों पर सामाजिक मिल्कियतें होती है। यह बात उस समय की उत्पादक शक्तियों के रूप से मुख्यतः मेल खाती है। पत्थर के औजारों से और आगे चलकर तीर-कमान से लोग अलग-थलग रह कर प्रकृति की शक्तियों और हिंसक जन्तुओं का मुकाबला नहीं कर सकते थे। जंगल से फल इकट्ठे करने के लिए, मछली पकड़ने के लिए, किसी तरह की रहने की जगह बनाने के लिए मनुष्यों को मिलकर काम करने पर मजबूर होना पड़ा वरना वे भूख से मरते या हिंसक जन्तुओं या पड़ोसी समाजों के शिकार होते। एक साथ मेहनत करने से उत्पादन के साधनों पर और उत्पादन की उपज पर भी मिली-जुली मिल्कियत हुई। यहाँ अभी उत्पादन के साधनों की निजी मिल्कियत का भाव पैदा नहीं हुआ था। लोगों के पास निजी मिल्कियत के नाम पर सिर्फ उत्पादन के कुछ औजार होते थे, जो साथ ही हिंसक जन्तुओं से रक्षा करने के साधन का काम देते थे। यहाँ अभी न शोषण था, न वर्ग थे।

गुलामी की प्रथा वाली व्यवस्था में उत्पादन के सम्बन्धों की बुनियाद यह थी कि उत्पादन के साधनों का मालिक गुलामों का स्वामी होता था। उत्पादन में काम करने वाले, यानी गुलाम, पर भी उसका अधिकार होता था, जिसे वह खरीद या बेच सकता था या जान से मार सकता था, मानो वह जानवर हो। इस तरह के उत्पादन-सम्बन्ध उस समय की उत्पादक शक्तियों की दशा के मुख्यतः अनुकूल थे। पत्थर के औजारों के बदले, अब लोगों के हाथ में धातु के औजार थे। शिकारी की गयी-बीती और आदिम गिरिस्ती के बदले, जो न जोतना-बोना जानता था न चरागाह रखना जानता था, अब चरागाह, खेती, दस्तकारी सामने आयी और उत्पादन की इन शाखाओं में मेहनत का बँटवारा हुआ। अब व्यक्तियों और समाजों के बीच में उपज की अदला-बदली मुमकिन हुई, मुट्ठी भर लोगों के हाथ में दौलत का इकट्ठा होना, अल्पसंख्यक लोगों के हाथ में उत्पादन के साधनों का सचमुच केन्द्रित हो जाना और बहुसंख्यक लोगों का थोड़े से लोगों द्वारा पराधीन बनाया जाना और बहुसंख्यक लोगों का दासों में तब्दील होना-यह सब मुमकिन हुआ। अब उत्पादन-प्रक्रिया में समाज के सभी लोग मिलजुल कर और आजादी से मेहनत नहीं करते थे। यहाँ अब गुलामों की बेगार चालू हो गयी, जिन्हें उनके खुद मेहनत नहीं करने वाले मालिक शोषित करते थे। इसलिए, यहाँ उत्पादन के साधनों या उत्पादन की उपज की मिलीजुली मिल्कियत नहीं रह गयी थी। उसकी जगह, निजी मिल्कियत ने ले ली। यहाँ गुलामों का मालिक अक्षरशः सम्पत्ति के पहले और मुख्य स्वामी के रूप में प्रकट होता है।

धनी और गरीब, शोषक और शोषित, अधिकारयुक्त और अधिकारहीन लोग और इनके बीच घोर वर्ग संघर्ष-गुलामी की व्यवस्था की यही तस्वीर है।

सामन्ती व्यवस्था में उत्पादन-सम्बन्धों की बुनियाद यह है कि सामन्ती मालिक उत्पादन के साधनों का स्वामी होता है और उत्पादन में काम करने वाले भूदास का पूरी तरह मालिक नहीं होता। यह अब उसकी जान नहीं मार सकता, लेकिन उसे बेच और खरीद सकता है। सामन्ती मिल्कियत के साथ, किसान और दस्तकार की निजी मिल्कियत भी रहती है। यह

मिल्कियत उत्पादन के साधनों और उसकी अपनी मेहनत पर चलने वाले निजी धन्धे की होती है। इस तरह के उत्पादन-सम्बन्ध उस समय की उत्पादक शक्तियों के मुख्यतः अनुकूल होते हैं। लोहे के गलाने और उसकी चीजें बनाने में और तरक्की, लोहे के हल और करघे का प्रसार; खेती, बागवानी, अंगूरवानी और डेयरी के काम का और विकास; दस्तकारों की दूकान के साथ-साथ कारखानों का बनना-उत्पादक शक्तियों की दशा की ये अपनी विशेषताएँ हैं।

नयी उत्पादक शक्तियों की माँग होती है कि मेहनत करने वाला उत्पादन में किसी तरह की पहलकदमी और काम के लिए रुझान, काम से दिलचस्पी जाहिर करे। इसलिए, सामन्ती मालिक गुलाम से नाता तोड़ लेता है। गुलाम ऐसा मेहनत करने वाला है जिसे काम से कोई दिलचस्पी नहीं होती और जो कतई पहलकदमी नहीं करता। उसके बदले, सामन्ती मालिक भूदास से नाता जोड़ना पसन्द करता है। भूदास की अपनी गिरिस्ती होती है, उत्पादन के अपने औजार होते हैं और काम में इतनी दिलचस्पी होती है जितनी जमीन की काश्तकारी के लिए और सामन्ती मालिक को फसल का एक हिस्सा गल्ले के रूप में देने के लिए जरूरी हो।

यहाँ निजी मिल्कियत का और विकास होता है। शोषण करीब-करीब वैसा ही कठोर होता है जैसा गुलामी में-अब वह जरा सा मद्धिम होता है। शोषक और शोषितों के बीच वर्ग-संघर्ष सामन्ती व्यवस्था का मुख्य लक्षण है।

पूँजीवादी समाज में उत्पादन के सम्बन्धों की बुनियाद यह है कि उत्पादन के साधनों के मालिक पूँजीपति होते हैं न कि उत्पादन में काम करने वाले मजदूर, जो पगार पर मजदूरी करते हैं। इन्हें पूँजीपति न मार सकता है, न बेच सकता है क्योंकि वे निजी तौर पर आजाद हैं। लेकिन, उनके पास उत्पादन के साधन नहीं होते और भूख से न मर जायें, इसलिए उन्हें मजबूर होकर अपनी श्रम-शक्ति पूँजीपति को बेचनी पड़ती है और शोषण का जुवा बर्दाश्त करना पड़ता है। उत्पादन के साधनों में पूँजीवादी सम्पत्ति के साथ-साथ, उत्पादन के साधनों में, पहले एक बड़े पैमाने पर, किसानों और दस्तकारों की निजी सम्पत्ति दिखाई देती है। ये किसान और दस्तकार भूदास नहीं होते और उनकी निजी सम्पत्ति उनकी अपनी मेहनत का फल होती है। दस्तकारों की दूकानों और कारखानों के बदले, अब बड़ी-बड़ी मिलें और मशीनों से लैस कारखाने उठ खड़े होते हैं। जमीन्दारों की जागीरों के बदले, जिन्हें किसान उत्पादन के आदिम औजारों से जोतते-बोते थे, अब बड़े-बड़े पूँजीवादी फार्म सामने आ जाते हैं, जिनमें वैज्ञानिक ढंग से काम होता है और जिनके पास खेती करने की मशीनें होती हैं।

नयी उत्पादक शक्तियों की माँग होती है कि उत्पादन में काम करने वाले, कुचले हुए अपढ़ भूदासों के मुकाबले में, ज्यादा शिक्षित और ज्यादा चतुर हों, वे मशीनों का काम समझ सकें और उन्हें ठीक से चला सकें। इसलिए, पूँजीपति पगार पाने वाले मजदूरों से काम लेना ज्यादा पसन्द करते हैं। ये मजदूर भूदास प्रथा के बन्धनों से मुक्त होते हैं और इतने शिक्षित होते हैं कि मशीनों से सही तौर पर काम ले सकें।

लेकिन उत्पादक शक्तियों को जबर्दस्त सीमा तक विकसित करने के बाद, पूँजीवाद

ऐसी असंगतियों में फँस गया है जिन्हें वह हल नहीं कर पाता। वह अधिकाधिक तादाद में बिकाऊ माल पैदा करके और उनके भाव गिराकर, पूँजीवादी होड़ को तेज करता है, छोटे और मध्यम श्रेणी के निजी मिल्कियतवालों को तबाह कर देता है, उन्हें सर्वहारा में तब्दील कर देता है और उनकी खरीदने की ताकत कम कर देता है। नतीजा यह होता है कि जो बिकाऊ माल तैयार किया जाता है, उसे ठिकाने लगाना असम्भव हो जाता है। दूसरी तरफ, उत्पादन को फैलाकर और लाखों मजदूरों को बड़ी-बड़ी मिलों और कारखानों में केन्द्रित करके पूँजीवाद उत्पादन-प्रक्रिया को एक सामाजिक रूप दे देता है और इस तरह, खुद अपनी जड़ कमजोर करता है। कारण यह कि उत्पादन-प्रक्रिया के सामाजिक रूप की माँग होती है कि उत्पादन के साधनों की मिल्कियत भी सामाजिक हो। लेकिन, उत्पादन के साधन पूँजीपतियों की निजी दौलत ही रहते हैं, जो उत्पादन-प्रक्रिया के सामाजिक रूप के बिल्कुल प्रतिकूल होता है।

उत्पादक शक्तियों के रूप और उत्पादन-सम्बन्धों के बीच दूर न होने वाले ये अन्तरविरोध समय-समय पर अति उत्पादन के संकटों के रूप में जाहिर होते हैं। उस समय खुद अपनी तरफ से तबाह किये हुए आम लोगों की गरीबी की वजह से अपने माल की खासी माँग न देखकर पूँजीपतियों को मजबूरन अपनी उपज जला देनी पड़ती है, कारखानों में तैयार किया हुआ माल नष्ट कर देना होता है, उत्पादन का काम मुल्तवी कर देना पड़ता है और ऐसे समय उत्पादक शक्तियों का नाश करना पड़ता है जब लाखों लोग मजबूरन बेकारी और भुखमरी के शिकार होते हैं, इसलिए नहीं कि काफी माल नहीं है, नहीं, बल्कि इसलिए कि माल का अति-उत्पादन हो गया है।

इसका अर्थ यह होता है कि उत्पादन के पूँजीवादी सम्बन्ध समाज की उत्पादक शक्तियों की दशा से अब मेल नहीं खाते और उन शक्तियों से अब उनका कभी न सुलझने वाला विरोध पैदा हो गया है।

इसका अर्थ यह होता है कि पूँजीवाद के गर्भ में क्रान्ति पुष्ट हो रही है, जिसका काम है-उत्पादन के साधनों की मौजूदा पूँजीवादी मिल्कियत की जगह समाजवादी मिल्कियत कायम करना।

इसका अर्थ यह होता है कि पूँजीवादी व्यवस्था का मुख्य लक्षण शोषक और शोषितों के बीच बहुत ही तीव्र वर्ग-संघर्ष है।

समाजवादी व्यवस्था में, जो अभी तक सिर्फ सोवियत संघ में कायम हुई है, उत्पादन के साधनों की बुनियाद यह है कि उत्पादन के साधनों की मिल्कियत सामाजिक होती है। यहाँ पर अब और शोषित नहीं हैं। जो माल पैदा किया जाता है वह लोगों की मेहनत के अनुसार बाँट दिया जाता है। इसका उसूल है : "जो काम नहीं करेगा वह खायेगा भी नहीं।" यहाँ उत्पादन-प्रणाली में लोगों के आपसी सम्बन्धों की विशेषता यह है कि शोषण से मुक्त मजदूर भाईचारे का सहयोग करते हैं और समाजवादी ढंग से एक-दूसरे की मदद करते हैं। यहाँ उत्पादन के सम्बन्ध पूरी तरह उत्पादक शक्तियों के अनुकूल होते हैं, क्योंकि उत्पादन-प्रणाली के सामाजिक रुख को उत्पादन के साधनों की सामाजिक मिल्कियत और मजबूत कर देती है।

इस वजह से, सोवियत संघ में समाजवादी उत्पादन न तो अति उत्पादन के समय-समय पर आने वाले संकट जानता है और न उनके साथ की यहाँ बेहूदगियाँ होती हैं।

इस वजह से, यहाँ उत्पादक शक्तियाँ और तेज रफ्तार से विकसित होती हैं, क्योंकि उनसे मेल खाने वाले सम्बन्ध ऐसे विकास के लिए उन्हें पूरा मौका देते हैं।

मानव इतिहास के दौरान में, मनुष्यों के उत्पादन-सम्बन्धों के विकास की यही तस्वीर है।

उत्पादन के सम्बन्धों का विकास समाज की उत्पादक शक्तियों के विकास पर इस तरह निर्भर है और सबसे पहले उत्पादन के साधनों के विकास पर निर्भर है। इस निर्भरता की वजह से, उत्पादक शक्तियों की तब्दीली और विकास आगे-पीछे उत्पादन-सम्बन्धों में वैसी ही तब्दीली और विकास पैदा कर देते हैं।

मार्क्स ने लिखा था :

> "मेहनत करने के औजारों[1] का इस्तेमाल और उनका निर्माण बीज रूप में कुछ खास तरह के पशुओं में जरूर मौजूद रहता है, लेकिन मनुष्य की मेहनत का जो सिलसिला होता है, उसकी यह अपनी विशेषता है। इसलिए, फ्रेंकलिन ने मनुष्य की यह व्याख्या की थी कि वह औजार बनाने वाला पशु है। मेहनत करने के पुराने औजारों के अवशेष खत्म हो चुकने वाले समाज के आर्थिक रूपों की जाँच-पड़ताल के लिए उतने ही महत्त्वपूर्ण हैं जितने कि पशुओं की खत्म हो चुकी प्रजातियाँ पहचानने के लिए हड्डियों के अवशेष। विभिन्न आर्थिक युगों को हम इस बात से नहीं पहचानते है कि उस समय कौन सी चीजें बनायी जाती थीं, बल्कि इससे पहचानते हैं कि वे कैसे और किन औजारों से बनायी जाती थीं। मेहनत करने के औजारों से इसी का माप-दण्ड नहीं मिलता कि मनुष्य की मेहनत किस हद तक विकसित हुई है, बल्कि उनसे उन सामाजिक परिस्थितियों का भी पता चलता है जिनमें वह मेहनत की गयी थी।" (कार्ल मार्क्स, **पूँजी,** लन्दन, 1908, खण्ड 1, पृष्ठ 159)।

और आगे :

> -"उत्पादक शक्तियों से सामाजिक सम्बन्धों का नजदीकी सम्बन्ध है। नयी उत्पादक शक्तियाँ हासिल करने में मनुष्य उत्पादन के अपने तरीके बदल देते हैं। उत्पादन का अपना तरीका बदलने में, अपनी रोजी हासिल करने का तरीका बदलने में, वे अपने तमाम सामाजिक सम्बन्ध भी बदल देते हैं। हाथ की चक्की हमें ऐसा समाज देती है जिसमें सामन्ती स्वामी होता है। मशीन से चलने वाली मिल ऐसा समाज देती है जिसमें औद्योगिक पूँजीपति होता है।" (कार्ल मार्क्स, **दर्शन की दरिद्रता,** अं.सं., मास्को, 1935, पृष्ठ 92)।
>
> -"उत्पादक शक्तियों की बढ़त में, सामाजिक सम्बन्धों के विनाश में, विचारों के निर्माण में निरन्तर गति होती है। एक ही चीज गतिहीन है और वह गतिशीलता का भाव है।" (उप., पृष्ठ 93)।

---

1. मेहनत करने के औजारों से मार्क्स का लक्ष्य मुख्यतः उत्पादन के साधन हैं-सम्पादक

कम्युनिस्ट घोषणापत्र में ऐतिहासिक भौतिकवाद की जो व्याख्या की गयी है, उसकी चर्चा करते हुए एंगेल्स ने लिखा है :

> "हर ऐतिहासिक युग की आर्थिक उत्पादन और उससे लाजिमी तौर से पैदा होने वाली समाज की बनावट उस युग के राजनीतिक और बौद्धिक इतिहास की बुनियाद है।... इसलिए, (जबसे, जमीन की आदिम सामूहिक मिल्कियम खत्म हुई), समस्त इतिहास वर्ग-संघर्षों का इतिहास रहा है, सामाजिक विकास की विभिन्न मंजिलों में शोषक और शोषितों, सत्तारूढ़ और शासित वर्गों के संघर्षों का इतिहास रहा है।... लेकिन, यह संघर्ष अब ऐसी मंजिल तक पहुँच गया है जहाँ कि शोषित और पीड़ित वर्ग (सर्वहारा) अपना शोषण और उत्पीड़न करने वाले वर्ग (पूँजीपतियों) से अपना छुटकारा बिना इस बात के हासिल नहीं कर सकता कि वह साथ-साथ समूचे समाज को शोषण, उत्पीड़न और वर्ग-संघर्षों से हमेशा के लिए मुक्त कर दे।" (**कम्युनिस्ट घोषणापत्र** के जर्मन संस्करण की भूमिका, कार्ल मार्क्स, सं.ग्रं., मास्को, 1946, खण्ड 1, पृष्ठ 100-101)।

(घ) उत्पादन का तीसरा लक्षण यह है कि नयी उत्पादक शक्तियों और उनके अनुकूल उत्पादन के सम्बन्धों का जन्म पुरानी व्यवस्था से अलग, उस व्यवस्था के खत्म हो जाने पर नहीं होता बल्कि पुरानी व्यवस्था के अन्दर ही होता है। यह जन्म मनुष्य की सोच-विचार वाली और सचेत कार्रवाई के फलस्वरूप नहीं होता बल्कि अपने आप, अचेतन रूप से, मनुष्य की इच्छा से स्वतंत्र होता है। उसके मनुष्य की इच्छा से स्वतंत्र और अपने-आप होने के दो कारण हैं।

पहला कारण यह है कि मनुष्य इस बात में स्वतंत्र नहीं हैं कि वे उत्पादन का एक तरीका अपनाएँ या दूसरा। जब कोई भी नयी पीढ़ी जीवन में प्रवेश करती है तो वह ऐसी उत्पादक शक्तियों और उत्पादन सम्बन्धों को पहले से ही मौजूद पाती है जो पहले की पीढ़ियों की मेहनत का फल है। इसलिए, उत्पादन के क्षेत्र में उसे जो कुछ पहले से तैयार चीज मिलती है, उसे मजबूरन उसे पहले स्वीकार करना पड़ता है और अपने को उसके अनुकूल बनाना पड़ता है, जिससे कि वह भौतिक मूल्य पैदा कर सके।

दूसरा कारण यह है कि जब मनुष्य उत्पादन का कोई औजार सुधारते हैं, उत्पादक शक्तियों का कोई तत्व सुधारते हैं, तब वे महसूस नहीं करते, समझते नहीं हैं या सोचने के लिए रुकते नहीं हैं कि इन सुधारों का **सामाजिक** परिणाम क्या होगा। वे सिर्फ अपने दैनिक हितों की बात सोचते हैं, अपनी मेहनत को हल्का करने और अपने लिए कोई सीधा और प्रत्यक्ष लाभ हासिल करने की बात सोचते हैं।

जब धीरे-धीरे और टटोलते हुए आदिम साम्यवादी समाज के कुछ सदस्य पत्थर के हथियारों से लोहे के हथियारों के प्रयोग की तरफ बढ़े, तब अवश्य ही वे न जानते थे और यह सोचने के लिए वे न रुके थे कि इस आविष्कार से कौन से **सामाजिक** परिणाम निकलेंगे। वे यह नहीं जानते थे या नहीं महसूस करते थे कि धातु के औजारों की तरफ बढ़ना उत्पादन में एक क्रान्ति करना होगा, कि आगे चलकर उससे गुलामी की प्रथा पैदा होगी, वे सिर्फ

अपनी मेहनत हल्की करना चाहते थे और एक सीधा और प्रत्यक्ष लाभ पाना चाहते थे। उनकी सचेत कार्रवाई उनके दैनिक हितों के तंग दायरे में सीमित थी।

जब सामन्ती व्यवस्था के युग में छोटी सामूहिक दूकानों के साथ-साथ यूरोप का तरुण पूँजीपति वर्ग बड़े कारखाने बनाने लगा और इस तरह उसने समाज की उत्पादक शक्तियों को आगे बढ़ाया, तब अवश्य ही वह यह नहीं जानता था और यह सोचने के लिए वह न रुका था कि इस आविष्कार के कौन से **सामाजिक** परिणाम निकलेंगे। उसने यह न महसूस किया था या न समझा था कि इस 'छोटे से' आविष्कार का फल यह होगा कि सामाजिक शक्तियाँ नयी तरह से संगठित होंगी और इससे राजाओं की शक्ति के खिलाफ, जिनकी कृपा को वह इतना महत्त्व देता था, क्रान्ति होगी और उन सरदारों के खिलाफ क्रान्ति होगी जिनकी कतारों में बैठने के लिए उसके प्रमुख प्रतिनिधि अकसर लालायित रहते थे। वह सिर्फ माल पैदा करने की कीमत कम करना चाहता था, एशिया और अभी हाल में ढूँढ़े हुए अमरीका के बाजारों में माल ज्यादा तादाद में भेजना चाहता था और ज्यादा मुनाफे कमाना चाहता था। उसकी सचेत कार्रवाई इस मामूली व्यावहारिक उद्देश्य के तंग दायरे में सीमित थी।

जब रूसी पूँजीपतियों ने विदेशी पूँजीपतियों से मिल कर रूस में जोर-शोर से आधुनिक बड़े पैमाने के मशीनों वाले उद्योग-धन्धे कायम किये और जारशाही को बरकरार रहने दिया और किसानों को जमीन्दारों के कृपा-कटाक्ष पर छोड़ दिया, तब अवश्य ही वे यह नहीं जानते थे और न यह सोचने के लिए वे रुके थे कि उत्पादक शक्तियों की इस विशाल बढ़त से कौन से **सामाजिक** परिणाम निकलेंगे। उन्होंने यह महसूस नहीं किया या न समझे थे कि समाज की उत्पादक शक्तियाँ फिर से संगठित होंगी, जिससे कि सर्वहारा वर्ग किसानों से एका कायम कर सकेगा और विजयी समाजवादी क्रान्ति कर सकेगा। वे सिर्फ उद्योग-धन्धों का उत्पादन आखिरी हद तक बढ़ाना चाहते थे, विशाल घरेलू बाजार पर कब्जा करना चाहते थे, इजारेदार बनना चाहते थे और राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था से जितना भी हो सके मुनाफा खींचना चाहते थे। उनकी सचेत कार्रवाई उनके मामूली और एकदम व्यावहारिक हितों के दायरे के बाहर नहीं गयी।

इसलिए मार्क्स ने लिखा था :

> "अपने जीवन के सामाजिक उत्पादन में (यानी मनुष्यों के जीवन के लिए आवश्यक भौतिक मूल्यों के उत्पादन में-सम्पादक) मनुष्य ऐसे निश्चित सम्बन्ध कायम करते हैं जो लाजिमी होते हैं और उनकी इच्छा से ***स्वतंत्र***[1] होते हैं। उत्पादन के ये सम्बन्ध उत्पादन की अपनी भौतिक शक्तियों के विकास की एक निश्चित मंजिल से मेल खाते हैं।" (कार्ल मार्क्स, सं.ग्रं., अं.सं., मास्को 1946, खण्ड 1, पृष्ठ 300)।

लेकिन, इसका यह मतलब नहीं है कि उत्पादन सम्बन्धों में तब्दीली और उत्पादन के पुराने सम्बन्धों से नये उत्पादन सम्बन्धों की तरफ प्रगति शान्तिमय ढंग से, बिना संघर्षों के और बिना हलचल के हो जाती है। इसके विपरीत, इस तरह की प्रगति आम तौर से पुराने उत्पादन-सम्बन्धों को क्रान्तिकारी ढंग से खत्म करके और उत्पादन के नये सम्बन्ध कायम

---

1. जोर हमारा-सम्पादक

करके होती है। एक वक्त तक उत्पादक शक्तियों का विकास और उत्पादन के सम्बन्धों के क्षेत्र में तब्दीली अपने-आप होती है, मनुष्यों की इच्छा से स्वतंत्र होती है। लेकिन, ऐसा एक वक्त तक ही होता है जब तक कि नयी और विकसित होती हुई उत्पादक शक्तियाँ बढ़ कर अच्छी तरह पुष्ट नहीं हो जातीं। नयी उत्पादक शक्तियों के पुष्ट हो जाने के बाद, उत्पादन के मौजूदा सम्बन्ध और उनके हिमायती-शासक वर्ग-एक 'भारी' अड़चन बन जाते हैं, जिसे नये वर्गों की सचेत कार्रवाई से ही हटाया जा सकता है, जिसे इन वर्गों की बलपूर्वक कार्रवाई से, क्रान्ति से ही हटाया जा सकता है। यहाँ नये सामाजिक विचारों, नयी राजनीतिक संस्थाओं और नयी राजनीतिक सत्ता की **जबर्दस्त भूमिका** बहुत ही स्पष्ट दिखाई देती है। इनका काम होता है कि उत्पादन के पुराने सम्बन्धों को बलपूर्वक खत्म कर दें। नयी उत्पादक शक्तियों और उत्पादन के पुराने सम्बन्धों के संघर्ष से, समाज की नयी आर्थिक माँगों से, नये सामाजिक विचार पैदा होते हैं। नये विचार आम जनता को और संगठित करते हैं। आम जनता एक नयी राजनीतिक सेना में सुगठित हो जाती है। वह एक नयी क्रान्तिकारी सत्ता रचती है और उसका इसलिए इस्तेमाल करती है कि उत्पादन-सम्बन्धों की पुरानी व्यवस्था को बलपूर्वक खत्म कर दे और दृढ़ता से नयी व्यवस्था कायम करे। विकास के अपने-आप होने वाले सिलसिले की जगह मनुष्यों की सचेत कार्रवाई ले लेती है, शान्तिमय विकास की जगह बलपूर्वक होने वाली हलचल ले लेती है, विकास की जगह क्रान्ति ले लेती है।

मार्क्स ने लिखा था :

"पूँजीपतियों से संघर्ष करते समय, परिस्थितियों की वजह से सर्वहारा वर्ग को एक वर्ग रूप में अपने को संगठित करना पड़ता है।... क्रान्ति के जरिये वह अपने को शासक वर्ग बनाता है और इस तरह उत्पादन की पुरानी परिस्थितियों को बलपूर्वक खत्म कर देता है।" (**कम्युनिस्ट घोषणापत्र,** कार्ल मार्क्स, सं.गं., अं.सं, मास्को, 1946, खण्ड 1, पृष्ठ 131)।

और भी आगे :

-"सर्वहारा वर्ग अपने राजनीतिक प्रभुत्व का इस्तेमाल इसलिए करेगा कि क्रमशः पूँजीपतियों से सभी पूँजी छीन ले और राज्य के, यानी शासक वर्ग के, रूप में संगठित सर्वहारा वर्ग के हाथ में उत्पादन के सभी साधन केन्द्रित कर ले और जहाँ तक हो सके कुल उत्पादक शक्तियों को बढ़ाये।" (उप., पृष्ठ 129)।

-"पुरानी समाज-व्यवस्था के गर्भ में जब नयी समाज-व्यवस्था आ जाती है, तब उसके जन्म के लिए धाय के रूप में बल आवश्यक होता है।" (कार्ल मार्क्स, **पूँजी,** खण्ड 1, पृष्ठ 776)।

अपनी प्रसिद्ध पुस्तक **अर्थशास्त्र की आलोचना** की ऐतिहासिक भूमिका में, मार्क्स ने 1859 में ऐतिहासिक भौतिकवाद के सार तत्व का मसौदा दिया था जो एक प्रतिभाशाली दिमाग की उपज है :

"अपने जीवन के सामाजिक उत्पादन में मनुष्य ऐसे निश्चित सम्बन्ध कायम करते

हैं जो लाजिमी होते हैं और उनकी इच्छा से स्वतंत्र होते है। पैदावार के ये सम्बन्ध उत्पादन की भौतिक शक्तियों के विकास की एक निश्चित मंजिल से मेल खाते हैं। इन उत्पादन-सम्बन्धों का कुल जोड़ समाज की आर्थिक बनावट है-वह सच्ची बुनियाद जिस पर कानून और राजनीति की सारी इमारत खड़ी होती है और जिसके अनुकूल सामाजिक चेतना के विभिन्न रूप होते हैं। भौतिक जीवन के उत्पादन का तरीका आम तौर से सामाजिक, राजनीतिक और बौद्धिक जीवन का क्रम निश्चित करता है। मनुष्यों की चेतना उनके अस्तित्व को निश्चित नहीं करती बल्कि इसके विपरीत उनका सामाजिक अस्तित्व उनकी चेतना को निश्चित करता है। विकास की एक मंजिल तक पहुँच कर, समाज की भौतिक उत्पादक शक्तियाँ उस समय के उत्पादन-सम्बन्धों से टकराती हैं, या-उसी चीज को कानूनी शब्दावली में यों कहा जा सकता है-वे अब तक सम्पत्ति के जिन सम्बन्धों में काम करती आती थीं, उनसे टकराती हैं। उत्पादक शक्तियों के विकास के अनुरूप न रह कर, ये सम्बन्ध उनके लिए बेड़ियाँ बन जाते हैं। तब सामाजिक क्रान्ति का युग शुरू होता है। आर्थिक बुनियाद बदलने के साथ, ऊपर की समूची भारी इमारत भी बहुत कुछ जल्द ही बदल जाती है। इस तरह की तब्दीलियों पर विचार करते हुए, एक भेद ध्यान में रखना चाहिए। एक तो पैदावार की आर्थिक परिस्थितियों की, जो प्रकृति-विज्ञान के नपे-तुले तरीके से निश्चित की जा सकती हैं, भौतिक तब्दीली होती है। दूसरी होती है, कानूनी, राजनीतिक, धार्मिक, सौन्दर्य-सम्बन्धी या दार्शनिक तब्दीली-संक्षेप में, विचारधारा के रूप बदलते हैं, जिन रूपों में मनुष्य इस संघर्ष के प्रति सचेत होते हैं और निपटारे के लिए लड़ते हैं। जैसे किसी व्यक्ति के बारे में हमारी धारणा इस बात पर निर्भर नहीं होती कि वह अपने बारे में क्या सोचता है, उसी तरह इस तब्दीली के दौर के बारे में खुद उसकी चेतना के आधार पर हम राय कायम नहीं कर सकते। इसके विपरीत, भौतिक जीवन की असंगतियों के आधार पर, समाज की उत्पादक शक्तियों और उत्पादन के सम्बन्धों की मौजूदा टक्कर के आधार पर, इस चेतना की व्याख्या करनी चाहिए। कोई भी समाज-व्यवस्था तब तक खत्म नहीं होती जब तक कि उसके अन्दर गुंजाइश रहते हुए तमाम उत्पादक शक्तियाँ विकसित नहीं हो जातीं। उत्पादन के नये और उच्चतर सम्बन्ध तब तक कभी सामने नहीं आते जब तक कि उनके जीवन की भौतिक परिस्थितियाँ पुराने समाज के गर्भ में ही पुष्ट न हो चुकी हों। इसलिए, मनुष्य जाति अपने सामने हमेशा ऐसे ही काम रखती है जिन्हें वह कर सकती है। कारण यह कि इस विषय को नजदीक से देखने पर हमेशा हम यही पायेंगे कि काम हमेशा तभी सामने आता है जब उसे पूरा करने के लिए जरूरी भौतिक परिस्थितियाँ पहले ही मौजूद हों, या कम से कम निर्माण की हालत में हों।" (कार्ल मार्क्स, सं.ग्रं, अं.सं., मास्को, 1946, खण्ड 1, पृष्ठ 300-301)।

सामाजिक जीवन और समाज के इतिहास पर लागू किया जाने वाला मार्क्सवादी भौतिकवाद इस तरह का है।

द्वन्द्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवाद के मुख्य लक्षण इस तरह के हैं।

इससे स्पष्ट हो जायेगा कि लेनिन ने पार्टी के लिए कौन सी सैद्धान्तिक निधि की रक्षा की थी और संशोधनवादियों और गद्दारों के हमलों से उसे बचाया था और हमारी पार्टी के विकास के लिए लेनिन की पुस्तक **भौतिकवाद और अनुभवसिद्ध आलोचना** का प्रकाशन कितना महत्त्वपूर्ण था।

3. स्तोलिपिन प्रतिक्रियावाद के दौर में बोल्शेविक और मेन्शेविक। विसर्जनवादियों और बहिष्कारवादियों (अत्जोवपंथी) के खिलाफ बोल्शेविकों का संघर्ष।

जिस समय क्रान्ति का विकास हो रहा था, उसके मुकाबले में प्रतिक्रियावाद के दिनों पार्टी-संगठनों में काम करना बहुत मुश्किल हो गया था। पार्टी सदस्यों की तादाद बहुत तेजी से घट गयी थी। पार्टी के बहुत से निम्न-पूँजीवादी सहयात्री, और खास तौर से बुद्धिजीवी, जार सरकार के दमन से डर कर उसकी कतार छोड़ कर भाग खड़े हुए थे।

लेनिन ने कहा था कि ऐसे मौकों पर क्रान्तिकारी पार्टियों को अपना ज्ञान भरा-पूरा बनाना चाहिए। क्रान्ति की उठान के दौर में, उन्होंने आगे बढ़ना सीखा था। प्रतिक्रियावाद के दौर में, उन्हें यह सीखना चाहिए कि सही तौर पर किस तरह पीछे हटें, भूमिगत किस तरह से हो जायें, गैर-कानूनी पार्टी को किस तरह बनाये रखें और मजबूत करें, कानूनी सुविधाओं को कैसे काम में लायें, आम जनता से अपना सम्बन्ध दृढ़ करने के लिए किस तरह तमाम कानूनी संगठनों, खास तौर से जन-संगठनों का उपयोग करें।

मेन्शेविक होशहवास खोकर पीछे हटने लगे। उन्हें यह भरोसा नहीं था कि क्रान्ति का नया ज्वार फिर आयेगा। उन्होंने बेशर्मी से कार्यक्रम की क्रान्तिकारी माँगों और पार्टी के क्रान्तिकारी नारों को तज दिया। वे सर्वहारा वर्ग की क्रान्तिकारी गैरकानूनी पार्टी का विसर्जन करना चाहते थे, उसे खत्म करना चाहते थे। इस वजह से, इस तरह के मेन्शेविक **विसर्जनवादी** कहलाये।

मेन्शेविकों के विपरीत, बोल्शेविकों को विश्वास था कि अगले कुछ वर्षों में क्रान्ति का ज्वार फिर उठेगा। उनका कहना था कि इस नयी उठान के लिए आम जनता को तैयार करना पार्टी का फर्ज है। क्रान्ति की बुनियादी समस्याएँ हल नहीं हुई थीं। किसानों को जमीन्दारों की जमीन नहीं मिली थी। मजदूरों के काम करने का दिन आठ घण्टे का नहीं हुआ था। जिससे जनता इतनी नफरत करती थी, उस निरंकुश जारशाही का तख्ता अभी उल्टा नहीं गया था और 1905 में जनता ने उससे जो थोड़े से राजनीतिक अधिकार पाये थे, उसने उन्हें फिर खत्म कर दिया था। इसलिए जिन कारणों से 1905 की क्रान्ति का जन्म हुआ था, वह अब भी मौजूद थे। यही सबब है कि बोल्शेविकों को विश्वास था कि क्रान्तिकारी आन्दोलन का नया ज्वार आयेगा। वे उसके लिए तैयारी करने लगे और मजदूर वर्ग की शक्तियों को बटोरने लगे।

क्रान्ति का ज्वार निश्चय ही फिर उठेगा, बोल्शेविकों के इस विश्वास का कारण यह भी था कि 1905 की क्रान्ति ने मजदूर वर्ग को अपने अधिकारों के लिए आम क्रान्तिकारी संघर्ष

चलाना सिखा दिया था। प्रतिक्रियावाद के दौर में, जब पूँजीपतियों ने हमला शुरू किया तब, मजदूर 1905 के सबक भूल नहीं सकते थे। लेनिन ने मजदूरों के खतों से उद्धरण दिये, जिनमें उन्होंने बतलाया था कि कारखानेदार किस तरह उन्हें सता रहे हैं और उन्हें अपमानित कर रहे हैं। इन खतों में मजदूरों ने कहा था : **'ठहरो, 1905 फिर आयेगा।"**

बोल्शेविकों का बुनियादी राजनीतिक उद्देश्य वही रहा जो 1905 में था, यानी जारशाही का खात्मा, पूँजीवादी-जनवादी क्रान्ति को आखिरी मंजिल तक ले जाना और समाजवादी क्रान्ति की तरफ बढ़ना। बोल्शेविक एक क्षण के लिए भी यह उद्देश्य नहीं भूले और वे आम जनता के सामने मुख्य क्रान्तिकारी नारे रखते रहे-जनवादी गणतंत्र, जागीरों की जमीन जब्त करना और काम के दिन के आठ घण्टे तय करना।

लेकिन, पार्टी की **कार्यनीति** वही नहीं हो सकती थी जो 1905 में क्रान्ति के उठते हुए ज्वार के समय थी। मिसाल के लिए, निकट भविष्य में आम जनता से आम राजनीतिक हड़ताल करने के लिए या सशस्त्र विद्रोह करने के लिए कहना गलत होता, क्योंकि क्रान्तिकारी आन्दोलन मन्द पड़ रहा था, मजदूर वर्ग बहुत ही थकान की हालत में था और प्रतिक्रियावादी वर्गों की स्थिति काफी मजबूत हो चुकी थी। पार्टी को यह नयी हालत ध्यान में रखनी थी। हमलावर कार्यनीति के बदले रक्षा की कार्यनीति, शक्तियों को बटोरने की कार्यनीति, कार्यकर्ताओं को कर भूमिगत कर देने की कार्यनीति, भूमिगत रहकर पार्टी का काम चलाने की कार्यनीति और कानूनी मजदूर संगठनों में काम करने के साथ गैर-कानूनी काम चलाने की कार्यनीति से काम लेना था।

और, बोल्शेविकों ने साबित कर दिया कि वे यह काम कर सकते हैं।

लेनिन ने लिखा था :

> "क्रान्ति से पहले के लम्बे वर्षों में कैसे काम करना चाहिए, यह हम जानते थे। लोग यों ही नहीं कहते कि हम चट्टान की तरह दृढ़ हैं। सामाजिक-जनवादियों ने एक सर्वहारा पार्टी बनाई है जो पहले हथियारबन्द आक्रमण की असफलता से हिम्मत नहीं हारेगी, अपने होशहवास नहीं खो देगी और दुस्साहसवाद में नहीं फँसेगी।" (लेनिन, सं.ग्रं. अं.सं., मास्को, 1947, खण्ड 1, पृ. 467)।

बोल्शेविकों ने कोशिश की कि गैर-कानूनी पार्टी-संगठनों को बनाये रखें और उन्हें मजबूत करें। इसके साथ ही, वे जरूरी समझते थे कि हर कानूनी मौके पर, हर कानूनी सुविधा से फायदा उठा कर आम जनता से सम्बन्ध बनाये रखें और इस सम्बन्ध की हिफाजत करें और इस तरह से पार्टी को मजबूत करें।

> "यह वह दौर था जब हमारी पार्टी जारशाही के खिलाफ खुले क्रान्तिकारी संघर्ष का रास्ता छोड़ कर संघर्ष के टेढ़े-मेढ़े तरीकों की तरफ आयी, जब वह परस्पर-सहयोग-समितियों से लेकर दूमा के मंच तक हर कानूनी मौका इस्तेमाल करने लगी। यह 1905 की क्रान्ति में हमारी पराजय के बाद पीछे हटने का दौर था। इस मोड़ ने हमारे लिए जरूरी कर दिया कि हम संघर्ष के नये तरीकों में माहिर हों, जिससे कि हम अपनी शक्ति बटोर सकें और जारशाही के खिलाफ खुला क्रान्तिकारी संघर्ष चला सकें।" (स्तालिन,

15वीं पार्टी कांग्रेस की शब्दशः रिपोर्ट, रूसी संस्करण, पृष्ठ 366-67, 1935)।

बचे हुए कानूनी संगठन एक तरह का पर्दा थे, जिनकी आड़ में पार्टी के गुप्त संगठन काम करते थे और जिनके जरिये आम जनता से सम्बन्ध कायम रखा जाता था। आम जनता से सम्बन्ध कायम रखने के लिए, बोल्शेविकों ने ट्रेड यूनियनों और दूसरी कानूनी तौर पर चलने वाली सार्वजनिक संस्थाओं से काम लिया-जैसे रोगी सहायक सभा, मजदूरों की सहयोग-समितियाँ, क्लब, शिक्षा-सभाएँ और जन सभाएँ वगैरह। बोल्शेविकों ने राज्य दूमा के मंच से काम लिया, जिससे कि वे जारशाही नीति का पर्दाफाश कर सकें, संवैधानिक जनवादियों का भण्डाफोड़ कर सकें और सर्वहारा वर्ग के लिए किसानों का समर्थन हासिल कर सकें। गैर-कानूनी पार्टी-संगठन बनाये रखने से और इस संगठन के जरिये और सभी तरह का राजनीतिक काम चलाने की वजह से, पार्टी एक सही नीति पर चल सकी और क्रान्ति के ज्वार की नयी उठान के लिए तैयारी करने की शक्ति बटोर सकी।

बोल्शेविकों ने **दो मोर्चों** पर लड़ाई करके, अपनी क्रान्तिकारी लाइन चालू रखी। यह लड़ाई पार्टी के अन्दर दो तरह के अवसरवाद के खिलाफ थी : **विसर्जनवादियों** के खिलाफ थी, जो पार्टी के खुले दुश्मन थे और उन लोगों के खिलाफ थी, जो **बहिष्कारवादी** कहलाते थे और पार्टी के छिपे हुए दुश्मन थे।

लेनिन ने, बोल्शेविकों ने, विसर्जनवाद के जन्म लेते ही, इस अवसरवादी रुझान के खिलाफ डट कर संघर्ष किया। लेनिन ने कहा कि विसर्जनवादी पार्टी के अन्दर उदारपंथी पूँजीपतियों के प्रतिनिधि हैं।

दिसम्बर 1908 में, रू.सा.ज.म.पा. की पाँचवीं (अखिल रूसी) कान्फ्रेंस पेरिस में हुई। लेनिन के प्रस्ताव पर इस कान्फ्रेंस ने विसर्जनवाद की निन्दा की यानी पार्टी बुद्धिजीवियों के एक हिस्से (मेन्शेविकों) की इन कोशिशों की निन्दा की कि "रू.सा.ज.म.पा. के मौजूदा संगठन को खत्म कर दिया जाये और किसी भी कीमत पर, सीधे-सीधे कार्यक्रम छोड़ देने की कीमत पर भी, पार्टी की कार्यनीति और परम्पराएँ छोड़ देने की कीमत पर भी, पार्टी के बदले कानूनी तौर से काम करता हुआ एक रूपरेखाहीन सम्मेलन कायम किया जाये।" (**सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) के प्रस्ताव**, रूसी संस्करण, पहला भाग, पृ. 128)।

कान्फ्रेंस ने सभी पार्टी-संगठनों का आह्वान किया कि विसर्जनवादियों की कोशिशों के खिलाफ डट कर संघर्ष करें।

लेकिन, मेन्शेविकों ने कान्फ्रेंस का यह फैसला नहीं माना और दिन पर दिन विसर्जनवाद में गहरे पैठते गये, उन्होंने क्रान्ति से गद्दारी की और संवैधानिक जनवादियों से सहयोग किया। दिन पर दिन मेन्शेविक खुल कर सर्वहारा पार्टी के क्रान्तिकारी कार्यक्रम को छोड़ रहे थे, वे जनवादी गणतंत्र, काम के आठ घण्टे और जागीरी जमीन को जब्त करने की माँगें छोड़ रहे थे। वे चाहते थे कि पार्टी का कार्यक्रम और कार्यनीति छोड़ने की कीमत पर जार सरकार से इस बात की मंजूरी ले लें कि एक खुली, कानूनी और तथाकथित 'मजदूर' पार्टी काम कर सके। स्तोलिपिन शासन से सुलह करने और अपने को उसके माफिक

बनाने के लिए वे तैयार थे। इसीलिए, विसर्जनवादियों को 'स्तोलिपिन की मजदूर पार्टी' कहा जाने लगा।

विसर्जनवादी क्रान्ति के खुले विरोधी थे। इनके नेता दान, अक्सेलरोद और पोत्रेसोव थे, और मारतोव, त्रात्स्की और दूसरे मेन्शेविक इनके मददगार थे। इनके खिलाफ लड़ने के अलावा, बोल्शेविकों ने छिपे हुए विसर्जनवादियों, बहिष्कारवादियों (अत्जोवपंथियों) के खिलाफ भी डट कर संघर्ष किया। ये लोग अपने अवसरवाद को 'वामपंथी' लफ्फाजी से छिपाते थे। कुछ पहले के बोल्शेविक यह माँग कर चुके थे कि राज्य दूमा से मजदूरों के प्रतिनिधियों को वापस बुला लिया जाये और मौजूदा कानूनी संगठनों में काम करना कतई बन्द कर दिया जाये। इसलिए, ये लोग बहिष्कारवादी (अत्जोवपंथी) कहलाये, (अत्ज्व, वापस बुलाना)।

1908 में, कुछ बोल्शेविकों ने राज्य दूमा से सामाजिक-जनवादी प्रतिनिधियों को वापस बुलाने की माँग की। इसलिए, वे बहिष्कारवादी कहलाये। इन्होंने अपना अलग गुट बनाया (बोग्दानोव, लुनाचार्स्की, एलेक्सेन्स्की, पक्रोव्स्की, बुबनोव, वगैरह), जिसने लेनिन और लेनिन की नीति के खिलाफ संघर्ष शुरू किया। बहिष्कारवादियों ने जिद की कि मजदूरों की ट्रेड यूनियनों में और दूसरी कानूनी तौर से चलने वाली सभाओं में काम करेंगे ही नहीं। इस हरकत से, उन्होंने मजदूरों के उद्देश्य को काफी नुकसान पहुँचाया। बहिष्कारवादी पार्टी और मजदूर वर्ग के बीच दरार डाल रहे थे, जिससे गैर-पार्टी जनता से पार्टी के सम्बन्ध टूट जाते। वे अपने को गुप्त संगठन में अलग कर लेना चाहते थे; साथ ही कानूनी पर्दे को इस्तेमाल करने के अवसर को नामंजूर करके उन्होंने गुप्त संगठनों को भी खतरे में डाल दिया था। बहिष्कारवादी यह नहीं समझते थे कि राज्य दूमा में, और राज्य दूमा के जरिये, बोल्शेविक किसानों पर असर डाल सकते थे, जार सरकार की नीति का पर्दाफाश कर सकते थे, और संवैधानिक जनवादियों की भी नीति का पर्दाफाश कर सकते थे, जो फरेब से किसानों को अपनी तरफ लाना चाहते थे। बहिष्कारवादी क्रान्ति की नयी प्रगति के लिए शक्ति बटोरने के काम में बाधा डाल रहे थे। इसलिए, बहिष्कारवादी 'छिपे हुए विसर्जनवादी' थे। वे कोशिश करते थे कि कानूनी तौर से चालू संगठनों को इस्तेमाल करने की सम्भावना खत्म हो जाये और दरअसल उन्होंने आम गैर-पार्टी जनता के सर्वहारा-नेतृत्व का काम छोड़ दिया, क्रान्तिकारी काम छोड़ दिया।

बोल्शेविक अखबार **प्रोलेतरी** (सर्वहारा) के विस्तृत सम्पादक-मण्डल की कान्फ्रेंस 1909 में बुलायी गयी कि वह बहिष्कारवादियों के व्यवहार पर विचार करे। कान्फ्रेंस ने उनकी निन्दा की। बोल्शेविकों ने ऐलान किया कि उनमें और विसर्जनवादियों में कोई साम्य नहीं है और उन्हें बोल्शेविक संगठन से निकाल दिया।

विसर्जनवादी और बहिष्कारवादी, दोनों ही सर्वहारा वर्ग और उसकी पार्टी के निम्न-पूँजीवादी सहयात्रियों के अलावा और कुछ नहीं थे। जब सर्वहारा वर्ग के लिए मुश्किल वक्त आया तब विसर्जनवादियों का सही रूप खास तौर से स्पष्ट होकर सामने आ गया।

4. त्रात्स्कीवाद के खिलाफ बोल्शेविकों का संघर्ष। पार्टी-विरोधी अगस्त गुट।

जिस समय बोल्शेविक दो मोर्चों पर विसर्जनवादियों के खिलाफ और बहिष्कारवादियों के खिलाफ डट कर संघर्ष कर रहे थे और सर्वहारा पार्टी की सुसंगत नीति की रक्षा कर रहे थे, उस समय त्रात्स्की मेन्शेविक विसर्जनवादियों की मदद कर रहा था। इस समय लेनिन ने उसे 'जूडस[1] त्रात्स्की', कहा था। त्रात्स्की ने वियना (आस्ट्रिया) में लेखकों का एक गुट बनाया और वहाँ से, कहने को गुटबन्दी से अलग लेकिन वास्तव में, एक मेन्शेविक अखबार निकालना शुरू किया। उस समय लेनिन ने लिखा था : "त्रात्स्की का व्यवहार महापतित, अपनस्वार्थी और गुटबाज का है।... वह मुँह से पार्टी का भक्त बनता है लेकिन उसका व्यवहार किसी भी गुटबाज से बदतर है।"

आगे चलकर 1912 में, त्रात्स्की ने अगस्त गुट का संगठन किया। यह गुट सभी बोल्शेविक विरोधी गुटों और रुझानों की जमात था, जो लेनिन के खिलाफ और बोल्शेविक पार्टी के खिलाफ था। विसर्जनवादियों और बहिष्कारवादियों ने इस बोल्शेविक-विरोधी गुट से एका कर लिया और इस तरह सबको अपनी असलियत बता दी। सभी बुनियादी मसलों पर त्रात्स्की और त्रात्स्की पंथियों ने विसर्जनवादी रुख अपनाया। लेकिन, त्रात्स्की ने अपने विसर्जनवाद को केन्द्रवाद के लिबास में छिपाया, यानी दोनों में मेल-मिलाप कराने का बहाना किया। वह कहता था कि न तो वह बोल्शेविकों के साथ है, न मेन्शेविकों के साथ है, बल्कि वह दोनों में समझौता कराना चाहता है। इस सिलसिले में, लेनिन ने कहा था कि त्रात्स्की खुले विसर्जनवादियों से ज्यादा नीच और हानिकर है, इसलिए कि वह मजदूरों को यह विश्वास दिला कर धोखा देना चाहता है कि वह 'गुटबाजी से परे' है, जबकि वह दरअसल मेन्शेविक विसर्जनवादियों का पूरी तरह समर्थन करता है। त्रात्स्कीपंथी वह मुख्य गुट थे जो केन्द्रवाद का समर्थन करते थे।

कामरेड स्तालिन ने लिखा है :

> "केन्द्रवाद एक राजनीतिक धारणा है। उसकी विचारधारा यह है कि **एक ही पार्टी के अन्दर** सर्वहारा वर्ग के हितों को निम्न-पूँजीवादियों के हितों के अनुकूल बनाया जाये, उनके मातहत किया जाये। यह विचारधारा लेनिनवाद के लिए गैर और हेय है।" (स्तालिन, **लेनिनवाद की समस्याएँ,** नवाँ रूसी संस्करण, पृ. 379)।

इस दौर में, कामेनेव, जिनोवियेव और राइकोव दरअसल त्रात्स्की के छिपे हुए दलाल थे, क्योंकि वे अकसर लेनिन के खिलाफ उसकी मदद करते थे। जिनोवियेव, कामेनेव, राइकोव और त्रात्स्की के दूसरे छिपे हुए साथियों की मदद से, लेनिन की इच्छाओं के खिलाफ, जनवरी 1910 में केन्द्रीय समिति का विस्तृत अधिवेशन बुलाया गया। उस समय तक कई बोल्शेविकों की गिरफ्तारी की वजह से, केन्द्रीय समिति की बनावट बदल चुकी थी और उसमें ढुलमुल-यकीन लोग अपने लेनिनवाद विरोधी फैसले पास करा सके। इस तरह, इस

---

1. जूडस-ईसा मसीह का एक शिष्य, जिसने चाँदी के तीस टुकड़ोंके लोभ में पड़कर उन्हें रोमन सिपाहियों से पकड़वा दिया था-अनु.

अधिवेशन में तय हुआ कि बोल्शेविक अखबार **प्रोलेतरी** बन्द कर दिया जाये और वियना से प्रकाशित होने वाले त्रात्स्की के अखबार **प्राव्दा** की आर्थिक सहायता की जाये। कामेनेव त्रात्स्की के अखबार के सम्पादक-मण्डल में शामिल हो गया और जिनोवियेव के साथ मिल कर, उसने कोशिश की कि उसे केन्द्रीय समिति का मुखपत्र बना दे।

लेनिन के जोर देने पर ही, केन्द्रीय समिति के जनवरी अधिवेशन में विसर्जनवाद और बहिष्कारवाद की निन्दा करते हुए एक प्रस्ताव पास किया गया। लेकिन, यहाँ भी जिनोवियेव और कामेनेव त्रात्स्की के इस प्रस्ताव पर अड़े रहे कि विसर्जनवादियों का इस तरह नाम लेकर हवाला नहीं होना चाहिए।

जैसा कि लेनिन ने पहले ही देख लिया था और आगाह कर दिया था : सिर्फ बोल्शेविकों ने केन्द्रीय समिति के अधिवेशन का फैसला माना और अपना मुखपत्र **प्रोलेतरी** बन्द कर दिया, जबकि मेन्शेविक अपना गुटबाज विसर्जनवादी अखबार **गोलोस सोत्सियाल देमोक्राता (सामाजिक-जनवादी की आवाज)** प्रकाशित करते रहे।

कामरेड स्तालिन ने लेनिन की बात का पूरी तरह समर्थन किया। **सोत्सियाल देमोक्रात** के 11वें अंक में उन्होंने एक लेख प्रकाशित किया। इसमें उन्होंने त्रात्स्कीवाद के साथी-संघातियों के व्यवहार की निन्दा की और इस जरूरत की चर्चा की कि बोल्शेविक गुट के अन्दर कामेनेव, जिनोवियेव और राइकोव की गद्दारी से जो अस्वाभाविक परिस्थिति पैदा हो गयी है, उसे खत्म किया जाये। लेख में जो फौरी काम बताये गये, वे प्राग की पार्टी कान्फ्रेंस में पूरे किये गये। वे काम ये थे : आम पार्टी कान्फ्रेंस बुलाना, कानूनी तौर से निकलने वाले पार्टी अखबार का प्रकाशन और रूस में एक गैर-कानूनी व्यावहारिक पार्टी केन्द्र की रचना। कामरेड स्तालिन का लेख बाकू-कमेटी के फैसलों पर आधारित था। बाकू-कमेटी ने लेनिन का पूरी तरह समर्थन किया था।

त्रात्स्की के पार्टी-विरोधी अगस्त गुट में विसर्जनवादियों और त्रात्स्की पंथियों से लेकर बहिष्कारवादियों और देवनिर्माताओं तक विशुद्ध पार्टी-विरोधी तत्व भरे हुए थे। इनका मुकाबला करने के लिए, एक पार्टी गुट बनाया गया जिसमें ऐसे लोग थे जो सर्वहारा वर्ग की गैर-कानूनी पार्टी की हिफाजत करना चाहते थे और उसे मजबूत करना चाहते थे। इस गुट में बोल्शेविक थे, जिनके अगुवा लेनिन थे और कुछ थोड़े से पार्टी का पक्ष लेने वाले मेन्शेविक थे जिनके अगुवा प्लेखानोव थे। प्लेखानोव और पार्टी का पक्ष करने वाले मेन्शेविकों का उनका गुट कई सवालों पर मेन्शेविक दृष्टिकोण कायम रखते थे, लेकिन उन्होंने जोरदार तरीके से अगस्त गुट और विसर्जनवादियों से अपने को अलग कर लिया था और वे बोल्शेविकों से समझौता करना चाहते थे। लेनिन ने प्लेखानोव का प्रस्ताव मान लिया और पार्टी-विरोधी लोगों के खिलाफ उसके साथ एक अस्थायी गुट बनाने के लिए राजी हो गये। कारण यह था कि इस तरह का गुट पार्टी के लिए लाभदायी और विसर्जनवादियों के लिए घातक होता।

कामरेड स्तालिन ने इस गुट का पूरी तरह समर्थन किया। वह उस समय निर्वासन में थे और वहाँ से लेनिन को एक खत लिखा। उसमें उन्होंने लिखा था :

"मेरी राय में गुट की (लेनिन-प्लेखानोव की) नीति एकमात्र सही नीति है।

"(1) यह नीति और केवल यही नीति रूस में काम के सच्चे हित प्रकट करती है। काम के हितों की माँग है कि पार्टी के सभी सच्चे तत्व एकजुट हों।

"(2) यह लाइन और केवल यही लाइन मेक कार्यकर्ताओं और विसर्जनवादियों के बीच दरार डालकर और विसर्जनवादियों को तितर-बितर करके और ठिकाने लगाकर कानूनी संगठनों को विसर्जनवादियों के चंगुल से आजाद करेगी।" (लेनिन और स्तालिन, रू.सं., खण्ड 1, पृ. 529-30)।

कानूनी और गैर-कानूनी काम को चतुराई से मिलाने की वजह से, बोल्शेविक कानूनी मजदूर संगठनों में भारी शक्ति बन सके। यह बात इससे भी जाहिर हुई कि इस समय जो कानूनी तौर पर चार कांग्रेसें हुईं, उनमें मजदूरों के गुटों पर बोल्शेविक भारी असर डाल सके। एक कांग्रेस जन विश्वविद्यालयों की थी, दूसरी स्त्रियों की, तीसरी मिलों के डाक्टरों की और चौथी शराबबन्दी की। इन कांग्रेसों में, बोल्शेविकों के भाषण बहुत ही राजनीतिक महत्त्व के होते थे और समूचे देश में उनका असर हुआ। मिसाल के लिए, जन विश्वविद्यालयों की कांग्रेस में बोल्शेविक मजदूरों के प्रतिनिधि मण्डल ने जारशाही की नीति का पर्दाफाश किया, जो सभी सांस्कृतिक कार्रवाई का गला घोंटती थी। प्रतिनिधि-मण्डल ने दावा किया कि जब तक जारशाही का खात्मा नहीं होगा, तब तक सच्ची सांस्कृतिक प्रगति देश में हो ही नहीं सकती। मिल-डाक्टरों की कांग्रेस में, मजदूरों के प्रतिनिधि मण्डल ने उन भयानक गन्दगी से भरी हुई परिस्थितियों का बयान किया जिनमें मजदूरों को रहना और काम करना पड़ता था और यह नतीजा निकाला कि कारखानों में स्वास्थ्य-रक्षा तब तक नहीं हो सकती जब तक जारशाही का खात्मा नहीं किया जाये।

बोल्शेविकों ने बचे हुए विभिन्न कानूनी संगठनों से धीरे-धीरे विसर्जनवादियों को निकाल फेंका। प्लेखानोव के पार्टी-पक्षी गुट के साथ संयुक्त मोर्चों की विशेष कार्यनीति से बोल्शेविक कई मेन्शेविक मजदूर संगठनों को (विबोर्ग जिले में, एकातेरीनोस्लाव वगैरह में) अपनी तरफ कर सके।

इन मुश्किल दिनों में, बोल्शेविकों ने इस बात की मिसाल पेश की कि कानूनी काम के साथ किस तरह गैर-कानूनी काम करना चाहिए।

5. प्राग पार्टी कान्फ्रेंस, 1912। बोल्शेविकों द्वारा अपनी स्वतंत्र मार्क्सवादी पार्टी का निर्माण।

विसर्जनवादियों और बहिष्कारवादियों के खिलाफ, साथ ही त्रात्स्कीपंथियों के खिलाफ संघर्ष ने बोल्शेविकों के सामने यह तीव्र आवश्यकता पैदा की कि सभी बोल्शेविकों को एक करें और उनकी एक स्वतंत्र बोल्शेविक पार्टी बनायें। यह काम इसीलिए कतई जरूरी नहीं था कि पार्टी के अन्दर जो अवसरवादी रुझान मजदूर वर्ग में फूट डाल रहे थे, उन्हें खत्म किया जाये बल्कि इसलिए भी कि मजदूर वर्ग की शक्तियों को बटोरने का काम और उसे क्रान्ति की नयी उठान के लिए तैयार करने का काम पूरा किया जा सके।

1. मेक-मेन्शेविक का संक्षिप्त रूप-सं.

यह काम पूरा हो, इसके पहले जरूरी था कि पार्टी को अवसरवादियों से, मेन्शेविकों से मुक्त किया जाये।

किसी बोल्शेविक को अब सन्देह नहीं था कि बोल्शेविकों के लिए मेन्शेविकों के साथ एक ही पार्टी में रहना असम्भव है। स्तोलिपिन प्रतिक्रियावाद के दौर में, मेन्शेविकों के विश्वासघातक व्यवहार ने सर्वहारा पार्टी को खत्म करने और एक नयी सुधारवादी पार्टी संगठित करने की उनकी कोशिशों ने उनका साथ छोड़ना अनिवार्य कर दिया। मेन्शेविकों के साथ एक ही पार्टी में रह कर किसी न किसी तरह बोल्शेविक उनके व्यवहार की नैतिक जिम्मेदारी मंजूर करते थे। लेकिन, बोल्शेविकों के लिए यह स्वप्न में भी असम्भव था कि मेन्शेविकों की खुली गद्दारी की नैतिक जिम्मेदारी लेते जब तक कि वे खुद ही पार्टी और मजदूर वर्ग से गद्दारी नहीं करना चाहते। इस तरह, मेन्शेविकों के साथ एक ही पार्टी में एकता का मतलब यह हो रहा था कि मजदूर वर्ग और उसकी पार्टी से गद्दारी की जाये। इसलिए, मेन्शेविकों से जो वास्तविक अलगाव था, उसे आखिरी मंजिल तक ले जाना था : बाकायदा संगठन में उनसे अलगाव करना और पार्टी से मेन्शेविकों को निकालना।

सिर्फ इसी तरह यह मुमकिन था कि सर्वहारा की क्रान्तिकारी पार्टी सही तौर से काम करे, जिसका एक ही कार्यक्रम हो, एक ही कार्यनीति और एक ही वर्ग संगठन हो।

सिर्फ इसी तरह यह मुमकिन था कि पार्टी की सच्ची (न कि सिर्फ ऊपरी) एकता कायम की जाये, जिसे मेन्शेविकों ने नष्ट कर दिया था।

यह काम छठी आम पार्टी कान्फ्रेंस के जरिये पूरा होना था, जिसके लिए बोल्शेविक तैयारी कर रहे थे।

लेकिन, यह समस्या का सिर्फ एक पहलू था। मेन्शेविकों से बाकायदा अलगाव और बोल्शेविकों द्वारा अलग पार्टी का निर्माण अवश्य ही एक बहुत महत्त्वपूर्ण राजनीतिक काम था। लेकिन, बोल्शेविकों के सामने एक दूसरा और उससे भी महत्त्वपूर्ण राजनीतिक काम था। बोल्शेविकों के सामने यही काम नहीं था कि मेन्शेविकों से नाता तोड़ लें और बाकायदा अपनी एक अलग पार्टी बना लें। सबसे मुख्य काम यह था कि मेन्शेविकों से नाता तोड़ने के बाद एक **नयी** पार्टी बनायें, एक **नयी तरह** की पार्टी बनायें जो पश्चिम की आम सामाजिक-जनवादी पार्टियों से भिन्न हो, जो अवसरवादी लोगों से मुक्त हो और जो सत्ता के लिए संघर्ष में सर्वहारा वर्ग का नेतृत्व कर सकती हो।

बोल्शेविकों से संघर्ष करने में, अक्सेलरोद और मार्तिनोव से लेकर मारतोव और त्रात्स्की तक सभी तरह के मेन्शेविक लामुहाला वही हथियार इस्तेमाल करते थे जिन्हें पश्चिमी यूरोप के सामाजिक-जनवादियों की टकसाल से उन्होंने उधार लिया था। वे रूस में ऐसी पार्टी चाहते थे जो मसलन जर्मन या फ्रांसीसी सामाजिक-जनवादी पार्टी से मिलती-जुलती हो। वे बोल्शेविकों से ठीक इसीलिए लड़ते थे कि उन्हें उनमें कोई नयी चीज दिखाई देती थी, कोई असाधारण चीज और पश्चिम के सामाजिक-जनवादियों से भिन्न चीज। और, उस समय पश्चिम की सामाजिक-जनवादी पार्टियों का हुलिया क्या था? ये पार्टियाँ तरह-तरह के तत्वों के मेल से बनी थीं। इनमें मार्क्सवादी और अवसरवादी लोग थे, क्रान्ति के दोस्त और दुश्मन थे, पार्टी सिद्धान्त के हिमायती और विरोधी थे और ये

हिमायती धीरे-धीरे सैद्धान्तिक रूप से विरोधियों की बात मानते जाते थे और वस्तुतः उनके अधीन हो गये थे। पश्चिमी यूरोप के सामाजिक-जनवादियों से बोल्शेविक पूछते थे : अवसरवादियों से, क्रान्ति से गद्दारी करने वालों से मेल-मिलाप किसके लिए? वे जवाब देते थे : 'पार्टी में शान्ति के लिए, 'एकता' के लिए।' एकता किसके साथ, अवसरवादियों के साथ? वे जवाब देते थे : 'हाँ, अवसरवादियों के साथ।' यह स्पष्ट था कि इस तरह की पार्टियाँ क्रान्तिकारी पार्टियाँ नहीं हो सकती थी।

बोल्शेविकों से यह छिपा नहीं रहा कि एंगेल्स की मृत्यु के बाद पश्चिमी यूरोप की सामाजिक-जनवादी पार्टियाँ सामाजिक क्रान्ति की पार्टियों से घटकर 'समाज सुधार' की पार्टियाँ बनने लगी थीं। संगठन के तौर पर, इनमें से हरेक पार्टी प्रमुख शक्ति के बदले अपने संसदीय गुट का पुछल्ला बन चुकी थी। बोल्शेविकों की जानकारी से यह छिपा नहीं रहा कि इस तरह की पार्टी से सर्वहारा वर्ग का भला नहीं हो सकता, इस तरह की पार्टी क्रान्ति में मजदूर वर्ग का नेतृत्व नहीं कर सकती।

बोल्शेविकों की जानकारी से यह छिपा नहीं रहा कि सर्वहारा वर्ग को ऐसी पार्टी नहीं बल्कि दूसरी तरह की पार्टी चाहिए, एक नयी और वास्तविक मार्क्सवादी पार्टी, जो अवसरवादियों से कभी मेल-मिलाप नहीं करे और पूँजीपतियों के प्रति जिसका रुख क्रान्तिकारी हो, जो मजबूती से संगठित और अपनी एकता में अटूट हो, जो सामाजिक क्रान्ति की पार्टी हो, जो सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व की पार्टी हो।

बोल्शेविक यह नयी तरह की पार्टी चाहते थे। और, बोल्शेविकों ने ऐसी पार्टी बनाने के लिए काम किया। 'अर्थवादियों', मेन्शेविकों, त्रात्स्कीपंथियों, बहिष्कारवादियों और सभी तरह के भाववादियों, अनुभवसिद्ध आलोचकों के खिलाफ संघर्ष का समूचा इतिहास, ऐसी ही पार्टी बनाने का इतिहास था। बोल्शेविक एक नयी पार्टी, एक **बोल्शेविक** पार्टी बनाना चाहते थे जो उन सब लोगों के लिए आदर्श हो जो एक सच्ची क्रान्तिकारी मार्क्सवादी पार्टी चाहते थे। पुराने **इस्क्रा** के दिनों से ही, बोल्शेविक ऐसी ही पार्टी बनाने का काम कर रहे थे। उन्होंने इसके लिए जमकर, लगातार, और हर चीज के बावजूद काम किया। इस काम में, लेनिन की रचनाओं **क्या करें?, दो कार्यनीतियाँ**, वगैरह ने एक बुनियादी और फैसलाकुन भूमिका निभायी। लेनिन की पुस्तक **क्या करें?** ने ऐसी पार्टी के लिए **सैद्धान्तिक** तैयारी की। लेनिन की पुस्तक **एक कदम आगे दो कदम पीछे** ने ऐसी पार्टी के लिए **संगठनात्मक** तैयारी की। लेनिन की पुस्तक **जनवादी क्रान्ति में सामाजिक-जनवाद की दो कार्यनीतियाँ** ने ऐसी पार्टी के लिए **राजनीतिक** तैयारी की। और अन्त में, लेनिन की पुस्तक **भौतिकवाद और अनुभवसिद्ध आलोचना** ने ऐसी पार्टी के लिए **सिद्धान्त-सम्बन्धी** तैयारी की।

यह बात बेखटके कही जा सकती है कि कभी भी इतिहास में किसी भी राजनीतिक दल ने अपनी पार्टी बनाने के लिए ऐसी भरी-पूरी तैयारी नहीं की थी जैसी बोल्शेविक दल ने की।

इसलिए, बोल्शेविकों द्वारा अपनी पार्टी बनाने के लिए परिस्थितियाँ पूरी तरह तैयार हो चुकी थीं और पक चुकी थीं।

छठी पार्टी कान्फ्रेंस का यह काम था कि मेन्शेविकों को निकाल कर इस पूरे हो चुके काम पर मुहर लगा दे और बाकायदा नयी पार्टी, बोल्शेविक पार्टी का निर्माण कर दे।

छठी अखिल रूसी पार्टी कान्फ्रेंस जनवरी 1912 में प्राग में हुई। बीस से ऊपर पार्टी संगठनों के प्रतिनिधि उसमें मौजूद थे। इसलिए, कान्फ्रेंस का महत्त्व एक नियमित पार्टी कांग्रेस जैसा ही था।

कान्फ्रेंस के बयान में कहा गया कि पार्टी की टूटी हुई केन्द्रीय मशीन फिर बहाल कर दी गयी है और एक केन्द्रीय समिति स्थापित कर दी गयी है। इसी बयान में कहा गया कि जबसे पार्टी ने एक निश्चित संगठन का रूप लिया था, तब से रूसी सामाजिक-जनवादी पार्टी को कभी इतने कठिन समय से नहीं गुजरना पड़ा जितना प्रतिक्रियावाद के दौर में। तमाम दमन के बावजूद, बाहर से होने वाले कठिन प्रहार और भीतर के अवसरवादियों की गद्दारी और ढुलमुलपन के बावजूद, सर्वहारा वर्ग की पार्टी ने अपना झण्डा और अपना संगठन कायम रखा था।

कान्फ्रेंस के बयान में कहा गया :

> "न सिर्फ सामाजिक-जनवादी पार्टी का झण्डा, उसका कार्यक्रम और उसकी क्रान्तिकारी परम्पराएँ सुरक्षित हैं बल्कि उसका संगठन भी सुरक्षित है, जिसे दमन ने कमजोर और निर्बल भले बना दिया हो, लेकिन जिसे पूरी तरह से वह नष्ट नहीं कर पाया।"

कान्फ्रेंस ने रूस में मजदूर आन्दोलन की नयी उठान और पार्टी काम के पुनर्जीवन के पहले चिह्न नोट किये।

स्थानीय संगठनों द्वारा पेश की हुई रिपोर्टों पर अपने प्रस्ताव में कान्फ्रेंस ने नोट किया कि "हर जगह सामाजिक-जनवादी मजूदरों के अन्दर जोरदार काम किया जा रहा है, जिसका उद्देश्य स्थानीय गैर-कानूनी सामाजिक-जनवादी संगठनों और गुटों को मजबूत करना है।"

कान्फ्रेंस ने नोट किया कि पीछे हटने के दौर में बोल्शेविक कार्यनीति के सबसे महत्त्वपूर्ण नियम का लोग सभी जगह पालन कर रहे थे। यह नियम था : कानूनी तौर पर चलने वाले विभिन्न यूनियनों और मजदूर सभाओं में कानूनी काम के साथ गैर-कानूनी काम को मिलाना।

प्राग कान्फ्रेंस ने पार्टी की एक बोल्शेविक केन्द्रीय समिति चुनी, जिसमें लेनिन, स्तालिन, ओर्जोनिकित्स, स्वेर्दलोव, स्पान्दरियान और दूसरे लोग थे। कामरेड स्तालिन और स्वेर्दलोव केन्द्रीय समिति में अपनी गैर-हाजिरी में चुने गये, क्योंकि वे उस समय निर्वासन में थे। केन्द्रीय समिति के चुने हुए एवजी सदस्यों में कामरेड कालिनिन थे।

रूस में क्रान्तिकारी काम का संचालन करने के लिए एक अमली केन्द्र (केन्द्रीय समिति का रूसी ब्यूरो) कायम किया गया। उसके अगुआ कामरेड स्तालिन थे और उसमें कामरेड स्वेर्दलोव, स्पान्दरियान, ओर्जोनिकित्स, कालिनिन शामिल थे।

प्राग कान्फ्रेंस ने अवसरवाद के खिलाफ बोल्शेविकों के तमाम पिछले संघर्ष का

सिंहावलोकन किया और मेन्शेविकों को पार्टी से निकाल देने का फैसला किया।

पार्टी से मेन्शेविकों को निकालकर प्राग कान्फ्रेंस ने बोल्शेविक पार्टी के स्वतंत्र जीवन का बाकायदा श्रीगणेश किया। मेन्शेविकों को सैद्धान्तिक और संगठनात्मक तरीके से परास्त करके और पार्टी से निकाल कर, बोल्शेविकों ने पार्टी के पुराने झण्डे रू.सा.ज.म.पा. के झण्डे को कायम रखा। यही सबब है कि 1918 तक बोल्शेविक पार्टी अपने को रूसी सामाजिक-जनवादी मजदूर पार्टी ही कहती रही और 'बोल्शेविक' शब्द वह कोष्ठ में जोड़ देती थी।

1912 के आरम्भ में प्राग कान्फ्रेंस के नतीजों के बारे में, गोर्की को एक पत्र में लेनिन ने लिखा था :

> "विसर्जनवादी कीचड़ के बावजूद, आखिर हम पार्टी और उसकी केन्द्रीय समिति को बहाल करने में कामयाब हुए हैं। मुझे उम्मीद है कि हमारे साथ तुम इस बात पर खुश होगे। (लेनिन ग्रंथावली, रू.सं., खण्ड 29, पृष्ठ 19)।

प्राग कान्फ्रेंस के महत्त्व की चर्चा करते हुए, कामरेड स्तालिन ने कहा था :

> "हमारी पार्टी के इतिहास में इस कान्फ्रेंस का बेहद महत्त्व है, क्योंकि उसने बोल्शेविकों और मेन्शेविकों के बीच एक सीमा-रेखा खींच दी है और तमाम देश के बोल्शेविक संगठनों को एक संयुक्त बोल्शेविक पार्टी में मिला दिया है।" (**सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) की 15वीं कांग्रेस की शब्दशः रिपोर्ट,** रूसी संस्करण, पृष्ठ 361-62)।

मेन्शेविकों को निकालने और बोल्शेविकों की स्वतंत्र पार्टी बनाने के बाद, बोल्शेविक पार्टी और ज्यादा मजबूत और दृढ़ हुई। **पार्टी अपनी कतारों से अवसरवादी लोगों को निकाल कर मजबूत होती है**-बोल्शेविक पार्टी का यह एक सिद्धान्त है; उससे बोल्शेविक पार्टी का जो दूसरे इण्टरनेशनल की सामाजिक-जनवादी पार्टियों से बुनियादी तौर से भिन्न है। हालाँकि दूसरे इण्टरनेशनल की पार्टियाँ अपने को मार्क्सवादी पार्टियाँ कहती थीं, लेकिन वे दरअसल अपनी कतारों में मार्क्सवाद के दुश्मनों, खुले अवसरवादियों को बर्दाश्त करती थीं और उन्होंने दूसरे इण्टरनेशनल को उन्हें खराब और तबाह करने दिया था। इसके विपरीत, बोल्शेविकों ने अवसरवादियों के खिलाफ जम कर लड़ाई की। सर्वहारा वर्ग की पार्टी से अवसरवाद का कूड़ा-करकट निकाल फेंका और एक ऐसी पार्टी बनाने में कामयाब हुए जो नयी तरह की पार्टी थी, एक लेनिनवादी पार्टी थी, ऐसी पार्टी जिसने आगे चलकर सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व कायम किया।

अगर सर्वहारा वर्ग की पार्टी की कतारों में अवसरवादी बने रहते तो बोल्शेवक पार्टी मैदान में न आ सकती और सर्वहारा वर्ग का नेतृत्व न कर सकती, वह सत्ता पर अधिकार न कर सकती और सर्वहारा का अधिनायकत्व न कायम कर सकती, वह गृहयुद्ध में विजयी न हो सकती और समाजवाद का निर्माण न कर सकती।

प्राग कान्फ्रेंस ने फैसला किया कि अल्पतम कार्यक्रम में जो माँगें थीं, उन्हें पार्टी के मुख्य फौरी राजनीतिक नारों के रूप में पेश किया जाये : जनवादी गणतंत्र, आठ घण्टे का

दिन और तमाम जागीरी जमीन को जब्त करना।

इस क्रान्तिकारी नारों पर बोल्शेविकों ने चौथी राज्य दूमा के लिए चुनाव के सिलसिले में अपना आन्दोलन चलाया।

इन नारों ने 1912-14 के सालों में मजदूर जनता के क्रान्तिकारी आन्दोलन की नयी उठान को रास्ता दिखलाया।

सारांश

क्रान्तिकारी काम के लिए 1908-12 के साल बहुत ही कठिन साल थे। क्रान्ति की पराजय के बाद, जब क्रान्तिकारी आन्दोलन मन्द पड़ गया और जनता थकी हुई थी, बोल्शेविकों ने अपनी कार्यनीति बदल दी और जारशाही के खिलाफ सीधे संघर्ष के बदले घुमावदार संघर्ष की तरफ बढ़े। स्तोलिपिन प्रतिक्रियावाद के दौर में जो कठिन परिस्थितियाँ थीं, उनमें आम जनता से अपना सम्बन्ध बनाये रखने के लिए, बोल्शेविकों ने छोटे से छोटे कानूनी मौके का (रोगी-सहायक समितियों और ट्रेड यूनियनों से लेकर दूमा के मंच तक का) इस्तेमाल किया। बोल्शेविकों ने क्रान्तिकारी आन्दोलन की नयी उठान के लिए शक्ति बटोरने में अथक रूप से काम किया।

क्रान्ति की पराजय के बाद कठिन परिस्थितियाँ सामने आयीं। विरोधी रुझान टूट-फूट गये। क्रान्ति से निराशा हुई। जो बुद्धिजीवी पार्टी से भाग खड़े हुए थे (बोग्दानोव, वजारोव, वगैरह), उन्होंने अधिकाधिक कोशिश की कि पार्टी की सैद्धान्तिक बुनियादों को ठुकराएँ। उस समय, पार्टी के अन्दर बोल्शेविक ही ऐसी ताकत थे जिन्होंने पार्टी के झण्डे को झुकने न दिया, जो पार्टी-कार्यक्रम के प्रति वफादार रहे और जिन्होंने मार्क्सवादी सिद्धान्त के आलोचकों के हमलों को खदेड़ दिया। (लेनिन की पुस्तक **भौतिकवाद और अनुभवसिद्ध आलोचना**)। लेनिन के चारों ओर जो बोल्शेविकों का प्रमुख गुट था, वह पार्टी और उसके क्रान्तिकारी उसूलों की इसलिए हिफाजत कर सका कि वह मार्क्सवादी-लेनिनवादी विचारधारा में परिपक्व हो चुका था और क्रान्ति की प्रगति की दिशा को समझ चुका था। बोल्शेविकों के बारे में, लेनिन ने कहा था : "लोग यों ही नहीं कहते कि हम चट्टान की तरह दृढ़ हैं।"

उस समय, मेन्शेविक क्रान्ति से बराबर दूर हटते जा रहे थे। वे विसर्जनवादी हो गये और सर्वहारा वर्ग की गैर-कानूनी क्रान्तिकारी पार्टी के विसर्जन की, उसके खात्मे की माँग करने लगे। उन्होंने अधिकाधिक पार्टी कार्यक्रम और पार्टी के क्रान्तिकारी उद्देश्यों और नारों को खुल्लमखुल्ला छोड़ना शुरू कर दिया। उन्होंने खुद अपनी सुधारवादी पार्टी संगठित करने की कोशिश की, जिसका नाम मजदूरों ने 'स्तोलिपिन मजदूर पार्टी' रखा था। त्रात्स्की विसर्जनवादियों का समर्थन करता था और धूर्तता से पर्दे की तरह 'पार्टी-एकता' का नारा इस्तेमाल करता था। दरअसल, उसकी एकता का मतलब विसर्जनवादियों से एकता था।

दूसरी तरफ कुछ बोल्शेविक, जो जारशाही का मुकाबला करने के लिए नये और घुमावदार रास्ते अपनाने की जरूरत महसूस न करते थे, यह माँग करने लगे कि कानूनी अवसरों से लाभ न उठाया जाये और राज्य दूमा से मजदूरों के प्रतिनिधियों को वापस बुला लिया जाये।

ये बहिष्कारवादी पार्टी को आम जनता से अलग जा पड़ने की तरफ ठेल रहे थे। वे क्रान्ति की नयी उठान के लिए शक्तियों को बटोरने के काम में बाधा डाल रहे थे। 'वामपंथी' लफ्फाजी को पर्दे की तरह इस्तेमाल करके, विसर्जनवादियों की तरह, बहिष्कारवादियों ने भी तत्व रूप में क्रान्तिकारी संघर्ष तज दिया था।

विसर्जनवादी और बहिष्कारवादी लेनिन के खिलाफ एक ही गुट में शामिल हो गये। यह अगस्त गुट कहलाता था और इसका संगठन त्रात्स्की ने किया था।

विसर्जनवादियों और बहिष्कारवादियों के खिलाफ संघर्ष में, अगस्त गुट के खिलाफ संघर्ष में, बोल्शेविक जीते और गैर-कानूनी सर्वहारा पार्टी की हिफाजत करने में कामयाब हुए।

इस दौर की महत्त्वपूर्ण घटना (जनवरी 1912 में) रू.सा.ज.म.पा. की प्राग कान्फ्रेंस थी। इस कान्फ्रेंस में, मेन्शेविक पार्टी से निकाल दिये गये और एक पार्टी के अन्दर मेन्शेविकों के साथ बोल्शेविकों की ऊपरी एकता सदा के लिए खत्म कर दी गयी। एक राजनीतिक गुट से आगे बढ़ कर, बोल्शेविक बाकायदा एक स्वतंत्र पार्टी, रूसी सामाजिक-जनवादी मजदूर पार्टी (बोल्शेविक) बने। प्राग कान्फ्रेंस ने एक नयी तरह की पार्टी, लेनिनवाद की पार्टी, बोल्शेविक पार्टी की शुरुआत की।

प्राग कान्फ्रेंस में सर्वहारा पार्टी की कतारों से जो अवसरवादी, मेन्शेविक निकाले गये, उसका पार्टी और क्रान्ति के अगले विकास पर महत्त्वपूर्ण और निर्णायक असर पड़ा। अगर बोल्शेविक मजदूरों के उद्देश्य से गद्दारी करने वालों, मेन्शेविक समझौतावादियों को पार्टी से न निकाल देते तो सर्वहारा पार्टी 1917 में सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व के लिए लड़ने को आम जनता को न जगा सकती।

पाँचवा अध्याय

प्रथम साम्राज्यवादी युद्ध के पहले मजदूर आन्दोलन की नयी उठान के दौर में बोल्शेविक पार्टी

(1912-1914)

1. 1912-14 के दौर में क्रान्तिकारी आन्दोलन की उठान।

स्तोलिपिन प्रतिक्रियावाद की जीत थोड़े दिनों तक कायम रही। वह हुकूमत, जो जनता को लाठी और फाँसी के सिवा कुछ और न दे सकती थी कायम नहीं रह सकती थी। दमन इतना आम हो गया कि लोगों में उसका डर न रहा। क्रान्ति की पराजय के बाद, हाल के वर्षों में मजदूरों में जो थकान फैल गयी थी, वह खत्म होने लगी। मजदूरों ने लड़ाई फिर शुरू की। बोल्शेविकों ने पहले से ही कहा था कि क्रान्ति के ज्वार में नयी उठान आयेगी। उनका यह कहना सच साबित हुआ। 1911 में हड़तालियों की तादाद एक लाख से ऊपर थी, जबकि इससे पहले के वर्षों में पचास हजार या साठ हजार से ज्यादा नहीं हुई थी। जनवरी 1912 में होने वाली प्राग पार्टी कान्फ्रेंस ने ही मजदूर आन्दोलन के पुनर्जीवन की शुरुआत नोट की थी। लेकिन, क्रान्तिकारी आन्दोलन की असली उठान अप्रैल और मई 1912 में शुरू हुई, जबकि साइबेरिया में लीना की सोने की खानों में मजदूरों पर गोली चलाने के सिलसिले में आम राजनीतिक हड़तालें होने लगीं।

4 अप्रैल 1912 को, साइबेरिया में लीना की सोने की खानों में एक हड़ताल के दौर में हथियारबन्द पुलिस के एक जारशाही अफसर के हुक्म से 500 से ऊपर मजदूर मारे गये या घायल हुए। लीना के खान-मजदूरों की एक निहत्थी जमात प्रबन्धकों से बातचीत करने जा रही थी। उस पर गोली चलाने से सारे देश में हलचल पैदा हुई। निरंकुश जारशाही ने यह नया खूनी काण्ड खान-मजदूरों की एक आर्थिक हड़ताल तोड़ने के लिए और इस तरह लीना की सोने की खानों के मालिकों, अंग्रेज पूँजीपतियों को खुश करने के लिए किया था। अंग्रेज पूँजीपतियों और उनके रूसी साझीदारों को मजदूरों का बहुत ही शर्मनाक शोषण करके लीना की सोने की खानों से भारी मुनाफा-सत्तर लाख रूबल सालाना से ऊपर-मिलता था। वे मजदूरों को बहुत ही कम तनख्वाह देते थे और सड़ा हुआ खाना देते थे जो खाया न जा सकता था। इस उत्पीड़न और अपमान को और ज्यादा न सह पाकर, लीना की सोने की खानों के छह हजार मजदूरों ने हड़ताल कर दी।

सेण्ट पीटर्सबर्ग, मास्को और दूसरे औद्योगिक केन्द्रों और प्रदेशों के सर्वहारा वर्ग ने लीना के गोलीकाण्ड का जवाब आम हड़तालों, प्रदर्शनों और सभाओं से दिया।

कारखानों के एक गुट के मजदूरों ने अपने प्रस्ताव में ऐलान किया : "हमको इतना सदमा और ताज्जुब हुआ कि हमें अपने भाव प्रकट करने के लिए पहले शब्द नहीं मिले। हम लोग जो भी विरोध करेंगे, वह हमारे दिलों में जो गुस्सा उमड़ रहा है, उसकी हल्की छाया भर होगा। न आँसू, न विरोध, संगठित आम लड़ाई के अलावा और कोई चीज कारगर नहीं हो सकती।"

जार के मंत्री माकारोव से लीना गोलीकाण्ड के विषय में राज्य दूमा में जब सामाजिक-जनवादी गुट ने सवाल पूछे तो उसने बदतमीजी से कहा, : "ऐसा ही हुआ है, ऐसा ही होगा!" इससे मजदूरों की क्रोधाग्नि और भी भड़क उठी। लीना के मजदूरों के खूनी हत्याकाण्ड के खिलाफ, राजनीतिक विरोध हड़तालों में हिस्सा लेने वालों की तादाद तीन लाख से ऊपर पहुंच गयी।

लीना की घटनाएँ एक तूफान की तरह थीं, जिन्होंने स्तोलिपिन शासन की रची हुई 'शान्ति' के वातावरण को झकझोर दिया।

इस सिलसिले में, 1912 में कामरेड स्तालिन ने सेण्ट पीटर्सबर्ग के बोल्शेविक अखबार **ज्वेज्दा (नक्षत्र)** में लिखा था :

> "लीना के हत्याकाण्ड से खामोशी की बर्फ पिघल गयी है और जन आन्दोलन की धारा फिर बह चली है। बर्फ टूट चुकी है!... मौजूदा शासन में जो कुछ बुराई और नीचता थी, सताये हुए रूस की जो तमाम तकलीफें थीं, वे सब एक ही घटना में झलक उठीं-लीना का गोलीकाण्ड। यही सबब है कि यह काण्ड हड़तालों और प्रदर्शनों के लिए एक सिगनल बन गया।"

विसर्जनवादियों और त्रात्स्कीपंथियों ने क्रान्ति को दफना देने की जो तमाम कोशिशें कीं, वे बेकार गयीं। लीना की घटनाओं ने दिखा दिया कि क्रान्ति की शक्तियाँ जीवित हैं, मजदूर वर्ग ने क्रान्तिकारी शक्ति की भारी निधि इकट्ठा कर ली थी। 1912 में, मई दिवस की हड़तालों में लगभग चार लाख मजदूरों ने हिस्सा लिया। इन हड़तालों का राजनीतिक रूप काफी स्पष्ट था। वे बोल्शेविकों के क्रान्तिकारी नारों की छाया में हुई थीं : जनवादी गणतंत्र कायम हो, काम के आठ घण्टे हों, और सभी जागीरी जमीन जब्त कर ली जाये। इन मुख्य नारों का उद्देश्य यह था कि न सिर्फ आम मजदूरों को एक किया जाये बल्कि निरंकुश सत्ता पर क्रान्तिकारी धावा करने के लिए किसानों और सैनिकों को भी एक करें।

> "तमाम रूस के सर्वहारा वर्ग की विशाल मई दिवस की हड़ताल में और उसके साथ होने वाले सड़कों पर प्रदर्शनों, क्रान्तिकारी ऐलानों और मजदूरों की सभाओं में क्रान्तिकारी भाषणों ने साफ दिखला दिया कि रूस क्रान्ति के उभार की मंजिल में पहुँच गया है।"-लेनिन ने "क्रान्तिकारी उठान" नाम के एक लेख में यह लिखा था। (लेनिन, सं.ग्रं., अं.सं., मास्को, 1947, खण्ड 1, पृष्ठ 537)।

मजदूरों की क्रान्तिकारी भावना से घबड़ा कर विसर्जनवादियों ने हड़ताल आन्दोलन

का विरोध किया। उन्होंने उसे 'हड़तालों का बुखार' कहा। विसर्जनवादी और उनका साथी त्रात्स्की सर्वहारा वर्ग के क्रान्तिकारी संघर्ष की जगह 'अर्जी देने का आन्दोलन' चलाना चाहते थे। उन्होंने मजदूरों का बुलावा दिया कि वे एक अर्जी पर, एक कागज के टुकड़े पर, दस्तखत करें और उसमें 'अधिकार' बख्शने की प्रार्थना करें (सभा करने के अधिकार पर से रोक हटायी जाये, हड़ताल करने के अधिकार पर से रोक हटाई जाये, इत्यादि)। उसके बाद, यह अर्जी राज्य दूमा को भेजी जाती। विसर्जनवादी ऐसे समय में 1,300 दस्तखत इकट्ठे कर पाये, जबकि लाखों मजदूर बोल्शेविकों के क्रान्तिकारी नारों का समर्थन कर रहे थे।

मजदूर वर्ग ने बोल्शेविकों की दिखाई हुई राह को पसन्द किया।

उस समय देश की आर्थिक हालत यह थी।

1910 में, औद्योगिक ठहराव के बाद, पुनर्जीवन आ चुका था, मुख्य उद्योग-धन्धों में पैदावार बढ़ी थी। 1910 में, कच्चे लोहे की पैदावार 18 करोड़ 60 लाख पूड थी) 1912 में, 25 करोड़ 60 लाख पूड थी और 1913 में, वह 28 करोड़ 30 लाख पूड तक पहुँच गयी। कोयले की पैदावार 1910 में 1 अरब 52 करोड़ 20 लाख पूड से बढ़कर 1913 में 2 अरब 21 करोड़ 40 लाख पूड तक पहुँच गयी।

पूँजीवादी उद्योग-धन्धों के प्रसार के साथ, सर्वहारा वर्ग की तेजी से बढ़ोत्तरी हुई। उद्योग-धन्धों के विकास की एक अपनी विशेषता यह थी कि विशाल और भारी-भरकम कारखानों में पैदावार और भी केन्द्रित हो गयी। 1901 में, बड़े कारखानों में, जिनमें 500 या उससे ऊपर मजदूर काम करते थे, कुल मजदूरों के 46.7 फीसदी लोग काम करते थे, लेकिन 1910 में यह तादाद बढ़ कर 54 फीसदी हो गयी, यानी कुल मजदूरों में आधे से ज्यादा बड़े कारखानों में काम करते थे। उद्योग-धन्धों में इस तरह का केन्द्रीयकरण अभूतपूर्व था। संयुक्त राज्य अमरीका जैसे आगे बढ़े हुए देश में भी कुल मजदूरों की सिर्फ एक-तिहाई तादाद उस समय बड़े कारखानों में काम करती थी।

सर्वहारा वर्ग की बढ़ोत्तरी और उसका बड़े कारखानों में केन्द्रित होना और उसके साथ ही बोल्शेविक पार्टी जैसी क्रान्तिकारी पार्टी का होना रूस के मजदूर वर्ग को देश के राजनीतिक जीवन की सबसे बड़ी शक्ति बना रहा था। कारखानों में मजदूरों का जो भयानक रूप से शोषण होता था और उसके साथ जार के पिट्ठुओं ने जो असहनीय पुलिस राज कायम कर रखा था, उससे हर बड़ी हड़ताल राजनीतिक रूप ले लेती थी। इसके अलावा, आर्थिक और राजनीतिक संघर्षों के घुलमिल जाने से आम हड़तालों में जबर्दस्त क्रान्तिकारी शक्ति पैदा हो जाती थी।

क्रान्तिकारी मजदूर आन्दोलन की अगली कतारों में सेण्ट पीटर्सबर्ग का वीर सर्वहारा वर्ग चलता था। सेण्ट पीटर्सबर्ग के बाद बाल्टिक प्रदेश, मास्को और मास्को प्रान्त, वोल्गा प्रदेश और दक्षिणी रूस थे। 1913 में, आन्दोलन पश्चिमी प्रदेश, पोलैण्ड और काकेशस में फैल गया। कुल मिला कर सरकारी आकड़ों के अनुसार 7 लाख 25 हजार मजदूरों ने, और ज्यादा सही आँकड़ों के अनुसार 10 लाख मजदूरों ने, 1912 की हड़तालों में हिस्सा लिया। 1913 की हड़तालों में सरकारी आँकड़ों के अनुसार 8 लाख 61 हजार मजदूरों ने,

और ज्यादा सही आँकड़ों के अनुसार 12 लाख 72 हजार मजदूरों ने, हिस्सा लिया। 1914 के पूर्वार्द्ध में ही, हड़ताली मजदूरों की संख्या 15 लाख तक पहुँच चुकी थी।

1912-14 की क्रान्तिकारी उठान में, हड़ताल-आन्दोलन के प्रवाह ने देश में ऐसी हालत पैदा कर दी जो 1905 की क्रान्ति के शुरू होने से पहले की हालत से मिलती-जुलती थी।

सर्वहारा वर्ग की क्रान्तिकारी आम हड़तालों का महत्त्व **तमाम जनता** के लिए था। ये हड़तालें निरंकुश सत्ता के खिलाफ थीं और उनके प्रति बहुसंख्यक मेहनतकश जनता ने हमदर्दी दिखाई। कारखानेदारों ने तालेबन्दी से मजदूरों को बाहर रख कर इसका जवाब दिया। 1913 में, मास्को प्रान्त में पूँजीपतियों ने 50,000 सूती मजूदरों को सड़कों पर निकाल दिया। मार्च 1914 में, सेण्ट पीटर्सबर्ग में अकेले एक दिन में 70,000 मजदूर निकाले गये। दूसरे कारखानों और उद्योग-धन्धों के मजदूरों ने आम चन्दे करके और कभी-कभी हमदर्दी में हड़तालें करके तालेबन्दी से निकाले हुए साथियों और हड़तालियों की मदद की।

उठते हुए मजदूर आन्दोलन ने और आम हड़तालों ने किसानों को भी उभारा और उन्हें संघर्ष में खींच लिया। किसान फिर जमीन्दारों के खिलाफ बगावत करने लगे। उन्होंने जमीन्दारों की गढ़ियों और कुलक-खेतियों का नाश किया। 1910-14 के सालों में किसानों का असन्तोष 13,000 बार से भी अधिक बार फूट पड़ा।

फौज के अन्दर भी क्रान्तिकारी विद्रोह हुए। 1912 में, तुर्किस्तान में सशस्त्र विद्राहों का जन्म हुआ। बाल्टिक समुद्री बेड़े में और सेवास्तोपोल में भी विद्रोह की आग सुलग रही थी।

बोल्शेविक पार्टी के नेतृत्व में चलने वाले क्रान्तिकारी हड़ताल-आन्दोलन और प्रदर्शनों ने दिखला दिया कि मजदूर वर्ग आंशिक माँगों के लिए नहीं लड़ रहा, 'सुधारों' के लिए नहीं लड़ रहा बल्कि जारशाही से जनता को आजाद करने के लिए लड़ रहा है। देश नयी क्रान्ति की तरफ बढ़ रहा था।

1912 की गर्मियों में, रूस के और नजदीक आने के लिए लेनिन पेरिस से गैलीशिया (भूतपूर्व आस्ट्रिया) में चले आये। यहाँ उन्होंने केन्द्रीय समिति और प्रमुख पार्टी कार्यकर्ताओं के दो सम्मेलनों का सभापतित्व किया। इनमें से पहला 1912 के अन्त में क्रैकाऊ में हुआ और दूसरा 1913 की शरद में क्रैकाऊ के नजदीक पोरोनीनो नाम के कस्बे में हुआ। इन सम्मेलनों ने मजदूर आन्दोलन के अहम सवालों पर फैसले किये; क्रान्तिकारी आन्दोलन की उठान, हड़तालों के सिलसिले में पार्टी के काम, गैर-कानूनी संगठनों को मजबूत करना, दूमा का सामाजिक-जनवादी गुट, पार्टी प्रेस, मजदूरों का बीमा कराने का आन्दोलन।

2. बोल्शेविक अखबार 'प्राव्दा'। चौथी राज्य दूमा में बोल्शेविक गुट।

अपने संगठनों को मजबूत करने और आम जनता में अपना असर फैलाने के लिए, बोल्शेविक पार्टी ने जो एक शक्तिशाली हथियार इस्तेमाल किया, वह दैनिक बोल्शेविक अखबार **प्राव्दा (सत्य)** था। यह सेण्ट पीटर्सबर्ग से प्रकाशित होता था। लेनिन के निर्देश

के अनुसार, स्तालिन, ओलमिन्स्की और पोलेतायेव की पहलकदमी पर इसकी स्थापना की गयी। **प्राव्दा** आम मजदूर जनता का अखबार था, जिसकी स्थापना क्रान्तिकारी आन्दोलन की नयी उठान के साथ ही हुई थी। उसका पहला अंक 22 अप्रैल (नयी शैली, 5 मई) 1912 को प्रकाशित हुआ। मजदूरों के लिए यह दरअसल उत्सव का दिन था। **प्राव्दा** के प्रकाशन के सम्मान में यह फैसला किया गया कि आगे से 5 मई को मजदूर-प्रेस-दिवस मनाया जायेगा।

प्राव्दा के प्रकाशन के पहले ही, बोल्शेविकों के पास **ज्वेज्दा** नाम का साप्ताहिक अखबार था। यह आगे बढ़े हुए मजदूरों के लिए था। लीना काण्ड के समय, **ज्वेज्दा** ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। उसने लेनिन और स्तालिन के लिखे हुए कई सतेज राजनीतिक लेख छापे, जिन्होंने संघर्ष के लिए मजदूर वर्ग को बटोरा। लेकिन उठते हुए क्रान्तिकारी ज्वार को देखते हुए, बोल्शेविक पार्टी की जरूरतें साप्ताहिक पत्र से पूरी न होती थीं। ज्यादा से ज्यादा आम मजदूर जनता के लिए एक राजनीतिक दैनिक अखबार जरूरी था। **प्राव्दा** ऐसा ही अखबार था।

इस दौर में, **प्राव्दा** की भूमिका बहुत ही महत्त्वपूर्ण थी। आम मजदूर जनता में उसने बोल्शेविज्म के लिए समर्थन हासिल किया। पुलिस बराबर दमन करती थी, जुर्माने होते थे और जो लेख और खत सेन्सर को पसन्द न आते थे, उनके प्रकाशन पर अंक जब्त कर लिये जाते थे। ऐसी हालत में, लाखों आगे बढ़े हुए मजदूरों की मदद से ही **प्राव्दा** जिन्दा रह सकता था। मजदूरों में भारी चन्दा इकट्ठा होने से ही **प्राव्दा** बड़े-बड़े जुर्माने अदा कर पाया। अकसर ऐसा होता था कि **प्राव्दा** के जब्त किये हुए अंकों की काफी प्रतियाँ पाठकों के हाथों में पहुँच ही जाती थीं। ज्यादा सक्रिय मजदूर रात में ही छापेखाने आते थे और अखबार के बण्डल बाँध ले जाते थे।

ढाई साल की अवधि में, जार सरकार ने **प्राव्दा** को आठ बार बन्द कर दिया। लेकिन, हर बार मजदूरों की मदद से नये और मिलते-जुलते नामों से वह फिर निकल आया, जैसे **जो प्राव्दा (सत्य के लिए), पूत प्राव्दी (सत्य का रास्ता), त्रुदोवाया प्राव्दा (मजदूर सत्य)।**

प्राव्दा का दैनिक औसत चालीस हजार कापियों का था, लेकिन मेन्शेविक दैनिक **लूच (किरण)** की पन्द्रह हजार या सोलह हजार से ज्यादा कापियाँ नहीं निकल पाती थीं।

मजदूर **प्राव्दा** को अपना ही अखबार समझते थे। उन्हें उस पर बहुत भरोसा था और उसकी पुकार का वे तुरन्त जवाब देते थे। बीसियों पाठक एक ही प्रति पढ़ते थे और वह प्रति हाथों-हाथ घूमा करती थी। **प्राव्दा** ने उनकी वर्ग-चेतना का निर्माण किया, उन्हें शिक्षित किया, उन्हें संगठित किया और संघर्ष के लिए उन्हें बुलावा दिया।

प्राव्दा किन चीजों के बारे में लिखता था?

हर अंक में मजदूरों के दर्जनों खत छपते थे। इनमें वे अपनी जिन्दगी बयान करते थे, पूँजीपति, मैनेजर और फोरमैन जिस बुरी तरह उनका शोषण करते थे और तरह-तरह से उन्हें सताते और बेइज्जत करते थे, उसे वे बयान करते थे। इन पत्रों में पूँजीवादी परिस्थिति की तीखी और जोरदार आलोचना होती थी। **प्राव्दा** अकसर रोजगार और भूखे मरते हुए मजदूरों की आत्महत्या की रिपोर्टें छापता था। ये वह मजदूर थे जो फिर काम पाने की

आशा छोड़ बैठे थे।

प्राव्दा विभिन्न कारखानों और उद्योग-धन्धों के मजदूरों की माँगों और जरूरतों के बारे में लिखता था। वह बतलाता था कि मजदूर अपनी माँगों के लिए किस तरह लड़ रहे हैं। लगभग हर अंक में विभिन्न कारखानों में होने वाली हड़तालों की रिपोर्टें छपती थीं। बड़ी और लम्बी चलने वाली हड़तालों में हड़तालियों की मदद करने के लिए, अखबार दूसरे कारखानों और दूसरे उद्योग-धन्धों के मजदूरों में चन्दे इकट्ठे करने में मदद देता था। कभी-कभी हड़ताल-फण्ड में लाखों रूबल इकट्ठे हो जाते थे। उन दिनों के लिए, जबकि ज्यादातर मजदूरों को हर रोज 70 या 80 कोपेक नहीं मिलता था, तब ये रकमें बहुत भारी थीं। इससे मजदूरों में सर्वहारा भाईचारा और तमाम मजदूरों के हितों की एकता का भाव पुष्ट हुआ।

मजदूर हर राजनीतिक घटना, हर जीत या हार की तरफ **प्राव्दा** को चिट्ठियाँ, अभिनन्दन या विरोध-पत्र भेज कर अपने भाव प्रकट करते थे। अपने लेखों में, **प्राव्दा** सुसंगत बोल्शेविक दृष्टिकोण से मजदूर आन्दोलन के कामों की चर्चा करता था। कानूनी तौर से छपने वाला अखबार जारशाही का खात्मा करने के लिए खुल्लमखुल्ला बुलावा नहीं दे सकता था। उसे इशारे करने पड़ते थे, जिन्हें वर्ग-चेतन मजदूर बहुत अच्छी तरह समझ लेते थे और जिन्हें वे आम जनता को समझाते थे। मिसाल के लिए, जब **प्राव्दा** ने 'वर्ष 5 की पूरी और बिना कटी-छँटी माँगों' के बारे में लिखा तो मजदूर समझ गये कि इसका मतलब बोल्शेविकों के क्रान्तिकारी नारे हैं, यानी जारशाही का खात्मा, जनवादी गणतंत्र, जागीरी जमीन की जब्ती और काम के आठ घण्टे।

चौथी दूमा के चुनाव के पहले, **प्राव्दा** ने आगे बढ़े हुए मजदूरों को संगठित किया। उसने उन लोगों की गद्दारी का पर्दाफाश किया जो उदारपंथी पूँजीपतियों से समझौते की हिमायत करते थे, जो 'स्तोलिपिन मजदूर पार्टी' के हिमायती थे, यानी मेन्शेविक। **प्राव्दा** ने मजदूरों से कहा कि वे उनको वोट दें जो 'वर्ष 5 की पूरी और बिना कटी-छँटी माँगों' का समर्थन करते थे, यानी बोल्शेविकों को वोट दें। चुनाव का तरीका सीधा नहीं था बल्कि कई मंजिलों से होता था। पहले मजदूरों की सभाएँ प्रतिनिधि चुनती थीं। इसके बाद, प्रतिनिधि निर्वाचक चुनते थे। ये निर्वाचक ही दूमा के लिए मजदूर प्रतिनिधियों के चुनाव में हिस्सा लेते थे। निर्वाचकों के चुनाव के दिन **प्राव्दा** ने बोल्शेविक उम्मीदवारों की एक सूची छापी और मजदूरों से सिफारिश की कि उस सूची के लिए वोट दें। सूची पहले न छप सकती थी वरना सूची में दिये हुए लोगों के गिरफ्तार होने का खतरा पैदा हो जाता।

प्राव्दा ने सर्वहारा वर्ग की आम कार्रवाई का संगठन करने में मदद दी। 1914 के वसन्त में, सेण्ट पीटर्सबर्ग में एक बड़ी तालेबन्दी के वक्त, जबकि आम हड़ताल का ऐलान करना उचित न होता, **प्राव्दा** ने मजदूरों से कहा कि संघर्ष के दूसरे तरीके अपनाओ जैसे कि कारखानों में आम सभाएँ करना और प्रदर्शन करना। यह बात अखबार में खुल कर न कही जा सकती थी। यह बात वर्ग-चेतन मजदूरों ने समझ ली जब उन्होंने लेनिन का लेख पढ़ा। उसका शीर्षक बहुत ही सीधा-सादा था-"मजदूर आन्दोलन के रूप"। उसमें कहा गया था कि उस समय हड़तालों की जगह मजदूर आन्दोलन के और नये रूप अपनाने चाहिए,

जिसका मतलब था कि सभाएँ और प्रदर्शन किये जायें।

इस तरह से, बोल्शेविकों की गैर-कानूनी क्रान्तिकारी कार्रवाई के साथ **प्राव्दा** के जरिये आम मजदूरों के संगठन और आन्दोलन के कानूनी रूप मिला दिये गये।

प्राव्दा मजदूरों की जिन्दगी के बारे में, उनकी हड़तालों और प्रदर्शनों के ही बारे में नहीं लिखता था बल्कि बराबर किसानों की जिन्दगी, उन्हें सताने वाले अकाल और सामन्ती जमीन्दारों के शोषण का भी वर्णन करता था। वह बतलाता था कि किस तरह स्तोलिपिन 'सुधारों' की बदौलत कुलकों ने किसानों से उनकी सबसे अच्छी जमीन छीन ली थी। **प्राव्दा** ने वर्ग-चेतन मजदूरों का ध्यान गाँव में फैले हुए घोर असन्तोष की तरफ खींचा। उसने सर्वहारा वर्ग को सिखलाया कि 1905 की क्रान्ति के उद्देश्य अभी हासिल नहीं हुए और एक नयी क्रान्ति होने वाली है। उसने सिखलाया कि इस दूसरी क्रान्ति में सर्वहारा वर्ग को जनता के सच्चे नेता और पथ-प्रदर्शक का काम करना चाहिए और इस क्रान्ति में उसे क्रान्तिकारी किसानों जैसा ताकतवर साथी मिलेगा।

मेन्शेविक इस कोशिश में लगे थे कि मजदूर क्रान्ति का विचार छोड़ दें, जनता के बारे में सोचना बन्द कर दें, किसानों की भुखमरी के बारे में, यमदूत सभा के सामन्ती जमीन्दारों के प्रभुत्व के बारे में सोचना छोड़ दें और केवल 'सभा करने की आजादी' के लिए लड़ें, इसके लिए जार सरकार को 'अर्जियाँ' भेजें। बोल्शेविकों ने मजदूरों को समझाया कि क्रान्ति को छोड़ने के इस मेन्शेविक शास्त्र का प्रचार, किसानों से सहयोग करने की नीति को छोड़ने का प्रचार, पूँजीपतियों के हित में किया जा रहा है। अगर मजदूर किसानों को अपना साथी बना लेंगे तो वे जरूर ही जारशाही को हरा देंगे। इसलिए, वे मेन्शेविकों जैसे बुरे रहबरों को क्रान्ति का दुश्मन समझ कर बाहर निकाल दें।

अपने "किसान जीवन" स्तम्भ में, **प्राव्दा** किन चीजों के बारे में लिखता था?

मिसाल के लिए, 1913 के साल के बारे में हम कुछ खत ले सकते हैं।

समारा से एक खत आया था, जिसका शीर्षक था-"किसान जीवन का नमूना"। उसमें लिखा था कि बुगुल्मा जिले के नोवोखासबुलात गाँव के 45 किसानों पर यह दोष लगाया गया था कि उन्होंने पैमाइश करने वाले के काम में दखल दिया। वह पैमाइश करने वाला कम्यून से निकलने वाले किसानों के लिए उनके हिस्से में पड़ी हुई कम्यून की जमीन की हदें बाँध रहा था। ज्यादातर किसानों को लम्बी कैद की सजा दी गयी।

प्सकोस सूबे से एक छोटे से खत में लिखा था कि "(जबाल्ये स्टेशन के पास) प्सित्सा गाँव के किसानों ने देहाती पुलिस का हथियारबन्द विरोध किया। कई आदमी घायल हो गये। लड़ाई एक खेती के झगड़े को लेकर हुई। देहाती पुलिस प्सित्सा भेज दी गयी है और वाइस गवर्नर और प्रोक्यूरेटर गाँव की तरफ आ रहे हैं।"

ऊफा सूबे से एक खत में लिखा था कि किसानों के हिस्से बड़ी तादाद में बेचे जा रहे थे। अकाल और गाँव के कम्यून से निकलने की आज्ञा देने वाले कानून की वजह से, दिन पर दिन ज्यादा किसान अपनी जमीन से हाथ धो रहे थे। मिसाल के लिए, बोरिसोव्का नाम का खेड़ा लीजिये। यहाँ पर 27 किसान परिवार हैं और उनके पास कुल मिलाकर 543 देसियातिन खेत है। अकाल में, पाँच किसानों ने 31 देसियातिन जमीन तुरन्त ही बेच

डाली। यह जमीन प्रति देसियातिन 25 से 33 रूबल के भाव बिकी, हालाँकि उसकी कीमत इससे तीन या चार गुनी थी। इसी गाँव में, सात किसानों ने कुल मिलाकर 177 देसियातिन खेत गिरवी रख दिये थे। छह साल तक 12 फीसदी सालाना के हिसाब से उन्हें प्रति देसियातिन 18 से 20 रूबल तक मिलते। जब जनता की गरीबी और ब्याज की भारी दर पर ध्यान देते हैं, तो यह निश्चय कहा जा सकता है कि 177 देसियातिन की आधी जमीन जरूर ही महाजन के पास चली जायेगी क्योंकि यह मुमकिन नहीं है कि आधे कर्जदार भी इतनी बड़ी रकम छह साल में दे पायेंगे।

प्राव्दा में प्रकाशित "रूस में बड़े जमीन्दारों और छोटे किसानों की जमीन की मिल्कियत" में, लेनिन ने मजदूरों और किसानों को बड़ी खूबी से दिखा दिया कि जांगरचोर जमीन्दारों के हाथ में कितनी ज्यादा जागीरी जमीन है। 30,000 बड़े जमीन्दारों के बीच में ही सात करोड़ देसियातिन जमीन घिरी हुई थी। इतनी ही जमीन एक करोड़ किसान कुनबों के पास थी। औसतन बड़े जमीन्दारों में हरेक के पास 2,300 देसियातिन जमीन थी, जबकि कुलकों को मिला कर किसान परिवारों के पचास लाख परिवार, यानी आधे किसान ऐसे थे जिनके पास प्रति आदमी एक या दो देसियातिन से ज्यादा नहीं होता था। इन आँकड़ों से साफ मालूम होता था कि किसानों की गरीबी और बार-बार पड़ने वाले अकालों की जड़ में भूदास प्रथा की अवशेष ये बड़ी-बड़ी जागीरें ही हैं, जिनसे किसान-मजदूर वर्ग के नेतृत्व में होने वाली क्रान्ति के जरिये ही वे छुटकारा पा सकते हैं।

जिन मजदूरों का देहात से सम्बन्ध था, उसके जरिये **प्राव्दा** गाँवों में पहुँच जाता था और राजनीतिक रूप से आगे बढ़े हुए किसानों को क्रान्तिकारी संघर्ष के लिए उभारता था। जिस समय **प्राव्दा** की स्थापना हुई, उस समय गैर-कानूनी सामाजिक-जनवादी संगठन पूरी तरह बोल्शेविकों के नेतृत्व में थे। दूसरी तरफ, संगठन के कानूनी रूप-जैसे कि दूमा गुट, प्रेस, रोगी-सहायता-समिति, ट्रेड यूनियन-अभी पूरी तरह मेन्शेविकों के हाथ से नहीं निकाले गये थे। बोल्शेविकों को मजदूर वर्ग के मौजूदा कानूनी संगठनों से विसर्जनवादियों को निकलने के लिए डट कर मोर्चा लेना पड़ा। **प्राव्दा** की वजह से, इस लड़ाई का अन्त जीत में हुआ।

पार्टी सिद्धान्त के लिए आम मजदूर वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी बनाने के लिए संघर्ष में **प्राव्दा** बीचो-बीच में था। **प्राव्दा** ने बोल्शेविक पार्टी के गैर-कानूनी केन्द्रों के चारों तरफ मौजूदा कानूनी संगठनों को इकट्ठा किया और एक निश्चित उद्देश्य की तरफ मजदूर आन्दोलन का संचालन किया-क्रान्ति की तैयारी के लिए। **प्राव्दा** के मजदूर संवाददाताओं की तादाद बहुत बड़ी थी। एक साल में ही, उसने मजदूरों के एक हजार से ऊपर खत छापे। लेकिन, **प्राव्दा** मजदूर जनता से सिर्फ खतों के जरिये सम्पर्क कायम नहीं रखता था। रोज कारखानों से ढेरों मजदूर सम्पादकीय दफ्तर में आते थे। प्राव्दा के सम्पादकीय दफ्तर में पार्टी के संगठनात्मक कार्य का एक बड़ा हिस्सा केन्द्रित था। यहाँ पर पार्टी केन्द्रों के प्रतिनिधियों की मीटिंगों का इन्तजाम किया जाता था। यहाँ पर मिलों और कारखानों में पार्टी के काम की रिपोर्टें ली जाती थीं। यहीं से पार्टी की सेण्ट पीटर्सबर्ग कमेटी और केन्द्रीय समिति के निर्देश बाहर भेजे जाते थे।

मजदूर वर्ग की आम क्रान्तिकारी पार्टी बनाने के लिए ढाई साल तक विसर्जनवादियों के खिलाफ डट कर मोर्चा लेने के फलस्वरूप, 1914 की गर्मियों तक बोल्शेविक पार्टी के लिए और **प्राव्दा** की कार्यनीति के लिए बोल्शेविक रूस के राजनीतिक तौर से सक्रिय मजदूरों में से 80 फीसदी का समर्थन हासिल करने में सफल हुए। यह बात, मिसाल के लिए, इससे साबित हुई कि 1914 में मजदूर प्रेस के लिए कुल 7,000 मजदूर मण्डलों ने चन्दा इकट्ठा किया; इनमें से 5,600 मण्डलों ने बोल्शेविक प्रेस के लिए चन्दा इकट्ठा किया और सिर्फ 1,400 मण्डलों ने मेन्शेविकों के लिए। लेकिन दूसरी तरफ, उदारपंथी पूँजीपतियों और पूँजीवादी बुद्धिजीवियों में मेन्शेविकों के बहुत से 'अमीर दोस्त' थे। मेन्शेविक अखबार चलाने के लिए जितने पैसे की जरूरत होती थी, उसमें आधे से ज्यादा यही लोग दे देते थे।

उस समय, बोल्शेविक **'प्राव्दापंथी'** कहलाते थे। **प्राव्दा** ने क्रान्तिकारी मजदूरों की एक पूरी पीढ़ी पाल-पोस कर बड़ी की थी। यह वह पीढ़ी थी जिसने आगे चलकर अक्टूबर की समाजवादी क्रान्ति की। हजारों और लाखों मजदूर **प्राव्दा** की हिमायत करते थे। क्रान्तिकारी आन्दोलन की उठान के दिनों (1912-14) में, एक जन बोल्शेविक पार्टी की पक्की बुनियाद डाल दी गयी। यह ऐसी बुनियाद थी जिसे साम्राज्यवादी युद्ध के दौर में जारशाही का तमाम दमन कुचल नहीं सका।

> "1912 का **प्राव्दा** 1917 में बोल्शेविज्म की विजय की नींव का पत्थर था।" (स्तालिन)।

पार्टी की दूसरी कानूनी तौर पर चलने वाली केन्द्रीय संस्था चौथी राज्य दूमा का बोल्शेविक गुट था।

1912 में, हुकूमत ने चौथी दूमा के चुनाव का ऐलान किया। हमारी पार्टी ने चुनाव में हिस्सा लेने को बहुत ही महत्त्वपूर्ण समझा। आम जनता में बोल्शेविक पार्टी के क्रान्तिकारी काम के मुख्य आधार दूमा का सामाजिक-जनवादी गुट और **प्राव्दा** थे, जो पूरे देश के पैमाने पर कानूनी तौर से काम करते थे।

बोल्शेविक पार्टी ने दूमा के चुनाव में स्वतंत्र रूप से काम किया और अपने अलग नारे दिये। उसने एक तरफ सरकारी पार्टियों पर हमला किया और साथ ही दूसरी तरफ उदारपंथी पूँजीपतियों (संवैधानिक जनवादियों) पर हमला किया। चुनाव अभियान में बोल्शेविकों के नारे थे : जनवादी गणतंत्र, काम के आठ घण्टे और जागीरी जमीन की जब्ती।

1912 की शरद में, चौथी दूमा के चुनाव हुए। अक्टूबर के शुरू में, सेण्ट पीटर्सबर्ग में चुनाव की प्रगति की दिशा से असन्तुष्ट होकर हुकूमत ने कई बड़े कारखानों में मजदूरों के चुनाव-अधिकारों पर बन्दिश लगाने की कोशिश की। इसके जवाब में, कामरेड स्तालिन के प्रस्ताव पर हमारी पार्टी की सेण्ट पीटर्सबर्ग कमेटी ने बड़े कारखानों के मजदूरों से एक दिन की हड़ताल करने को कहा। मुश्किल में पड़कर, हुकूमत को झुकना पड़ा और मजदूर अपनी सभाओं में जिसे चाहते थे उसे चुन सके। मजदूरों के बहुसंख्यक हिस्से ने अपने

प्रतिनिधियों और नुमाइन्दों के लिए उस **निर्देश-पत्र (मैण्डेट)** पर वोट दिया, जिसे कामरेड स्तालिन ने तैयार किया था। "अपने मजदूर प्रतिनिधि के नाम सेण्ट पीटर्सबर्ग के मजदूरों के निर्देश-पत्र" ने 1905 के अधूरे कामों को पूरा करने की तरफ ध्यान दिलाया।

निर्देश-पत्र में कहा गया था :

> "...हम समझते हैं कि रूस में अब ऐसे जन आन्दोलन छिड़ने वाले हैं जो 1905 से ज्यादा गम्भीर होंगे।... 1905 की तरह, इन आन्दोलनों की पहली कतारों में रूसी समाज का सबसे आगे बढ़ा हुआ वर्ग, रूसी सर्वहारा वर्ग होगा। उसका एक ही साथी बेहद सताये हुए किसान हो सकते हैं, जिन्हें रूस में उद्धार से भारी दिलचस्पी है।"

निर्देश-पत्र में कहा गया था कि जनता की अगली कार्यवाहियों को दो मोर्चों पर चलने वाले एक संघर्ष का रूप लेना चाहिए-जारशाही सरकार के खिलाफ और उन उदारपंथी पूँजीपतियों के खिलाफ जो जारशाही से समझौता करने की कोशिश कर रहे थे।

लेनिन ने निर्देश-पत्र को बहुत महत्त्व दिया, जिसमें क्रान्तिकारी संघर्ष के लिए मजदूरों का आह्वान किया गया था। अपने प्रस्तावों में, मजदूरों ने इस आह्वान का स्वागत भी किया।

चुनावों में बोल्शेविकों ने एक जीत हासिल की और पीटर्सबर्ग के मजदूरों ने दूमा के लिए कामरेड बादायेव को चुना।

दूमा के लिए चुनावों में मजदूरों ने आबादी के दूसरे हिस्सों से अलग वोट दिया (इसे मजदूर क्यूरिया कहते थे। मजदूर क्यूरिया से जो 9 प्रतिनिधि चुने गये थे, उनमें से 6 बोल्शेविक पार्टी के सदस्य थे : बादायेव, पेत्रोव्स्की, मुरानोव, समोइलोव, शागोव और मालिनोव्स्की (यह आखिरी आदमी आगे चल कर जारशाही का एजेण्ट साबित हुआ)। बोल्शेविक प्रतिनिधि बड़े औद्योगिक केन्द्रों से चुने गये थे, जिनमें कम से कम 80 फीसदी मजदूर केन्द्रित थे। दूसरी तरफ, कई चुने हुए विसर्जनवादी मजदूर क्यूरिया से मैण्डेट नहीं लाये थे, यानी उन्हें मजदूरों ने नहीं चुना था। नतीजा यह कि दूमा में 6 बोल्शेविकों के मुकाबले में 7 विसर्जनवादी थे। पहले तो दूमा में बोल्शेविकों और विसर्जनवादियों ने मिला-जुला सामाजिक-जनवादी गुट बनाया। विसर्जनवादी बोल्शेविकों के क्रान्तिकारी काम में अड़चन डालते थे। उनके खिलाफ जबर्दस्त संघर्ष करने के बाद, अक्टूबर 1913 में, पार्टी की केन्द्रीय समिति के निर्देश से, बोल्शेविक प्रतिनिधि मिलेजुले सामाजिक-जनवादी गुट से अलग हो गये और उन्होंने एक स्वतंत्र बोल्शेविक गुट बनाया।

बोल्शेविक प्रतिनिधि दूमा में क्रान्तिकारी भाषण देते थे, जिनमें वे स्वेच्छाचारी व्यवस्था का पर्दाफाश करते थे और मजदूरों पर दमन और पूँजीपतियों द्वारा मजदूरों का बर्बर शोषण करने के बारे में हुकूमत से सवाल करते थे।

वे दूमा में खेती के सवाल पर भी बोलते थे। सामन्ती जमीन्दारों के खिलाफ लड़ने के लिए, वे किसानों को बुलावा देते थे और संवैधानिक जनवादी पार्टी का भण्डाफोड़ करते थे, जो जागीरी जमीन की जब्ती और उसे किसानों को देने के खिलाफ थी।

बोल्शेविकों ने राज्य दूमा में काम के आठ घण्टे करने के बारे में एक प्रस्ताव रखा।

जाहिर है कि इस यमदूत सभा वालों की दूमा ने उसे मंजूर नहीं किया, लेकिन प्रचार-आन्दोलन के लिए उसका भारी मूल्य था।

दूमा का बोल्शेविक गुट पार्टी की केन्द्रीय समिति और लेनिन से नजदीकी सम्बन्ध कायम रखता था। लेनिन उन्हें निर्देश भेजा करते थे। जिस समय कामरेड स्तालिन सेण्ट पीटर्सबर्ग में रहते थे, वह खुद सीधे उनका पथ-प्रदर्शन किया करते थे।

बोल्शेविक प्रतिनिधियों का काम दूमा के अन्दर ही सीमित नहीं था। दूमा के बाहर भी वे बहुत सक्रिय रहते थे। वे मिलों और कारखानों में जाते थे और देश के मजदूर केन्द्रों का दौरा करते थे, जहाँ वे भाषण देते थे, गुप्त सभाएँ करते थे जिनमें वे पार्टी के फैसले समझाते थे, और नये पार्टी-संगठन बनाते थे। प्रतिनिधि बड़े कौशल से कानूनी काम के साथ गैर-कानूनी, भूमिगत काम करते जाते थे।

3. कानूनी तौर से चलने वाले संगठनों में बोल्शेविकों की जीत। क्रान्तिकारी आन्दोलन की लगातार उठान। साम्राज्यवादी युद्ध से पहले।

इस दौर में, बोल्शेविक पार्टी ने मजदूरों के वर्ग-संघर्ष के सभी रूपों और सभी कार्यवाहियों में नेतृत्व करने की एक मिसाल रखी। उसने गैर-कानूनी संगठन बनाये। उसने गैर-कानूनी पर्चे निकाले। उसने आम जनता में गुप्त रूप से क्रान्तिकारी काम किया। इसके साथ ही, मजदूर वर्ग के विभिन्न कानूनी संगठनों का नेतृत्व बराबर हासिल करती रही। पार्टी ने कोशिश की कि ट्रेड यूनियनों को अपनी तरफ कर ले और जनगृहों, शाम के विश्वविद्यालयों, क्लबों और रोगी-सहायक-समितियों में अपना असर कायम करे। ये कानूनी तौर से चलने वाले संगठन बहुत दिनों से विसर्जनवादियों के अड्डे बने हुए थे। बोल्शेविकों ने जोरदार लड़ाई शुरू की कि कानूनी तौर से चलने वाली संस्थाएँ पार्टी का गढ़ बन जायें। कानूनी और गैर-कानूनी काम को चतुराई से मिलाकर, दोनों सबसे प्रमुख शहरों-सेण्ट पीटर्सबर्ग और मास्को-के ट्रेड यूनियन संगठनों के बहुसंख्यक हिस्सों को बोल्शेविकों ने अपनी तरफ कर लिया। 1913 में, सेण्ट पीटर्सबर्ग में धातु मजदूरों की यूनियन की कार्यकारिणी समिति के चुनाव में खास तौर से शानदार जीत हासिल की गयी। जलसे में जो 3,000 धातु के मजदूर आये थे, उनमें मुश्किल से 150 ने विसर्जनवादियों को वोट दिया।

यही बात चौथी राज्य दूमा के सामाजिक-जनवादी गुट जैसे महत्त्वपूर्ण कानूनी संगठन के बारे में कही जा सकती है। हालाँकि दूमा में मेन्शेविकों के 7 प्रतिनिधि थे और बोल्शेविकों के 6, फिर भी मेन्शेविक प्रतिनिधि मुख्य रूप से गैर-मजदूर जिलों से चुने गये थे और वे मुश्किल से 20 फीसदी मजदूरों का प्रतिनिधित्व करते थे; जबकि बोल्शेविक प्रतिनिधि देश के मुख्य औद्योगिक केन्द्रों (सेण्ट पीटर्सबर्ग, मास्को, इवानोवो वज्नेसेंस्क, कस्त्रोमा, एकातेरीनोस्लाव और खारकोव) से चुने गये थे और इस तरह, वे देश के 80 फीसदी मजदूरों का प्रतिनिधित्व करते थे। मजदूर 6 बोल्शेविकों (बादायेव, पेत्रोव्स्की, वगैरह) को अपना प्रतिनिधि मानते थे, न कि 7 मेन्शेविकों को।

बोल्शेविक कानूनी तौर से चलने वाले संगठनों को अपनी तरफ कर सकने में इसलिए सफल हुए कि जार सरकार के भयानक जुल्म और विसर्जनवादियों तथा त्रात्स्कीपंथियों की

गालियों के बावजूद, वे गैर-कानूनी पार्टी को कायम रख सके और अपनी कतारों में मजबूत अनुशासन बनाये रख सके। उन्होंने दृढ़ता से मजदूर वर्ग के हितों की रक्षा की। आम जनता से उनके नजदीकी सम्बन्ध थे और वे मजदूर आन्दोलन के दुश्मनों के खिलाफ बिना समझौते के लड़ते थे।

इस तरह, कानूनी तौर से चलने वाले संगठनों में बोल्शेविकों की जीत और मेन्शेविकों की हार पूरे मोर्चे पर हुई। दूमा के मंच से आन्दोलन करने में और मजदूरों के अखबार और कानूनी तौर से चलने वाले दूसरे संगठनों में, मेन्शेविकों को पीछे हटना पड़ा। मजदूर वर्ग में क्रान्तिकारी आन्दोलन ने जोर पकड़ लिया। मजदूर वर्ग निश्चित रूप से बोल्शेविकों के चारों तरफ सिमट आया और उसने मेन्शेविकों को दूर भगा दिया।

इस सब के बाद, राष्ट्रीयताओं के मसले पर भी मेन्शेविक पूरी तरह दिवालिया साबित हुए। रूस के सीमान्त प्रदेशों में क्रान्तिकारी आन्दोलन की माँग थी कि राष्ट्रीयताओं के सवाल पर स्पष्ट कार्यक्रम हो। लेकिन, मेन्शेविकों के पास बुन्द की 'सांस्कृतिक खुदमुख्तारी' के अलावा, जिससे किसी को सन्तोष नहीं होता था, और कोई कार्यक्रम नहीं था। सिर्फ बोल्शेविकों के पास राष्ट्रीयताओं के मसले पर एक मार्क्सवादी कार्यक्रम था, जैसा कि वह कामरेड स्तालिन के लेख **मार्क्सवाद और राष्ट्रीयताओं का सवाल** और लेनिन के लेखों **राष्ट्रीयताओं के आत्मनिर्णय का अधिकार** तथा **राष्ट्रीय प्रश्न पर टीका-टिप्पणी** में पेश किया गया था।

कोई ताज्जुब नहीं कि ऐसी हारें खाने के बाद मेन्शेविकों का अगस्त गुट टूटने लगा। भानमती का कुनबा वह था ही, वह बोल्शेविकों का धावा नहीं सह सका और बिखरने लगा। वह बोल्शेविज्म का विरोध करने के लिए बना था; अब बोल्शेविकों की मार से उसकी धज्जियाँ उड़ गयीं। सबसे पहले, उससे **व्पर्योदपंथी** (बोग्दानोव, लुनाचार्स्की) निकले। उनके बाद लेत निकले और उनके पीछे बाकी सब हो लिये।

बोल्शेविकों के खिलाफ संघर्ष में हार खाकर, विसर्जनवादियों ने मदद के लिए दूसरे इण्टरनेशनल से अपील की। दूसरा इण्टरनेशनल उनकी मदद के लिए आ गया। बोल्शेविकों और विसर्जनवादियों के बीच 'समझौता कराने' और 'पार्टी में अमन' कायम करने के बहाने, दूसरे इण्टरनेशनल ने माँग की कि बोल्शेविक विसर्जनवादियों की समझौतापरस्त नीति की नुक्ताचीनी बन्द कर दें। लेकिन, बोल्शेविक समझौता करने के लिए तैयार न थे। उन्होंने अवसरवादी दूसरे इण्टरनेशनल के फैसले मानने से इनकार कर दिया और किसी भी तरह की रियायत करने को राजी न हुए।

कानूनी तौर से चलने वाले संगठनों में बोल्शेविकों की जीत आकस्मिक न थी, न हो सकती थी। सिर्फ बोल्शेविकों के पास मार्क्सवादी सिद्धान्त था, स्पष्ट कार्यक्रम था और एक क्रान्तिकारी सर्वहारा पार्टी थी जो संघर्ष में पक्की और फौलादी बन चुकी थी। लेकिन इसीलिए उनकी जीत आकस्मिक न हो, ऐसा न था। उनकी जीत इसलिए भी हुई कि उसमें क्रान्ति का उठता हुआ ज्वार प्रतिबिम्बित होता था।

मजदूरों का क्रान्तिकारी आन्दोलन बराबर बढ़ता गया और शहर के बाद शहर और प्रदेश के बाद प्रदेश में फैल गया। 1914 के आरम्भ में, मजदूर हड़तालों का कम होना तो

दूर, उन्होंने नया जोर पकड़ा। वे अधिकाधिक डटकर लड़ी जाने लगीं और मजदूरों की अधिकाधिक तादाद उनमें हिस्सा लेने लगी। 9 जनवरी को 92 लाख 50 हजार मजदूरों ने हड़ताल की, जिनमें अकेले सेण्ट पीटर्सबर्ग में 1 लाख 40 हजार हड़ताली थे। पहली मई को 5 लाख मजदूरों ने हड़ताल की, जिनमें सेण्ट पीटर्सबर्ग के ढाई लाख मजदूर थे। मजदूरों ने हड़तालों में असाधारण मजबूती दिखाई। सेण्ट पीटर्सबर्ग में ओबूखोव कारखाने की एक हड़ताल दो महीने से ऊपर चली और एक दूसरी लैसनर कारखाने में लगभग तीन महीने चली। सेण्ट पीटर्सबर्ग के कई कारखानों में मजदूरों से जहरीले प्रदूषण में काम कराने की वजह से 1 लाख 15 हजार मजदूरों ने हड़ताल की, जिसके साथ प्रदर्शन भी हुए। आन्दोलन फैलता गया। 1914 के पूर्वार्द्ध में, (जुलाई शुरू के दिन मिलाकर) कुल 14 लाख 25 हजार मजदूरों ने हड़तालों में हिस्सा लिया।

मई में, बाकू में तेल-मजदूरों की हड़ताल हुई। उसने रूस के तमाम मजदूरों का ध्यान अपने पर केन्द्रित किया। हड़ताल संगठित ढंग से चलाई गई। 20 जून को, 20 हजार मजदूरों ने बाकू में प्रदर्शन किया। पुलिस ने बाकू के मजदूरों के खिलाफ भारी जुल्मी कदम उठाये। इसके विरोध में और बाकू मजदूरों से भाईचारा जाहिर करने के लिए, मास्को में हड़ताल हुई और दूसरे जिलों में फैल गयी।

3 जुलाई को, बाकू की हड़ताल के सिलसिले में सेण्ट पीटर्सबर्ग के पुतिलोव कारखाने में एक सभा हुई। पुलिस ने मजदूरों पर गोली चलाई। सेण्ट पीटर्सबर्ग के सर्वहारा वर्ग में गुस्से की लहर दौड़ गयी। 4 जुलाई को, सेण्ट पीटर्सबर्ग पार्टी कमेटी के बुलावे पर वहाँ के 90 हजार मजदूरों ने विरोध में काम बन्द कर दिया। 7 जुलाई को उनकी तादाद बढ़कर 1 लाख 30 हजार हो गयी, 8 जुलाई को डेढ़ लाख और 11 जुलाई को 2 लाख तक पहुँच गयी।

सभी कारखानों में असन्तोष फैल गया और हर जगह सभाएँ और प्रदर्शन हुए। मजदूरों ने सड़कों पर मोर्चेबन्दी भी शुरू कर दी। बाकू और लोत्स में भी मोर्चेबन्दी हुई। कई जगह पुलिस ने मजदूरों पर गोली चलाई। हुकूमत ने आन्दोलन को दबाने के लिए 'संकटकालीन' कदम उठाये। राजधानी एक हथियारबन्द खेमा बन गयी। **प्राव्दा** को बन्द कर दिया गया।

लेकिन, उसी समय मैदान में एक नयी घटना, एक अन्तरराष्ट्रीय महत्त्व की घटना हुई। यह साम्राज्यवादी युद्ध था, जिससे सारा घटना-चक्र ही बदल जाने को था। जुलाई के क्रान्तिकारी उभार के दिनों में ही, फ्रांस का राष्ट्रपति प्वॉकारे शीघ्र छिड़ने वाली लड़ाई के बारे में जार से बात करने सेण्ट पीटर्सबर्ग आया था। कुछ दिन बाद ही, जर्मनी ने रूस के खिलाफ लड़ाई का ऐलान कर दिया। बोल्शेविक संगठनों को कुचलने और मजदूर आन्दोलनों को दबाने के लिए, जार सरकार ने लड़ाई से फायदा उठाया। विश्व युद्ध ने क्रान्ति की प्रगति में बाधा डाली और जार सरकार ने क्रान्ति से बचने के लिए इसी युद्ध में शरण ढूँढ़ी।

सारांश

क्रान्ति की नयी उठान के दिनों (1912-14) में, बोल्शेविक पार्टी ने मजदूर आन्दोलन का नेतृत्व किया और बोल्शेविक नारों पर उसे नयी क्रान्ति की तरफ ले गयी। पार्टी ने योग्यता से कानूनी काम के साथ गैर-कानूनी काम को मिलाया। विसर्जनवादियों और उनके दोस्तों-त्रात्स्कीपंथियों और बहिष्कारवादियों-के विरोध को कुचल कर, पार्टी ने कानूनी आन्दोलन के सभी रूपों का नेतृत्व हासिल किया और कानूनी तौर से चलने वाले संगठनों को अपने क्रान्तिकारी काम का गढ़ बना दिया।

मजदूर वर्ग के दुश्मनों और मजदूर आन्दोलन में उनके दलालों के खिलाफ लड़ाई में, पार्टी ने अपनी कतारों मजबूत कीं और मजदूर वर्ग से अपने सम्बन्ध बढ़ाये। क्रान्तिकारी प्रचार-आन्दोलन के मंच के तौर पर, दूमा का भरपूर इस्तेमाल करके और आम मजदूरों के प्रभावी अखबार **प्राव्दा** की स्थापना करके, पार्टी ने क्रान्तिकारी कार्यकर्ताओं की एक नई पीढ़ी-प्राव्दापंथियों को शिक्षित किया। साम्राज्यवादी युद्ध में, मजदूरों का यह हिस्सा अन्तरराष्ट्रीयता और सर्वहारा क्रान्ति के झण्डे के प्रति वफादार रहा। आगे चलकर अक्टूबर 1917 की क्रान्ति में, वह बोल्शेविक पार्टी की रीढ़ बन गया।

साम्राज्यवादी युद्ध छिड़ने से पहले, पार्टी ने क्रान्तिकारी कार्यवाहियों में मजदूर वर्ग का नेतृत्व किया। यह अगली कतारों की मुठभेड़ थी, जो साम्राज्यवादी युद्ध से रुक गयी लेकिन तीन साल बाद ही वह फिर शुरू हुई और इस बार उसने जारशाही का खात्मा ही कर डाला। बोल्शेविक पार्टी ने सर्वहारा अन्तरराष्ट्रीयता के झण्डे फहराते हुए साम्राााज्यवादी युद्ध के मुश्किल दौर में प्रवेश किया।

छठा अध्याय

साम्राज्यवादी युद्ध में बोल्शेविक पार्टी रूस में दूसरी क्रान्ति (1914-मार्च 1917)

1. साम्राज्यवादी युद्ध का आरम्भ और उसके कारण।

14 जुलाई (नई शैली, 27 जुलाई) 1914 को, जार सरकार ने आम भर्ती का ऐलान किया। 19 जुलाई (नई शैली, 1 अगस्त) 1914 को, जर्मनी ने रूस के खिलाफ लड़ाई का ऐलान किया।

रूस युद्ध में शामिल हो गया।

युद्ध के सचमुच छिड़ने से बहुत पहले, लेनिन और बोल्शेविकों ने देख लिया था कि वह अनिवार्य है। अन्तरराष्ट्रीय समाजवादी कांग्रेसों में, लेनिन ने इस बात के लिए प्रस्ताव रखे थे कि युद्ध होने पर समाजवादियों की एक क्रान्तिकारी नीति निश्चित कर ली जाये।

लेनिन ने बताया था कि युद्ध पूँजीवाद का एक अनिवार्य अंग है। दूसरे देशों को लूटना, उपनिवेशों पर कब्जा करना और लूटना-खसोटना और नये बाजारों पर कब्जा करना-ये सभी बातें पूँजीवादी राष्ट्रों के लिए दूसरों को जीतने वाले युद्धों का कारण बन चुकी थीं। पूँजीवादी राष्ट्रों के लिए युद्ध वैसी ही स्वाभाविक और उचित परिस्थिति है जैसी कि मजदूर वर्ग का शोषण।

युद्ध खास तौर से तब अनिवार्य हो गये जब 19वीं सदी के आखिर में और 20वीं सदी के शुरू में पूँजीवाद ने निश्चित रूप से अपने विकास की सबसे ऊँची और आखिरी मंजिल, साम्राज्यवाद में प्रवेश किया। साम्राज्यवादी काल में, ताकतवर पूँजीवादी संघों (इजारेदारियों) और बैंकों ने पूँजीवादी देशों के जीवन में एक प्रभुत्व की जगह बना ली। महाजनी पूँजी, पूँजीवादी राष्ट्रों की मालिक बन बैठी। इस महाजनी पूँजी के लिए नये बाजार, नये उपनिवेशों पर कब्जा, बाहर पूँजी भेजने के लिए नये क्षेत्र और कच्चा माल देने वाले नये देश जरूरी थे।

लेकिन 19वीं सदी के आखिर तक, सारी पृथ्वी पूँजीवादी राष्ट्रों में पहले ही बँट चुकी थी। फिर भी, साम्राज्यवादी युग में पूँजीवाद का विकास बहुत ही विषम गति से और

छलाँगें भर कर होता है : कुछ देश, जो पहले सबसे आगे थे, अब अपने उद्योग-धन्धे अपेक्षाकृत धीमी रफ्तार से विकसित करते हैं, दूसरे देश, जो पहले पिछड़े हुए थे, उनके बराबर आ जाते हैं और तेज छलाँगें भरते हुए उनसे आगे बढ़ जाते हैं। साम्राज्यवादी राष्ट्रों की सापेक्ष आर्थिक और सैनिक शक्ति में परिवर्तन हो रहा था। दुनिया का फिर से बँटवारा करने के लिए कोशिश जारी हुई और फिर से इस बँटवारे के लिए संघर्ष ने साम्राज्यवादी युद्ध अनिवार्य कर दिया। 1914 का युद्ध दुनिया का और प्रभाव क्षेत्रों का फिर से बँटवारा करने के लिए हुआ था। सभी साम्राज्यवादी राष्ट्र इसके लिए बहुत दिनों से तैयारी कर रहे थे। युद्ध के लिए सभी देशों के साम्राज्यवादी जिम्मेदार थे।

लेकिन खास तौर से, इस युद्ध के लिए एक तरफ तो जर्मनी और आस्ट्रिया ने तैयारी की थी और दूसरी तरफ फ्रांस और ग्रेट ब्रिटेन और इन दोनों पर निर्भर रूस ने की थी। ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस और रूस के त्रिगुट का सहयोग 1907 में कायम हुआ। आस्ट्रिया, हंगरी और इटली ने दूसरा साम्राज्यवादी गुट कायम किया था। लेकिन 1914 के युद्ध छिड़ने पर, इटली ने यह गुट छोड़ दिया और बाद में त्रिगुट में शामिल हो गया। बल्गारिया और तुर्की ने जर्मनी और आस्ट्रिया-हंगरी का समर्थन किया।

जर्मनी ने साम्राज्यवादी युद्ध के लिए इस उद्देश्य से तैयारी की थी कि ब्रिटेन और फ्रांस से उनके उपनिवेश और रूस से उक्रेन, पोलैण्ड और बाल्टिक प्रदेश छीन ले। बगदाद रेलवे बना कर, जर्मनी ने निकट-पूर्व में ब्रिटेन के प्रभुत्व के लिए खतरा पैदा कर दिया। ब्रिटेन को जर्मन नौसेना की हथियारबन्दी से डर था।

जार सरकार तुर्की का बँटवारा करना चाहती थी और कुस्तुन्तुनिया पर कब्जा करने का सपना देखती थी। वह काले सागर से भूमध्य सागर की तरफ जाने वाले जलडमरूमध्य (दर्रे दानियाल) पर कब्जा जमाने की सोच रही थी। जार सरकार की योजनाओं में आस्ट्रिया-हंगरी के एक हिस्से-गैलीशिया-पर भी कब्जा करना शामिल था।

युद्ध के जरिये, ग्रेट ब्रिटेन चाहता था कि अपने खतरनाक प्रतिद्वन्द्वी जर्मनी को कुचल दे। युद्ध के पहले, जर्मनी का माल दुनिया के बाजार से अंग्रेजी माल को लगातार बाहर करता जा रहा था। इसके सिवा, ब्रिटेन तुर्की से मेसोपोटामिया और फिलिस्तीन हड़पना चाहता था और मिस्र में मजबूती से पैर जमाना चाहता था।

फ्रांस के पूँजीपति जर्मनी से सार प्रदेश और अलसास-लोरेन छीन लेने की कोशिश में थे। ये दोनों कोयले और लोहे के समृद्ध प्रदेश थे, जिनमें से दूसरे को जर्मनी ने 1870-71 की लड़ाई में फ्रांस से छीन लिया था।

इस तरह, साम्राज्यवादी युद्ध पूँजीवादी राष्ट्रों के दो गुटों के बीच के गम्भीर विरोधों से पैदा हुआ।

दुनिया का फिर से बँटवारा करने के लिए, इस लूटमार की लड़ाई का असर सभी साम्राज्यवादी देशों के हितों पर पड़ा। नतीजा यह हुआ कि जापान, संयुक्त राज्य अमेरिका और दूसरे कई देश भी आगे चलकर उसमें शामिल हो गये।

युद्ध विश्वयुद्ध बन गया।

पूँजीपतियों ने साम्राज्यवादी युद्ध की तैयारियों को अपने देशों की जनता से खूब

छिपाकर रखा। जब लड़ाई छिड़ गयी, तब हर साम्राज्यवादी हुकूमत ने यह साबित करने की कोशिश की कि उसने अपने पड़ोसियों पर हमला नहीं किया बल्कि उन्होंने ही उस पर कब्जा किया था। पूँजीपतियों ने युद्ध के सच्चे उद्देश्य और उसके साम्राज्यवादी, राज्य हड़पने वाले रूप को छिपाकर जनता को धोखा दिया। हर साम्राज्यवादी हुकूमत ने ऐलान किया कि वह अपने देश की रक्षा के लिए युद्ध कर रही है।

जनता को धोखा देने में, दूसरे इण्टरनेशनल के अवसरवादियों ने पूँजीपतियों की मदद की। दूसरे इण्टरनेशनल के सामाजिक-जनवादियों ने समाजवाद के उद्देश्य से नीचतापूर्ण गद्दारी की, सर्वहारा वर्ग के अन्तरराष्ट्रीय भाईचारे के पक्ष से गद्दारी की। युद्ध का विरोध करना तो दरकिनार, वे लड़ाकू देशों के मजदूरों और किसानों को पितृभूमि की रक्षा के नाम पर एक-दूसरे के खिलाफ लड़ने के लिए उकसाने में पूँजीपतियों की मदद करते रहे।

रूस मित्र राष्ट्रों के त्रिगुट की तरफ से, फ्रांस और ब्रिटेन की तरफ से युद्ध में शामिल हुआ। यह कोई आकस्मिक बात नहीं थी। यह ध्यान रखना चाहिए कि 1914 के पहले रूसी उद्योग-धन्धों की सबसे महत्त्वपूर्ण शाखाएँ विदेशी पूँजीपतियों के हाथ में थीं, खास तौर से फ्रांस, ग्रेट ब्रिटेन और बेल्जियम, यानी मित्र देशों के हाथ में थीं, रूस के सबसे महत्त्वपूर्ण धातु के कारखाने फ्रांस के पूँजीपतियों के हाथ में थे। कुल मिला कर, लगभग तीन-चौथाई (72 फीसदी) धातु के उद्योग-धन्धे विदेशी पूँजी पर निर्भर थे। यही बात दोन्येत्स प्रदेश के कोयले के उद्योग-धन्धों के बारे में भी सच थी। अंग्रेजी और फ्रांसीसी पूँजी के पास जो तेल के स्रोत थे, उनसे देश की लगभग आधी तेल की पैदावार होती थी। रूसी उद्योग-धन्धों से मुनाफों का काफी हिस्सा विदेशी बैंकों में, मुख्य रूप से अंग्रेजी और फ्रांसीसी बैंकों में चला जाता था। इन सब कारणों से, और इनके सिवा जार ने फ्रांस और ब्रिटेन से जो लाखों और करोड़ों रुपये उधार लिये थे उससे, जारशाही ब्रिटिश और फ्रांसीसी साम्राज्यवाद से बँधी हुई थी और रूस इन देशों को खिराज देने वाला अर्द्ध-उपनिवेश बन गया था।

रूसी पूँजीपति अपनी दशा सुधारने के ख्याल से युद्ध में शामिल हुए थे। वे चाहते थे कि नये बाजारों पर कब्जा करें, लड़ाई के ठेकों से भारी मुनाफा कमायें और साथ ही युद्ध की परिस्थिति से ज्यादा फायदा उठा कर क्रान्तिकारी आन्दोलन को कुचल दें।

जारशाही रूस युद्ध के लिए तैयार न था। रूस के उद्योग-धन्धे दूसरे पूँजीवादी देशों के मुकाबले में बहुत पीछे थे। उद्योग-धन्धों में मुख्यतः पुरानी पड़ चुकी मिलें और घिसी-पिटी मशीनों के कारखाने थे। अर्द्ध-भूदास प्रथा पर निर्भर जमीन की मिल्कियत की वजह से और गरीब और तबाह किसानों की भारी तादाद की वजह से, रूस की खेती लम्बी चलने वाली लड़ाई के लिए एक पक्का आर्थिक आधार नहीं जुटा सकती थी।

जार के मुख्य स्तम्भ सामन्ती जमीन्दार थे। बड़े पूँजीपतियों से मिलकर, यमदूत सभा वाले बड़े जमीन्दार देश और राज्य दूमा पर हावी थे। वे पूरी तरह जार सरकार की घरेलू और विदेशी नीति का समर्थन करते थे। रूस के साम्राज्यवादी पूँजीपतियों ने अपनी उम्मीदें निरंकुश जारशाही से बाँध रखी थीं। वे समझते थे कि जारशाही ऐसा फौलादी मुक्का है जो निश्चय ही एक तरफ तो नये बाजार और नये प्रदेश जीतेगा और दूसरी तरफ मजदूरों

और किसानों के क्रान्तिकारी आन्दोलन को कुचल देगा।

उदारपंथी पूँजीपतियों की पार्टी-संवैधानिक जनवादी पार्टी-ने विरोध का दिखावा किया, लेकिन बिना किसी शर्त के उसने जार सरकार की विदेशी नीति का समर्थन किया।

लड़ाई के आरम्भ से ही, निम्न-पूँजीवादी पार्टियों ने-समाजवादी-क्रान्तिकारियों और मेन्शेविकों ने-समाजवाद के झण्डे को पर्दे की तरह इस्तेमाल करके युद्ध के साम्राज्यवादी लुटेरे रूप को छिपाकर, जनता को धोखा देने में पूँजीपतियों की मदद की। वे इस बात का प्रचार करते थे कि 'जर्मन बर्बरों' से पूँजीपतियों की 'पितृभूमि' की रक्षा करना, उसे बचाना जरूरी है। वे 'घरेलू शान्ति' की नीति का समर्थन करते थे और इस तरह युद्ध चलाने में रूसी जार की हुकूमत को सहायता देते थे, ठीक जैसे कि जर्मन सामाजिक-जनवादियों ने जर्मन कैसर की हुकूमत को 'रूसी बर्बरों' के खिलाफ लड़ाई चलाने में सहायता दी थी।

एक बोल्शेविक पार्टी ही क्रान्तिकारी अन्तरराष्ट्रीयता के महान उद्देश्य के प्रति वफादार रही। वह निरंकुश जारशाही के खिलाफ, जमीन्दारों और पूँजीपतियों के खिलाफ, साम्राज्यवादी युद्ध के खिलाफ जम कर लड़ने की मार्क्सवादी नीति पर दृढ़ता से चलती रही। युद्ध के आरम्भ से ही, बोल्शेविक पार्टी कहती रही थी कि युद्ध इसलिए नहीं छेड़ा गया है कि देश की रक्षा की जाये बल्कि इसलिए कि दूसरे देशों का राज्य हड़प लिया जाये, जमीन्दारों और पूँजीपतियों के हितों में विदेशी राष्ट्रीयताओं को लूटा जाये। बोल्शेविक पार्टी का कहना था कि इस युद्ध के खिलाफ मजदूरों को जम कर युद्ध लड़ना चाहिए।

मजदूर वर्ग बोल्शेविक पार्टी का समर्थन करता था।

यह सही है कि युद्ध के शुरू में बुद्धिजीवियों और किसानों के कुलक हिस्सों ने जो पूँजीवादी अन्धराष्ट्रवाद दिखलाया, उसका असर मजदूरों के एक हिस्से पर भी पड़ा। लेकिन, ये ज्यादातर गुण्डा 'रूसी जनसंघ' के सदस्य थे और कुछ ऐसे मजदूर थे जो समाजवादी-क्रान्तिकारियों और मेन्शेविकों के असर में थे। यह स्वाभाविक था कि वे मजदूर वर्ग की भावना को जाहिर नहीं करते थे, और न कर सकते थे। युद्ध के शुरू के दिनों में, जार सरकार ने जो प्रदर्शन कराये थे, पूँजीपतियों के उन अन्धराष्ट्रवादी प्रदर्शनों में इन्हीं लोगों ने हिस्सा लिया।

2. दूसरे इण्टरनेशनल की पार्टियाँ अपनी साम्राज्यवादी हुकूमतों का साथ देती हैं। दूसरा इण्टरनेशनल टूट कर अलग-अलग अन्धराष्ट्रवादी पार्टियों में बँट जाता है।

लेनिन ने समय-समय पर दूसरे इण्टरनेशनल के अवसरवाद और उसके नेताओं के ढुलमुलपन के बारे में चेतावनी दी थी। उन्होंने हमेशा इस बात पर जोर दिया था कि दूसरे इण्टरनेशनल के नेता युद्ध का विरोध करने की सिर्फ बातें करते हैं और अगर लड़ाई हो तो वे अपना रुख बदल देंगे, साम्राज्यवादी पूँजीपतियों से जा मिलेंगे और युद्ध के समर्थक बन जायेंगे। लेनिन ने, यह जो पहले ही कहा था, वह युद्ध की शुरुआत में ही जाहिर हो गया।

1910 में, दूसरे इण्टरनेशनल की कोपेनहेगेन कांग्रेस में यह फैसला लिया गया था कि

संसद में सोशलिस्टों को युद्ध-कर्जों के खिलाफ वोट देना चाहिए। 1912 में बाल्कन युद्ध के समय, दूसरे इण्टरनेशनल की वासले विश्व कांग्रेस ने ऐलान किया था कि सभी देशों के मजदूर इसे पाप समझते हैं कि पूँजीपतियों के मुनाफों के लिए एक-दूसरे पर गोली चलायें। यही उन्होंने कहा था, इसी की अपने प्रस्तावों में घोषणा की थी।

लेकिन जब तूफान फट पड़ा, जब साम्राज्यवादी युद्ध शुरू हो गया और इन प्रस्तावों को अमल में लाने का वक्त आ गया, तब दूसरे इण्टरनेशनल के नेता गद्दार साबित हुए, सर्वहारा वर्ग से दगा करने वाले और पूँजीपतियों के चाकर साबित हुए। वे युद्ध के समर्थक बन गये।

4 अगस्त 1914 को, संसद के जर्मन सामाजिक-जनवादियों ने युद्ध-कर्जों के पक्ष में वोट दिया। उन्होंने साम्राज्यवादी युद्ध के समर्थन के लिए वोट दिया। इसी तरह, फ्रांस, ग्रेट ब्रिटेन, बेल्जियम और दूसरे देशों के सोशलिस्टों ने भारी बहुमत से ऐसा ही किया।

दूसरे इण्टरनेशनल की जिन्दगी खत्म हो गयी। दरअसल, वह अलग-अलग एक-दूसरे के खिलाफ लड़ने लगे, अन्धराष्ट्रवादी पार्टियों में बँट गये।

सोशलिस्ट पार्टियों के नेताओं ने सर्वहारा वर्ग से गद्दारों की, अन्धराष्ट्रवादी दृष्टिकोण अपनाया। उन्होंने साम्राज्यवादी पूँजीपतियों का समर्थन करना शुरू किया। उन्होंने साम्राज्यवादी हुकूमतों की मदद की कि वे मजदूर वर्ग की आँखों में धूल झोंकें और उसमें राष्ट्रवाद का जहर फैलायें। पितृभूमि की रक्षा का बहाना बनाकर, इन सामाजिक गद्दारों ने जर्मन मजदूरों को फ्रांसीसी मजदूरों के खिलाफ और अंग्रेज और फ्रांसीसी मजदूरों को जर्मन मजदूरों के खिलाफ भड़काना शुरू किया। दूसरे इण्टरनेशनल में सिर्फ एक नगण्य अल्पसंख्या ऐसे लोगों की थी जो अन्तरराष्ट्रीयता का दृष्टिकोण अपनाये रहे और हवा के रुख के खिलाफ चले। यह सच है कि बहुत विश्वास और निश्चय से उन्होंने ऐसा नहीं किया, फिर भी हवा के खिलाफ वे चले जरूर।

सिर्फ बोल्शेविक पार्टी ने बिना किसी दुविधा के और तुरन्त ही साम्राज्यवादी युद्ध के खिलाफ जम कर लड़ने का झण्डा ऊँचा किया। 1914 के शरद में, लेनिन ने युद्ध पर जो थीसिस (सैद्धान्तिक निबन्ध) लिखी, उसमें उन्होंने बतलाया कि दूसरे इण्टरनेशनल का पतन आकस्मिक नहीं था। अवसरवादियों ने दूसरे इण्टरनेशनल को तबाह कर दिया था, जिन अवसरवादियों के खिलाफ क्रान्तिकारी मजदूरों के प्रमुख प्रतिनिधि बहुत दिनों से चेतावनी दे रहे थे।

युद्ध से पहले ही, अवसरवाद दूसरे इण्टरनेशनल की पार्टियों में घर कर गया था। अवसरवादियों ने खुल्लमखुल्ला प्रचार किया था कि क्रान्तिकारी संघर्ष छोड़ दिया जाये। उन्होंने इस सिद्धान्त का प्रचार किया था कि 'शान्तिमय तरीके से, पूँजीवाद बढ़कर समाजवाद हो जायेगा।' दूसरा इण्टरनेशनल अवसरवाद का मुकाबला न करना चाहता था। वह उससे सुलह करके रहना चाहता था और उसने उसे जड़ें जमाने का मौका दिया। अवसरवाद के प्रति मेल-मिलाप की नीति पर चलते हुए, दूसरा इण्टरनेशनल खुद अवसरवादी हो गया।

साम्राज्यवादी पूँजीपतियों ने कौशल जानने वाले मजदूरों के ऊपरी स्तर को बाकायदा

घूस दी थी। इन्हें 'मजदूर कुलीन' कहा जाता था। ज्यादा तनख्वाहें देकर या ऐसे ही दूसरे टुकड़े फेंककर, उन्हें घूस दी जाती थी। उपनिवेशों से, पिछड़े हुए देशों के शोषण से जो मुनाफा आता था, उसका एक हिस्सा इसी के लिए इस्तेमाल किया जाता था। मजदूरों के इस हिस्से ने काफी ट्रेड यूनियन और सहयोग-सभाओं के नेता पैदा किये थे, म्यूनिसिपल और संसदीय संस्थाओं के सदस्य, सामाजिक-जनवादी संगठनों के पत्रकार और कार्यकर्ता पैदा किये थे। जब युद्ध छिड़ा, तो इस डर से कि उनकी जगहें न छिन जायें, वे क्रान्ति के दुश्मन बन गये और अपने ही पूँजीपतियों के, अपनी ही साम्राज्यवादी हुकूमतों के बहुत जोशीले समर्थक बन गये।

अवसरवादी अन्धराष्ट्रवादी बन गये।

अन्धराष्ट्रवादी और उनमें शामिल होने वाले रूसी मेन्शेविक और समाजवादी-क्रान्तिकारी अपने देश में मजदूरों और पूँजीपतियों में **वर्ग शान्ति** बनाये रखने और विदेश के राष्ट्रों से युद्ध करने का प्रचार करते थे। वे आम जनता से यह छिपाते थे कि दरअसल युद्ध के लिए कौन जिम्मेदार है और कहते थे कि उनके अपने देश के पूँजीपतियों का दोष नहीं है। इस तरह, वे जनता को धोखा देते थे। बहुत से अन्धराष्ट्रवादी अपने देशों की साम्राज्यवादी हुकूमतों के मंत्री बन गये।

मजदूर पक्ष के लिए छिपे हुए अन्धराष्ट्रवादी, तथाकथित मध्यमार्गी कम खतरनाक नहीं थे। काउत्स्की, त्रात्स्की, मारतोव आदि मध्यमार्गी खुले अन्धराष्ट्रवादियों को सही बताते थे और उनका समर्थन करते थे। इस तरह, मजदूरों से दगा करने में वे अन्धराष्ट्रवादियों का साथ देते थे। युद्ध का मुकाबला करने के बारे में 'वामपंथी' लफ्फाजी करके, वे अपनी गद्दारी छिपाते थे। इस लफ्फाजी का उद्देश्य मजदूर वर्ग को धोखा देना था। असलियत यह थी कि मध्यमार्गी युद्ध का समर्थन करते थे। उनका यह प्रस्ताव कि युद्ध-कर्जों के खिलाफ वोट न दिया जाये बल्कि जब वोट लिये जा रहे हों तब तटस्थ रहा जाये, युद्ध का समर्थन करना ही था। अन्धराष्ट्रवादियों की तरह, वे यह माँग करते थे कि युद्ध के दौर में वर्ग-संघर्ष छोड़ दिया जाये जिससे कि उनकी अपनी साम्राज्यवादी हुकूमत को लड़ाई चलाने में अड़चन का सामना न करना पड़े। मध्यमार्गी त्रात्स्की युद्ध और समाजवाद के सभी महत्त्वपूर्ण सवालों पर लेनिन और बोल्शेविकों का विरोध करता था।

युद्ध छिड़ते ही, लेनिन एक नया इण्टरनेशनल-तीसरा इण्टरनेशनल-बनाने के लिए शक्तियों को बटोरने लगे। नवम्बर 1914 में, बोल्शेविक पार्टी की केन्द्रीय समिति ने युद्ध के खिलाफ जो घोषणापत्र निकाला था, उसी में उसने बुरी तरह दिवालिया हो चुके दूसरे इण्टरनेशनल की जगह तीसरा इण्टरनेशनल बनाने का आह्वान किया।

फरवरी 1915 में, मित्र देशों के समाजवादियों का सम्मेलन लन्दन में हुआ। लेनिन के निर्देश के अनुसार, इस सम्मेलन में कामरेड लितविनोव बोले। उन्होंने माँग की कि समाजवादी (वाण्डेरवेल्ड, सेम्बा और ग्वैसदे) बेल्जियम और फ्रांस की पूँजीवादी हुकूमतों से इस्तीफा दे दें, साम्राज्यवादियों से पूरी तरह नाता तोड़ लें और उनके साथ काम करने से इन्कार कर दें। उन्होंने माँग की कि समाजवादी अपनी साम्राज्यवादी हुकूमतों के खिलाफ जम कर लड़ाई करें और युद्ध-कर्जों पर वोट देने की निन्दा करें। लेकिन, इस सम्मेलन में लितविनोव

के समर्थन में एक भी आवाज नहीं उठी।

सितम्बर 1915 के आरम्भ में, अन्तरराष्ट्रीयतावादियों का पहला सम्मेलन जिमरवाल्ड में हुआ। लेनिन ने इस सम्मेलन को युद्ध के खिलाफ अन्तरराष्ट्रीय आन्दोलन के विकास में 'पहला कदम' कहा। इस सम्मेलन में, लेनिन ने जिमरवाल्ड वामपंथी गुट बनाया। लेकिन, जिमरवाल्ड वामपंथी गुट में लेनिन के नेतृत्व में सिर्फ बोल्शेविक पार्टी ने युद्ध के खिलाफ सही और पूरी तरह से संगत रुख अपनाया। जिमरवाल्ड वामपंथी गुट **फोरबोटे (अग्रदूत)** नाम की पत्रिका जर्मन में प्रकाशित करता था। लेनिन उसे लेख भेजते थे।

1916 में, अन्तरराष्ट्रीयतावादी स्विटजरलैण्ड के कियेंथाल नाम के गाँव में दूसरा सम्मेलन बुलाने में सफल हुए। इसे दूसरा जिमरवाल्ड सम्मेलन कहा जाता है। इस वक्त पर, लगभग हर देश में अन्तरराष्ट्रीयतावादी गुट बन चुके थे और अन्धराष्ट्रवादियों और अन्तरराष्ट्रीयतावादियों का भेद और ज्यादा स्पष्ट हो गया था। लेकिन, सबसे ज्यादा महत्त्व की बात यह थी कि युद्ध और उसके साथ की मुसीबतों के असर से खुद आम जनता वामपक्ष की तरफ आयी थी। कियेंथाल सम्मेलन ने जो घोषणापत्र बनाया, वह विभिन्न विरोधी गुटों के समझौते का परिणाम था। जिमरवाल्ड घोषणापत्र के मुकाबले में, यह आगे बढ़ा हुआ कदम था।

जिमरवाल्ड सम्मेलन की तरह, कियेंथाल सम्मेलन बोल्शेविक पार्टी के बुनियादी उसूलों को नहीं मानता था, यानी साम्राज्यवादी युद्ध को गृह-युद्ध में बदलना, युद्ध में खुद अपनी साम्राज्यवादी हुकूमत को हराना और तीसरा इण्टरनेशनल बनाना। फिर भी, कियेंथाल सम्मेलन ने अन्तरराष्ट्रीयतावादी तत्वों को निखारने में मदद की, जिनसे आगे चलकर कम्युनिस्ट तीसरा इण्टरनेशनल बना।

लेनिन ने वामपंथी सामाजिक-जनवादियों में रोजा लक्जेम्बर्ग और कार्ल लीब्नेख्त जैसे असंगत अन्तरराष्ट्रीयतावादियों की गलतियों की आलोचना की। साथ ही, लेनिन ने उन्हें सही दृष्टिकोण अपनाने में मदद भी दी।

3. युद्ध, शान्ति और क्रान्ति के सवालों पर बोल्शेविक पार्टी के सिद्धान्त और उसकी कार्यनीति।

बोल्शेविक शुद्ध शान्तिवादी नहीं थे, जो शान्ति के लिए आहें भरते और शान्ति का प्रचार ही करके रह जाते जैसा कि ज्यादातर वामपंथी सामाजिक-जनवादी किया करते थे। बोल्शेविक इस बात का प्रचार करते थे कि शान्ति के लिए सक्रिय क्रान्तिकारी संघर्ष किया जाये और इस हद तक किया जाये कि युद्ध-प्रेमी साम्राज्यवादी पूँजीपतियों के शासन का तख्ता उलट दिया जाये। बोल्शेविकों ने शान्ति पक्ष को सर्वहारा क्रान्ति के विजय पक्ष से जोड़ा। उनका कहना था कि युद्ध को खत्म करने और न्यायपूर्ण शान्ति, ऐसी शान्ति जिसमें दूसरों का राज्य हड़पना और हर्जाने लेना नहीं हो, हासिल करने का सबसे अच्छा तरीका साम्राज्यवादी पूँजीपतियों के शासन का तख्ता उलटना है।

मेन्शेविक और समाजवादी-क्रान्तिकारी क्रान्ति का साथ छोड़ चुके थे और युद्ध के दौर

में 'घरेलू शान्ति' कायम रखने का गद्दाराना नारा देते थे। इनके खिलाफ, बोल्शेविक यह नारा देते थे : **'साम्राज्यवादी युद्ध को गृहयुद्ध में बदल दो।'** इस नारे का मतलब था कि मेहनतकश जनता, जिसमें फौजी वर्दी पहने हुए हथियारबन्द मजदूर और किसान शामिल थे, अपने हथियार अपने ही पूँजीपतियों की तरफ मोड़ दे और अगर वह युद्ध का खात्मा करना चाहती थी और न्यायपूर्ण शान्ति हासिल करना चाहती थी तो अपने ही पूँजीपतियों का राज्य खत्म कर दे।

मेन्शेविक और समाजवादी-क्रान्तिकारी इस नीति पर चल रहे थे कि पूँजीवादी पितृभूमि की रक्षा की जाये। इस नीति के खिलाफ, बोल्शेविकों ने यह नीति रखी कि **'साम्राज्यवादी युद्ध में अपनी ही सरकार को हराओ'।** इसका अर्थ यह था कि युद्ध-कर्जों के खिलाफ वोट दो, फौज के अन्दर गैर-कानूनी क्रान्तिकारी संगठन बनाओ, मोर्चे पर सैनिकों के भाईचारे का समर्थन करो; युद्ध के खिलाफ मजदूरों और किसानों की क्रान्तिकारी कार्रवाई का संगठन करो और इस कार्रवाई को अपनी ही साम्राज्यवादी हुकूमत के खिलाफ विद्रोह में बदल दो।

बोल्शेविकों का कहना था कि साम्राज्यवादी युद्ध में जार सरकार की फौजी हार जनता के लिए कम संकट की बात होगी। कारण यह कि इससे जारशाही के खिलाफ जनता की विजय हासिल करने में आसानी होगी और पूँजीवादी गुलामी और साम्राज्यवादी युद्ध से मुक्ति के लिए मजदूर वर्ग का संघर्ष सफल हो सकेगा। लेनिन का कहना था कि अपनी ही साम्राज्यवादी हुकूमत को हराने की मजदूर वर्ग की नीति पर रूसी क्रान्तिकारियों को ही नहीं चलना चाहिए, बल्कि युद्ध करने वाले सभी देशों के मजदूर वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टियों को इसी नीति पर चलना चाहिए।

बोल्शेविक हर किसी तरह के युद्ध का विरोध न करते थे। वे सिर्फ दूसरे देशों को जीतने के लिए किये गये युद्धों का, साम्राज्यवादी युद्धों का विरोध करते थे। बोल्शेविकों का कहना था कि युद्ध दो तरह के होते हैं :

(क) **न्यायपूर्ण युद्ध,** ऐसे युद्ध जो दूसरे देशों को जीतने के लिए नहीं बल्कि स्वाधीनता के युद्ध हैं, जो विदेशी हमले से या गुलाम बनाने की कोशिश से जनता की रक्षा करने के लिए या पूँजीवादी गुलामी से जनता को मुक्त करने के लिये या अन्त में साम्राज्यवादी जुए से उपनिवेशों और पराधीन देशों को आजाद करने के लिए होते हैं; और,

(ख) **अन्यायपूर्ण युद्ध,** दूसरे देशों को जीतने के लिए युद्ध, जो दूसरे देशों और दूसरी राष्ट्रीयताओं को जीतने और उन्हें गुलाम बनाने के लिए किये जाते हैं।

बोल्शेविक पहली तरह के युद्धों का समर्थन करते थे। जहाँ तक दूसरी तरह के युद्धों का सवाल था, बोल्शेविकों का कहना था कि उनके खिलाफ जमकर संघर्ष करना चाहिए, इस हद तक कि क्रान्ति हो जाये और अपनी ही साम्राज्यवादी हुकूमत का तख्ता उलट दिया जाये।

दुनिया के मजदूर वर्ग के लिए युद्ध के दौर में लेनिन का सिद्धान्त-सम्बन्धी काम बहुत महत्त्वपूर्ण था। 1916 के बसन्त में, लेनिन ने **साम्राज्यवाद : पूँजीवाद की चरम अवस्था** की पुस्तक लिखी। इस किताब में उन्होंने दिखलाया कि साम्राज्यवाद पूँजीवाद की सबसे ऊँची

मंजिल है, ऐसी मंजिल जब वह 'प्रगतिशील' पूँजीवाद से जांगरचोर पूँजीवाद, पतनशील पूँजीवाद में बदल चुका होता है, और यह कि साम्राज्यवाद गतिरुद्ध पूँजीवाद है। अवश्य ही इसका यह मतलब न था कि पूँजीवाद अपने-आप ही मजदूरों की क्रान्ति के बिना खत्म हो जायेगा, कि वह अपने डंठल पर खुद ही सड़ जायेगा। लेनिन हमेशा यही सिखाते थे कि मजदूर वर्ग की क्रान्ति के बिना पूँजीवाद का खात्मा नहीं हो सकता। इसलिए, साम्राज्यवाद की यह व्याख्या करते हुए कि वह गतिरुद्ध पूँजीवाद है, लेनिन ने साथ ही यह भी दिखाया कि "साम्राज्यवाद सर्वहारा की सामाजिक क्रान्ति का पूर्वकाल है।"

लेनिन ने दिखाया कि साम्राज्यवाद के युग में पूँजीवादी जुवा और भी भारी होता जाता है। साम्राज्यवाद के दौर में, मजदूरों का विद्रोह पूँजीवाद की बुनियादों के खिलाफ ही बढ़ता जाता है। पूँजीवादी देशों में क्रान्तिकारी विस्फोट के तत्व इकट्ठा होते जाते हैं।

लेनिन ने दिखाया कि साम्राज्यवाद के युग में उपनिवेशों और पराधीन देशों में क्रान्तिकारी संकट और तेज हो जाता है, साम्राज्यवाद के खिलाफ विद्रोह के तत्व, साम्राज्यवाद के खिलाफ मुक्ति-संग्राम के तत्व इकट्ठा हो जाते हैं।

लेनिन ने दिखाया कि साम्राज्यवाद के दौर में पूँजीवाद के विकास की विषमता और उसकी असंगतियाँ खास तौर से तेज हो गयी हैं। बाजारों के लिए और बाहर पूँजी भेजने के क्षेत्रों के लिए संघर्ष से, उपनिवेशों के लिए, कच्चे माल के स्रोत के लिए संघर्ष से समय-समय पर दुनिया का फिर से बँटवारा करने के लिए साम्राज्यवादी युद्ध लाजिमी हो जाते हैं।

लेनिन ने दिखाया कि पूँजीवाद के विकास की विषमता ही साम्राज्यवादी युद्धों का कारण है। ये साम्राज्यवादी युद्ध साम्राज्यवाद की जड़ कमजोर कर देते हैं और यह सम्भव बनाते हैं कि साम्राज्यवाद जहाँ सबसे कमजोर हो, वहाँ उसका मोर्चा तोड़ दिया जाये।

इस सबसे, लेनिन ने नतीजा निकाला था कि मजदूरों के लिए यह बिल्कुल सम्भव है कि वे साम्राज्यवादी मोर्चे को एक या कई जगह तोड़ दें, कि समाजवाद की जीत पहले कई देशों में या अकेले एक देश में भी सम्भव है, कि सभी देशों में एक ही साथ समाजवाद की जीत पूँजीवादी विकास की विषमता की वजह से असम्भव है और समाजवाद पहले एक देश में या कई देशों में विजयी होगा जबकि दूसरे देश कुछ दिन तक और पूँजीवादी बने रहेंगे।

यह परिणाम, जो एक प्रतिभा की देन थी, साम्राज्यवादी युद्ध के दौर में लेनिन के लिखे हुए दो लेखों में इस तरह प्रकट किया गया था :

> (1) "विषम आर्थिक और राजनीतिक विकास पूँजीवाद का अटूट नियम है। इसीलिए, समाजवाद की विजय कई पूँजीवादी देशों या अकेले एक पूँजीवादी देश में भी सम्भव है। उस देश का विजयी मजदूर वर्ग पूँजीपतियों की सम्पत्ति जब्त करके और अपनी समाजवादी पैदावार संगठित करके बाकी दुनिया, पूँजीवादी दुनिया के **खिलाफ** खड़ा होगा और अपने पक्ष की तरफ दूसरे देशों के पीड़ित वर्गों को खींचेगा...।" (अगस्त 1915 में लिखे हुए लेख "संयुक्त राष्ट्र यूरोप का नारा" से लेनिन, सं.ग्रं., अं.सं., मास्को, 1947, खण्ड 1, पृष्ठ 619)।

(2) "पूँजीवाद का विकास विभिन्न देशों में बहुत ही विषम गति से होता है। माल-उत्पादन की व्यवस्था में, इसके अलावा दूसरी चीज नहीं हो सकती। इससे यह अकाट्य नतीजा निकलता है कि सभी देशों में समाजवाद की एक ही साथ विजय नहीं हो सकती। उसकी विजय पहले एक या कई देशों में होगी, जबकि दूसरे देश कुछ समय के लिए पूँजीवादी या उससे भी पहले की व्यवस्था में रहेंगे। इससे टक्कर ही न पैदा होगी बल्कि दूसरे देशों के पूँजीपति सीधे-सीधे कोशिश करेंगे कि समाजवादी राज्य के विजयी मजदूरों को कुचल दें। ऐसी हालत में, हमारी तरफ से युद्ध वैध और न्यायपूर्ण होगा। यह युद्ध समाजवाद के लिए होगा, दूसरी राष्ट्रीयताओं को पूँजीपतियों से मुक्त करने के लिए होगा।" (1916 की शरद में लिखे हुए "सर्वहारा क्रान्ति का युद्ध कार्यक्रम" नाम के लेख से, लेनिन, सं.ग्रं., रू.सं., खण्ड 19, पृष्ठ 325)।

समाजवादी क्रान्ति का यह एक नया और पूर्ण सिद्धान्त था। यह सिद्धान्त इस सम्भावना को पुष्ट करता था कि अलग-अलग देशों में समाजवाद की विजय हो सकती है और वह इस विजय और उसकी सम्भावनाओं के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ बतलाता था। इस सिद्धान्त की नींव लेनिन ने 1905 में ही **जनवादी क्रान्ति में सामाजिक-जनवाद की दो कार्यनीतियाँ** में रख दी थीं।

यह सिद्धान्त **साम्राज्यवाद से पूर्व** के पूँजीवाद के दौर में मार्क्सवादियों में प्रचलित मत से मूलतः भिन्न था। उस समय, मार्क्सवादियों का कहना था कि अलग एक देश में समाजवाद की विजय होना असम्भव है और वह एक ही साथ सभी सभ्य देशों में होगी। अपनी अपूर्व पुस्तक **साम्राज्यवाद : पूँजीवाद की चरम अवस्था** में **साम्राज्यवादी** पूँजीवाद के सिलसिले में दिये हुए तथ्यों के आधार पर लेनिन ने इस मत को पुराना पड़ चुका दिखा कर हटा दिया, उसकी जगह उन्होंने एक नया सिद्धान्त रखा जिससे यह नतीजा निकलता था कि सभी देशों में समाजवाद की एक साथ ही विजय **असम्भव** थी जबकि अकेले एक पूँजीवादी देश में समाजवाद की विजय सम्भव थी।

समाजवादी क्रान्ति के बारे में लेनिन के सिद्धान्त का अमूल्य महत्त्व केवल इसी बात में नहीं है कि उसने मार्क्सवाद को एक नये सिद्धान्त से समृद्ध किया है और मार्क्सवाद को आगे बढ़ाया है बल्कि इस बात में भी है कि उसने अलग-अलग देशों के मजदूरों के लिए एक क्रान्तिकारी रास्ता दिखलाया है, कि उसने खुद उन्हीं के राष्ट्रीय पूँजीपतियों पर हमला करने के लिए उनकी पहलकदमी को छूट दे दी है, कि वह युद्ध की हालत से फायदा उठा कर उन्हें इस हमले का संगठन करना सिखलाती है और सर्वहारा क्रान्ति की विजय में उनके विश्वास को दृढ़ करती है।

युद्ध, शान्ति और क्रान्ति के सवालों पर, बोल्शेविकों का सिद्धान्त और कार्यनीति-सम्बन्धी दृष्टिकोण यही है।

इसी दृष्टिकोण के आधार पर बोल्शेविकों ने रूस में अपना अमली काम चलाया।

युद्ध के आरम्भ में, पुलिस के घोर दमन के बावजूद, दूमा के बोल्शेविक सदस्यों-बादायेव, पेत्रोव्स्की, मोरानोव, समोइलोव और शागोव-ने कई संगठनों में जाकर युद्ध और क्रान्ति के बारे में बोल्शेविकों की नीति पर भाषण दिये। नवम्बर 1914 में, युद्ध के बारे में नीति पर

विचार करने के लिए राज्य दूमा के बोल्शेविक गुट का एक सम्मेलन हुआ। सम्मेलन के तीसरे दिन वहाँ जितने भी लोग मौजूद थे, गिरफ्तार कर लिये गये। अदालत ने बोल्शेविक सदस्यों को यह सजा दी कि उनके नागरिक अधिकार छीन लिये जायें और उन्हें पूर्वी साइबेरिया में निर्वासित किया जाये। जार सरकार ने उन पर 'राजद्रोह' का आरोप लगाया।

अदालत में दूमा के सदस्यों की कार्रवाई की जो तस्वीर सामने आयी, उससे पार्टी का गौरव बढ़ा। बोल्शेविक प्रतिनिधियों ने मर्दानगी का व्यवहार किया और जार की अदालत को उन्होंने ऐसा मंच बना दिया जहाँ से उन्होंने दूसरे देशों को हड़पने की जारशाही नीति का पर्दाफाश किया।

कामेनेव का व्यवहार इससे बिल्कुल भिन्न था। इस मुकदमे में वह भी था। खतरे के सामने आते ही, कायरता की वजह से उसने बोल्शेविक पार्टी की नीति को तिलांजलि दे दी। कामेनव ने अदालत में ऐलान किया कि युद्ध के सवाल पर वह बोल्शेविकों से सहमत नहीं है और यह साबित करने के लिए, उसने प्रार्थना की कि मेन्शेविक जोरदान्स्की को गवाह के तौर पर बुलाया जाये।

लड़ाई की जरूरतें पूरी करने के लिए, युद्ध-उद्योग-समितियाँ कायम की गयी थीं। बोल्शेविकों ने इनके खिलाफ बहुत कारगर तरीके से काम किया। उन्होंने साम्राज्यवादी पूँजीपतियों के असर में मजदूरों को लाने के लिए मेन्शेविकों की कोशिशों का भी बहुत कारगर तरीके से विरोध किया। पूँजीपतियों को इस बात में बेहद दिलचस्पी थी कि हर आदमी को यह विश्वास दिलाया जाये कि साम्राज्यवादी युद्ध जनता का युद्ध है। लड़ाई के दौर में, पूँजीपति राज्य के कामों में काफी प्रभाव जमाने में सफल हुए। उन्होंने अपना एक देशव्यापी संगठन कायम किया, जिसका नाम था-जेम्स्त्वो और शहरों के संघ। पूँजीपतियों के लिए जरूरी था कि मजदूरों को भी अपने नेतृत्व और असर में लायें। ऐसा करने के लिए, उन्होंने एक तरीका सोचा और वह यह कि युद्ध-उद्योग-समितियों के 'मजदूर गुट' बनाये जायें। मेन्शेविक इस विचार पर उछल पड़े। पूँजीपतियों को इस बात में लाभ था कि इन युद्ध-उद्योग-समितियों में मजदूरों के ऐसे प्रतिनिधि हों जो गोले, तोपें, राइफलें, कारतूस और दूसरा लड़ाई का सामान बनाने वाले कारखानों में आम मजदूरों को इस बात के लिए प्रेरित करें कि वे श्रम की उत्पादकता बढ़ायें। पूँजीपतियों का नारा था : 'हर चीज युद्ध के लिए, हर कोई युद्ध के लिए!' वास्तव में, इस नारे का मतलब था : 'युद्ध के ठेकों से और दूसरे देशों की धरती हड़पने से जितना अमीर बन सकते हो, बनो।' मेन्शेविकों ने पूँजीपतियों की इस फर्जी देशभक्ति वाली योजना में सक्रिय हिस्सा लिया। उन्होंने पूँजीपतियों की इस बात से मदद की कि युद्ध-उद्योग-समितियों के 'मजूदर गुटों' के चुनाव में हिस्सा लिवाने के लिए मजदूरों में जोरदार आन्दोलन किया। बोल्शेविक इस योजना के खिलाफ थे। वे युद्ध-उद्योग-समितियों का बायकाट करने का प्रचार करते थे और वे उनका बायकाट कराने में सफल हुए। लेकिन, एक प्रमुख मेन्शेविक गोज्देव और एक सरकारी दलाल अब्रोसिमोव के नेतृत्व में कुछ मजदूरों ने युद्ध-उद्योग-समितियों की कार्रवाई में हिस्सा लिया था। फिर भी सितम्बर 1915 में, युद्ध-उद्योग-समितियों के 'मजदूर गुटों' के अन्तिम चुनाव के लिए जब मजदूरों के प्रतिनिधि इकट्ठे हुए तो हुआ यह कि अधिकांश प्रतिनिधि उसमें हिस्सा लेने के खिलाफ हो गये। मजदूर

प्रतिनिधियों के बहुमत ने युद्ध-उद्योग-समितियों में हिस्सा लेने के खिलाफ एक तीखा प्रस्ताव पास किया और ऐलान किया कि मजदूरों ने शान्ति के लिए जारशाही का खात्मा करने के लिए लड़ना अपना ध्येय बना लिया है।

बोल्शेविकों ने फौज और जल-सेना में भी बड़े पैमाने पर काम करना शुरू किया। उन्होंने सिपाहियों और जहाजियों को समझाया कि युद्ध के भयानक हाहाकार और जनता की मुसीबतों के लिए कौन जिम्मेदार है। उन्होंने समझाया कि साम्राज्यवादी हत्याकाण्ड से बचने के लिए जनता के पास एक ही रास्ता है और वह क्रान्ति का रास्ता है। बोल्शेविकों ने फौज और जल सेना में, मोर्चे पर और मोर्चे के पीछे अपने केन्द्र बनाये और युद्ध के खिलाफ लड़ने के लिए बुलावा देते हुए पर्चे बाँटे।

क्रोन्स्तात में बोल्शेविकों ने 'क्रोन्स्तात सैनिक संगठन का केन्द्रीय संघ' बनाया। इसका सम्बन्ध पार्टी की पेत्रोग्राद-कमेटी से था। छावनी में काम करने के लिए, पेत्रोग्राद पार्टी कमेटी का एक सैनिक संगठन कायम किया गया। अगस्त 1916 में, पेत्रोग्राद **ओखराना** के मुख्य अफसर ने यह रिपोर्ट दी कि "क्रोन्स्तात संघ में बहुत अच्छा संगठन है, संगठन गुप्त है और उसके सदस्य गम्भीर और होशियार लोग हैं। इस संघ के प्रतिनिधि समुद्री किनारे पर भी हैं।"

युद्ध के मोर्चे पर पार्टी इस बात का आन्दोलन करती थी कि लड़ने वाली फौजों के सिपाही आपस में भाईचारा पैदा करें। पार्टी इस बात पर जोर देती थी कि दुनिया के पूँजीपति दुश्मन हैं और साम्राजयवादी युद्ध गृह-युद्ध में बदल कर ही और अपने हथियार अपने ही पूँजीपतियों और उनकी हुकूमत के खिलाफ मोड़ कर ही, लड़ाई का खात्मा हो सकता है। फौजी दस्ते हमला करने से अधिकाधिक इन्कार करने लगे। इस तरह की घटनाएँ 1915 में हुईं, और 1916 में तो और भी हुईं।

उत्तरी मोर्चे पर और बाल्कन प्रान्तों की फौजों में बोल्शेविकों की कार्रवाई खास तौर से ज्यादा फैली थी। 1917 के आरम्भ में, उत्तरी मोर्चे पर फौज के सेनापति जनरल रूस्की ने हेडक्वार्टर को सूचना दी कि बोल्शेविकों ने उस मोर्चे पर जोरदार क्रान्तिकारी काम चालू कर रखा है।

युद्ध से जनता के जीवन में, दुनिया के मजदूर वर्ग के जीवन में भारी तब्दीली हुई। राष्ट्रों का भाग्य, राष्ट्रीयताओं का भाग्य, समाजवादी आन्दोलन का भाग्य दाँव पर लगा हुआ था। इसलिए, सभी पार्टियों और रुझानों के लिए जो अपने को समाजवादी कहती थीं, युद्ध एक कसौटी, एक परीक्षा था। क्या यह पार्टियाँ और रुझान समाजवाद के पक्ष, अन्तरराष्ट्रीयता के पक्ष के प्रति वफादार रहेंगे, या वे मजदूर वर्ग से दगा करना, अपना झण्डा निकाल कर अपने राष्ट्रीय पूँजीपतियों के पैरों के नीचे डालना पसन्द करेंगे? उस समय सवाल का रूप यही था।

युद्ध ने दिखा दिया कि दूसरे इण्टरनेशनल की पार्टियाँ परीक्षा में खरी न उतरीं। उन्होंने मजदूर वर्ग से दगा की और अपने देशों के साम्राज्यवादी पूँजीपतियों के हाथ अपना झण्डा सौंप दिया।

और ये पार्टियाँ, जिन्होंने अपने भीतर अवसरवाद को पाला-पोसा था और जिन्हें

अवसरवादियों के लिए, राष्ट्रवादियों के लिए रियायतें करना सिखलाया गया था, कोई दूसरा अमल न कर सकती थीं।

युद्ध ने दिखा दिया कि बोल्शेविक पार्टी ही एक पार्टी है जिसने शान के साथ यह परीक्षा पास की है और समाजवाद के पक्ष के प्रति, सर्वहारा अन्तरराष्ट्रीयता के पक्ष के प्रति हमेशा वफादार रही है।

और, इसी की उम्मीद भी की जा सकती थी। सिर्फ एक नयी तरह की पार्टी, सिर्फ एक ऐसी पार्टी जो अवसरवाद के खिलाफ बिना समझौते के संघर्ष करने की भावना में पाली-पोसी गई हो, सिर्फ ऐसी पार्टी जो अवसरवाद और राष्ट्रवाद से मुक्त हो, सिर्फ ऐसी पार्टी इस महान परीक्षा में खरी निकल सकती थी और मजदूर वर्ग के पक्ष, समाजवाद और अन्तरराष्ट्रीयता के पक्ष के प्रति वफादार रह सकती थी।

बोल्शेविक पार्टी ऐसी ही पार्टी थी।

4. जारशाही फौज की हार। आर्थिक विघटन। जारशाही का संकट।

लड़ाई अब तीन साल तक चल चुकी थी। युद्ध में लाखों आदमी मारे गये थे, या घावों से मर गये थे, या युद्ध की हालत से पैदा होने वाली महामारियों में खप गये थे। पूँजीपति और जमीन्दार युद्ध से रकमें काट रहे थे। लेकिन, मजदूर और किसान दिन पर दिन बढ़ती हुई तबाही और भुखमरी के शिकार हो रहे थे। युद्ध रूस के आर्थिक जीवन की जड़ें कमजोर कर रहा था। लगभग 1 करोड़ 40 लाख हट्टे-कट्टे आदमी आर्थिक कामों से हटा लिये गये थे और फौज में भर्ती कर लिये गये थे। मिलें और कारखाने ठप्प हो रहे थे। मजदूरों की कमी की वजह से, खेती का इलाका कम हो गया था। आम जनता और मोर्चे के सिपाही भूखे, नंगे पैर और नंगे बदन थे। देश का माल-मसाला युद्ध में स्वाहा होता जा रहा था।

जार की फौज हार पर हार खा रही थी। जर्मन तोपखाना जार की फौजों को गोलों से पाट देता था, जबकि जारशाही सेना के पास तोपों, गोलों और राइफलों तक का अभाव था। कभी-कभी तीन सिपाहियों को एक ही राइफल से काम चलाना पड़ता था। जब युद्ध चालू था, तभी पता लगा कि जार का युद्ध-मंत्री सुखोमलिनोव गद्दार है, जिसका सम्बन्ध जर्मन जासूसों से है और जो लड़ाई का माल भेजने के काम को असंगठित करने और मोर्चे को तोपों और राइफलों के बिना छोड़ देने के लिए जर्मन जासूस-विभाग के निर्देश का पालन कर रहा था। जार के कुछ मंत्री और जनरल चोरी-चोरी जर्मन फौज की सफलता में मदद देते थे। जारीना के साथ, जिसके जर्मन ताल्लुकात थे, वे जर्मनों को फौजी भेद बतला देते थे। कोई ताज्जुब नहीं कि जार की फौज हारी और उसे पीछे हटना पड़ा। 1916 तक ही, जर्मन पोलैण्ड और बाल्टिक प्रान्तों का एक हिस्सा अपने कब्जे में कर चुके थे।

इन सब बातों से, जार सरकार के खिलाफ मजदूरों, किसानों, सिपाहियों और बुद्धिजीवियों में नफरत और गुस्सा बढ़ा, युद्ध और जारशाही के खिलाफ आम जनता का क्रान्तिकारी आन्दोलन बढ़ा और तेज हुआ। यह क्रान्तिकारी आन्दोलन युद्ध के मोर्चे पर और उसके

पीछे भी था, केन्द्रीय भाग और सीमान्त प्रदेशों में भी था।

रूस के साम्राज्यवादी पूँजीपतियों में भी असंतोष फैलने लगा। वे इस बात से आग-बबूला हो गये थे कि रासपूतिन जैसे बदमाश, जो स्पष्टतः जर्मनी से अलग सन्धि करने की कोशिश कर रहे थे, जार के दरबार पर हावी थे। पूँजीपतियों को और भी विश्वास होता गया कि जार सरकार सफलता से युद्ध चलाने के अयोग्य है। उन्हें डर था कि अपनी रक्षा करने के लिए जारशाही जर्मनों से अलग सन्धि न कर ले। इसलिए, रूसी पूँजीपतियों ने फैसला किया कि महल के अन्दर ही बलात् सत्ता हासिल करने का काम किया जाये। इसका उद्देश्य यह था कि जार निकोलस द्वितीय को हटाया जाये और उसके बदले उसके भाई माइकेल रोमानोव को बिठाया जाये जिसका पूँजीपतियों से सम्बन्ध था। इस तरह, वे एक ढेले से दो चिड़ियों का शिकार करना चाहते थे। पहले तो वे खुद सत्ता हासिल करना चाहते थे और साम्राज्यवादी युद्ध को आगे चलाने का काम पक्का कर लेना चाहते थे। दूसरे, वे महल के अन्दर सत्ता हथियाकर एक बड़ी लोकप्रिय क्रान्ति की बाढ़ को रोकना चाहते थे, जिसका ज्वार चढ़ता जा रहा था।

इस काम में, अंग्रेज और फ्रांसीसी हुकूमतें रूसी पूँजीपतियों का पूरी तरह समर्थन करती थीं। ये हुकूमतें देखती थीं कि जार लड़ाई नहीं चला सकता। उन्हें डर था कि वह जर्मनों से अलग सन्धि करके लड़ाई खत्म न कर दे। अगर जार सरकार अलग सन्धि पर दस्तखत करती, तो अंग्रेज और फ्रांसीसी हुकूमतों के हाथ से युद्ध का एक साथी निकल जाता। यह साथी न सिर्फ दुश्मन की फौजों को अपने मोर्चो की तरफ खींच लाता था बल्कि फ्रांस को लाखों चुने हुए रूसी सिपाही भी देता था। इसलिए, अंग्रेज और फ्रांसीसी हुकूमतों ने रूसी पूँजीपतियों की इन कोशिशों का समर्थन किया कि वे महल में बलात सत्ता हथियाएँ।

इस तरह, जार अकेला पड़ गया।

उधर मोर्चे पर हार पर हार होती गयी, इधर आर्थिक विघटन और ज्यादा तीखा होता गया। जनवरी और फरवरी 1917 में खाद्य सामग्री, कच्चे माल और ईंधन देने की अव्यवस्था हद को पहुँच गयी। पेत्रोग्राद और मास्को को खाद्य सामग्री भेजना करीब-करीब खत्म हो गया था। एक के बाद दूसरा कारखाना बन्द होता गया और इस तरह, बेकारी बढ़ गयी। मजदूरों की हालत खास तौर से असह्य थी। अधिकाधिक लोग इस नतीजे पर पहुँचते रहे थे कि इस असहनीय हालत को खत्म करने का एक ही तरीका है कि निरंकुश जारशाही को खत्म किया जाये।

स्पष्ट ही, जारशाही मौत के संकट में पड़ी हुई थी।

पूँजीपतियों ने सोचा कि महल में बलात सत्ता हथिया कर इस संकट को हल करें।

लेकिन, जनता ने उसे अपने ही ढंग से हल किया।

5. फरवरी क्रान्ति। जारशाही का पतन। मजदूर और सैनिक प्रतिनिधियों की सोवियतों का निर्माण। अस्थाई सरकार का निर्माण। दुहरी सत्ता।

1917 के साल की शुरुआत 9 जनवरी की हड़ताल से हुई। इस हड़ताल के दौर में पेत्रोग्राद, मास्को, बाकू और निज्नीन-नोवगोराद में प्रदर्शन हुए। मास्को में लगभग एक-तिहाई मजदूरों ने 9 जनवरी की हड़ताल में हिस्सा लिया। त्वेस्कोंयी राजमार्ग पर दो हजार आदमियों के प्रदर्शन को पुलिस सवारों ने तितर-बितर कर दिया। पेत्रोग्राद में, विबोर्ग मार्ग पर एक प्रदर्शन में सैनिक भी शामिल हो गये।

पेत्रोग्राद की पुलिस ने रिपोर्ट दी : "आम हड़ताल का विचार नित नये लोगों के दिल में घर करता जा रहा है और उतना ही लोकप्रिय हो जा रहा है जितना वह 1905 में था।"

मेन्शेविकों और समाजवादी-क्रान्तिकारियों ने कोशिश की कि इस नवजात क्रान्तिकारी आन्दोलन को उन्हीं राहों में ले जायें जो उदारपंथी पूँजीपतियों के लिए जरूरी थीं। मेन्शेविकों ने प्रस्ताव किया कि राज्य दूमा के आरम्भ के दिन 14 फरवरी को, वहाँ मजदूरों का जुलूस बना कर ले जाया जाये। लेकिन, मजदूर जनता बोल्शेविकों के साथ थी और वह दूमा न जाकर प्रदर्शन के लिए निकल पड़ी।

18 फरवरी 1917 को, पेत्रोग्राद के पुतिलोव कारखाने में हड़ताल शुरू हो गयी। 22 फरवरी को, ज्यादातर बड़े कारखानों के मजदूरों ने हड़ताल कर दी। 23 फरवरी (**8 मार्च**) को, अन्तरराष्ट्रीय महिला दिवस पर पेत्रोग्राद बोल्शेविक कमेटी के बुलावे पर, मेहनतकश औरतें भुखमरी, युद्ध और जारशाही के खिलाफ प्रदर्शन करने के लिए सड़कों पर आ गयीं। पेत्रोग्राद के मजदूरों ने नगरव्यापी हड़ताल-आन्दोलन करके मेहनतकश औरतों के प्रदर्शन का समर्थन किया। राजनीतिक हड़ताल जारशाही व्यवस्था के खिलाफ एक आम राजनीतिक प्रदर्शन का रूप लेने लगी।

24 फरवरी (9 मार्च) को प्रदर्शन और भी जोरशोर से किया गया। लगभग दो लाख मजदूर हड़ताल पर थे ही।

25 फरवरी (10 मार्च) को, समूचा मजदूरों का पेत्रोग्राद क्रान्तिकारी आन्दोलन में शामिल हो गया। जिलों की राजनीतिक हड़तालें समूचे शहर की आम राजनीतिक हड़ताल में घुलमिल गयीं। हर जगह प्रदर्शन और पुलिस से टक्करें हुईं। मजदूरों के जन समूह पर लाल झण्डे लहराते थे, जिनके ऊपर लिखा था : 'जार का नाश हो!' 'युद्ध मुर्दाबाद!' 'हमें रोटी दो!'

26 फरवरी (11 मार्च) के सबेरे, राजनीतिक हड़ताल और प्रदर्शन ने विद्रोह का रूप लेना शुरू किया। मजदूरों ने सादी और हथियारबन्द पुलिस से हथियार छीन लिये और खुद हथियारों से लैस हो गये। फिर भी, पुलिस से हथियारबन्द टक्कर का अन्त ज्नामेन्स्काया चौराहे पर एक प्रदर्शन पर गोलियाँ चलने में हुआ।

पेत्रोग्राद फौजी इलाके के सेनापति जनरल खबालोव ने ऐलान किया कि मजदूर 28 फरवरी (13 मार्च) को काम पर जरूर वापस जायें, वरना वे सब युद्ध के मोर्चे पर भेज दिये जायेंगे। 25 फरवरी (10 मार्च) को जार ने जनरल खबालोव को हुक्म दिया : "मैं तुम्हें हुक्म देता हूँ कि ज्यादा से ज्यादा कल तक राजधानी की सब गड़बड़ बन्द कर दो!"

लेकिन, क्रान्ति को 'बन्द कर दो', अब यह सम्भव नहीं था।

26 फरवरी (11 मार्च) को, पावलोव्स्की पलटन की रिजर्व बटालियन की चौथी कम्पनी

ने गोली चलाई, लेकिन मजदूरों पर नहीं बल्कि पुलिस सवारों के जत्थों पर जो मजदूरों से टक्कर ले रहे थे। फौजियों को अपनी तरफ करने के लिए बहुत ही जोरदार और जमकर कोशिश की गयी, खास तौर से मजदूर औरतों की तरफ से, जिन्होंने सीधे फौजियों से अपील की, उनसे भाईचारा कायम किया और उन्हें बुलावा दिया कि घृणित जारशाही का खात्मा करने में जनता का साथ दें।

उस समय हमारी पार्टी की केन्द्रीय समिति की ब्यूरो बोल्शेविक पार्टी के अमली काम का संचालन करती थी। उसका हेडक्वार्टर पेत्रोग्राद में था और उसके अगुआ कामरेड मोलोतोव थे। 26 फरवरी (11 मार्च) को, केन्द्रीय समिति की ब्यूरो ने एक घोषणापत्र निकाला जिसमें लोगों को बुलावा दिया गया कि जारशाही के खिलाफ हथियारबन्द संघर्ष जारी रखें और अस्थायी क्रान्तिकारी सरकार बनायें।

27 फरवरी (12 मार्च) को, पेत्रोग्राद की फौज ने मजदूरों पर गोली चलाने से इनकार कर दिया और विद्रोह में जनता का साथ देने लगी। 27 फरवरी के सबेरे तक जितने सिपाही विद्रोह में शामिल हुए उनकी तादाद दस हजार से ज्यादा थी, लेकिन उस दिन की शाम तक ही उनकी तादाद साठ हजार तक पहुँच गयी।

जो मजदूर और सिपाही विद्रोह करने के लिए उठ खड़े हुए थे, उन्होंने जार के मंत्रियों और जनरलों को गिरफ्तार करना और क्रान्तिकारियों को जेल से छोड़ना शुरू कर दिया। छूटे हुए राजनीतिक बन्दी क्रान्तिकारी संघर्ष में शामिल हो गये।

सड़कों पर पुलिस और ऊँचे कोठों पर मशीनगनें लगाये हथियारबन्द दस्ते गोली चला रहे थे। लेकिन, फौज तेजी से मजदूरों की तरफ आ गयी और इस बात ने निरंकुश जारशाही की तकदीर का फैसला कर दिया।

जब पेत्रोग्राद में क्रान्ति की विजय का समाचार दूसरे शहरों और युद्ध के मोर्चे पर पहुँचा, तो मजदूर और सिपाही जार के अफसरों को हटाने लगे।

फरवरी की पूँजीवादी-जनवादी क्रान्ति की जीत हुई।

क्रान्ति की जीत इसलिए हुई कि इसका हिरावल मजदूर वर्ग था। फौजी वर्दी पहने हुए और 'शान्ति, रोटी और आजादी' माँगते हुए, लाखों किसानों के आन्दोलन का मजदूर वर्ग ने नेतृत्व किया। सर्वहारा वर्ग के एकदम नेतृत्व ने ही क्रान्ति की सफलता निश्चित कर दी।

क्रान्ति के प्रारम्भिक दिनों में, लेनिन ने लिखा था :

> "क्रान्ति मजदूरों ने की थी। मजदूरों ने वीरता दिखाई; उन्होंने अपना खून बहाया; वे अपने साथ मेहनतकश और गरीब जनता को बहा ले गये।" (लेनिन, सं.ग्र., रू.सं, खण्ड 20, पृष्ठ 23-24)।

पहली क्रान्ति ने, 1905 की क्रान्ति ने, दूसरी क्रान्ति, 1917 की क्रान्ति की तुरन्त कामयाबी के लिए रास्ता साफ कर दिया था।

लेनिन ने लिखा था :

> "1905-1907 के तीन वर्षों में, रूसी मजदूरों ने जो क्रान्तिकारी शक्ति दिखायी,

उसके बिना और जबर्दस्त वर्ग-युद्धों के बिना दूसरी क्रान्ति सम्भवतः इतनी तेजी से न हो पाती। तेजी का मतलब यह कि इसकी शुरू की मंजिल कुछ दिनों में ही पूरी हो गयी।" (लेनिन, सं.ग्रं., अंग्रेजी संस्करण, मास्को, 1947, खण्ड 1, पृष्ठ 735)।

क्रान्ति के प्रारम्भिक दिनों में ही सोवियतें बन गयीं। विजयी क्रान्ति को मजदूर और फौजी प्रतिनिधियों की सोवियतों के समर्थन का आधार मिला। जिन मजदूरों और सैनिकों ने विद्रोह किया, उन्होंने मजदूर और सैनिक प्रतिनिधियों की सोवियतें बना लीं। 1905 की क्रान्ति ने दिखला दिया कि सोवियतें सशस्त्र विद्रोह का साधन थीं, और साथ ही एक नयी क्रान्तिकारी सत्ता का बीज थीं। आम मजदूर जनता के मन में सोवियतों की बात जीवित रही और जैसे ही जारशाही का तख्ता उलटा गया, वैसे ही वह उसे अमल में ले आयी। अन्तर इतना था कि 1905 में सिर्फ मजदूर प्रतिनिधियों की सोवियतें बनी थीं, जबकि फरवरी 1917 में बोल्शेविकों की पहलकदमी पर मजदूर और सैनिक प्रतिनिधियों की सोवियतें बनीं।

जबकि बोल्शेविक सीधे सड़कों पर जन संघर्षों का नेतृत्व कर रहे थे, समझौतावादी पार्टियाँ-मेन्शेविक और समाजवादी-क्रान्तिकारी-सोवियतों में सीटों पर कब्जा कर रही थीं और वहाँ अपना बहुमत बना रही थीं। आंशिक रूप में, उन्हें इस काम में इसलिए भी सफलता मिली कि बोल्शेविक पार्टी के अधिकांश नेता जेल या निर्वासन में थे (लेनिन विदेश में निर्वासित थे और स्तालिन तथा स्वेर्दलोव साइबेरिया में निर्वासित थे) जबकि मेन्शेविक और समाजवादी-क्रान्तिकारी आजादी से पेत्रोग्राद की सड़कों पर सैर करते थे। नतीजा यह हुआ कि पेत्रोग्राद-सोवियत और उसकी कार्यकारिणी समिति के अगुआ समझौतावादी पार्टियों के प्रतिनिधि, मेन्शेविक और समाजवादी-क्रान्तिकारी थे। मास्को और कई शहरों में भी यही बात थी। सिर्फ इवानोवो वज्नेसेंस्क, क्रासनोयार्स्क और दूसरी कई जगहों में शुरू से ही सोवियतों में बोल्शेविकों का बहुमत था।

सशस्त्र जनता-मजदूर और सैनिक-सोवियतों को अपने प्रतिनिधि इस तरह भेजती थी कि जैसे जनसत्ता की संस्था को भेज रही हो। वे समझते थे और विश्वास करते थे कि मजदूर और सैनिक प्रतिनिधियों की सोवियत क्रान्तिकारी जनता की सभी माँगें पूरी करेगी और सबसे पहले शान्ति कायम की जायेगी।

लेकिन, मजदूरों और सैनिकों के इस निराधार विश्वास ने उन्हें नुकसान पहुँचाया। समाजवादी-क्रान्तिकारी और मेन्शेविकों की जरा भी मंशा न थी कि युद्ध खत्म किया जाये, शान्ति हासिल की जाये। उन्होंने योजना बनायी थी कि क्रान्ति से फायदा उठा कर युद्ध चालू रखा जाये। जहाँ तक क्रान्ति और जनता की क्रान्तिकारी माँगों का सवाल था, समाजवादी-क्रान्तिकारी और मेन्शेविक समझते थे कि क्रान्ति अब खत्म हो चुकी है। काम अब यह रह गया है कि उस पर मुहर लगा दी जाये और पूँजीपतियों के साथ-साथ 'साधारण' वैधानिक जीवन बिताया जाये। इसलिए, पेत्रोग्राद-सोवियत के समाजवादी-क्रान्तिकारी और मेन्शेविक नेताओं ने भरसक कोशिश की कि युद्ध को खत्म करने का सवाल दबा दिया जाये, शान्ति का सवाल दबा दिया जाये और सत्ता पूँजीपतियों को सौंप दी जाये।

27 फरवरी (12 मार्च) 1917 को, चौथी राज्य दूमा के उदारपंथी सदस्यों ने

समाजवादी-क्रान्तिकारी और मेन्शेविक नेताओं के साथ गुप्त समझौता करके राज्य दूमा की अस्थायी कमेटी बनायी। इस कमेटी का अगुआ दूमा का सभापति रोद्ज़ियांकी था, जो जमीन्दार और सम्राटवादी था। कुछ ही दिन बाद, राज्य दूमा की अस्थायी कमेटी और मजदूर और सैनिक प्रतिनिधियों की सोवियत की कार्यकारिणी समिति के समाजवादी-क्रान्तिकारी और मेन्शेविक नेताओं ने बोल्शेविकों से छिपा कर रूस में एक नयी सरकार बनाने के लिए समझौता कर लिया। यह एक पूँजीवादी अस्थायी सरकार थी, जिसका अगुआ प्रिंस ल्वोव था। यह वह आदमी था जिसे फरवरी क्रान्ति से पहले ही जार निकोलस द्वितीय अपनी हुकूमत का प्रधानमंत्री बनाने वाला था। अस्थायी सरकार में संवैधानिक जनवादियों का प्रधान मिल्यूकोव, अक्टूबरपंथियों का प्रधान गुचकोव और पूँजीवादी वर्ग के दूसरे प्रमुख प्रतिनिधि और 'जनतंत्र' का प्रतिनिधि समाजवादी-क्रान्तिकारी केरेन्स्की-सभी शामिल थे।

और इस तरह, सोवियत की कार्यकारिणी समिति के समाजवादी-क्रान्तिकारी और मेन्शेविक नेताओं ने सत्ता पूँजीपतियों को सौंप दी। फिर भी, जब मजदूर और सैनिक प्रतिनिधियों ने यह सब जाना, तो उसके बहुमत ने, बाकायदा बोल्शेविकों के विरोध के बावजूद, समाजवादी-क्रान्तिकारी और मेन्शेविक नेताओं के काम को पास कर दिया।

इस तरह, रूस में एक नयी राज्यसत्ता पैदा हुई जिसमें, लेनिन के शब्दों में, "पूँजीपतियों और पूँजीपति बन जाने वाले जमीन्दारों" के प्रतिनिधि शामिल थे।

लेकिन पूँजीवादी हुकूमत के साथ-साथ, एक दूसरी सत्ता मौजूद थी-मजदूर और सैनिक प्रतिनिधियों की सोवियत। सोवियत में सैनिक प्रतिनिधि ज्यादातर किसान थे, जो युद्ध के लिए भर्ती किये गये थे। मजदूर और सैनिक प्रतिनिधियों की सोवियत जारशाही के खिलाफ मजदूरों और किसानों के सहयोग की संस्था थी और इसके साथ ही उनकी सत्ता की संस्था थी, मजदूर वर्ग और किसानों के अधिनायकत्व की संस्था थी।

इसका फल यह हुआ कि दो सत्ताएँ, दो अधिनायकत्व विचित्र ढंग से आपस में गुँथ गये : पूँजीपतियों का अधिनायकत्व, जिसकी प्रतिनिधि अस्थायी सरकार थी और मजदूरों और किसानों का अधिनायकत्व, जिसकी प्रतिनिधि मजदूर और सैनिक प्रतिनिधियों की सोवियत थी।

इसका नतीजा निकला-दुहरी सत्ता।

इसका क्या सबब है कि आरम्भ में सोवियतों में बहुमत मेन्शेविकों और समाजवादी-क्रान्तिकारियों का था?

इसका क्या सबब है कि विजयी मजदूरों और किसानों ने **खुद अपनी तरफ से** सत्ता पूँजीपतियों के प्रतिनिधियों को सौंप दी?

लेनिन ने इसकी व्याख्या करते हुए बताया कि लाखों आदमी, जो राजनीति में अनुभवहीन थे, जाग उठे थे और राजनीतिक कार्रवाई में हिस्सा लेने के लिए जोरों से आगे बढ़ आये थे। ये लोग ज्यादातर छोटे मालिक, किसान, कुछ दिन तक किसानी करने वाले मजदूर थे, ऐसे लोग जो पूँजीपतियों और सर्वहारा के बीच में थे। उस समय, यूरोप के सभी बड़े देशों में रूस सबसे ज्यादा निम्न-पूँजीवादी देश था। और, इस देश में "एक विराट निम्न-पूँजीवादी

लहर हर चीज पर छा गयी है। और उसने न सिर्फ तादाद से बल्कि विचारधारा से भी वर्ग-चेतन सर्वहारा को मोह लिया है। उसने मजदूरों के बहुत बड़े हिस्से को निम्न-पूँजीवादी राजनीतिक दृष्टिकोण की छूत लगा दी है और उसके मन में यह दृष्टिकोण बिठा दिया है।" (लेनिन, सं.ग्रं., अं.सं., मास्को, 1947, खण्ड 2, पृष्ठ 29)।

इस शक्तिशाली निम्न-पूँजीवादी लहर ने मेन्शेविक और समाजवादी-क्रान्तिकारी पार्टियों को सबसे आगे ला खड़ा किया।

लेनिन ने बताया कि एक दूसरा कारण यह है कि युद्ध के दौर में सर्वहारा की बनावट में तब्दीली हुई और क्रान्ति के आरम्भ में सर्वहारा की वर्ग-चेतना और संगठन नाकाफी थे। युद्ध के दौर में, खुद सर्वहारा के अन्दर भारी तब्दीली हुई थी। नियमित मजदूरों में से लगभग 40 फीसदी फौज में भर्ती कर लिये गये। बहुत से छोटे मालिक, दस्तकार और दूकानदार भर्ती से बचने के लिए कारखानों में काम करने लगे थे, लेकिन उनके लिए सर्वहारा की जहनियत एक गैर चीज थी।

मजदूरों के ये निम्न-पूँजीवादी हिस्से ही वह जमीन थे जहाँ निम्न-पूँजीवादी राजनीतिक, मेन्शेविक और समाजवादी-क्रान्तिकारी पनपते थे।

यही सबब है कि राजनीति में अनुभवहीन लोगों की भारी तादाद इस शक्तिशाली निम्न-पूँजीवादी भँवर में सिमट आयी। क्रान्ति की पहली सफलताओं से मदहोश होकर, उन्होंने अपने को शुरू के महीने में समझौतावादी पार्टियों के असर में पाया और इस सीधे-सादे विश्वास में कि पूँजीवादी सत्ता सोवियतों का काम न रोकेगी, वे पूँजीपतियों को राज्यसत्ता सौंपने के लिए राजी हो गये।

बोल्शेविक पार्टी के सामने अब यह काम था कि धीरज के साथ व्याख्या करके लोगों की आँखें खोले कि अस्थायी सरकार का रूप साम्राज्यवादी है, समाजवादी-क्रान्तिकारियों और मेन्शेविकों की गद्दारी का पर्दाफाश करे और यह दिखाये कि शान्ति तब तक हासिल नहीं हो सकती जबतक कि अस्थायी सरकार की जगह सोवियतों की सरकार न ले।

और, बोल्शेविक पार्टी अपनी पूरी शक्ति से इस काम में जुट गयी।

उसने अपनी कानूनी पत्रिकाओं को छापना फिर से जारी किया। फरवरी क्रान्ति के पाँच दिन बाद, पेत्रोग्राद से **प्राव्दा** अखबार निकलने लगा और कुछ दिन बाद मास्को से **सोत्सियाल देमोक्रात** निकलने लगा। पार्टी आम जनता का नेतृत्व सँभालने लगी। आम जनता उदारपंथी पूँजीपतियों और मेन्शेविकों और समाजवादी-क्रान्तिकारियों में अपना विश्वास खोने लगी थी। पार्टी ने धीरज से सैनिकों और किसानों को समझाया कि मजदूर वर्ग के साथ मिलकर काम करना क्यों जरूरी है। उसने उन्हें समझाया कि किसानों को तब तक न तो शान्ति मिलेगी, न जमीन, जब तक कि क्रान्ति को और आगे नहीं बढ़ाया जायेगा और पूँजीवादी अस्थायी सरकार की जगह सोवियतों की सरकार नहीं कायम की जायेगी।

सारांश

साम्राज्यवादी युद्ध पूँजीवादी देशों के विषम विकास से, मुख्य शक्तियों का सन्तुलन खत्म होने से, युद्ध के जरिये दुनिया का फिर से बँटवारा करने और नया सन्तुलन कायम करने के लिए साम्राज्यवादियों की जरूरत से आरम्भ हुआ।

युद्ध इतना विनाशकारी न होता और शायद इतना विशाल भी न बन पाता अगर दूसरे इण्टरनेशनल की पार्टियों ने मजदूर वर्ग के पक्ष से गद्दारी न की होती, अगर उन्होंने दूसरे इण्टरनेशनल की कांग्रेसों के युद्ध-विरोधी फैसलों को तोड़ा न होता, अगर अपनी साम्राज्यवादी हुकूमतों के खिलाफ, जंगबाजों के खिलाफ उन्होंने मजदूर वर्ग को जगाने और काम करने में हिम्मत दिखाई होती।

बोल्शेविक पार्टी ही एक सर्वहारा पार्टी थी जो समाजवाद और अन्तरराष्ट्रीयता के पक्ष के प्रति वफादार रही और जिसने अपनी ही साम्राज्यवादी हुकूमत के खिलाफ गृह-युद्ध का संगठन किया। दूसरे इण्टरनेशनल की सभी दूसरी पार्टियाँ अपने नेताओं के जरिये पूँजीपतियों से बँधी हुई थीं, इसलिए उन्होंने अपने ऊपर साम्राज्यवाद को हावी पाया और वे भाग कर साम्राज्यवादियों से जा मिलीं।

युद्ध पूँजीवाद के आम संकट का प्रतिबिम्ब था। इसके साथ ही, उसने इस संकट को और तेज किया और विश्व पूँजीवाद को कमजोर बनाया। दुनिया में सबसे पहले रूस के मजदूरों और बोल्शेविक पार्टी ने सफलता से पूँजीवाद की कमजोरी का फायदा उठाया। उन्होंने साम्राज्यवादी मोर्चे में दरार डाली, जार का तख्ता उलट दिया और मजदूर तथा सैनिक प्रतिनिधियों की सोवियतें कायम कीं।

क्रान्ति की प्रारम्भिक सफलताओं से मदहोश होकर और मेन्शेविकों और समाजवादी-क्रान्तिकारियों के यह विश्वास दिलाने पर कि आगे से सब कुछ ठीक होगा, गाफिल होकर, निम्न-पूँजीवादियों में से अधिकांश, सैनिक और मजदूर भी अस्थायी सरकार में विश्वास करने और उसका समर्थन करने लगे।

बोल्शेविक पार्टी के सामने यह काम था कि प्रारम्भिक सफलताओं से मदहोश आम मजदूरों और सैनिकों को समझाये कि क्रान्ति की पूरी जीत अब भी बहुत दूर है, कि जब तक सत्ता पूँजीवादी अस्थायी सरकाार के हाथ में है और जब तक सोवियतों में समझौतावादियों-मेन्शेविकों और समाजवादी-क्रान्तिकारियों-का बोलबाला है, तब तक जनता को न शान्ति मिलेगी, न जमीन मिलेगी, न रोटी मिलेगी; और पूरी जीत हासिल करने के लिए एक कदम और उठाना होगा और सत्ता सोवियतों को सौंपनी होगी।

सातवाँ अध्याय

अक्टूबर समाजवादी क्रान्ति की तैयारी और विजय के दौर में बोल्शेविक पार्टी

(अप्रैल 1917-1918)

1. फरवरी क्रान्ति के बाद देश की परिस्थिति। गुप्त जीवन से पार्टी का निकलना और खुला राजनीतिक काम करना। लेनिन का पेत्रोग्राद आना। लेनिन की अप्रैल-थीसिस। समाजवादी क्रान्ति की ओर आगे बढ़ने की पार्टी की नीति।

घटनाक्रम और अस्थायी सरकार के आचरण से, नित नये सबूत मिलने लगे कि बोल्शेविक नीति सही है। यह बात अधिकाधिक जाहिर होती गयी कि अस्थायी सरकार जनता के पक्ष में नहीं है बल्कि जनता के खिलाफ है, शान्ति के पक्ष में नहीं है बल्कि युद्ध के पक्ष में है और वह जनता को शान्ति, जमीन या रोटी न तो दे सकती है, न देना चाहती है। बोल्शेविकों ने अपनी नीति समझाने के काम के लिए उपजाऊ जमीन पायी।

जब मजदूर और सैनिक जार सरकार का तख्ता उलट रहे थे और राज्यतंत्र की जड़ ही काट रहे थे, तब अस्थायी सरकार निश्चित रूप से राजतंत्र की रक्षा करना चाहती थी। 2 मार्च 1917 को, उसने गुप्त रूप से गुचकोव और शुल्गिन को जार के पास जाने और उससे मिलने के लिए मुकर्रर किया। पूँजीपति चाहते थे कि सत्ता निकोलस रोमानोव के भाई माइकेल के हाथ में आ जाये। लेकिन, जब रेल-मजदूरों की एक सभा में गुचकोव ने अपने भाषण का अन्त करते हुए कहा : 'सम्राट माइकेल जिन्दाबाद', तो मजदूरों ने माँग की कि गुचकोव को तुरन्त गिरफ्तार कर लिया जाये और उसकी खाना तलाशी ली जाये। मजदूरों ने गुस्से में कहा : 'जैसे नागनाथ, वैसे साँपनाथ!'

जाहिर था कि मजदूर राजतंत्र को बहाल नहीं होने देंगे।

जबकि मजदूर और किसान, जो क्रान्ति करते हुए अपना खून बहा रहे थे, आशा करते थे कि युद्ध बन्द कर दिया जायेगा; जबकि वे रोटी और जमीन के लिए लड़ रहे थे और आर्थिक अव्यवस्था को खत्म करने के लिए जोरदार उपाय करने की माँग कर रहे थे, अस्थायी सरकार जनता की इन बेहद जरूरी माँगों को अनसुना कर रही थी। इस सरकार

में पूँजीपतियों और जमीन्दारों के प्रतिनिधि तो थे ही, उसका कोई इरादा न था कि किसानों को जमीन देने की उनकी माँग पूरी की जाये। न वह मेहनतकश जनता को रोटी दे सकती थी; क्योंकि ऐसा करने के लिए उसे गल्ले के बड़े व्यापारियों के हितों में हाथ लगाना पड़ता और हर मुमकिन उपाय से जमीन्दारों और कुलकों से गल्ला लेना पड़ता। और हुकूमत यह करने की हिम्मत न करती थी, क्योंकि वह खुद इन वर्गों के हितों से बँधी हुई थी। वह जनता को शान्ति नहीं दे सकती थी। अंग्रेज और फ्रांसीसी साम्राज्यवादियों से उसका गठबन्धन तो था ही। अस्थायी सरकार की जरा भी मंशा न थी कि युद्ध खत्म किया जाये, उल्टे वह क्रान्ति से फायदा उठा कर साम्राज्यवादी युद्ध में रूस के और सक्रिय रूप से भाग लेने की कोशिश कर रही थी और इस तरह, कुस्तुन्तुनिया, दर्रे दानियाल और गैलीशिया पर कब्जा करने के अपने साम्राज्यवादी मंसूबे पूरे करना चाहती थी।

यह स्पष्ट था कि अस्थायी सरकार की नीति में जनता का विश्वास अवश्य ही जल्द खतम हो जायेगा।

यह बात साफ थी कि फरवरी क्रान्ति के बाद जिस दुहरी सत्ता का जन्म हुआ, वह ज्यादा दिन तक नहीं चल सकती थी। घटना-क्रम की माँग थी कि सत्ता एक ही अधिकारी के हाथ में केन्द्रित हो : या तो अस्थायी सरकार के हाथ में, या सोवियतों के हाथ में।

यह ठीक था कि मेन्शेविकों और समाजवादी-क्रान्तिकारियों की समझौतावादी नीति को अब भी आम जनता में समर्थन मिल जाता था। ऐसे काफी मजदूर थे और इनसे भी ज्यादा सैनिक और किसान थे जो अब भी समझते थे कि "विधान सभा जल्द ही आयेगी और सब कुछ शान्तिमय ढंग से ठीक कर देगी।" और, ये लोग समझते थे कि युद्ध दूसरे देश जीतने के लिए नहीं, बल्कि जरूरत के लिए, राज्य की रक्षा करने के लिए हो रहा है। लेनिन ने ऐसे आदमियों को ईमानदारी से गलती करने वाले सुरक्षावादी कहा था। ये लोग अब भी समझते थे कि समाजवादी-क्रान्तिकारी और मेन्शेविक नीति, जो वादों और फुसलाने की नीति थी, सही नीति है। लेकिन, जाहिर था कि वादे करने और फुसलाने से ज्यादा दिन काम न चल सकता था, जैसा कि घटनाक्रम और अस्थायी सरकार के व्यवहार से आये दिन प्रकट हो रहा था। इससे साबित हो रहा था कि समाजवादी-क्रान्तिकारियों और मेन्शेविकों की समझौतावादी नीति काम को टालने और सीधे-सादे लोगों को बरगलाने की नीति है।

अस्थायी सरकार आम जनता के क्रान्तिकारी आन्दोलन के खिलाफ हमेशा छिपे संघर्ष से ही काम न लेती थी, क्रान्ति के खिलाफ छिपकर साजिशें करने से ही सन्तुष्ट नहीं थी। वह कभी-कभी जनवादी अधिकारों पर खुला हमला करने की कोशिश करती थी, 'अनुशासन बहाल करने की कोशिश करती थी', खास तौर से सैनिकों में कोशिश करती थी, 'व्यवस्था कायम करने' यानी क्रान्ति को ऐसी धाराओं में बहाने की कोशिश करती थी जो पूँजीपतियों की जरूरतों के माकूल थी। लेकिन, इस दिशा में उसकी सभी कोशिशें नाकाम हुईं। लोग आतुरता से अपने जनवादी अधिकारों का, यानी भाषण, प्रेस, सभा-संगठन बनाने, मीटिंगें और प्रदर्शन करने की आजादी का इस्तेमाल करते थे। मजदूरों और सैनिकों ने कोशिश की कि हाल के जीते हुए जनवादी अधिकारों का पूरा उपयोग करें, जिससे कि वे देश के

राजनीतिक जीवन में सक्रिय हिस्सा ले सकें, हालत को समझदारी से पहचान सकें और आगे क्या करना चाहिए इसका फैसला कर सकें।

फरवरी क्रान्ति के बाद, बोल्शेविक पार्टी के संगठन, जो जारशाही की बेहद कठिन परिस्थितियों में गैर-कानूनी तौर पर काम करते रहे थे, गुप्त जीवन से बाहर निकले और खुल कर राजनीतिक तथा संगठनात्मक काम आगे बढ़ाने लगे। उस समय, बोल्शेविक संगठनों के चालीस या पैंतालिस हजार से ज्यादा सदस्य न थे। लेकिन, ये सब संघर्ष में निखरे हुए पक्के क्रान्तिकारी थे। पार्टी-कमेटियाँ जनवादी केन्द्रीयता के उसूल पर फिर से संगठित की गयीं। ऊपर से लेकर नीचे तक, सभी पार्टी संस्थाओं का निर्वाचित होना जरूरी हो गया।

जब पार्टी ने अपना कानूनी जीवन शुरू किया, तो उसके भीतरी मतभेद स्पष्ट होकर सामने आये। कामेनेव और मास्को-संगठन के कई मजदूर, मिसाल के लिए राइकोव, बुबनोव और नोगिन यह अर्द्ध-मेन्शेविक विचार पेश करते थे कि कुछ शर्तों के साथ अस्थायी सरकार और सुरक्षावादियों की नीति का समर्थन किया जाये। स्तालिन, जो हाल ही में निर्वासन से लौटे थे, मोलोतोव और दूसरों ने पार्टी के बहुमत के साथ अस्थायी सरकार में अविश्वास की नीति का समर्थन किया, सुरक्षावाद का विरोध किया और शान्ति के लिए सक्रिय संघर्ष करने के लिए, साम्राज्यवादी युद्ध के खिलाफ संघर्ष करने के लिए बुलावा दिया। पार्टी के कुछ कार्यकर्ताओं ने ढुलमुलपन दिखाया, जो उनके राजनीतिक पिछड़ेपन की निशानी थी, बहुत दिन तक जेल में या निर्वासन में रहने का नतीजा था।

पार्टी के नेता लेनिन का अभाव महसूस हो रहा था।

3 (16) अप्रैल 1917 को, निर्वासन की लम्बी अवधि के बाद लेनिन रूस लौटे।

लेनिन का आना पार्टी और क्रान्ति के लिए अत्यन्त महत्त्व की बात थी।

लेनिन जब स्विट्जरलैण्ड में थे, तभी उन्होंने क्रान्ति की पहली खबर मिलने पर पार्टी और रूस के मजदूर वर्ग के नाम "सुदूर से पत्र" लिखे थे, जिनमें उन्होंने कहा थाः

> "मजदूरो, तुमने जारशाही के खिलाफ गुह-युद्ध में सर्वहारा की वीरता, जनता की वीरता के चमत्कार दिखाये हैं। अब क्रान्ति की दूसरी मंजिल में अपनी जीत के लिए रास्ता साफ करने के लिए तुम्हें संगठन के चमत्कार, सर्वहारा वर्ग और तमाम जनता के संगठन के चमत्कार दिखाने चाहिए।" (लेनिन, सं.ग्रं., अं.स., मास्को, 1947, खण्ड 1, पृष्ठ 741)।

3 अप्रैल की रात को, लेनिन पेत्रोग्राद आये। फिनलैण्ड रेलवे स्टेशन पर और स्टेशन के चौराहे पर उनका स्वागत करने के लिए हजारों मजदूर, सैनिक और जहाजी इकट्ठे हुए। लेनिन जब ट्रेन से उतरे, तब जनता का उत्साह अवर्णनीय था। उसने अपने नेता को कन्धों तक ऊँचा उठा लिया और स्टेशन के मुख्य वेटिंगरूम तक ले गयी। वहाँ पेत्रोग्राद-सोवियत की तरफ से मेन्शेविक चखाइत्जे और स्कोबेलेव ने 'स्वागत' भाषण आरम्भ कर दिये, जिसमें उन्होंने 'आशा प्रकट की' कि वे और लेनिन एक 'मुश्तरका जबान' पा सकेंगे। लेकिन, लेनिन उनकी बात सुनने के लिए रुके नहीं। उनके पास से

तेजी से निकलते हुए, वह आम मजदूरों और सैनिकों के पास पहुँच गये। बख़्तरबन्द गाड़ी पर चढ़ कर उन्होंने अपना प्रसिद्ध भाषण दिया, जिसमें उन्होंने समाजवादी क्रान्ति की विजय के लिए लड़ने के लिए आम जनता का आह्वान किया। 'समाजवादी क्रान्ति जिन्दाबाद!'-इन शब्दों के साथ, निर्वासन की लम्बी अवधि के बाद लेनिन ने अपना यह पहला भाषण खत्म किया।

रूस में वापस आकर, लेनिन जोरशोर से क्रान्तिकारी काम में जुट गये। आने के दूसरे दिन ही, युद्ध और क्रान्ति के विषय पर बोल्शेविकों की एक मीटिंग में उन्होंने रिपोर्ट दी और उसके बाद मेन्शेविकों और बोल्शेविकों की एक मिली-जुली मीटिंग में रिपोर्ट की सैद्धान्तिक स्थापनाओं (थीसिस) को दुहराया।

ये लेनिन की मशहूर अप्रैल थीसिस थी, जिससे पार्टी और सर्वहारा वर्ग को पूँजीवादी क्रान्ति से समाजवादी क्रान्ति की तरफ बढ़ने के लिए एक स्पष्ट क्रान्तिकारी नीति मिली।

लेनिन की सैद्धान्तिक स्थापनाएँ क्रान्ति के लिए और पार्टी के अगले काम के लिए भारी महत्त्व रखती थीं। क्रान्ति देश के जीवन में बहुत ही महत्त्वपूर्ण मोड़ थी। जारशाही के खात्मे के बाद, संघर्ष की जो नयी हालत पैदा हुई, उसमें पार्टी के लिए एक नया दृष्टिकोण जरूरी था, जिससे कि वह हिम्मत और विश्वास के साथ नयी राह पर आगे बढ़ सके। लेनिन की इन स्थापनाओं ने पार्टी को यही दृष्टिकोण दिया।

लेनिन की अप्रैल की सैद्धान्तिक स्थापनाओं ने पूँजीवादी-जनवादी क्रान्ति से समाजवादी क्रान्ति की तरफ, क्रान्ति की पहली मंजिल से दूसरी मंजिल की तरफ-समाजवादी क्रान्ति की मंजिल की तरफ-बढ़ने के लिए संघर्ष की एक सुन्दर योजना रखी। पार्टी के समूचे इतिहास ने इस महान कार्य के लिए उसे तैयार किया था। 1905 के दिनों में भी लेनिन ने अपनी पुस्तिका **जनवादी क्रान्ति में सामाजिक-जनवाद की दो कार्यनीतियाँ** में कहा था कि जारशाही का खात्मा होने के बाद सर्वहारा वर्ग समाजवादी क्रान्ति करने के लिए बढ़ेगा। इन स्थापनाओं में नयी बात यह थी कि समाजवादी क्रान्त की तरफ बढ़ने की प्रारम्भिक मंजिल के लिए एक ठोस और सिद्धान्त पर आधारित योजना दी गयी थी।

आर्थिक क्षेत्र में, बीच के दौर के ये कदम उठाने थे : सारी जमीन का राष्ट्रीकरण और जागीरी जमीन की जब्ती, सभी बैंकों को मिलाकर एक राष्ट्रीय बैंक बनाना जो मजूदर प्रतिनिधियों की सोवियत के नियंत्रण में हो, और चीजों की सामाजिक पैदावार और उनके वितरण पर नियंत्रण कायम करना।

राजनीतिक क्षेत्र में, लेनिन ने प्रस्ताव किया कि संसदीय जनतंत्र से सोवियतों के जनतंत्र की तरफ बढ़ा जाये। मार्क्सवाद के सिद्धान्त और अमल में यह एक आगे बढ़ा हुआ महत्त्वपूर्ण कदम था। अभी तक मार्क्सवादी सिद्धान्तकार यह समझते रहे थे कि समाजवाद की तरफ बढ़ने के लिए संसदीय जनतंत्र सबसे अच्छा राजनीतिक रूप है। अब लेनिन ने प्रस्ताव किया कि पूँजीवाद से समाजवाद की तरफ बढ़ने के दौर में संसदीय जनतंत्र की जगह सोवियत जनतंत्र ले, जो इस दौर के लिए समाज के राजनीतिक संगठन का सबसे उपयुक्त रूप होगा।

इन स्थापनाओं में कहा गया था :

“रूस की मौजूदा हालत की अपनी विशेषता यह है कि वह क्रान्ति की पहली मंजिल से-जबकि मजदूरों में वर्ग-चेतना और संगठन नाकाफी होने से सत्ता पूँजीपतियों के हाथ में सौंप दी गयी-**दूसरी मंजिल की तरफ बढ़ना है,** जबकि सत्ता सर्वहारा वर्ग और किसानों के सबसे गरीब हिस्से के हाथ में जरूर आयेगी।” (उप., खण्ड 2, पृ. 18)।

और भी आगे :

“संसदीय जनतंत्र नहीं-मजदूर प्रतिनिधियों की सोवियतों से संसदीय जनतंत्र की तरफ लौटना पीछे कदम उठाना होगा-बल्कि समूचे देश में, ऊपर से नीचे तक, मजदूर, खेत-मजदूर और किसान प्रतिनिधियों की सोवियतों का जनतंत्र।” (उप., पृ. 18)।

नयी हुकूमत में, अस्थायी सरकार के राज्य में, लेनिन ने कहा कि युद्ध का रूप अब भी लुटेरा साम्राज्यवादी बना हुआ है। पार्टी का यह काम था कि आम जनता को समझाये और उसे यह दिखलाये कि जब तक पूँजीपतियों का तख्ता नहीं उल्टा जायेगा तब तक एक सच्ची जनवादी शान्ति करके, न कि लूट-खसोट की शान्ति करके, युद्ध खत्म करना असम्भव होगा।

जहाँ तक अस्थायी सरकार का सवाल था, लेनिन ने यह नारा दिया : ‘अस्थायी सरकार को कोई मदद न दो!’

इन स्थापनाओं में, लेनिन ने और आगे बताया कि सोवियतों में हमारी पार्टी अब भी अल्पसंख्या में है; सोवियतों पर मेन्शेविकों और समाजवादी क्रानितकारियों का गुट हावी है, जो कि सर्वहारा वर्ग पर पूँजीवादी असर फैलाने का साधन है। इसलिए, पार्टी का काम यह है :

“आम जनता को यह समझाना चाहिए कि क्रान्तिकारी हुकूमत का एक ही मुमकिन रूप है, और वह है-मजदूर प्रतिनिधियों की सोवियतें। इसलिए, हमारा काम है कि जब तक यह हुकूमत पूँजीपतियों के असर के सामने घुटने टेकती जाती है, तब तक उसकी गलतियाँ और उसकी कार्यनीति धीरज के साथ, बाकायदा और लगातार जनता को **समझायें** और जनता की अमली जरूरतों को खास तौर से ध्यान में रखते हुए समझायें। जब तक हम अल्पसंख्या में हैं, तब तक हम आलोचना करने और गलतियों के पर्दाफाश करने का काम करते रहेंगे और साथ ही इस बात का भी प्रचार करेंगे कि पूरी राज्य-शक्ति मजदूर प्रतिनिधियों की सोवियतों को सौंपना जरूरी है...।” (लेनिन, सं.ग्रं., रू.सं., खण्ड 20, पृष्ठ 88)।

इसका मतलब यह था कि लेनिन अस्थायी सरकार के खिलाफ विद्रोह करने का बुलावा न दे रहे थे। उस समय, उसे सोवियतों का विश्वास प्राप्त था। लेनिन उसका तख्ता उलटने की माँग न कर रहे थे, बल्कि वह चाहते थे कि समझाने और भर्ती करने के काम के जरिये सोवियतों में बहुमत कायम किया जाये, सोवियतों की नीति बदली जाये और सोवियतों के जरिये हुकूमत की बनावट और नीति बदली जाये।

यह ऐसी नीति थी जो अपने तईं क्रान्ति का शान्तिमय विकास देखती थी।

लेनिन ने यह भी माँग की कि 'पुरानी वर्दी' उतार फेंकी जाये, यानी पार्टी अब अपने को सामाजिक-जनवादी पार्टी नहीं कहे। दूसरे इण्टरनेशनल की पार्टियाँ और रूसी मेन्शेविक अपने को सामाजिक-जनवादी कहते थे। अवसरवादियों ने, समाजवाद से दगा करने वालों ने इस नाम को जलील किया था और और उस पर कालिख पोत दी थी। लेनिन ने प्रस्ताव किया कि बोल्शेविकों की पार्टी **कम्युनिस्ट पार्टी** कहलाये, जो नाम मार्क्स और एंगेल्स ने अपनी पार्टी को दिया था। यह नाम वैज्ञानिक रूप से सही था, क्योंकि बोल्शेविक पार्टी का अन्तिम उद्देश्य कम्युनिज्म हासिल करना था। मनुष्य जाति पूँजीवाद से सीधी बढ़ कर समाजवाद की तरफ ही जा सकती है, यानी पैदावार के साधनों की मिलीजुली मिल्कियत और हरेक के काम के अनुसार उपज के बँटवारे की तरफ ही जा सकती है। लेनिन ने कहा कि हमारी पार्टी इससे और आगे देखती है। यह लाजिमी है कि समाजवाद क्रमशः कम्युनिज्म की मंजिल में प्रवेश करे, जिसके झण्डे पर यह उसूल लिखा हुआ है : 'हरेक से उसकी योग्यता के अनुसार, हरेक को उसकी जरूरत के अनुसार!'

अन्त में, लेनिन ने अपनी सैद्धान्तिक स्थापनाओं में माँग की कि एक नया इण्टरनेशनल, तीसरा कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल बनाया जाये, जो अवसरवाद और अन्धराष्ट्रवाद से मुक्त हो।

लेनिन की सैद्धान्तिक स्थापनाएँ देखकर, पूँजीपति, मेन्शेविक और समाजवादी-क्रान्तिकारी झल्लाकर चीख उठे।

मेन्शेविकों ने मजदूरों के नाम एक ऐलान निकाला, जिसकी शुरुआत इस चेतावनी से होती थी : 'क्रान्ति खतरे में है!' मेन्शेविकों की राय में, खतरा इस बात में था कि बोल्शेविकों ने मजदूर और सैनिक प्रतिनिधियों को सत्ता देने का नारा पेश किया था।

प्लेखानोव ने अपने अखबार **येदीम्स्त्वो (एकता)** में एक लेख लिखा, जिसमें लेनिन के भाषण को **'पागल का प्रलाप'** बतलाया। उसने मेन्शेविक चखाइत्जे के इन शब्दों को उद्धृत किया : "अकेला लेनिन क्रान्ति से बाहर रहेगा और हम अपने रास्ते पर बढ़ते ही जायेंगे।"

14 अप्रैल को, बोल्शेविकों का पेत्रोग्राद नगर-सम्मेलन हुआ। सम्मेलन ने लेनिन की सैद्धान्तिक स्थापनाओं को मंजूर किया और उन्हें अपने काम का आधार बनाया।

थोड़े ही समय में, पार्टी के स्थानीय संगठनों ने भी लेनिन की स्थापनाओं को मंजूर कर लिया।

कामेनेव, राइकोव और प्याताकोव जैसे कुछ व्यक्तियों को छोड़ कर, समूची पार्टी ने लेनिन की स्थापनाओं को बहुत ही सन्तोष के साथ स्वीकार किया।

2. अस्थायी सरकार के संकट की शुरुआत। बोल्शेविक पार्टी की अप्रैल कान्फ्रेंस।

जबकि बोल्शेविक क्रान्ति को और आगे बढ़ाने की तैयारी कर रहे थे, तब अस्थायी सरकार जनता के खिलाफ काम करती जा रही थी। 18 अप्रैल को, अस्थायी सरकार के वैदेशिक मंत्री मिल्यूकोव ने मित्र देशों को सूचित किया कि "तमाम जनता विश्वयुद्ध को तब तक

चालू रखना चाहती है जब तक कि निश्चित विजय न मिल जाये; और अस्थायी सरकार मित्र देशों के प्रति ली हुई अपनी जिम्मेदारी पूरी तरह से निभायेगी।"

इस तरह, अस्थायी सरकार ने जार की सन्धियों के प्रति अपनी वफादारी की कसम खाई और जनता का उतना खून बहाते जाने का वायदा किया जितना कि साम्राज्यवादियों को 'निश्चित विजय' के लिए दरकार हो।

19 अप्रैल को, मजदूरों और सैनिकों को इस बयान (मिल्यूकोव के नोट) का पता लगा। 20 अप्रैल को, बोल्शेविक पार्टी की केन्द्रीय समिति ने अस्थायी सरकार की साम्राज्यवादी नीति के खिलाफ विरोध प्रदर्शित करने के लिए कहा। 20-21 अप्रैल (3-4 मई) 1917 को, कम से कम एक लाख मजदूरों और सैनिकों ने मिल्यूकोव के नोट पर गुस्से में भर कर, प्रदर्शन में भाग लिया। उनके झण्डों पर ये माँगें लिखी हुई थीं : 'गुप्त सन्धियाँ प्रकाशित करो!'-'युद्ध मुर्दाबाद!'-सारी सत्ता सोवियतों को दो!' मजदूर और सैनिक शहर के छोर से केन्द्र की तरफ चले, जहाँ अस्थायी सरकार की बैठक हो रही थी। नेव्स्की प्रॉस्पैक्ट और दूसरी जगहों पर पूँजीवादी गुटों से टक्करें हुईं।

ज्यादा खुले हुए क्रान्ति-विरोधियों, जैसे कि जनरल कार्निलोव, ने माँग की कि प्रदर्शनकारियों पर गोली चलायी जाये और इसके लिए हुक्म भी दे दिया, लेकिन सैनिकों ने हुक्म मानने से इन्कार कर दिया।

प्रदर्शन के दौर में, पेत्रोग्राद पार्टी-कमेटी के सदस्यों के एक छोटे से गुट (बगदात्येव वगैरह) ने यह नारा दिया कि अस्थायी सरकार को तुरन्त खत्म कर दिया जाये। बोल्शेविक पार्टी की केन्द्रीय समिति ने इन 'वामपंथी' दुस्साहसवादियों के व्यवहार की तीव्र निन्दा की और इस नारे को असामयिक और गलत समझा, जो सोवियतों में बहुमत बनाने की पार्टी की कोशिशों में बाधा डालता था और क्रान्ति के शान्तिमय विकास की पार्टी की नीति के खिलाफ पड़ता था।

20-21 अप्रैल की घटनाओं ने दिखला दिया कि अस्थायी सरकार का संकट शुरू हो गया है।

मेन्शेविकों और समाजवादी-क्रान्तिकारियों की समझौतावादी नीति में यह पहली गम्भीर फूट पड़ी।

2 मई 1917 को, आम जनता के दबाव से मिल्यूकोव और गुचकोव अस्थायी सरकार से अलग कर दिये गये।

पहली **संयुक्त** अस्थायी सरकार बनायी गयी। पूँजीपतियों के प्रतिनिधियों के अलावा, इसमें मेन्शेविक (स्कोबेलेव और त्सेरेतली) और समाजवादी-क्रान्तिकारी (चरनोव, केरेन्स्की वगैरह) भी थे।

इस तरह, जिन मेन्शेविकों ने 1905 में ऐलान किया था कि सामाजिक-जनवादी पार्टी के प्रतिनिधियों के लिए **क्रान्तिकारी** अस्थायी सरकार में हिस्सा लेना अनुचित है, उन्होंने अब अपने प्रतिनिधियों का क्रान्ति-विरोधी अस्थायी सरकार में हिस्सा लेना उचित समझा।

इस तरह, मेन्शेविक और समाजवादी-क्रान्तिकारी क्रान्ति-विरोधी पूँजीपतियों के खेमे से जा मिले थे।

24 अप्रैल 1917 को, बोल्शेविक पार्टी की सातवीं (अप्रैल) कान्फ्रेंस शुरू हुई। पार्टी के जीवन में पहली बार खुलेआम बोल्शेविक कान्फ्रेंस हुई। पार्टी के इतिहास में, इस कान्फ्रेंस का महत्त्व पार्टी कांग्रेस के बराबर है।

अखिल रूसी अप्रैल कान्फ्रेंस ने दिखला दिया कि पार्टी प्रबल वेग से बढ़ रही है। कान्फ्रेंस में 133 प्रतिनिधि ऐसे आये जो वोट दे सकते थे, और 18 ऐसे थे जो बोल सकते थे मगर वोट न दे सकते थे। ये पार्टी के 80,000 संगठित सदस्यों के प्रतिनिधि थे।

युद्ध और क्रान्ति के सभी बुनियादी सवालों पर : मौजूदा हालत, युद्ध, अस्थायी सरकार, सोवियतें, खेती का मसला, राष्ट्रीयताओं का सवाल वगैरह पर कान्फ्रेंस ने विचार किया और पार्टी नीति निर्धारित की।

अपनी अप्रैल की स्थापनाओं में लेनिन ने जो सिद्धान्त पहले ही रखे थे, उन्हें अपनी रिपोर्ट में विस्तृत किया। पार्टी का काम था कि क्रान्ति की पहली मंजिल से दूसरी मंजिल की तरफ बढ़ना पूरा करे। पहली मंजिल ने "सत्ता पूँजीपतियों को सौंपी थी जबकि दूसरी मंजिल सर्वहारा वर्ग और किसानों के सबसे गरीब हिस्से के हाथ सत्ता सौंपेगी।" (लेनिन)। पार्टी को जिस रास्ते पर चलना था, वह समाजवादी क्रान्ति की तैयारी का रास्ता था। पार्टी का फौरी काम लेनिन ने इस नारे में पेश किया : "सारी सत्ता सोवियतों को दो!"

'सारी सत्ता सोवियतों को दो!'-इस नारे का मतलब था कि दुहरी सत्ता को खत्म करना जरूरी है, यानी अस्थायी सरकार और सोवियतों के बीच सत्ता के बँटवारे को खत्म करना जरूरी है, सोवियतों को **सारी** सत्ता सौंपना जरूरी है और हुकूमत की संस्थाओं से जमीन्दारों और पूँजीपतियों के प्रतिनिधियों को निकाल बाहर करना जरूरी है।

कान्फ्रेंस ने तय किया कि पार्टी का एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण काम अथक रूप से जनता को यह सच्चाई समझाना है कि "अस्थायी सरकार स्वभाव से ही जमीन्दारों और पूँजीपतियों की शासन-संस्था है", और जनता को यह समझाना भी जरूरी है कि समाजवादी-क्रान्तिकारियों और मेन्शेविकों की समझौतावादी नीति कितनी घातक है, जो जनता को झूठे वादों से धोखा दे रहे थे और उन पर साम्राज्यवादी युद्ध और क्रान्ति-विरोध के प्रहार करवा रहे थे।

कान्फ्रेंस में कामेनेव और राइकोव ने लेनिन का विरोध किया। मेन्शेविकों की बात दुहराते हुए, उन्होंने दावा किया कि रूस समाजवादी क्रान्ति के लिए तैयार नहीं है और पूँजीवादी जनतंत्र ही रूस में सम्भव है। उन्होंने पार्टी और मजदूर वर्ग से सिफारिश की कि वे अपना काम अस्थायी सरकार पर 'नियंत्रण' कायम रखने तक सीमित रखें। हकीकत में, मेन्शेविकों की तरह वे पूँजीवाद और पूँजीपतियों की सत्ता को बनाये रखना चाहते थे।

कान्फ्रेंस में जिनोवियेव ने भी लेनिन का विरोध किया। विरोध इस सवाल पर था कि बोल्शेविक पार्टी जिमरवाल्ड मित्र-मण्डल के साथ रहे, या उससे नाता तोड़ ले और नया इण्टरनेशनल बनाये। जैसा कि युद्धकाल ने दिखला दिया था, यह मित्र-मण्डल शान्ति के लिए प्रचार तो करता था लेकिन वास्तव में युद्ध के पूँजीवादी हिमायतियों से नाता नहीं तोड़ता था। इसलिए, लेनिन ने इस मित्र-मण्डल से तुरन्त ही अलग हो जाने पर जोर दिया और एक नया कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल बनाने पर जोर दिया। जिनोवियेव ने प्रस्ताव किया कि पार्टी जिमरवाल्ड मित्र-मण्डल में ही रहे। लेनिन ने जिनोवियेव के प्रस्ताव की जोरों से

निन्दा की और उसकी कार्यनीति को "घोर अवसरवादी और हानिकर" बतलाया।

अप्रैल कान्फ्रेंस ने खेती और राष्ट्रीयताओं के मसले पर भी विचार किया।

खेती के सवाल पर, लेनिन की रिपोर्ट के सिलसिले में कान्फ्रेंस ने जागीरी जमीन को जब्त करने के लिए बुलावा देते हुए एक प्रस्ताव मंजूर किया। जब्त की हुई जागीरी जमीन किसान-कमेटियों के हाथ में हो। प्रस्ताव में जमीन के राष्ट्रीकरण की भी माँग की गयी। बोल्शेविकों ने किसानों से जमीन के लिए लड़ने को कहा और उन्हें दिखाया कि बोल्शेविक पार्टी ही एक क्रान्तिकारी पार्टी है, एकमात्र पार्टी है जो दरअसल जमीन्दारों का तख्ता उलटने में किसानों को मदद दे रही थी।

राष्ट्रीयताओं के सवाल पर, कामरेड स्तालिन की रिपोर्ट बहुत ही महत्त्वपूर्ण थी। क्रान्ति के पहले ही जब साम्राज्यवादी युद्ध शुरू होने लगा था, लेनिन और स्तालिन ने राष्ट्रीयताओं के मसले पर बोल्शेविक पार्टी की नीति के बुनियादी उसूलों को विस्तृत रूप से पेश किया था। लेनिन और स्तालिन का कहना था कि सर्वहारा पार्टी को साम्राज्यवाद के खिलाफ पीड़ित जनता के राष्ट्रीय स्वाधीनता-आन्दोलन का समर्थन करना चाहिए। इसलिए, बोल्शेविक पार्टी राष्ट्रीयताओं के आत्मनिर्णय के अधिकार का इस हद तक समर्थन करती थी कि राष्ट्रीयताएँ, चाहें तो अलग भी हो जायें और अपने स्वतंत्र राज्य बना लें। कामरेड स्तालिन ने केन्द्रीय समिति की तरफ से कान्फ्रेंस में जो रिपोर्ट पेश की, उसमें इसी मत का समर्थन किया।

लेनिन और स्तालिन का विरोध प्याताकोव ने किया। युद्धकाल में ही, बुखारिन के साथ, उसने राष्ट्रीयताओं के मसले पर अन्धराष्ट्रवादी रुख अपनाया था। प्याताकोव और बुखारिन राष्ट्रीयताओं के आत्मनिर्णय के अधिकार का विरोध करते थे।

राष्ट्रीयताओं के मसले पर, पार्टी का रुख दृढ़ और सुसंगत था। राष्ट्रीयताओं की पूर्ण समानता के लिए और हर तरह के राष्ट्रीय उत्पीड़न और राष्ट्रीय विषमता को खत्म करने के लिए पार्टी ने संघर्ष किया। इस वजह से, पार्टी पीड़ित राष्ट्रीयताओं की सहानुभूति और उनका समर्थन हासिल कर सकी।

राष्ट्रीयताओं के मसले पर अप्रैल कान्फ्रेंस ने जो प्रस्ताव मंजूर किया, उसके शब्द ये थे :

> "निरंकुश सत्ता और बादशाही से विरासत के तौर पर मिली हुई, राष्ट्रीय उत्पीड़न की नीति का समर्थन जमीन्दार, पूँजीपति और निम्न-पूँजीवादी इसलिए करते हैं कि अपने वर्ग के विशेष अधिकारों को बनाये रखें और विभिन्न राष्ट्रीयताओं के मजदूरों में फूट डालें। आधुनिक साम्राज्यवाद, जो कमजोर राष्ट्रीयताओं को गुलाम बनाने के लिए अपनी कोशिशें बढ़ा देता है, एक नया तत्व है जो राष्ट्रीय उत्पीड़न को तेज कर देता है।
>
> "पूँजीवादी समाज में राष्ट्रीय उत्पीड़न का खात्मा जिस हद तक भी मुमकिन है, वह एक सुसंगत जनवादी गणतंत्र की व्यवस्था और ऐसे राज्य के शासन में ही मुमकिन है जो सभी राष्ट्रीयताओं और भाषाओं के लिए पूर्ण समानता की गारण्टी देता हो।

"रूस में जितनी भी राष्ट्रीयताएँ शामिल हैं, उनके आजादी से अलग होने और स्वतंत्र राज्य बनाने के अधिकार को मंजूर करना चाहिए। उनके इस अधिकार को नामंजूर करना या अमल में उसे लागू करने की गारण्टी देने के लिए उपाय न करना, दूसरों पर कब्जा करने और उन्हें अपने राज में मिलाने की नीति का समर्थन करने के बराबर है। सर्वहारा वर्ग राष्ट्रीयताओं के अलग होने के हक को माने, तभी विभिन्न राष्ट्रीयताओं के मजदूरों का सम्पूर्ण भाईचारा पक्का हो सकता है और वास्तविक जनवादी आधार पर राष्ट्रीयताएँ एक-दूसरे के नजदीक आ सकती हैं।...

"राष्ट्रीयताओं के अलग होने के हक को किसी खास समय किसी जाति के अलग होने की उपयोगिता से न उलझा देना चाहिए। सर्वहारा वर्ग की पार्टी को चाहिए कि इस दूसरे सवाल को हर बार स्वतंत्र रूप से समूचे सामाजिक विकास के हितों को और समाजवाद के लिए मजदूरों के वर्गसंघर्ष के हितों को ध्यान में रखकर हल करे।

"पार्टी माँग करती है कि बड़े पैमाने पर प्रादेशिक खुदमुख्तारी हो, ऊपर से निगरानी का अन्त हो, लाजिमी राजभाषा खत्म की जाये और खुदमुख्तार और स्वायत्त शासन के इलाकों की सीमाएँ स्थानीय जनता ही आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों, आबादी की राष्ट्रीय बनावट वगैरह का ध्यान रखते हुए तय करे।

"सर्वहारा वर्ग की पार्टी, जिसे 'राष्ट्रीय-सांस्कृतिक खुदमुख्तारी' कहा जाता है, उसे दृढ़ता से नामंजूर करती है। इसके मातहत, शिक्षा वगैरह का काम राज्य के अधिकार से अलग कर दिया जाता है और किसी तरह की राष्ट्रीय सभाओं के अधिकार में दे दिया जाता है। राष्ट्रीय-सांस्कृतिक खुदमुख्तारी एक ही जगह रहने वाले और एक ही धन्धे में काम करने वाले मजदूरों को उनकी विभिन्न 'राष्ट्रीय संस्कृतियों' के अनुसार नकली तौर पर बाँट देती है। दूसरे शब्दों में, वह मजदूरों और विभिन्न राष्ट्रीयताओं की पूँजीवादी संस्कृति के बन्धन मजबूत कर देती है, जबकि सामाजिक-जनवादियों का लक्ष्य दुनिया के मजदूरों की अन्तरराष्ट्रीय संस्कृति को विकसित करना है।

"पार्टी माँग करती है कि विधान में एक ऐसा बुनियादी कानून रखा जाये जो किसी भी राष्ट्रीयता को मिले हुए तमाम विशेषाधिकारों को खत्म कर दे और राष्ट्रीय अल्पसंख्यकों के अधिकारों पर सभी तरह के आघात बन्द कर दे।

"मजदूर वर्ग के हितों की माँग है कि रूस की सभी राष्ट्रीयताओं के मजदूरों के सामान्य सर्वहारा संगठन हों : राजनीतिक, ट्रेड यूनियन, सहयोग-समितियों की शिक्षा-संस्थाएँ वगैरह। इस तरह, विभिन्न राष्ट्रीयताओं के मजदूरों के सामान्य संगठन होने से ही सर्वहारा वर्ग अन्तरराष्ट्रीय पूँजी और पूँजीवादी राष्ट्रवाद के खिलाफ सफलतापूर्वक संघर्ष कर सकेगा।" (**सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) के प्रस्ताव**, रू.सं., खण्ड 1, पृष्ठ 239-40)।

इस तरह, अप्रैल कान्फ्रेंस ने कामेनेव, जिनोवियेव, प्याताकोव, बुखारिन, राइकोव और उनके थोड़े से अनुयायियों के अवसरवादी, लेनिनवाद-विरोधी दृष्टिकोण का पर्दाफाश किया।

सभी महत्त्वपूर्ण सवालों पर एक स्पष्ट रुख अपनाकर और ऐसा रास्ता अपनाकर

जिससे समाजवादी क्रान्ति की विजय हो, कान्फ्रेंस ने एक राय होकर लेनिन का समर्थन किया।

3. राजधानी में बोल्शेविक पार्टी की सफलता। अस्थायी सरकार की फौजों का असफल हमला। मजदूरों और सैनिकों के जुलाई प्रदर्शन का दमन।

अप्रैल कान्फ्रेंस के फैसलों के आधार पर, आम जनता को अपनी तरफ करने के लिए और लड़ाई के लिए उसे शिक्षित और संगठित करने के लिए पार्टी ने बड़े पैमाने पर काम चलाया। उस दौर में, पार्टी की नीति यह थी कि धीरज से बोल्शेविक नीति समझा कर और मेन्शेविकों तथा समाजवादी-क्रान्तिकारियों की समझौतावादी नीति का पर्दाफाश करके इन पार्टियों को जनता से अलग कर दिया जाये और सोवियतों में बहुमत कायम किया जाये।

सोवियतों में काम करने के साथ-साथ, बोल्शेविकों ने ट्रेड यूनियनों और मिल-कमेटियों में बड़े पैमाने पर काम जारी रखा।

खास तौर से, बोल्शेविकों का काम फौज में ज्यादा फैला हुआ था। हर जगह सैनिक संगठन बनने लगे। युद्ध के मोर्चे पर और उसके पीछे सैनिकों और जहाजियों का संगठन करने के लिए, बोल्शेविक अथक रूप से काम करते रहे। सैनिकों को सक्रिय क्रान्तिकारी बनाने में, युद्ध के मोर्चे पर बोल्शेविक अखबार **अकोपनाया प्राव्दा (खन्दकों का सत्य)** ने खास तौर से महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी।

बोल्शेविक आन्दोलन और प्रचार की वजह से, क्रान्ति के प्रारम्भिक महीनों में ही बहुत से शहरों में मजदूरों ने सोवियतों के, खास तौर से जिला सोवियतों के, नये चुनाव किये, मेन्शेविकों और समाजवादी-क्रान्तिकारियों को निकाल बाहर किया और उनके बदले बोल्शेविक पार्टी के अनुयायियों को चुना।

बोल्शेविकों के काम का सुन्दर फल निकला, खास तौर से पेत्रोग्राद में।

30 मई से 3 जून 1917 तक, मिल कमेटियों की पेत्रोग्राद कान्फ्रेंस हुई। इस कान्फ्रेंस में ही तीन-चौथाई प्रतिनिधि बोल्शेविकों के समर्थक थे। लगभग समूचे पेत्रोग्राद का सर्वहारा वर्ग इस बोल्शेविक नारे का समर्थन करता था-'सारी सत्ता सोवियतों को दो!'

3 (16) जून 1917 को, सोवियतों की पहली अखिल रूसी कांग्रेस हुई। सोवियतों में बोल्शेविक अब भी अल्पसंख्या में थे। 700 या 800 मेन्शेविकों, समाजवादी-क्रान्तिकारियों वगैरह के मुकाबले में, इस कांग्रेस में उनके 100 से कुछ ऊपर प्रतिनिधि थे।

सोवियतों की पहली कांग्रेस में, बोल्शेविकों ने पूँजीपतियों से समझौता करने के भयानक नतीजों पर लगातार जोर दिया और युद्ध के साम्राज्यवादी रूप का पर्दाफाश किया। कांग्रेस में लेनिन ने भाषण दिया, जिसमें उन्होंने दिखलाया कि बोल्शेविक नीति क्यों सही है। उन्होंने कहा कि सोवियतों की सरकार ही मेहनतकश जनता को रोटी, किसानों को जमीन दे सकती है, शान्ति हासिल कर सकती है और अराजकता से देश को उबार सकती है।

उन दिनों, पेत्रोगाद के मजदूर-जिलों में एक प्रदर्शन का संगठन करने के लिए और सोवियतों की कांग्रेस के सामने माँगें पेश करने के लिए आम जनता में आन्दोलन चलाया

जा रहा था। इस चिन्ता में कि हमारी आज्ञा के बिना मजदूर प्रदर्शन न करें और इस उम्मीद में कि आम जनता के क्रान्तिकारी भावों को अपने हित में इस्तेमाल करें, पेत्रोग्राद सोवियत की कार्यकारिणी समिति ने फैसला किया कि 18 जून (1 जुलाई) को प्रदर्शन कराया जाये। मेन्शेविकों और समाजवादी-क्रान्तिकारियों को आशा थी कि यह प्रदर्शन बोल्शेविक-विरोधी नारों के साथ होगा। बोल्शेविक पार्टी इस प्रदर्शन के लिए जोरदार तैयारियाँ करने लगी। कामरेड स्तालिन ने **प्राव्दा** में लिखा, "...हमारा यह काम है कि इस बात को पक्का कर दें कि 18 जून को पेत्रोग्राद में होने वाला प्रदर्शन हमारे क्रान्तिकारी नारों पर ही हो।"

क्रान्ति के शहीदों की समाधि पर, 18 जून 1917 का प्रदर्शन हुआ। यह प्रदर्शन बोल्शेविक पार्टी की शक्ति का सचमुच प्रदर्शन ही हुआ। उसने आम जनता की बढ़ती हुई क्रान्तिकारी भावना और बोल्शेविक पार्टी में उसका बढ़ता हुआ विश्वास जाहिर किया। अस्थायी सरकार में विश्वास प्रकट करने और युद्ध जारी रखने पर जोर देने वाले मेन्शेविकों और समाजवादी-क्रान्तिकारियों के नारे बोल्शेविक नारों के समुद्र में डूब गये। चार लाख प्रदर्शनकारी झण्डे लिये हुए थे, जिन पर ये नारे लिखे हुए थे : 'युद्ध मुर्दाबाद!', 'दसों पूँजीवादी मंत्री मुर्दाबाद!', 'सारी सत्ता सोवियतों को दो!'

मेन्शेविकों और समाजवादी-क्रान्तिकारियों की पूरी हार हुई। देश की राजधानी में अस्थायी सरकार की हार हुई।

फिर भी, अस्थायी सरकार को सोवियतों की पहली कांग्रेस का समर्थन मिला और उसने साम्राज्यवादी नीति चालू रखने का फैसला किया। उसी दिन 18 जून को, अंग्रेज और फ्रांसीसी साम्राज्यवादियों का हुक्म मानते हुए, अस्थायी सरकार ने युद्ध के मोर्चे पर सैनिकों को हमला करने के लिए हाँक दिया। पूँजीपति समझते थे कि क्रान्ति को खत्म करने का यही एक रास्ता है। अगर हमला सफल होता तो पूँजीपति उम्मीद करते थे कि सारी सत्ता अपने ही हाथ में ले लेंगे, सोवियतों को मैदान से बाहर निकाल देंगे और बोल्शेविकों को कुचल देंगे। और अगर हमला असफल हुआ, तो सारा दोष बोल्शेविकों के माथे मढ़ा जा सकेगा कि उन्होंने फौज को भीतर से तोड़ दिया है।

इसमें कोई सन्देह नहीं था कि हमला असफल होगा। और, वह असफल हुआ। सिपाही चूर हो चुके थे। हमला क्यों हो रहा है, वे नहीं समझते थे। अपने अफसरों में, जो उनके लिए गैर थे, उन्हें विश्वास नहीं था। गोला-बारूद और तोपों की कमी थी। इन सब बातों से, हमले का असफल होना पहले से ही तय था।

युद्ध के मोर्चे पर हमले और उसके बाद उसकी असफलता की खबर ने राजधानी को उत्तेजित कर दिया। मजदूरों और सैनिकों के गुस्से का पार न था। यह बात स्पष्ट हो गयी कि जब अस्थायी सरकार शान्ति की नीति का ऐलान कर रही थी, तब वह जनता की आँखों में धूल झोंक रही थी और यह बात भी जाहिर हो गयी कि अस्थायी सरकार साम्राज्यवादी युद्ध चालू रखना चाहती है। यह बात स्पष्ट हो गयी कि सोवियतों की अखिल रूसी केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति और पेत्रोग्राद सोवियत अस्थायी सरकार की मुजरिमाना हरकत को रोकना नहीं चाहती, या रोक नहीं सकती और खुद उसके पीछे घिसट रही है।

पेत्रोग्राद के मजदूरों और सैनिकों का क्रान्तिकारी गुस्सा उबल पड़ा। 3 (16) जुलाई को, पेत्रोग्राद के विबोर्ग जिले में अपने-आप प्रदर्शन शुरू हुए। सारे दिन प्रदर्शन जारी रहे। अलग-अलग प्रदर्शन मिल कर एक विशाल आम हथियारबन्द प्रदर्शन बन गये, जिनकी माँग थी कि सत्ता सोवियतों की हो। उस समय बोल्शेविक पार्टी हथियारबन्द कार्रवाई के खिलाफ थी, क्योंकि उसका विचार था कि क्रान्तिकारी संकट अभी पका नहीं है, राजधानी में विद्रोह का समर्थन करने के लिए फौज और सूबे अभी तैयार नहीं हैं और वक्त से पहले और अलग-अलग विद्रोह करने से क्रान्ति के हिरावल को कुचलने में क्रान्ति-विरोधियों को आसानी ही हो सकती है। लेकिन, जब यह जाहिर हो गया कि आम जनता को प्रदर्शन करने से रोकना नामुमकिन है तो पार्टी ने प्रदर्शन में हिस्सा लेने का फैसला किया, जिससे कि उसे शान्तिपूर्ण और संगठित रूप दे सके। बोल्शेविक पार्टी यह करने में कामयाब हुई। लाखों मर्द-औरत पेत्रोग्राद सोवियत और सोवियतों की अखिल रूसी केन्द्रीय कार्यकारिणी के हेडक्वार्टर की तरफ बढ़े, जहाँ उन्होंने माँग की कि सोवियतें सत्ता अपने हाथ में लें, साम्राज्यवादी पूँजीपतियों से नाता तोड़ दें और शान्ति की सक्रिय नीति पर चलें।

प्रदर्शन के शान्तिमय रूप के बावजूद, उसके खिलाफ प्रतिक्रियावादी दस्ते-अफसरों और कैडेटों के दस्ते-लाये गये। पेत्रोग्राद की सड़कें मजदूरों और सैनिकों के खून से लाल हो गयीं। मजदूरों का दमन करने के लिए, युद्ध के मोर्चे से फौज के सबसे जाहिल और क्रान्ति-विरोधी दस्ते बुलाये गये।

मजदूरों और सैनिकों के प्रदर्शन का दमन करने के बाद, पूँजीपतियों और गद्दार जनरलों के सहयोग से मेन्शेविकों और समाजवादी-क्रान्तिकारियों ने बोल्शेविक पार्टी पर हमला किया। **प्राव्दा** के प्रकाशन की जगह तोड़फोड़ डाली गयी। **प्राव्दा, सोल्दात्स्काया प्राव्दा (सैनिक सत्य)** और दूसरे कई बोल्शेविक अखबार बन्द कर दिये गये। वोईनोव नाम के मजदूर को सिर्फ **लिस्तोक प्राव्दी (प्राव्दा बुलेटिन)** बेचने पर कैडेटों ने सड़क पर मार डाला। रेड गार्ड दस्तों के हथियार छीनना शुरू हुआ। पेत्रोग्राद छावनी के क्रान्तिकारी दस्ते राजधानी से हटा दिये गये और मोर्चे पर भेज दिये गये। युद्ध के मोर्चे पर और उसके पीछे गिरफ्तारियाँ हुईं। 7 जुलाई को, लेनिन को पकड़ने के लिए वारण्ट जारी हुआ। बोल्शेविक पार्टी के कई प्रमुख सदस्य गिरफ्तार कर लिये गये। **त्रूद** छापाखाना, जहाँ बोल्शेविक अखबार छपते थे, नष्ट कर दिया गया। पेत्रोग्राद की सेशन अदालत के सरकारी वकील (प्रोक्यूरेटर) ने ऐलान किया कि लेनिन और दूसरे कई बोल्शेविकों पर 'राजद्रोह' और सशस्त्र विद्रोह के संगठन का जुर्म लगाया जा रहा है। लेनिन के खिलाफ जनरल देनीकिन के हेडक्वार्टर में अभियोग रचा गया और उसका आधार जासूसों और उकसावा पैदा करने वाले दलालों की गवाही था।

इस तरह, संयुक्त अस्थायी सरकार-जिसमें त्सेरेतेली, स्कोबेलेव, केरेन्स्की और चर्नोव जैसे मेन्शेविकों और समाजवादी-क्रान्तिकारियों के प्रमुख प्रतिनिधि शामिल थे-ठेठ साम्राज्यवाद और क्रान्ति-विरोध के नीच स्तर तक उतर आयी। शान्ति की नीति के बदले, उसने युद्ध चालू रखने की नीति अपनायी। जनता के जनवादी अधिकारों की रक्षा करने के बदले, उसने इन अधिकारों को खत्म करने और हथियारों की ताकत से मजदूरों और सैनिकों का

दमन करने की नीति अपनायी।

पूँजीपतियों के प्रतिनिधि गुचकोव और मिल्यूकोव जो कुछ करने में हिचकिचाते थे, उसे केरेन्स्की और त्सेरेतेली, चर्नोव और स्कोबेलेव जैसे 'समाजवादियों' ने कर दिखाया।

दुहरी सत्ता खत्म हो गयी।

वह खत्म हुई पूँजीपतियों के हित में, क्योंकि सारी सत्ता अस्थायी सरकार के हाथ में आ गयी और सोवियतें, अपने समाजवादी-क्रान्तिकारी और मेन्शेविक नेताओं के साथ, अस्थायी सरकार का पुछल्ला बन गयी थीं।

क्रान्ति का शान्तिमय दौर खत्म हो चुका था, क्योंकि अब कार्यक्रम में संगीन शामिल कर ली गयी थी।

बदली हुई हालत को ध्यान में रखते हुए, बोल्शेविक पार्टी ने अपनी कार्यनीति बदलने का फैसला किया। पार्टी अण्डरग्राउण्ड हो गयी। अपने नेता लेनिन के लिए उसने एक हिफाजत की जगह छिपने के लिए तय की और इस उद्देश्य से विद्रोह की तैयारी में लग गयी कि पूँजीपतियों की सत्ता को हथियारों की ताकत से खत्म किया जाये और सोवियतों की सत्ता कायम की जाये।

4. बोल्शेविक पार्टी सशस्त्र विद्रोह की तैयारी का रास्ता अपनाती है। छठी पार्टी कांग्रेस।

बोल्शेविक पार्टी की छठीं कांग्रेस पेत्रोग्राद में उस समय हुई जब कि पूँजीवादी और निम्न-पूँजीवादी अखबारों में बोल्शेविकों के खिलाफ धुआँधार प्रचार हो रहा था। पाँचवीं (लन्दन) कांग्रेस के दस बरस बाद और बोल्शेविकों की प्राग कान्फ्रेंस के पाँच साल बाद, यह कांग्रेस हो रही थी। कांग्रेस गुप्त रूप से हुई और 26 जुलाई से 3 अगस्त 1917 तक उसका अधिवेशन जारी रहा। अखबारों में इतना ही छपा कि कांग्रेस होगी, कहाँ होगी, यह गुप्त रखा गया। पहला अधिवेशन विबोर्ग जिले में हुआ, बाद के अधिवेशन नारवा फाटक के पास एक स्कूल में हुए, जहाँ पर अब संस्कृति गृह है। पूँजीवादी अखबारों ने माँग की कि प्रतिनिधियों को गिरफ्तार कर लिया जाये। बदहवास जासूस शहर की खाक छानते रहे कि कांग्रेस कहाँ हो रही है, लेकिन सब बेकार।

और इस तरह, जारशाही के खात्मे के पाँच महीने बाद ही बोल्शेविकों को गुप्त रूप से मिलने के लिए मजबूर होना पड़ा जबकि सर्वहारा पार्टी के नेता लेनिन को छिपने के लिए विवश होना पड़ा और उन्होंने राजलिव स्टेशन के पास एक झोपड़ी में आसरा ढूँढ़ा।

अस्थायी सरकार के कुत्ते उन्हें हर तरफ खोजने में लगे हुए थे और इसलिए लेनिन कांग्रेस में शामिल नहीं हो सके। लेकिन, अपने छिपने की जगह से अपने नजदीकी साथी और शिष्य, जो पेत्रोग्राद में थे, स्तालिन, स्वेर्दलोव, मोलोतोव और ओर्जोनिकित्से के जरिये वह उसके काम का पथ-प्रदर्शन करते रहे।

कांग्रेस में 157 वोट देने वाले प्रतिनिधि थे, और 128 बोलने वाले, लेकिन वोट न देने वाले प्रतिनिधि थे। उस समय, पार्टी के लगभग 2 लाख 40 हजार सदस्य थे। 3 जुलाई को,

यानी इसके पहले कि मजदूर प्रदर्शन भंग किया गया, जबकि बोल्शेविक अभी कानूनी तौर से काम कर रहे थे, पार्टी के 41 प्रकाशन थे, जिनमें 29 रूसी में थे और 12 दूसरी भाषाओं में।

जुलाई के दिनों में, बोल्शेविकों और मजदूर वर्ग पर जो दमन हुआ, उससे पार्टी का असर कम होना तो दूर, और बढ़ा। सूबों से आये हुए प्रतिनिधियों ने बहुत से तथ्य दिये, जिनसे पता चलता था कि झुण्ड के झुण्ड मजदूर और सैनिक मेन्शेविकों और समाजवादी-क्रान्तिकारियों से टूटने लगे हैं और नफरत से उन्हें 'सामाजिक जेलर' कहने लगे हैं। मेन्शेविक और समाजवादी-क्रान्तिकारी पार्टियों के मजदूर और सैनिक गुस्से और नफरत से अपनी सदस्यता के कार्ड फाड़ कर फेंक रहे थे और वे बोल्शेविक पार्टी में भर्ती होने के लिए अर्जियाँ देने लगे थे।

कांग्रेस में जिन मुख्य बातों पर बहस हुई, वह केन्द्रीय समिति की राजनीतिक रिपोर्ट थी और राजनीतिक परिस्थिति थी। इन दोनों सवालों पर, कामरेड स्तालिन ने रिपोर्ट पेश की। उन्होंने बहुत ही स्पष्टता से दिखाया कि क्रान्ति को दबाने के लिए पूँजीपतियों की तमाम कोशिशों के बावजूद वह बढ़ रही है और विकसित हो रही है। उन्होंने बताया कि क्रान्ति ने फौरी कार्यक्रम के लिए ये काम पेश कर दिये हैं : उपज की पैदावार और बँटवारे पर मजदूरों का नियंत्रण कायम किया जाये, जमीन किसानों को दी जाये और सत्ता पूँजीपतियों से लेकर मजदूर वर्ग और गरीब किसानों को दी जाये। उन्होंने कहा कि क्रान्ति समाजवादी क्रान्ति का रूप ले रही है।

देश की राजनीतिक हालत जुलाई के दिनों के बाद बुनियादी तौर से बदल गयी थी। दुहरी सत्ता का खात्मा हो चुका था। समाजवादी-क्रान्तिकारियों और मेन्शेविकों द्वारा संचालित सोवियतों ने पूरी सत्ता लेना नामंजूर कर दिया था और इसलिए, अब सारी सत्ता उनके हाथ से निकल गयी थी। अब सत्ता पूँजीवादी अस्थायी सरकार के हाथ में केन्द्रित थी और यह सरकार क्रान्ति को निःशस्त्र करती जा रही थी, उसके संगठनों को तोड़ती और बोल्शेविक पार्टी का नाश करती जा रही थी। क्रान्ति के शान्तिमय विकास की सम्भावना खत्म हो चुकी थी। कामरेड स्तालिन ने कहा कि सिर्फ एक चीज बाकी रह गयी है और वह यह कि अस्थायी सरकार का तख्ता उलट कर बल के बूते पर सत्ता छीनो। और गरीब किसानों के सहयोग से, सर्वहारा वर्ग ही बल के बूते पर सत्ता छीन सकता है।

जिन सोवियतों पर मेन्शेविक और समाजवादी-क्रान्तिकारी अब भी हावी थे, वे पूँजीपतियों के खेमे में पहुँच गयी थीं और उस समय की हालत में उनसे यही उम्मीद की जा सकती थी कि वे अस्थायी सरकार के पुछल्ले का काम करेंगी। कामरेड स्तालिन ने कहा कि अब जुलाई के दिनों के बाद 'सारी सत्ता सोवियतों को दो!'-यह नारा वापस लेना था। लेकिन, अस्थायी तौर से इस नारे को वापस लेने का मतलब यह जरा भी नहीं था कि सोवियतों की सत्ता के लिए संघर्ष छोड़ दिया जाये। सवाल क्रान्तिकारी संघर्ष की संस्थाओं के रूप में आम सोवियतों का नहीं था, बल्कि सिर्फ मौजूदा सोवियतों का था, उन सोवियतों का जिन पर मेन्शेविक और समाजवादी-क्रान्तिकारी हावी थे।

कामरेड स्तालिन ने कहा :

"क्रान्ति का शान्तिमय दौर खत्म हो चुका है; एक गैर शान्तिमय दौर, टक्करों और विस्फोटों का दौर शुरू हुआ है।" (**रू.सा.ज.म.पा. की छठी कांग्रेस की शब्दशः रिपोर्ट, रू.सं., पृष्ठ 111**)

पार्टी सशस्त्र विद्रोह की तरफ बढ़ रही थी।

पार्टी में कुछ ऐसे लोग थे जो पूँजीवादी असर जाहिर करते हुए समाजवादी क्रान्ति का रास्ता अपनाने का विरोध कर रहे थे।

त्रात्स्कीपंथी प्रेओब्राजेन्स्की ने प्रस्ताव रखा कि सत्ता हासिल करने के मसौदे में यह कहा जाये कि पश्चिम में सर्वहारा क्रान्ति होने पर ही देश समाजवाद की तरफ संचालित होगा।

कामरेड स्तालिन ने इस त्रात्स्कीपंथी प्रस्ताव का विरोध किया।

उन्होंने कहा :

"यह बात सम्भावना से परे नहीं है कि रूस ही वह देश होगा जो समाजवाद के लिए रास्ता बनायेगा।... हमें यह घिसा-पिटा विचार छोड़ देना चाहिए कि यूरोप ही हमें रास्ता दिखा सकता है। एक कठमुल्लेपन का मार्क्सवाद होता है और दूसरा रचनात्मक मार्क्सवाद। मैं दूसरे का समर्थक हूँ।" (उप., पृष्ठ 233-34)।

बुखारिन का रुख त्रात्स्कीवादी था। उसने कहा कि किसान युद्ध का समर्थन करते हैं, उनकी गुटबन्दी पूँजीपतियों से है और वे मजदूर वर्ग का साथ न देंगे।

बुखारिन को मुँहतोड़ जवाब देते हुए, कामरेड स्तालिन ने दिखाया कि किसान तरह-तरह के हैं। धनी किसान हैं जो साम्राज्यवादी पूँजीपतियों का समर्थन करते हैं, और गरीब किसान हैं जो मजदूर वर्ग से मित्रता करना चाहते हैं और क्रान्ति की जीत के लिए लड़ाई में उसका समर्थन करेंगे।

कांग्रेस ने प्रेओब्राजेन्स्की और बुखारिन के संशोधन रद्द कर दिये और कामरेड स्तालिन के पेश किये हुए प्रस्ताव को मंजूर किया।

कांग्रेस ने बोल्शेविकों के आर्थिक कार्यक्रम पर विचार किया, और उसे मंजूर किया। उसकी मुख्य बातें ये थीं : जागीरी जमीन की जब्ती और तमाम जमीन का राष्ट्रीकरण, बैंकों का राष्ट्रीयकरण, बड़े पैमाने के उद्योग-धन्धों का राष्ट्रीयकरण और पैदावार तथा वितरण पर मजदूरों का नियंत्रण।

कांग्रेस ने पैदावार पर मजदूरों के नियंत्रण के लिए संघर्ष करने के महत्त्व पर जोर दिया। इस नियंत्रण को आगे चलकर बड़े कल-कारखानों के राष्ट्रीयकरण के दौर में महत्त्वपूर्ण पार्ट अदा करना था।

छठी कांग्रेस ने अपने सभी फैसलों में समाजवादी क्रान्ति की जीत के लिए एक शर्त के रूप में सर्वहारा और गरीब किसानों के सहयोग के लेनिन के सिद्धान्त पर खास तौर से जोर दिया।

कांग्रेस ने इस मेन्शेविक मत की निन्दा की कि ट्रेड यूनियन तटस्थ रहें। उसने बताया कि रूस के मजदूर वर्ग के सामने जो युगान्तरकारी कार्य हैं वे तभी पूरे हो सकते हैं जब

ट्रेड यूनियन बोल्शेविक पार्टी का राजनीतिक नेतृत्व मानने वाले लड़ाकू वर्ग-संगठन बने रहें।

कांग्रेस ने नौजवान सभाओं पर, जो उस समय अकसर अपने-आप बन जाया करती थीं, एक प्रस्ताव मंजूर किया। आगे चलकर पार्टी की कोशिशों के फलस्वरूप, ये तरुण संगठन निश्चित रूप से पार्टी के साथ हो गये और उसकी (रिजर्व) शक्ति बन गये।

कांग्रेस ने इस बात पर विचार किया कि लेनिन मुकदमे में हाजिर हों या न हों। कामेनेव, राइकोव, त्रात्स्की वगैरह कांग्रेस से पहले भी कहते थे कि लेनिन को क्रान्ति-विरोधी अदालत के सामने आना चाहिए। कामरेड स्तालिन मुकदमे में लेनिन के हाजिर होने का बहुत जोरों से विरोध करते थे। छठी कांग्रेस का मत भी यही था, क्योंकि उसका विचार था कि यह मुकदमा नहीं होगा बल्कि जानमारी होगी। कांग्रेस को जरा भी शक न था कि पूँजीपति सिर्फ एक चीज चाहते हैं और वह यह कि पूँजीपतियों के सबसे खतरनाक दुश्मन-लेनिन-को जान से मार डाला जाये। कांग्रेस ने पूँजीपतियों द्वारा क्रान्तिकारी सर्वहारा के पुलिस-दमन का विरोध किया और लेनिन का अभिवादन करते हुए एक सन्देश भेजा।

छठी कांग्रेस ने नयी पार्टी नियमावली मंजूर की। इस नियमावली में कहा गया था कि सभी पार्टी संगठन **जनवादी केन्द्रीयता** के उसूल पर बनाये जायेंगे।

इसका मतलब यह था :

1. ऊपर से लेकर नीचे तक, पार्टी की सभी संचालक समितियाँ चुनी जायेंगी;

2. पार्टी संस्थाएँ अपने-अपने पार्टी-संगठनों को समय-समय पर अपनी कार्रवाई की रिपोर्टें देंगी;

3. पार्टी में कठोर अनुशासन होगा और अल्पमत बहुमत के मातहत रहेगा;

4. ऊँची समितियों के सभी फैसले नीचे की समितियों और सभी पार्टी सदस्यों के लिए कतई मान्य होंगे।

पार्टी नियमावली में कहा गया था कि दो पार्टी सदस्यों की सिफारिश और स्थानीय संगठन के आम सदस्यों की सभा की मंजूरी पर पार्टी में नये सदस्य स्थानीय पार्टी-संगठनों के जरिये भर्ती किये जायेंगे।

छठी कांग्रेस ने **मेजरायोन्त्सी** और उसके नेता त्रात्स्की को पार्टी में भर्ती किया। यह एक छोटा सा गुट था, जो पेत्रोग्राद में सन् 1913 से था और जिसमें त्रात्स्की पंथी मेन्शेविक और कुछ पहले के बोल्शेविक थे जो पार्टी से अलग हो गये थे। युद्धकाल में **मेजरायोन्त्सी** एक मध्यमार्गी संगठन था। वे बोल्शेविकों से लड़ते थे, लेकिन बहुत सी बातों में मेन्शेविकों से असहमत थे और इस तरह उनकी स्थिति बीच की, मध्यमार्गी, ढुलमुलपन की थी। छठी कांग्रेस में **मेजरायोन्त्सी** ने ऐलान किया कि वे सभी बातों पर बोल्शेविकों से सहमत हैं और उन्होंने पार्टी में दाखिल होने की प्रार्थना की। कांग्रेस ने इस उम्मीद में उनकी प्रार्थना मंजूर की कि समय बीतने पर वे सच्चे बोल्शेविक बन जायेंगे। **मेजरायोनत्सी** में से कुछ, जैसे वोलोदार्स्की और ऊरीत्स्की, दरअसल बोल्शेविक बन गये। जहाँ तक त्रात्स्की और उसके कुछ नजदीकी दोस्तों का सवाल था, ये लोग, जैसा कि आगे चलकर मालूम हुआ, पार्टी के हित में काम करने के लिए नहीं बल्कि उसे भीतर से तोड़ने और नष्ट करने के लिए पार्टी में शामिल हुए थे।

छठी कांग्रेस के सभी फैसलों का उद्देश्य यह था कि सर्वहारा वर्ग और सबसे गरीब किसानों को सशस्त्र विद्रोह के लिए तैयार किया जाये। छठी कांग्रेस ने पार्टी को सशस्त्र विद्रोह के लिए, समाजवादी क्रान्ति के लिए आगे बढ़ाया।

कांग्रेस ने एक पार्टी घोषणापत्र निकाला, जिसमें पूँजीपतियों से निर्णायक युद्ध करने के लिए मजदूरों, सैनिकों और किसानों से अपनी शक्ति बटोरने के लिये कहा गया। उसके अन्तिम शब्द ये थे :

> "इसलिए, साथियो, नयी लड़ाइयों के लिए तैयारी करो। दृढ़ता से, बहादुरी से और शान्ति से, बिना उकसावे में आये हुए अपनी शक्ति बटोरो और अपनी लड़ाकू कतार बनाओ! मजदूरो और सिपाहियो, पार्टी के झण्डे के नीचे इकट्ठे हो! गाँव के सताये हुए लोगो, हमारे झण्डे के नीचे इकट्ठे हो!"

5. क्रान्ति के खिलाफ जनरल कार्निलोव का षड्यंत्र। षड्यंत्र का दमन। पेत्रोग्राद और मास्को सोवियतों का बोल्शेविकों से जा मिलना।

समूची सत्ता हथियाकर, पूँजीपतियों ने अब यह कोशिश शुरू की कि कमजोर पड़ चुकी सोवियतों को कुचल दें और खुला क्रान्ति-विरोधी अधिनायकत्व कायम करें। करोड़पति रियाबुशिन्स्की ने बदतमीजी से ऐलान किया कि परिस्थिति से निकलने का एक ही चारा है कि "अकाल और तबाही का फौलादी पंजा जनता के झूठे दोस्तों-जनवादी सोवियतों और कमेटियों-का गला दबा दे।" युद्ध के मौके पर कोर्ट मार्शल करके, सैनिकों से भयानक बदला लिया जाता था और झुण्ड के झुण्ड लोगों को मौत की सजा दी जाती थी। 3 अगस्त 1917 को, प्रधान सेनापति जनरल कार्निलोव ने माँग की कि युद्ध के मोर्चे के पीछे भी मौत की सजा चालू की जाये।

12 अगस्त को, मास्को के बड़े नाटकघर में अस्थायी सरकार की बुलाई हुई राज्य समिति की बैठक शुरू हुई। उसका उद्देश्य पूँजीपतियों और जमीन्दारों की शक्ति को बटोरना था। उसमें ज्यादातर जमीन्दारों के प्रतिनिधि, पूँजीपति, जनरल, अफसर और कज्जाक आये थे। सोवियतों के प्रतिनिधि मेन्शेविक और समाजवादी-क्रान्तिकारी थे।

राज्य समिति को बुलाने के विरोध में, बोल्शेविकों ने उसकी बैठक के पहले दिन मास्को में आम हड़ताल का बुलावा दिया। हड़ताल में अधिकांश मजदूर शामिल हुए। उसके साथ ही, और कई शहरों में भी हड़तालें हुईं।

समाजवादी-क्रान्तिकारी केरेन्स्की ने राज्य समिति में डींग हाँकते हुए धमकी दी कि क्रान्तिकारी आन्दोलन की हर कोशिश, जिसमें जमीन्दारों की जमीन पर किसानों द्वारा अनधिकार कब्जा करने की कोशिश की थी, 'लोहे और खून' से दबा दी जायेगी।

क्रान्ति-विरोधी जनरल कार्निलोव ने सीधे-सीधे माँग की कि 'कमेटी और सोवियतें खत्म कर दी जायें।'

बैंक-साहूकार, सौदागर और कारखानेदार कार्निलोव के जनरल हेडक्वार्टर पर इकट्ठे होने लगे और उसे धन और मदद देने का वायदा करने लगे।

'मित्र-देशों', ब्रिटेन और फ्रांस के प्रतिनिधि भी जनरल कार्निलोव के पास आये और माँग की कि क्रान्ति के खिलाफ कदम उठाने में देर न की जाये।

क्रान्ति के खिलाफ जनरल कार्निलोव का षड्यंत्र पक रहा था।

कार्निलोव ने खुल्लमखुल्ला अपनी तैयारी की। लोगों का ध्यान बँटाने के लिए, षड्यंत्रकारियों ने यह अफवाह फैला दी कि बोल्शेविक विद्रोह की तैयारी कर रहे हैं जो पेत्रोग्राद में 27 अगस्त को-क्रान्ति के छह महीनों के बाद-होगा। केरेन्स्की के नेतृत्व में, अस्थायी सरकार ने खूँख्वार तरीके से बोल्शेविकों पर हमला किया और सर्वहारा पार्टी के खिलाफ अपना आतंक और भी फैलाया। इसके साथ ही, जनरल कार्निलोव ने फौज इकट्ठी की, जिससे कि उसे पेत्रोग्राद के खिलाफ ले जा सके, सोवियतें खत्म करे और एक फौजी तानाशाही कायम करे।

अपने इस क्रान्ति-विरोधी काम के लिए, कार्निलोव पहले ही केरेन्स्की से समझौता कर चुका था। लेकिन जैसे ही कार्निलोव का काम शुरू हुआ, वैसे ही केरेन्स्की ने अचानक पैंतरा बदला और अपने दोस्त से अलग हो गया। केरेन्स्की को डर लगा कि आम जनता कार्निलोवपंथियों के खिलाफ उठ खड़ी होगी और उन्हें कुचल देगी, साथ ही वह केरेन्स्की की पूँजीवादी सरकार का भी सफाया कर देगी, अगर उसने तुरन्त ही अपने को कार्निलोव-काण्ड से अलग न किया।

25 अगस्त को, कार्निलोव ने जनरल क्रिमोव की कमान में तीसरे घुड़सवार दस्ते को पेत्रोग्राद के खिलाफ भेजा और ऐलान किया कि वह 'पितृभूमि की रक्षा' करना चाहते हैं। कार्निलोव-विद्रोह देख कर, बोल्शेविक पार्टी की केन्द्रीय समिति ने मजदूरों और सैनिकों को बुलावा दिया कि वे क्रान्ति-विरोध का सक्रिय रूप से हथियारबन्द विरोध करें। मजदूर जल्दी-जल्दी हथियारबन्द होने लगे और मुकाबले की तैयारी में लग गये। उन दिनों, रेड गार्ड दस्ते भारी तादाद में बने। ट्रेड यूनियनों ने अपने सदस्यों को बटोरा। पेत्रोग्राद के क्रान्तिकारी फौजी दस्ते लड़ाई के लिए तैयार रखे गये। पेत्रोग्राद के चारों तरफ खाइयाँ खोद दी गयीं, कँटीले तारों की जाली लगा दी गयी और शहर की तरफ आने वाली रेलों की पटरियाँ उखाड़ डाली गयीं। शहर की रक्षा करने के लिए, कई हजार हथियारबन्द जहाजी क्रोन्स्तात से आये। पेत्रोग्राद की तरफ बढ़ने वाली 'खूँख्वार पल्टन' के पास प्रतिनिधि भेजे गये। 'खूँख्वार पल्टन' में काकेशस के पहाड़ी लोग थे। जब प्रतिनिधियों ने कार्निलोव की कार्रवाई का उद्देश्य उन्हें समझाया, तो उन्होंने आगे बढ़ने से इन्कार कर दिया। कार्निलोव के दूसरे दस्तों के लिए भी प्रचारक भेजे गये। जहाँ भी खतरा था, कार्निलोव से लड़ने के लिए क्रान्तिकारी समितियाँ और हेड क्वार्टर बनाये गये।

उन दिनों, अपनी जान के लिए बुरी तरह डरे हुए समाजवादी-क्रान्तिकारी और मेन्शेविक नेता, जिनमें केरेन्स्की भी था, बोल्शेविकों से जान बचाने की प्रार्थना करने लगे। उन्हें अच्छी तरह मालूम था कि राजधानी में बोल्शेविक ही एक समर्थ शक्ति हैं, जो कार्निलोव को हरा सकते हैं।

लेकिन, कार्निलोव-विद्रोह को कुचलने के लिए आम जनता को बटोरते हुए, बोल्शेविकों ने केरेन्स्की हुकूमत के खिलाफ अपना संघर्ष बन्द नहीं किया। उन्होंने आम जनता के

सामने केरेन्स्की सरकार, मेन्शेविकों और समाजवादी-क्रान्तिकारियों का पर्दाफाश किया और बताया कि दरअसल उनकी समूची नीति कार्निलोव के क्रान्ति-विरोधी षड्यंत्र की मदद कर रही है।

इन उपायों का फल यह हुआ कि कार्निलोव-विद्रोह दबा दिया गया। जनरल क्रिमोव ने आत्महत्या कर ली। कार्निलोव और उसके साथी षड्यंत्रकारी देनीकिन और लुकोम्स्की गिरफ्तार कर लिये गये। (लेकिन, केरेन्स्की ने बहुत जल्द ही उन्हें छुड़वा दिया)।

कार्निलोव-विद्रोह की हार ने पल भर में दिखला दिया कि क्रान्ति और क्रान्ति-विरोध की ताकत कितनी-कितनी है। उसने दिखला दिया कि सारे क्रान्ति-विरोधी खेमे की, जनरलों और संवैधानिक जनवादी पार्टी से लेकर पूँजीपतियों के जाल में फँसने वाले मेन्शेविकों और समाजवादी-क्रान्तिकारियों तक का अन्त नजदीक आ पहुँचा है। यह बात स्पष्ट हो गयी कि लड़ाई के असह्य बोझ को बनाये रखने की नीति से और लम्बी लड़ाई से पैदा होने वाली आर्थिक अव्यवस्था की वजह से, आम जनता में मेन्शेविकों और समाजवादी-क्रान्तिकारियों का असर पूरी तरह कमजोर पड़ चुका है।

कार्निलोव-विद्रोह की हार ने यह भी दिखला दिया कि बोल्शेविक पार्टी क्रान्ति की निर्णायक शक्ति बन चुकी है और क्रान्ति-विरोध की कोई भी कोशिश खत्म कर सकती है। हमारी पार्टी अभी शासक पार्टी नहीं थी, लेकिन कार्निलाव के दिनों में उसने सच्ची हुकूमत करने वाली ताकत की तरह काम किया। मजदूर और सैनिक बिना हिचकिचाहट के उसके निर्देश पालन करते थे।

अन्त में, कार्निलोव-विद्रोह की हार ने दिखला दिया कि ऊपर से मुर्दा दीखने वाली सोवियतों में दरअसल क्रान्तिकारी प्रतिरोध करने की भारी शक्ति छिपी हुई है। इसमें कोई शक नहीं था कि सोवियतों और उनकी क्रान्तिकारी कमेटियों ने ही कार्निलोव के दस्तों का रास्ता रोक लिया था और उनकी कमर तोड़ दी थी।

कार्निलोव के खिलाफ संघर्ष ने मजदूर और सैनिक प्रतिनिधियों की मुरझाती हुई सोवियतों में नयी जान डाल दी। उसने उन्हें समझौते की नीति के असर से मुक्त किया। वह उन्हें क्रान्तिकारी संघर्ष की खुली राह पर ले आया और उसने उन्हें, बोल्शेविक पार्टी की तरफ मोड़ दिया।

सोवियतों में बोल्शेविकों का असर पहले से भी ज्यादा बढ़ गया।

देहात के जिलों में भी उनका असर तेजी से बढ़ा।

कार्निलोव-विद्रोह ने आम किसान जनता के सामने यह बात साफ कर दी कि अगर जमीन्दार और जनरल बोल्शेविकों और सोवियतों को कुचल पाये, तो उसके बाद वे किसानों पर ही हमला करेंगे। इसलिए, गरीब किसान बोल्शेविकों के चारों तरफ और नजदीक सिमटने लगे। जहाँ तक मध्यम किसानों का सम्बन्ध था, उनके ढुलमुलपन ने अप्रैल से अगस्त 1917 तक के दौर में क्रान्ति के विकास को रोका था। कार्निलोव की हार के बाद, वे बोल्शेविक पार्टी की तरफ निश्चित रूप से झुकने लगे और गरीब किसानों से एका करने लगे। आम किसान जनता यह महसूस करने लगी थी कि बोल्शेविक पार्टी उसे युद्ध से मुक्त कर सकती है और यही पार्टी जमीन्दारों को कुचल सकती है और किसानों

को जमीन देने के लिए तैयार है। सितम्बर और अक्टूबर 1917 के महीनों में, किसानों द्वारा जागीरी जमीन पर अधिकार करने की घटनाएँ बेहद बढ़ गयीं। बिना पूछे हुए, जमीन्दारों के खेत जोतना आम हो गया। किसानों ने क्रान्ति की राह पकड़ ली थी और पुचकारने से या सजा देने वाले दस्ते भेजने से अब वे रुक नहीं सकते थे।

क्रान्ति का ज्वार उठ रहा था।

सोवियतों के पुनर्जीवन का दौर आया, उनकी बनावट बदलने, उनके बोल्शेवीकरण का दौर आया। कारखानों, मिलों और फौजी दस्तों में नये चुनाव हुए और उन्होंने मेन्शेविकों और समाजवादी-क्रान्तिकारियों की जगह सोवियतों में बोल्शेविक पार्टी के प्रतिनिधि भेजे। 31 अगस्त को, कार्निलोव पर जीत हासिल करने के दूसरे दिन, पेत्रोग्राद-सोवियत ने बोल्शेविक नीति मंजूर की। पेत्रोग्राद-सोवियत के पुराने मेन्शेविक और समाजवादी-क्रान्तिकारी सभापति मण्डल ने, जिसका अग्रणी चखाइत्से था, इस्तीफा दे दिया और इस तरह, बोल्शेविकों के लिए रास्ता साफ कर दिया। 5 सितम्बर को, मजदूर प्रतिनिधियों की मास्को-सोवियत बोल्शेविकों की तरफ आ गयी। मास्को-सोवियत के समाजवादी-क्रान्तिकारी और मेन्शेविक सभापति-मण्डल ने भी इस्तीफा दे दिया और बोल्शेविकों के लिए रास्ता साफ कर दिया।

इसका मतलब यह था कि सफल विद्रोह के लिए मुख्य शर्तें पूरी हो चुकी थीं।

'सारी सत्ता सोवियतों को दो!'-यह नारा फिर कार्यक्रम में शामिल हो गया था।

लेकिन यह पुराना नारा नहीं था, मेन्शेविक और समाजवादी-क्रान्तिकारी सोवियतों को सत्ता सौंपने का नारा नहीं था। अब यह अस्थायी सरकार के खिलाफ सोवियतों के विद्रोह का नारा था, जिसका उद्देश्य था कि सोवियतों के हाथ में देश की सारी सत्ता सौंप दी जाये जो अब बोल्शेविकों के नेतृत्व में थी।

समझौतावादी पार्टियाँ भीतर से टूटने लगीं।

क्रान्तिकारी किसानों के दबाव से, समाजवादी-क्रान्तिकारी पार्टी में एक वामपंथी दल बन गया। इसे 'वामपंथी' समाजवादी-क्रान्तिकारी दल कहते थे। ये लोग पूँजीपतियों से समझौता करने की नीति नामंजूर करते थे।

मेन्शेविकों में भी 'वामपंथियों' का एक गुट, तथाकथित 'अन्तरराष्ट्रीयतावादी' गुट पैदा हो गया, जो बोल्शेविकों की तरफ झुकता था।

जहाँ तक अराजकतावादियों का सवाल था, इनका असर तो पहले ही नहीं के बराबर था। अब वे छोटी-छोटी टुकड़ियों में बँट गये, जिनमें से कुछ तो चोरों और जासूसों, समाज के सबसे घटिया लोगों, बदमाशों वगैरह से मिल गये। दूसरे लोग दूसरों का माल हड़पने वाले हो गये। और, वे दूसरों का माल हड़पने में 'विश्वास' करने लगे! ये किसानों और शहर के मामूली लोगों को लूटते थे और मजदूर क्लबों की जगह और उनकी जमा-पूँजी हथिया लेते थे। कुछ दूसरे और थे, जो खुल कर क्रान्ति-विरोधी खेमे से जा मिले, और पूँजीपतियों के चाकर बन कर अपनी जेबें गरम करने लगे। ये लोग हर किसी तरह के प्रभुत्व के खिलाफ थे, खास तौर से मजदूरों और किसानों के क्रान्तिकारी प्रभुत्व के खिलाफ थे, क्योंकि वे जानते थे कि क्रान्तिकारी हुकूमत उन्हें जनता को लूटने और जन-सम्पत्ति चुराने

की छूट नहीं देगी।

कार्निलोव की हार के बाद, मेन्शेविकों और समाजवादी-क्रान्तिकारियों ने एक बार और कोशिश की कि क्रान्ति का उठता हुआ ज्वार दब जाये। इस उद्देश्य से, उन्होंने 12 सितम्बर 1917 को एक अखिल रूसी प्रजातांत्रिक सम्मेलन बुलाया। इसमें सोशलिस्ट पार्टियों, समझौतावादी सोवियतों, ट्रेड यूनियनों, जेम्स्त्वों, व्यापारी और औद्योगिक हल्कों और फौजी दस्तों के प्रतिनिधि आये थे। सम्मेलन ने जनतंत्र की एक अस्थायी समिति बनायी, जिसका नाम **प्रेद पार्लियामेण्ट** था। समझौतावादियों को उम्मीद थी कि इसकी मदद से वे क्रान्ति रोक लेंगे और देश को सोवियत क्रान्ति के रास्ते से हटा कर पूँजीवादी वैधानिक विकास की राह पर, पूँजीवादी संसदगीरी की राह पर ले आयेंगे। लेकिन, यह राजनीति के दिवालियों की नाकाम कोशिश थी जो क्रान्ति के चक्र को रोकने के लिए की गयी थी। उसका नाकाम होना लाजिमी था, और वह नाकाम होकर रही। मजदूर समझौतावादियों की इन संसद-सम्बन्धी कोशिशों का मजाक बनाते थे और *प्रेद पार्लियामेण्ट* (संसद से पूर्व) को 'प्रेद बान्निक' (स्नानगृह से पूर्व) कहते थे।

बोल्शेविक पार्टी की केन्द्रीय समिति ने **प्रेद पार्लियामेण्ट** का बायकाट करने का फैसला किया। यह सही है कि **प्रेद पार्लियामेण्ट** में कामेनेव और तेओदोरोविच जैसे लोगों का बोल्शेविक गुट उससे अलग नहीं होना चाहता था, लेकिन पार्टी की केन्द्रीय समिति ने उसे इसके लिए मजबूर किया।

कामेनेव और जिनोवियेव ने इस बात की बहुत जिद की कि **प्रेद पार्लियामेण्ट** में हिस्सा लिया जाये। इस तरह, वे कोशिश कर रहे थे कि पार्टी को विद्रोह की तैयारी करने की राह से हटा दिया जाये। अखिल रूसी जनवादी सम्मेलन के बोल्शेविक गुट की बैठक में बोलते हुए, कामरेड स्तालिन ने **प्रेद पार्लियामेण्ट** में हिस्सा लेने का जोरों से विरोध किया। उन्होंने कहा कि **प्रेद पार्लियामेण्ट** 'कार्निलोव का गर्भपात' है।

लेनिन और स्तालिन का विचार था कि कुछ दिनों के लिए भी **प्रेद पार्लियामेण्ट** में हिस्सा लेना गलत होगा, क्योंकि इससे आम जनता में यह झूठी आशा पैदा हो सकती थी कि **प्रेद पार्लियामेण्ट** मेहनतकश जनता के लिए सचमुच कुछ कर सकती है।

इसके साथ ही, बोल्शेविकों ने सोवियतों की दूसरी कांग्रेस बुलाने के लिए जोरदार तैयारियाँ कीं। उन्हें आशा थी कि इस कांग्रेस में उनका बहुमत होगा। बोल्शेविक सोवियतों के दबाव से, अखिल रूसी केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति में मेन्शेविकों और समाजवादी-क्रान्तिकारियों की चालबाजियों के बावजूद, सोवियतों की दूसरी अखिल रूसी कांग्रेस अक्टूबर 1917 के दूसरे पखवारे में बुलाई गई।

6. पेत्रोग्राद में अक्टूबर विद्रोह और अस्थायी सरकार की गिरफ्तारी। सोवियतों की दूसरी कांग्रेस और सोवियत सरकार का निर्माण। शान्ति और जमीन पर सोवियतों की दूसरी कांग्रेस के आज्ञा-पत्र। समाजवादी

क्रान्ति की विजय। समाजवादी क्रान्ति की विजय के कारण।

बोल्शेविकों ने विद्रोह की जोरदार तैयारियाँ शुरू कीं। लेनिन ने कहा कि दोनों राजधानियों-मास्को और पेत्रोग्राद-में मजदूर और सैनिक प्रतिनिधियों की सोवियतों में बहुमत हासिल करने के बाद, बोल्शेविक अपने हाथ में राज्यसत्ता ले सकते हैं, और उन्हें लेना चाहिए। तय किये हुए रास्ते पर नजर डालते हुए, लेनिन ने इस बात पर जोर दिया कि "जनता का बहुमत हमारे साथ है।" अपने लेखों और केन्द्रीय समिति और बोल्शेविक संगठनों के नाम अपने खतों में, लेनिन ने विद्रोह की एक विस्तृत योजना बनायी और बतलाया कि फौजी दस्ते, जल-सेना और रेड गार्ड दस्तों को किस तरह इस्तेमाल करना चाहिए, विद्रोह की सफलता निश्चित करने के लिए पेत्रोग्राद के किन मुख्य स्थानों पर कब्जा करना चाहिए, इत्यादि।

सात अक्टूबर को, लेनिन गुप्त रूप से फिनलैण्ड से पेत्रोग्राद आये। 10 अक्टूबर 1917 को, पार्टी की केन्द्रीय समिति की ऐतिहासिक बैठक हुई जिसमें अगले कुछ दिनों में सशस्त्र विद्रोह आरम्भ करने का फैसला किया गया। पार्टी की केन्द्रीय समिति के ऐतिहासिक प्रस्ताव में, जिसे लेनिन ने लिखा था, कहा गया था :

> "केन्द्रीय समिति यह समझती है कि रूसी क्रान्ति की अन्तरराष्ट्रीय परिस्थिति (जर्मन जल-सेना में विद्रोह, जो समूचे यूरोप में विश्व समाजवादी क्रान्ति का चरम प्रदर्शन है; रूस की क्रान्ति का गला घोंटने के उद्देश्य से साम्राज्यवादियों के बीच शान्ति की धमकी), साथ ही सैनिक परिस्थिति (रूसी पूँजीपतियों और केरेन्स्की एण्ड कम्पनी का यह निश्चित फैसला कि पेत्रोग्राद जर्मनों को सौंप दिया जाये) और सोवियतों में सर्वहारा पार्टी का बहुमत हासिल करना-यह सब और इसके साथ यह कि किसान-विद्रोह हो रहे हैं और आम जनता का विश्वास तेजी से पार्टी पर जम रहा है (मास्को के चुनाव), और अन्त में एक दूसरे कार्निलोव काण्ड के लिए जो खुली तैयारी हो रही है (पेत्रोग्राद से फौज वापस बुलाना, पेत्रोग्राद में कज्जाक भेजना, कज्जाकों द्वारा मिन्स्क का घेरा डालना)-इन सब कारणों से सशस्त्र विद्रोह फौरी कार्यक्रम में शामिल हो गया है।"
>
> "इसलिए, यह समझकर कि सशस्त्र विद्रोह होकर रहेगा और उसके लिए वक्त बिल्कुल आ गया है, केन्द्रीय समिति सभी पार्टी संगठनों को निर्देश देती है कि वे सभी काम इसी बात को ध्यान में रखकर करें और इसी दृष्टिकोण से सभी अमली सवालों पर (उत्तरी प्रदेश की सोवियतों की कांग्रेस, पेत्रोग्राद से फौजें हटाना, मास्को और मिन्स्क में हमारी जनता की कार्रवाई वगैरह पर) विचार करें और फैसला करें।" (लेनिन, सं.ग्र., अं.सं. मास्को, 1947, खण्ड 2, पृष्ठ 135)।

केन्द्रीय समिति के दो सदस्य, कामेनेव और जिनोवियेव, इस ऐतिहासिक प्रस्ताव के खिलाफ बोले और उन्होंने उसके विरुद्ध वोट दिया। मेन्शेविकों की तरह, वे पूँजीवादी संसदीय जनतंत्र का सपना देखते थे और मजदूर वर्ग पर यह कह कर कीचड़ उछालते थे कि समाजवादी क्रान्ति करने के लिए वह काफी मजबूत नहीं है, कि वह सत्ता हाथ में लेने के लिए काफी परिपक्व नहीं है।

हालाँकि इस बैठक में त्रात्स्की ने सीधे इस प्रस्ताव के खिलाफ वोट नहीं दिया, फिर भी उसने एक संशोधन रखा जिससे विद्रोह की सम्भावना नहीं के बराबर हो जाती और विद्रोह निष्फल हो जाता। उसने प्रस्ताव रखा कि सोवियतों की दूसरी कांग्रेस शुरू होने से पहले विद्रोह शुरू नहीं किया जाये। इस प्रस्ताव का मतलब था-विद्रोह में विलम्ब करना, उसकी तारीख जाहिर कर देना और अस्थायी सरकार को आगाह कर देना।

बोल्शेविक पार्टी की केन्द्रीय समिति ने विद्रोह का संगठन करने के लिए अपने प्रतिनिधियों को दोन्येत्स प्रदेश, यूराल, हैलसिंगफोर्स, क्रोन्स्तात, दक्षिण-पश्चिमी मोर्चा और दूसरी जगहों पर भेजा। पार्टी ने खास तौर से सूबों में विद्रोह का संचालने करने के लिए कामरेड वोरोशिलोव, मोलोतोव, जेरजिन्स्की, ओर्जोनिकित्से, किरोव, कगानोविच, कुइवीशेव, फ्रुन्जे, यारोस्लाव्स्की और दूसरे साथियों को मुकर्रर किया। कामरेड ज्दानोव ने यूराल में शाद्रिन्स्क की फौज में काम जारी रखा। केन्द्रीय समिति के प्रतिनिधियों ने सूबों के बोल्शेविक संगठनों के प्रमुख सदस्यों को विद्रोह की योजना बतायी और पेत्रोग्राद के विद्रोह का समर्थन करने के लिए उन्हें तैयार रहने के लिए बटोरा।

पार्टी की केन्द्रीय समिति के निर्देश से, पेत्रोग्राद-सोवियत की एक क्रान्तिकारी फौजी कमेटी बनायी गयी। यह संस्था विद्रोह का कानूनी तौर पर चलने वाला हेडक्वार्टर बन गयी।

उधर क्रान्ति-विरोधी भी जल्दी-जल्दी अपनी शक्ति बटोर रहे थे। फौज के अफसरों ने एक क्रान्ति-विरोधी संगठन बनाया, जिसका नाम अफसरों की सभा था। हर जगह क्रान्ति-विरोधियों ने लड़ाकू दस्ते बनाने के लिए हेडक्वार्टर कायम किये। अक्टूबर के अन्त तक, क्रान्ति-विरोधियों की कमान में 43 लड़ाकू दस्ते बन गये। सेण्ट जार्ज के क्रास के मानने वालों के खास दस्ते बनाये गये।

केरेन्स्की की सरकार ने शासन केन्द्र पेत्रोग्राद से मास्को ले जाने के सवाल पर विचार किया। इससे स्पष्ट हो गया कि शहर में विद्रोह रोकने के लिए वह पेत्रोग्राद को जर्मनों के हाथ सौंपने की तैयारी कर रही है। पेत्रोग्राद के मजदूरों और सैनिकों के विरोध ने अस्थायी सरकार को पेत्रोग्राद में ही रहने पर मजबूर किया।

16 अक्टूबर को, पार्टी की केन्द्रीय समिति की एक विस्तृत बैठक हुई। इस बैठक में विद्रोह का संचालन करने के लिए एक **पार्टी केन्द्र** चुना गया, जिसके अगुआ कामरेड स्तालिन थे। यह पार्टी केन्द्र पेत्रोग्राद-सोवियत की क्रान्तिकारी फौजी कमेटी का प्रमुख नेतृत्व था और समूचे विद्रोह का अमली संचालन उसके हाथ में था।

केन्द्रीय समिति की बैठक में, समर्पणवादियों-जिनोवियेव और कामेनेव ने विद्रोह का फिर विरोध किया। यहाँ मुँहकी खाकर, उन्होंने विद्रोह के खिलाफ, पार्टी के खिलाफ खुल्लमखुल्ला अखबारों में लिखा। 18 अक्टूबर को, मेन्शेविक अखबार **नोवाया जीज़्न (नव जीवन)** ने कामेनेव और जिनोवियेव का बयान छापा, जिसमें कहा गया था कि बोल्शेविक विद्रोह की तैयारी कर रहे हैं और वे (कामेनेव और जिनोवियेव) समझते हैं कि यह दुस्साहसपूर्ण जुआ खेलना है। इस तरह, कामेनेव और जिनोवियेव ने दुश्मन को केन्द्रीय समिति का विद्रोह-सम्बन्धी फैसला बता दिया; उन्होंने यह प्रकट कर दिया कि कुछ ही दिनों में विद्रोह शुरू करने की

योजना बनायी गयी है। यह गद्दारी थी। इस सिलसिले में, लेनिन ने लिखा था : "कामेनेव और जिनोवियेव ने सशस्त्र विद्रोह के बारे में अपनी पार्टी की केन्द्रीय समिति का फैसला दगाबाजी से रोद्‌जियांको और केरेन्स्की को बतला दिया है।" लेनिन ने केन्द्रीय समिति के सामने जिनोवियेव और कामेनेव को पार्टी से निकालने का सवाल रखा।

गद्दारों से चेतावनी पाकर, क्रान्ति के दुश्मन तुरन्त ही इस बात के उपाय करने लगे कि विद्रोह को रोक दें और क्रान्ति के संचालक दल-बोल्शेविक पार्टी-का नाश कर दें। अस्थायी सरकार ने एक गुप्त बैठक बुलायी, जिसमें बोल्शेविकों का मुकाबला करने के लिए क्या उपाय किये जायें, इसका फैसला हुआ। 19 अक्टूबर को, अस्थायी सरकार ने युद्ध के मोर्चे से जल्दी-जल्दी फौजें पेत्रोग्राद बुलायीं। सड़कों पर भारी पहरा लगा दिया गया। क्रान्ति-विरोधी खास तौर से मास्को में भारी फौज इकट्ठी करने में कामयाब हुए। अस्थायी सरकार ने एक योजना बनायी कि सोवियतों की दूसरी कांग्रेस शुरू होने से पहले बोल्शेविक केन्द्रीय समिति के हेडक्वार्टर स्मोल्नी पर हमला किया जाये और उस पर कब्जा कर लिया जाये और बोल्शेविक संचालन-केन्द्र का नाश कर दिया जाये। इसी उद्देश्य से, हुकूमत ने पेत्रोग्राद में वह फौज बुलाई जिसकी वफादारी पर उसे भरोसा था।

लेकिन, अस्थायी सरकार की जिन्दगी के दिन और घण्टे भी गिनती के रह गये थे। समाजवादी क्रान्ति की विजय-यात्रा को अब कोई भी नहीं रोक सकता था।

21 अक्टूबर को, बोल्शेविकों ने सभी क्रान्तिकारी फौजी दस्तों के पास क्रान्तिकारी फौजी समिति के कमिसार भेजे। विद्रोह होने से पहले के बचे हुए दिनों में फौजी दस्तों, मिलों और कारखानों में कार्रवाई की जोरदार तैयारी की गयी। युद्धपोत **अव्रोरा** और **जारियास्वोबोदी** के लिए भी निश्चित निर्देश भेजे गये।

पेत्रोग्राद सोवियत की एक बैठक में, त्रात्स्की ने डींग हाँकने की जीम में दुश्मन को वह तारीख बतला दी कि जबकि बोल्शेविक सशस्त्र विद्रोह शुरू करने वाले थे। केरेन्स्की सरकार विद्रोह को असफल न कर दे, इसलिए पार्टी की केन्द्रीय समिति ने फैसला किया कि निश्चित किये हुए समय से पहले ही विद्रोह शुरू कर दिया जाये और आखिरी मंजिल तक ले जाया जाये। उसने विद्रोह की तारीख सोवियतों की दूसरी कांग्रेस के शुरू होने से पहले के दिन रखी।

24 अक्टूबर (6 नवम्बर) को सुबह तड़के, केरेन्स्की ने हमला शुरू कर दिया। उसने बोल्शेविक पार्टी के केन्द्रीय पत्र **रबोचीपूत (मजदूर पथ)** को बन्द करने का हुक्म दिया और सम्पादकीय दफ्तर और बोल्शेविकों के छापेखाने पर हथियारबन्द गाड़ियाँ भेजीं। लेकिन 10 बजे सबेरे तक, कामरेड स्तालिन के निर्देश पर, रेड गार्डो के दस्तों और क्रान्तिकारी सैनिकों ने हथियारबन्द गाड़ियों को पीछे ठेल दिया और छापेखाने और **रबोचीपूत** के सम्पादकीय दफ्तरों पर और ज्यादा पहरा बिठा दिया। लगभग 11 बजे सबेरे **रबोचीपूत** प्रकाशित हुआ, जिसमें अस्थायी सरकार का तख्ता उलट देने के लिए आह्वान था। उसी समय, विद्रोह के पार्टी केन्द्र के निर्देश से क्रान्तिकारी सैनिकों और रेड गार्डों के दस्ते स्मोल्नी की तरफ दौड़ाये गये।

विद्रोह शुरू हो गया।

24 अक्टूबर की रात को, लेनिन स्मोल्नी आ पहुँचे और उन्होंने खुद विद्रोह के संचालन का भार सँभाला। उस रात भर फौज के क्रान्तिकारी दस्ते और रेड गार्डों के जत्थे बराबर स्मोल्नी आते रहे। बोल्शेविकों ने शरद प्रासाद घेरने के लिए, जहाँ अस्थायी सरकार ने अपना अड्डा बनाया था, उन्हें राजधानी के केन्द्र की तरफ भेजा।

25 अक्टूबर (7 नवम्बर) को, रेड गार्डों के दस्तों और क्रान्तिकारी सैनिकों ने रेलवे स्टेशनों, डाकखानों, तारघरों, मंत्रालयों और राज्य बैंक पर कब्जा कर लिया।

प्रेद पार्लियामेण्ट भंग कर दी गयी।

बोल्शेविक केन्द्रीय समिति और पेत्रोग्राद सोवियत का हेडक्वार्टर, स्मोल्नी, क्रान्ति का हेडक्वार्टर बन गया, जहाँ से लड़ाई के बारे में सभी हुक्म भेजे जाते थे।

पेत्रोग्राद के मजदूरों ने उन दिनों दिखला दिया कि बोल्शेविक पार्टी की देखरेख में उन्होंने कैसी महान शिक्षा पाई है। फौज के क्रान्तिकारी दस्तों ने, जिन्हें बोल्शेविकों के काम ने विद्रोह के लिए तैयार किया था, नपे-तुले ढंग से लड़ाई की आज्ञाओं का पालन किया और वे रेड गार्डों के दस्तों के साथ कन्धे से कन्धा मिला कर लड़े। जल सेना फौज से पीछे नहीं रही। क्रोन्स्तात बोल्शेविक पार्टी का गढ़ था और बहुत दिन पहले ही अस्थायी सरकार का प्रभुत्व मानने से इनकार कर चुका था। युद्ध पोत **अव्रोरा** ने अपनी तोपें शरद प्रासाद की तरफ मोड़ दीं और, 25 अक्टूबर को, उनकी घन गर्जन ने एक नया युग आरम्भ किया, महान समाजवादी क्रान्ति का युग आरम्भ किया।

25 अक्टूबर (7 नवम्बर) को, बोल्शेविकों ने "रूस के नागरिकों के नाम" एक घोषणापत्र निकाला। इसमें कहा गया था कि पूँजीवादी अस्थायी सरकार हटा दी गयी है और राज्यसत्ता सोवियतों के हाथ में आ गयी है।

अस्थायी सरकार ने कैडेटों और लड़ाकू जत्थों की छत्रछाया में शरद प्रासाद में शरण ली थी। 25 अक्टूबर की रात को क्रान्तिकारी मजदूरों, सैनिकों और जहाजियों ने शरद प्रासाद पर हल्ला बोल कर कब्जा कर लिया और अस्थायी सरकार को गिरफ्तार कर लिया।

पेत्रोग्राद में सशस्त्र विद्रोह की विजय हुई।

सोवियतों की दूसरी अखिल रूसी कांग्रेस 25 अक्टूबर (7 नवम्बर) 1917 की शाम को 10 बजकर 45 मिनट पर स्मोल्नी में शुरू हुई, जबकि पेत्रोग्राद का विद्रोह विजय गौरव से दमक रहा था और राजधानी में सत्ता सचमुच पेत्रोग्राद सोवियत के हाथ में आ गयी थी।

कांग्रेस में बोल्शेविकों को भारी बहुमत मिला। मेन्शेविकों, बुन्दवादियों और दक्षिणपंथी समाजवादी-क्रान्तिकारियों ने देखा कि अब उनके दिन बीत चुके हैं, इसलिए वे कांग्रेस से बाहर चले गये और उन्होंने ऐलान किया कि वे कांग्रेस के काम में हिस्सा लेने से इनकार करते हैं। सोवियतों की कांग्रेस में उनका एक बयान पढ़ा गया, जिसमें उन्होंने अक्टूबर क्रान्ति को एक 'फौजी षड्यंत्र' बताया था। कांग्रेस ने मेन्शेविकों और समाजवादी-क्रान्तिकारियों की निन्दा की और उनके चले जाने पर अफसोस करना तो दूर, उसका स्वागत किया। कांग्रेस ने ऐलान किया कि गद्दारों के चले जाने से अब वह मजदूर और सैनिक प्रतिनिधियों की सच्ची क्रान्तिकारी कांग्रेस हो गयी है।

कांग्रेस ने ऐलान किया कि सारी सत्ता सोवियतों के हाथ में आ गयी है। सोवियतों की दूसरी कांग्रेस के घोषणापत्र में कहा गया :

> "मजदूरों, सैनिकों और किसानों के भारी बहुमत का समर्थन पाकर और पेत्रोग्राद में होने वाले मजदूरों और सैनिकों के सफल विद्रोह का समर्थन पाकर, कांग्रेस अपने हाथ में सत्ता लेती है।"

26 अक्टूबर (8 नवम्बर) 1917 की रात को, सोवियतों की दूसरी कांग्रेस ने शान्ति-सम्बन्धी आज्ञा-पत्र स्वीकार किया। कांग्रेस ने युद्ध करने वाले देशों को बुलावा दिया कि कम से कम तीन महीने के लिए युद्धविराम कर लें, जिससे शान्ति की बातचीत की जा सके। कांग्रेस ने एक तरफ तो युद्ध करने वाले देशों की जनता और वहाँ की सरकारों से अपनी बात कही, दूसरी तरफ उसने "संसार के तीन आगे बढ़ी हुई राष्ट्रीयताओं और मौजूदा युद्ध में हिस्सा लेने वाले सबसे बड़े राज्यों यानी ब्रिटेन, फ्रांस और जर्मनी के वर्ग-चेतन मजदूरों से" अपील की। उसने इन मजदूरों से कहा कि वे "शान्ति के उद्देश्य को सफलता की मंजिल तक ले जाने में और साथ ही सभी तरह की गुलामी और शोषण से मेहनतकश और शोषित जनता की मुक्ति के उद्देश्य को सफलता की मंजिल तक ले जाने में" मदद करें।

उसी रात को, सोवियतों की दूसरी कांग्रेस ने **भूमिसम्बन्धी आज्ञापत्र** स्वीकार किया जिसमें कहा गया था : "भूमि पर जमीन्दारों की मिल्कियत बिना मुआवजे के तुरन्त खत्म की जाती है।" खेती के इस कानून का आधार किसानों का एक निर्देश-पत्र (मैण्डेट) था, जो अलग-अलग जगहों के किसानों के 242 मैण्डेटों को मिला कर बनाया गया था। इसके अनुसार, जमीन पर व्यक्तिगत मिल्कियत हमेशा के लिए खत्म कर दी गयी और उसके बदले सार्वजनिक या राज्य की मिल्कियत कायम हुई। जमीन्दारों, जार के परिवार और मठों की जमीन बिना पैसा दिये हुए सभी मेहनतकशों को इस्तेमाल के लिए देने का हुक्म हुआ।

इस आज्ञा-पत्र से, किसानों ने अक्टूबर समाजवादी क्रान्ति से 15 करोड़ देसियातिन (40 करोड़ एकड़ से ऊपर) जमीन पायी जो पहले जमीन्दारों, पूँजीपतियों, जार के परिवार, मठों और गिरजाघरों के पास थी।

इसके अलावा, किसानों को उस लगान से मुक्त कर दिया गया जो वे जमीन्दारों को देते थे और जो सालाना 50 करोड़ स्वर्ण रूबल होता था।

खनिज पदार्थों के तमाम साधन (तेल, कोयला, धातुएँ, वगैरह), जंगल और जलाशय जनता की सम्पत्ति हो गये।

अन्त में, सोवियतों की दूसरी अखिल रूसी कांग्रेस ने पहली सोवियत सरकार बनायी-जन कमिसारों की समिति बनायी जिसमें सभी बोल्शेविक थे। जन कमिसारों की पहली समिति के पहले सभापति लेनिन चुने गये।

इससे सोवियतों की दूसरी ऐतिहासिक कांग्रेस का काम खत्म हुआ।

कांग्रेस के प्रतिनिधि इधर-उधर बिखर गये, जिससे कि पेत्रोग्राद में सोवियतों की जीत की खबर फैला दें और सोवियतों की सत्ता सारे देश में फैलाने का काम निश्चित करें।

हर जगह सोवियतों के हाथ तुरन्त ही सत्ता नहीं आ गयी। जब पेत्रोग्राद में सोवियत सरकार बन चुकी थी, तब मास्को में कई दिन तक डट कर और घनघोर लड़ाई होती रही। सत्ता मास्को-सोवियत के हाथ में न जाये, इसके लिए क्रान्ति-विरोधी मेन्शेविक और समाजवादी-क्रान्तिकारी पार्टियों ने गद्दारों और कैडेटों से मिल कर मजदूरों और सैनिकों के खिलाफ हथियारबन्द लड़ाई शुरू कर दी। बागियों को हराने और मास्को में सोवियतों की सत्ता कायम करने में कई दिन लग गये।

खुद पेत्रोग्राद में और उसके कई जिलों में क्रान्ति की जीत के शुरू के दिनों में ही सोवियत सत्ता को खत्म करने की क्रान्ति-विरोधी कोशिशें की गयीं। 10 नवम्बर 1917 को, केरेन्स्की ने, जो विद्रोह के समय पेत्रोग्राद से उत्तरी मोर्चे को भाग गया था, कई कज्जाक दस्ते इकट्ठे किये और जनरल क्रासनोव की कमान में उन्हें पेत्रोग्राद के खिलाफ भेजा। 11 नवम्बर 1917 को, एक क्रान्ति-विरोधी संगठन ने पेत्रोग्राद में कैडेटों से बगावत करायी। इस संगठन के नेता समाजवादी-क्रान्तिकारी थे, और उसका नाम रखा था-'पितृभूमि और क्रान्ति के उद्धार की कमेटी'। लेकिन, बिना ज्यादा कठिनाई के बगावत दबा दी गयी। एक ही दिन में, 11 नवम्बर की शाम तक, जहाजियों और रेड गार्डों के दस्तों ने कैडेट-विद्रोह दबा दिया और 13 नवम्बर को जनरल क्रासनोव पुलकोवो पहाड़ियों के पास हरा दिया गया। लेनिन ने व्यक्तिगत रूप से सोवियत-विरोधी बगावत दबाने का संचालन किया, जैसे उन्होंने व्यक्तिगत रूप से अक्टूबर विद्रोह का संचालन किया था। उनकी अटूट दृढ़ता और विजय में उनके शान्त विश्वास ने जनता को प्रेरित और संगठित किया। दुश्मन कुचल दिया गया। क्रासनोव गिरफ्तार कर लिया गया और उसने 'वचन दिया' कि सोवियत सत्ता के खिलाफ लड़ाई बन्द कर देगा। 'वचन देने पर' वह छोड़ दिया गया। लेकिन जैसा कि आगे मालूम हुआ, जनरल ने अपना वचन तोड़ दिया। जहाँ तक केरेन्स्की का सम्बन्ध था, वह औरत का भेष बनाकर 'किसी अज्ञात दिशा में गायब' हो गया।

फौज के जनरल हेडक्वार्टर पर, मोगीलेव में प्रधान सेनापति जनरल दुखोनिन ने भी बगावत करने की कोशिश की। जब सोवियत सरकार ने उसे हुक्म दिया कि जर्मन कमान से सुलह करने के लिए तुरन्त बातचीत चलाओ, तो उसने इनकार कर दिया। इस पर, सोवियत सरकार के हुक्म से उसे हटा दिया गया। क्रान्ति-विरोधी जनरल हेडक्वार्टर तोड़ दिया गया और खुद दुखोनिन को उसके खिलाफ विद्रोह करने वाले सैनिकों ने मार डाला।

पार्टी के भीतर कुछ नामी-गिरामी अवसरवादियों-कामेनेव, जिनोवियेव, राइकोव, शिलयापनीकोव, वगैरह-ने भी सोवियत सत्ता के खिलाफ धावा बोला। उन्होंने माँग की कि एक 'संयुक्त समाजवादी सरकार' बनायी जाये, जिसमें मेन्शेविक और समाजवादी-क्रान्तिकारी भी शामिल किये जायें जिन्हें अक्टूबर क्रान्ति ने अभी-अभी परास्त किया था। 15 नवम्बर 1917 को, बोल्शेविक पार्टी की केन्द्रीय समिति ने एक प्रस्ताव पास किया जिसमें इन क्रान्ति-विरोधी पार्टियों के साथ समझौता करना नामंजूर कर दिया गया और कामेनेव तथा जिनोवियेव को क्रान्ति का हड़ताल-तोड़क कहा गया। 17 नवम्बर को, पार्टी की नीति से असहमत होते हुए कामेनेव, जिनोवियेव, राइकोव और मिल्यूतिन ने ऐलान किया कि वे केन्द्रीय समिति से इस्तीफा देते हैं। उसी दिन, 17 नवम्बर को, नोगिन ने अपनी तरफ से

और जन कमिसार समिति के सदस्यों-राइकोव, वी. मिल्यूतिन, तियोदोरोविच, ए. श्लियापनीकोव, डी. रियाजानोव, यूरेनेव और लारिन-की तरफ से ऐलान किया कि वे पार्टी की केन्द्रीय समिति की नीति से असहमत हैं और जन कमिसार समिति से इस्तीफा देते हैं। इन मुट्ठी भर गद्दारों के भाग खड़े होने से, अक्टूबर क्रान्ति के दुश्मनों के यहाँ खुशियाँ मनायी जाने लगीं। पूँजीपति और उनके पिट्ठू खुशी से फूल कर कहने लगे कि बोल्शेविज्म खत्म हो गया और बोल्शेविक पार्टी जल्द ही समाप्त होने वाली है। लेकिन इन मुट्ठी भर गद्दारों की वजह से, पार्टी एक क्षण के लिए भी विचलित नहीं हुई। पार्टी की केन्द्रीय समिति ने घृणा के साथ उन्हें क्रान्ति से भाग खड़े होने वाला और पूँजीपतियों का साझीदार कहकर उनकी निन्दा की और अपने आगे के काम में लग गयी।

जहाँ तक 'वामपंथी' समाजवादी-क्रान्तिकारियों का सवाल था, वे किसान जनता पर अपना असर बनाये रखना चाहते थे। किसानों की हमदर्दी निश्चित रूप से बोल्शेविकों के साथ थी। इसलिए, 'वामपंथी' समाजवादी-क्रान्तिकारियों ने फैसला किया कि बोल्शेविकों से झगड़ा नहीं करें और फिलहाल उनके साथ संयुक्त मोर्चा बनाये रहें। नवम्बर 1917 में, किसान सोवियतों की कांग्रेस हुई। उसने अक्टूबर समाजवादी क्रान्ति से हासिल हुए सभी लाभों को स्वीकार किया और सोवियत सरकार के आज्ञा-पत्रों का समर्थन किया। 'वामपंथी' समाजवादी-क्रान्तिकारियों के साथ एक समझौता हुआ और उनमें से कई को जन कमिसार समिति में जगहें दी गयीं (कोलेगायेव, स्पिरिदोनोवा, प्रोश्यान और स्टाइनबर्ग)। लेकिन, यह समझौता ब्रेस्ट-लिटोव्स्क की सन्धि होने और गरीब किसानों की कमेटियाँ बनने तक ही कायम रहा। उसके बाद किसानों में गहरी दरार पड़ी। 'वामपंथी' समाजवादी-क्रान्तिकारी अधिकाधिक कुलक हित जाहिर करने लगे। उन्होंने बोल्शेविकों के खिलाफ बगावत की और सोवियत सत्ता ने उन्हें परास्त कर दिया।

अक्टूबर 1917 से फरवरी 1918 तक, देश के विशाल प्रदेशों में सोवियत क्रान्ति इतनी तेजी से फैली कि लेनिन ने उसे सोवियत सत्ता की 'विजय-यात्रा' कहा।

महान अक्टूबर समाजवादी क्रान्ति विजयी हुई।

रूस में समाजवादी क्रान्ति की इस अपेक्षाकृत आसान विजय के कई कारण थे। नीचे लिखे हुए मुख्य कारण ध्यान देने योग्य हैं :

(1) अक्टूबर क्रान्ति का दुश्मन अपेक्षाकृत ऐसा कमजोर, ऐसा असंगठित और राजनीतिक रूप से ऐसा अनुभवहीन था जैसे कि रूसी पूँजीपति। रूसी पूँजीपति आर्थिक रूप से अब भी कमजोर थे और पूरी तरह सरकारी ठेकों पर निर्भर थे। उनमें राजनीतिक आत्मनिर्भरता और पहलकदमी इतनी नहीं थी कि परिस्थिति से निकलने का रास्ता ढूँढ़ सकें। मसलन, बड़े पैमाने पर राजनीतिक गुटबन्दी और राजनीतिक दगाबाजी में उन्हें फ्रांसीसी पूँजीपतियों का सा तजुर्बा नहीं था, और न ही अंग्रेज पूँजीपतियों की तरह उन्होंने विशद रूप से सोचे हुए चतुर समझौते करने की शिक्षा पायी थी। हाल ही में, उन्होंने जार से समझौता करने की कोशिश की थी। फरवरी क्रान्ति ने जार का तख्ता उलट दिया था और सत्ता खुद पूँजीपतियों के हाथ में आ गयी थी लेकिन बुनियादी तौर से घृणित जार की नीति पर ही चलने के सिवा उन्हें और कुछ न सूझ पड़ा। जार की तरह, उन्होंने 'विजय तक युद्ध करने'

का समर्थन किया, हालाँकि युद्ध चलाना देश की शक्ति से परे था और जनता तथा फौज दोनों युद्ध से बुरी तरह चूर हो चुके थे। जार की तरह, कुल मिला कर वे भी बड़ी जागीरी जमीन बनाये रखने के पक्ष में थे, हालाँकि जमीन की कमी और जमीन्दारों के जुवे के बोझ से किसान मर रहे थे। जहाँ तक उनकी मजदूर नीति का सम्बन्ध था, वे मजदूर वर्ग से नफरत करने में जार के भी कान काट चुके थे। उन्होंने कारखानेदार के जुवे को बनाये रखने और मजबूत करने की ही कोशिश नहीं की, बल्कि उन्होंने बड़े पैमाने पर तालेबन्दी करके उसे असहनीय बना दिया।

कोई ताज्जुब नहीं कि जनता ने जार की नीति और पूँजीपतियों की नीति में कोई बुनियादी भेद नहीं देखा, और जो घृणा उसके दिल में जार के लिए थी वही पूँजीपतियों की अस्थायी सरकार के लिए हो गयी।

जब तक समाजवादी-क्रान्तिकारी और मेन्शेविक पार्टियों का थोड़ा-बहुत असर जनता पर था, तब तक पूँजीपति उन्हें पर्दे की तरह इस्तेमाल कर सकते थे और अपनी सत्ता बनाये रख सकते थे। लेकिन, जब मेन्शेविकों और समाजवादी-क्रान्तिकारियों ने जाहिर कर दिया कि वे साम्राज्यवादी पूँजीपतियों के दलाल हैं और इस तरह जनता में उन्होंने अपना असर खो दिया, तब पूँजीपतियों और उनकी अस्थायी सरकार का कोई मददगार नहीं रहा।

(2) अक्टूबर क्रान्ति का नेतृत्व रूस के मजदूर वर्ग जैसे क्रान्तिकारी वर्ग ने किया। यह ऐसा वर्ग था जो संघर्ष की आँच में तप चुका था, जो थोड़ी ही अवधि में दो क्रान्तियों से गुजर चुका था और जो तीसरी क्रान्ति के शुरू होने से पहले शान्ति, जमीन, स्वाधीनता और समाजवाद के लिए संघर्ष में जनता का नायक माना जा चुका था। अगर क्रान्ति का नेता रूस के मजदूर वर्ग जैसा न होता, ऐसा नेता जिसने जनता का विश्वास पा लिया था, तो मजदूरों और किसानों की मैत्री न होती और इस तरह की मैत्री के बिना अक्टूबर क्रान्ति की विजय असम्भव होती।

(3) रूस के मजदूर वर्ग को क्रान्ति में गरीब किसानों जैसा समर्थ साथी मिला, जो किसान जनता का भारी बहुसंख्यक भाग था। जहाँ तक आम मेहनतकश किसानों का सवाल था, क्रान्ति के आठ महीनों का तजुर्बा बेकार नहीं गया। इस तजुर्बे की तुलना 'साधारण' विकास के बीसियों सालों के तजुर्बे से निस्सन्देह की जा सकती है। इन दिनों, उन्हें मौका मिला कि वे अमल में रूस की तमाम पार्टियों को परख लें और अपनी दिलजमई कर लें कि न तो संवैधानिक जनवादी और न समाजवादी-क्रान्तिकारी या मेन्शेविक ही जमीन्दारों से कोई गम्भीर झगड़ा मोल लेंगे, या किसानों के हित के लिए अपना बलिदान करेंगे, कि रूस में एक ही पार्टी है-बोल्शेविक पार्टी-जिसका जमीन्दारों से कोई सम्बन्ध नहीं है और जो उन्हें किसानों की जरूरतें पूरी करने के लिए कुचलने को तैयार है। सर्वहारा और गरीब किसानों की मैत्री का यह दृढ़ आधार था। मजदूर वर्ग और गरीब किसानों की इस मैत्री के कायम होने से, मध्यम किसानों की गति निश्चित हो गयी। ये मध्यम किसान बहुत दिन तक ढुलमुल रहे थे और अक्टूबर विद्रोह के शुरू होने से पहले ही पूरी तरह क्रान्ति की तरफ आये थे और उन्होंने गरीब किसानों से नाता जोड़ा था।

कहना न होगा कि इस मैत्री के बिना अक्टूबर क्रान्ति विजयी न होती।

(4) मजदूर वर्ग का नेतृत्व राजनीतिक संघर्षों में तपी और परखी हुई बोल्शेविक पार्टी जैसी पार्टी ने किया था। बोल्शेविक पार्टी इतनी साहसी पार्टी थी कि निर्णायक हमले में जनता का नेतृत्व कर सके। वह इतनी सावधान पार्टी थी कि मंजिल की तरफ जाने के रास्ते में ढँकी-मुँदी खाई-खन्दकों से बच कर निकल सके। ऐसी ही पार्टी विभिन्न क्रान्तिकारी आन्दोलनों को चतुराई से एक ही सामान्य क्रान्तिकारी धारा में मिला सकती थी। शान्ति के लिए आम जनवादी आन्दोलन, जागीरी जमीन छीनने के लिए किसानों का जनवादी आन्दोलन, राष्ट्रीय स्वाधीनता और राष्ट्रीय समानता के लिए उत्पीड़ित राष्ट्रीयताओं का आन्दोलन और पूँजीपतियों का तख्ता उलटने के लिए और सर्वहारा अधिनायकत्व कायम करने के लिए सर्वहारा वर्ग का समाजवादी आन्दोलन-इन सबको ऐसी ही पार्टी एक सामान्य क्रान्तिकारी धारा में मिला सकती थी।

इसमें सन्देह नहीं कि इन विभिन्न क्रान्तिकारी धाराओं के एक ही सामान्य शक्तिशाली क्रान्तिकारी धारा में मिलने ने रूस में पूँजीवाद की तकदीर का फैसला कर दिया।

(5) अक्टूबर क्रान्ति ऐसे समय आरम्भ हुई जबकि साम्राज्यवादी युद्ध अभी जोरों पर था, जबकि प्रमुख पूँजीवादी राज्य दो विरोधी खेमों में बँटे हुए थे और जब परस्पर युद्ध में फँसे रहने और एक-दूसरे की जड़ें काटने में लगे रहने से, वे 'रूसी मामलों' में सफलता से दखल नहीं दे सकते थे और सक्रिय रूप से अक्टूबर क्रान्ति का विरोध नहीं कर सकते थे।

निस्सन्देह, अक्टूबर समाजवादी क्रान्ति की जीत में इस बात से बहुत मदद मिली।

7. सोवियत सत्ता को मजबूत करने के लिए बोल्शेविक पार्टी का संघर्ष। ब्रेस्ट-लिटोव्स्क की शान्ति। सातवीं पार्टी कांग्रेस।

सोवियत सत्ता को मजबूत करने के लिए पुरानी पूँजीवादी राज्य की मशीन का नाश करना जरूरी था और एक नयी सोवियत राज्य की मशीन उसकी जगह कायम करनी थी। इसके सिवा, समाज में वर्ण-भेद और राष्ट्रीय उत्पीड़न की व्यवस्था के अवशेष खत्म करने थे, चर्च के विशेषाधिकारों को खत्म करना था, क्रान्ति-विरोधी प्रेस और हर तरह के कानूनी और गैर-कानूनी क्रान्ति-विरोधी संगठनों को दबाना था और पूँजीवादी विधानसभा भंग करनी थी। जमीन के राष्ट्रीकरण के बाद, बड़े पैमाने के उद्योग-धन्धों का भी राष्ट्रीकरण होना था। और अन्त में, युद्ध की हालत खत्म करनी थी, क्योंकि सबसे ज्यादा युद्ध ही सोवियत सत्ता को मजबूत बनाने के काम को रोक रहा था।

ये सभी कदम 1917 के अन्त से 1918 के मध्य तक थोड़े ही महीनों में उठाये गये।

समाजवादी-क्रान्तिकारियों और मेन्शेविकों के इशारे पर पुराने मंत्रिमण्डलों के कर्मचारियों ने जो तोड़-फोड़ की, वह कुचल दी गयी और उस पर सोवियत सत्ता हावी हो गयी। मंत्रिमण्डल तोड़ दिये गये और उनकी जगह सोवियत शासनतंत्र और उपयुक्त जन कमिसार समितियों ने ली। राष्ट्रीय अर्थतंत्र की प्रधान समिति कायम की गयी, जो देश के उद्योग-धन्धों

का संचालन करे। अखिल रूसी असाधारण समिति (वेचेका) बनायी गयी, जो क्रान्ति-विरोध और तोड़-फोड़ का मुकाबला करे। फेलिक्स जेरजिन्स्की उसके प्रधान बनाये गये। लाल फौज और जल सेना के निर्माण के लिए आज्ञा-पत्र निकाला गया। विधानसभा के चुनाव अधिकतर अक्टूबर क्रान्ति से पहले हुए थे। यह विधानसभा शान्ति, जमीन और सोवियतों के सत्ता लेने के बारे में दूसरी सोवियत कांग्रेस के आज्ञा-पत्र मानने से इन्कार करती थी। इसलिए, वह भंग कर दी गयी।

सामन्तवाद, जागीरी जमीन की व्यवस्था और सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में असमानता के अवशेष खत्म करने के लिए आज्ञा-पत्र निकाले गये। इनसे जागीरी जमीन और जाति या धर्म के आधार पर रचे हुए नियंत्रण खत्म किये गये। चर्च राज्य से और स्कूल चर्च से अलग कर दिये गये। स्त्रियों की समानता और तमाम रूसी राष्ट्रीयताओं की समानता कायम की गयी।

सोवियत सरकार ने एक विशेष आज्ञा-पत्र निकाला, जिसका नाम "रूसी जनता के अधिकारों की घोषणा" था; उसमें कानून के तौर पर यह कहा गया था कि रूस के लोगों को बेरोक विकास करने और पूरी समानता का अधिकार है।

पूँजीपतियों की आर्थिक शक्ति कमजोर करने और एक नया सोवियत राष्ट्रीय अर्थतंत्र बनाने और सबसे पहले नये सोवियत उद्योग-धन्धे रचने के लिए बैंकों, रेलों, विदेशी व्यापारी बेड़ा और उद्योग-धन्धों की सभी शाखाओं में सभी बड़े कारखानों-कोयला, धातुएँ, तेल, रसायन, मशीनें बनाना, सूती कपड़े, शक्कर, वगैरह-का राष्ट्रीकरण हो गया।

अपने देश को आर्थिक रूप से विदेशी पूँजीपतियों से मुक्त करने के लिए और उनके शोषण से आजाद करने के लिए, रूसी जार ने और अस्थायी सरकार ने जो विदेशी ऋण लिया था वह रद्द कर दिया गया। हमारे देश की जनता ने वह कर्ज अदा करने से इनकार कर दिया जो दूसरों का राज हड़पने वाला युद्ध जारी करने के लिए लिया गया था और जिसने हमारे देश को विदेशी पूँजी का गुलाम बना दिया था।

इन, और ऐसे ही उपायों ने पूँजीपतियों, जमीन्दारों, प्रतिक्रियावादी अफसरों और क्रान्ति-विरोधी पार्टियों की जड़ ही कमजोर कर दी और देश में सोवियत सरकार की स्थिति काफी मजबूत थी।

लेकिन जब तक रूस जर्मनी और आस्ट्रिया से युद्ध की दशा में था, तब तक सोवियत सरकार की स्थिति पूरी तरह सुरक्षित नहीं समझी जा सकती थी। सोवियत सत्ता को पूरी तरह मजबूत करने के लिए युद्ध खत्म करना जरूरी था। इसलिए, पार्टी ने अक्टूबर क्रान्ति की विजय के क्षण से ही शान्ति के लिए संघर्ष छेड़ दिया था।

सोवियत सरकार ने 'सभी युद्ध करने वाली जनता और उसकी सरकारों से तुरन्त ही न्यायपूर्ण और जनवादी शान्ति के लिए बातचीत शुरू करने के लिए' कहा। लेकिन, 'मित्र देशों'-ग्रेट ब्रिटेन और फ्रांस-ने सोवियत सरकार का प्रस्ताव मानने से इनकार किया। इस नामंजूरी की वजह से, सोवियत सरकार ने सोवियतों की इच्छा के अनुकूल जर्मनी और आस्ट्रिया से बातचीत शुरू करने का फैसला किया।

तीन दिसम्बर को, ब्रेस्ट-लिटोव्स्क में बातचीत शुरू हुई। 5 दिसम्बर को, सुलह पर

दस्तखत हुए।

सुलह की बातचीत ऐसे वक्त हुई जब देश आर्थिक अव्यवस्था की हालत में था, जब युद्ध की थकान हर तरफ फैली हुई थी, जब हमारी फौजें मोर्चे की खाइयाँ छोड़ रही थीं और युद्ध का मोर्चा ढह रहा था। बातचीत के दौर में साफ हो गया कि जर्मन साम्राज्यवादी भूतपूर्व जारशाही साम्राज्य के भारी प्रदेश हड़पना चाहते थे और पोलैण्ड, उक्रेन और बाल्टिक देशों को जर्मनी के मातहत देश बनाना चाहते थे।

ऐसी हालत में, युद्ध चलाने का मतलब होता-नवजात सोवियत गणतंत्र के जीवन को ही दाँव पर लगा देना। मजदूर वर्ग और किसानों के सामने यह आवश्यकता पैदा हुई कि शान्ति की कष्टदायी शर्तें स्वीकार करें, उस समय के सबसे खतरनाक डाकू-जर्मन साम्राज्यवाद-के सामने पीछे हटें, जिससे कि सोवियत सत्ता को मजबूत करने और एक नयी फौज, लाल फौज बनाने के लिए अवकाश मिल सके जो दुश्मन के हमले से देश की रक्षा कर सके।

सभी क्रान्ति-विरोधियों ने, मेन्शेविकों और समाजवादी-क्रान्तिकारियों से लेकर एकदम खुले गद्दारों तक ने शान्ति करने के खिलाफ धुआँधार आन्दोलन किया। उनकी नीति स्पष्ट थी : वे सुलह की बातचीत भंग करना चाहते थे, जर्मन हमले के लिए उकसावा पैदा करना चाहते थे और इस तरह, उस समय तक कमजोर सोवियत सत्ता को खतरे में डालना और मजदूरों और किसानों ने जो कुछ भी हासिल किया था उसे संकट में डालना चाहते थे।

इस भयानक अभिसन्धि में, उनके साथी त्रात्स्की और उसका साझीदार बुखारिन थे। रादेक और प्याताकोव के साथ, बुखारिन एक ऐसे गुट का नेता था जो पार्टी-विरोधी था लेकिन अपने को 'वामपंथी कम्युनिस्ट' कहकर छिपाता था। पार्टी के भीतर त्रात्स्की और 'वामपंथी कम्युनिस्टों' के गुट ने युद्ध को जारी रखने की माँग करते हुए लेनिन के खिलाफ घोर संघर्ष शुरू किया। ये लोग स्पष्ट ही जर्मन साम्राज्यवादियों और देश के क्रान्ति-विरोधियों के हाथ में खेल रहे थे, क्योंकि वे तरुण सोवियत गणतंत्र को, जिसके पास अभी फौज नहीं थी, जर्मन साम्राज्यवाद का आघात सहने के लिए आगे ठेल रहे थे।

दरअसल यह उकसावा पैदा करने वालों की नीति थी, जो चतुराई से अपने को वामपंथी लफ्फाजी से छिपाये हुए थे।

10 फरवरी 1918 को, ब्रेस्ट-लिटोव्स्क में सन्धि-वार्ता भंग कर दी गयी। हालाँकि पार्टी की केन्द्रीय समिति की तरफ से लेनिन और स्तालिन ने जोर दिया था कि शान्ति कर ली जाये, लेकिन त्रात्स्की ने, जो ब्रेस्ट-लिटोव्स्क में सोवियत प्रतिनिधि-मण्डल का प्रमुख था, दगेबाजी से बोल्शेविक पार्टी के सीधे निर्देश भंग किये। उसने ऐलान किया कि जर्मनी की प्रस्तावित शर्तों पर सोवियत गणतंत्र सन्धि नहीं करेगा। इसके साथ ही, उसने जर्मनों को सूचना दी कि सोवियत गणतंत्र लड़ेगा नहीं और अपनी फौज तोड़ता जायेगा।

नीचता की हद हो गयी। जर्मन साम्राज्यवादी सोवियत देश के हितों के प्रति इस गद्दार से और कुछ ज्यादा न चाह सकते थे।

जर्मन हुकूमत ने सुलह तोड़ दी और हमला शुरू कर दिया। जर्मन फौज के हमले के सामने, हमारी पुरानी फौज के अवशेष बिखर गये और तितर-बितर हो गये। जर्मन तेजी

से आगे बढ़े। विशाल प्रदेश पर उन्होंने कब्जा कर लिया और पेत्रोग्राद के लिए खतरा पैदा कर दिया। जर्मन साम्राज्यवाद ने सोवियत देश पर इसलिए हमला किया था कि सोवियत सत्ता को खत्म कर दे और हमारे मुल्क को अपना उपनिवेश बना ले। पुरानी जारशाही फौज के खण्डहर जर्मन साम्राज्यवाद के हथियारबन्द झुण्डों का मुकाबला नहीं कर सकते थे और वे उनके प्रहार के सामने बराबर पीछे हटते गये।

लेकिन, जर्मन साम्राज्यवाद की हथियारबन्द दखलन्दाजी देश में एक विराट क्रान्तिकारी उभार का संकेत बन गयी। पार्टी और सोवियत सरकार ने नारा दिया : 'समाजवादी पितृभूमि खतरे में है!' और इसके जवाब में, मजदूर वर्ग जोरशोर से लाल फौज की पलटनें बनाने लगा। नयी फौज-क्रान्तिकारी जनता की फौज-के तरुण दस्तों ने वीरता से सिर से पैर तक अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित जर्मन डाकुओं का मुकाबला किया। नारवा और प्स्कोव में जर्मन हमलावरों को दृढ़ता से पीछे हटाया गया। पेत्रोग्राद की तरफ उनकी प्रगति रोक ली गयी। 23 फरवरी का दिन-वह दिन जबकि जर्मन साम्राज्यवाद की फौज को पीछे ठेला गया था-लाल फौज का जन्म दिवस माना जाता है।

18 फरवरी 1918 को, पार्टी की केन्द्रीय समिति ने लेनिन के इस प्रस्ताव को स्वीकार किया कि तुरन्त शान्ति स्थापित करने के लिए जर्मन हुकूमत को तार भेजा जाये। लेकिन और अच्छी शर्तें हासिल करने के लिए, जर्मन आगे बढ़ते ही गये और 22 फरवरी को जाकर जर्मन सरकार ने सन्धि करने की इच्छा जाहिर की। अब जो शर्तें रखी गयीं, वे पहले से भी कठोर थीं।

केन्द्रीय समिति में लेनिन, स्तालिन और स्वेर्दलोव ने त्रात्स्की, बुखारिन और दूसरे त्रात्स्कीपंथियों के खिलाफ जमकर संघर्ष किया और तभी शान्ति स्थापित करने के पक्ष में फैसला किया जा सका। लेनिन ने कहा कि बुखारिन और त्रात्स्की ने "दरअसल जर्मन साम्राज्यवादियों की मदद की है और जर्मनी में क्रान्ति की बढ़ोत्तरी और विकास को रोका है।" (लेनिन, सं.ग्रं., अं.सं., मास्को, 1947, खण्ड 2, पृष्ठ 287)।

23 फरवरी को, केन्द्रीय समिति ने फैसला किया कि जर्मन कमान की शर्तें मान ली जायें और शान्ति-सन्धि पर दस्तखत कर दिये जायें। सोवियत गणतंत्र को त्रात्स्की और बुखारिन की गद्दारी के लिए भारी कीमत चुकानी पड़ी। पोलैण्ड का तो कहना ही क्या, लातविया और एस्तोनिया भी जर्मनों के हाथ में पहुँच गये। उक्रेन सोवियत गणतंत्र से अलग कर दिया गया और जर्मन राज्य के मातहत कर लिया गया। सोवियत गणतंत्र ने जर्मनों को हर्जाना देना स्वीकार किया।

उधर, लेनिन के खिलाफ 'वामपंथी कम्युनिस्टों' ने अपना संघर्ष जारी रखा। वे अधिकाधिक गद्दारी के दलदल में फँसते गये।

पार्टी के मास्को प्रादेशिक ब्यूरो ने, जिस पर कुछ दिनों के लिए 'वामपंथी कम्युनिस्टों' (बुखारिन, आसिन्स्की, याकूवलेवा, स्तूकोव और मान्स्सेव) ने कब्जा कर लिया था, केन्द्रीय समिति पर अविश्वास का प्रस्ताव पास किया। इस प्रस्ताव का उद्देश्य था-पार्टी में फूट डालना। ब्यूरो ने ऐलान किया कि उसकी राय में 'बहुत ही निकट भविष्य में पार्टी शायद ही फूट से बच सकेगी।' 'वामपंथी कम्युनिस्ट' अपने प्रस्ताव में इस हद तक पहुँच गये कि

उन्होंने सोवियत-विरोधी रुख अपनाया। उन्होंने कहा : "अन्तरराष्ट्रीय क्रान्ति के हित में, हम यह जरूरी समझते हैं कि सोवियत सत्ता के सम्भावित खात्मे से हम सहमत हो जायें जो सत्ता कि अब सिर्फ नाम को रह गयी है।"

लेनिन ने इस फैसले को 'अजीब और बेहूदा' बताया।

उस समय, त्रात्स्की और 'वामपंथी कम्युनिस्टों' के इस पार्टी-विरोधी व्यवहार का ठीक सबब अभी पार्टी के सामने साफ नहीं था। लेकिन, अभी हाल में सोवियत-विरोधी 'दक्षिणपंथियों और त्रात्स्कीपंथियों के गुट' पर (1938 से शुरू होने वाला) जो मुकदमा लाया गया है, उससे मालूम हुआ है कि बुखारिन और उसके नेतृत्व में काम करने वाला 'वामपंथी कम्युनिस्टों' का गुट त्रात्स्की और 'वामपंथी' समाजवादियों के साथ उस समय गुप्त रूप से सोवियत सरकार के खिलाफ षड्यंत्र कर रहा था। अब पता चला है कि बुखारिन, त्रात्स्की और उनके साथी षड्यंत्रकारियों ने तय कर लिया था कि ब्रेस्ट-लिटोव्स्क की शान्ति भंग कर दी जाये; लेनिन, स्तालिन और स्वेर्दलोव को गिरफ्तार कर लिया जाये, उनकी हत्या कर दी जाये और एक नयी सरकार बनायी जाये जिसमें बुखारिनपंथी, त्रात्स्कीवादी और 'वामपंथी' समाजवादी-क्रान्तिकारी हों।

छिपे-छिपे यह क्रान्ति-विरोधी षड्यंत्र करते हुए, 'वामपंथी' कम्युनिस्टों का गुट त्रात्स्की की मदद से खुल कर बोल्शेविक पार्टी पर हमला करता था। उसकी कोशिश थी कि पार्टी में फूट डाल दी जाये और उसकी सफें तोड़ दी जायें। लेकिन, इस कठिन घड़ी में पार्टी लेनिन, स्तालिन और स्वेर्दलोव के चारों ओर सिमट आयी और शान्ति के मसले पर और दूसरे सभी मसलों पर भी उसने केन्द्रीय समिति का समर्थन किया।

'वामपंथी कम्युनिस्ट' गुट अकेला कर दिया गया और हरा दिया गया।

शान्ति के मसले पर पार्टी अपना अन्तिम फैसला दे दे, इसके लिए सातवीं पार्टी कांग्रेस बुलायी गयी।

6 मार्च 1918 को, कांग्रेस शुरू हुई। पार्टी ने जब से सत्ता हाथ में ली थी, तब से यह पहली कांग्रेस थी। इसमें 1 लाख 45 हजार पार्टी के सदस्यों की तरफ से 46 प्रतिनिधि वोट देने वाले और 58 प्रतिनिधि बोलने वाले लेकिन वोट न दे सकने वाले आये। वास्तव में, उस समय पार्टी की सदस्यता 2 लाख 70 हजार से कम न थी, लेकिन इस असंगति का कारण यह था कि कांग्रेस जल्दी में बुलायी गयी थी, इसलिए बहुत से संगठन अपने प्रतिनिधि वक्त से नहीं भेज सके। और वे संगठन जो जर्मनों के अधिकार किये हुए प्रदेशों में थे, वे प्रतिनिधि भेज ही नहीं पाये।

ब्रेस्ट-लिटोव्स्क शान्ति पर कांग्रेस में रिपोर्ट पेश करते हुए, लेनिन ने कहा, "... अपने भीतर एक वामपंथी विरोधी दल बनने के सबब से पार्टी जिस गम्भीर संकट को महसूस कर रही है, वह रूसी क्रान्ति के अनुभव में एक बहुत ही गम्भीर संकट है।" (लेनिन, सं. ग्रं., अं.सं., मास्को, 1947, खण्ड 2, पृष्ठ 299)।

ब्रेस्ट-लिटोव्स्क शान्ति के विषय पर लेनिन ने जो प्रस्ताव रखा, 30 वोट उसके पक्ष में और 12 विपक्ष में आये; 4 तटस्थ रहे। इस तरह, वह मंजूर हो गया।

प्रस्ताव मंजूर होने के दूसरे दिन, लेनिन ने "कष्टपूर्ण शान्ति" नाम से एक लेख लिखा,

जिसमें उन्होंने कहा था :

> "शान्ति की शर्तें बेहद कठिन हैं। फिर भी, इतिहास का हक उसे मिलेगा ही...। हमें चाहिये कि संगठन करें, संगठन करें और संगठन करें। तमाम परीक्षाओं के बावजूद, भविष्य हमारा है।" (**लेनिन ग्रंथावली**, रूसी संस्करण, खण्ड 22, पृष्ठ 228)।

अपने प्रस्ताव में कांग्रेस ने ऐलान किया कि सोवियत गणतंत्र पर साम्राज्यवादी राज्यों के और फौजी हमले होना लाजिमी है। इसलिए, कांग्रेस यह समझती है कि पार्टी का यह बुनियादी काम है कि वह आत्मानुशासन और मजदूरों तथा किसानों का अनुशासन मजबूत करने के लिए, कुर्बानी देकर समाजवादी देश की रक्षा करने को आम जनता को तैयार करने के लिए, लाल फौज को संगठित करने के लिए और आम फौजी शिक्षा आरम्भ करने के लिए, पार्टी बहुत ही दृढ़ और शक्तिशाली उपाय करे।

ब्रेस्ट-लिटोवस्क की शान्ति के बारे में लेनिन की नीति का समर्थन करते हुए, कांग्रेस ने त्रात्स्की और बुखारिन के मत की निन्दा की और कांग्रेस के भीतर ही हारे हुए 'वामपंथी कम्युनिस्टों' की फूट डालने वाली कार्रवाई जारी रखने की निन्दा की।

ब्रेस्ट-लिटोव्स्क की शान्ति ने, पार्टी को अवकाश दिया, जिसमें वह सोवियत सत्ता को दृढ़ करे और देश के आर्थिक जीवन को संगठित करे।

शान्ति से यह मुमकिन हुआ कि दुश्मन की ताकतों को बिखेरने के लिए, सोवियत आर्थिक व्यवस्था संगठित करने के लिए और लाल फौज बनाने के लिए, साम्राज्यवादी खेमे के परस्पर संघर्षों से (मित्र देशों के साथ, आस्ट्रिया और जर्मनी के युद्ध से, जो अभी चल रहा था) फायदा उठाया जाये।

शान्ति से सर्वहारा वर्ग के लिए यह सम्भव हुआ कि किसानों का समर्थन कायम रखे और गृहयुद्ध में गद्दार सेनापतियों को हराने के लिए शक्ति-संचय करे।

अक्टूबर क्रान्ति के दौर में, लेनिन ने बोल्शेविक पार्टी को सिखाया कि जब आगे बढ़ने के लिए परिस्थिति अनुकूल हो तब कैसे निडर होकर और दृढ़ता से आगे बढ़ना चाहिए। ब्रेस्ट-लिटोव्स्क शान्ति के दौर में, लेनिन ने पार्टी को सिखाया कि जब स्पष्टतः दुश्मन की ताकत अपने से ज्यादा हो तब पूरी शक्ति से नये हमले की तैयारी करने के लिए किस तरह व्यवस्थित ढंग से पीछे हटना चाहिए।

इतिहास ने लेनिन की नीति की सच्चाई को पूरी तरह साबित कर दिया है।

सातवीं कांग्रेस में तय किया गया कि पार्टी का नाम और पार्टी का कार्यक्रम बदल दिया जाये। पार्टी का नाम रूसी कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक)-रू.क.पा. (बो.) रखा गया। लेनिन ने प्रस्ताव किया कि हमारी पार्टी कम्युनिस्ट पार्टी कहलाये, क्योंकि यह नाम पार्टी के उद्देश्य यानी कम्युनिज्म प्राप्त करने के बिल्कुल अनुकूल था।

एक नया पार्टी कार्यक्रम तैयार करने के लिए एक विशेष कमीशन बनाया गया, जिसमें लेनिन और स्तालिन थे। लेनिन के कार्यक्रम का मसौदा आधार के रूप में मंजूर किया गया।

इस तरह, सातवीं कांग्रेस ने एक गम्भीर ऐतिहासिक महत्त्व का काम पूरा किया। उसने पार्टी की कतारों में छिपे हुए दुश्मन, 'वामपंथी कम्युनिस्ट' गुट और त्रात्स्कीपंथियों को

हराया। वह देश को साम्राज्यवादी युद्ध से अलग करने में कामयाब हुई। उसने शान्ति और अवकाश हासिल किया। उसने लाल फौज के संगठन के लिए पार्टी को वक्त दिया और उसने पार्टी के सामने यह काम रखा कि राष्ट्रीय अर्थतंत्र में समाजवादी व्यवस्था चालू करे।

8. समाजवादी निर्माण के प्रारम्भिक कदम उठाने के लिए लेनिन की योजना। गरीब किसानों की समितियाँ और कुलकों पर नियंत्रण। 'वामपंथी' समाजवादी-क्रान्तिकारियों का विद्रोह और उसका दमन। सोवियतों की पाँचवीं कांग्रेस और रूसी सोवियत समाजवादी जनतंत्र संघ के विधान की स्वीकृति।

शान्ति करके अवकाश हासिल करने के बाद, सोवियत सरकार समाजवादी निर्माण के काम में लग गयी। नवम्बर 1917 से फरवरी 1918 तक के दौर को लेनिन ने 'राजधानी पर लाल दस्तों के हमले' की मंजिल कहा था। 1918 के पूर्वार्द्ध में, सोवियत सत्ता पूँजीपतियों की आर्थिक शक्ति तोड़ने में, अपने हाथों में राष्ट्रीय अर्थतंत्र के मर्मस्थलों (मिलों, कारखानों, बैंकों, रेलों, विदेशी व्यापारी बेड़ा, वगैरह) को केन्द्रित करने में, राज्य सत्ता की पूँजीवादी मशीन चूर करने में और सोवियत सत्ता को खत्म करने के लिए क्रान्ति-विरोध की पहली कोशिशों को विजयपूर्वक कुचलने में कामयाब हुई।

लेकिन, इतना काफी नहीं था। अगर प्रगति करनी थी, तो पुरानी व्यवस्था का नाश करने के बाद नयी को बनाना भी था। इसलिए, 1918 के वसन्त में 'शोषकों की सम्पत्ति जब्त करने के बाद' समाजवादी निर्माण की नयी मंजिल की तरफ प्रगति शुरू हुई-अब तक की पायी हुई विजय को संगठन के रूप में दृढ़ करने की तरफ, सोवियत राष्ट्रीय अर्थतंत्र रचने की तरफ प्रगति शुरू हुई। लेनिन का कहना था कि समाजवादी आर्थिक व्यवस्था की नींव डालने के लिए अवकाश से ज्यादा से ज्यादा फायदा उठाना चाहिए। बोल्शेविकों को सीखना था कि नये तरीके से उत्पादन का संगठन और उसका प्रबन्ध कैसे करें। लेनिन ने लिखा था कि बोल्शेविक पार्टी रूस को विश्वास दिला चुकी है, बोल्शेविक पार्टी रूस को अमीरों से गरीबों के लिए जीत चुकी है। लेनिन ने कहा कि अब बोल्शेविक पार्टी को सीखना चाहिए कि रूस पर शासन कैसे किया जाये।

लेनिन का कहना था कि मौजूदा मंजिल में मुख्य काम यह था कि देश जो कुछ पैदा करे उसका हिसाब रखा जाये और सारी उपज के बँटवारे पर नियंत्रण रखा जाये। देश की आर्थिक व्यवस्था में मध्यवित्त लोगों की बहुतायत थी। शहरों और देहातों में लाखों छोटी मिल्कियत के लोग पूँजीवाद के लिए उपजाऊ जमीन थे। ये छोटे मालिक न तो श्रम का अनुशासन मानते थे और न नागरिक अनुशासन मानते थे। वे राज्य की तरफ से हिसाब रखने और नियंत्रण करने की व्यवस्था मानने को तैयार नहीं थे। विशेष रूप से खतरनाक बात यह थी कि इस कठिन परिस्थिति में निम्न-पूँजीवादियों में सट्टे और मुनाफाखोरी की हवा चल पड़ी थी और छोटी पूँजी वाले तथा व्यापारी जनता की जरूरतों से मुनाफा कमाने

की कोशिश करते थे।

पार्टी ने काम में ढिलाई के खिलाफ, उद्योग-धन्धों में श्रम-अनुशासन के अभाव के खिलाफ जोरदार लड़ाई शुरू की। श्रम की नयी आदतें सीखने में लोगों को देर लगती थी। इसलिए, इस दौर में श्रम-अनुशासन कायम करने के लिए संघर्ष मुख्य काम हो गया था।

लेनिन ने बताया कि उद्योग-धन्धों में समाजवादी होड़ लगाना जरूरी है, काम के हिसाब से मजदूरी देना जरूरी है; हरेक को बराबर तनख्वाह मिले, यह बात फिलहाल खत्म करनी चाहिए। लेनिन ने बताया कि सिखाने और समझाने के अलावा उन लोगों के साथ जोर-जबर्दस्ती के तरीके भी इस्तेमाल करने चाहिए जो राज्य से जितना बन सके हथियाना चाहते थे और जो लोग काहिल और मुनाफाखोर थे। लेनिन का कहना था कि नया अनुशासन-श्रम-सम्बन्धी अनुशासन, भाईचारे के सम्बन्धों का अनुशासन, सोवियत अनुशासन-एक ऐसी चीज है जिसे लाखों श्रमिक जनता अपने दिन-प्रतिदिन के अमली काम में पैदा करेगी, और "यह काम पूरा करने के लिए एक पूरा ऐतिहासिक युग लग जायेगा।" (**लेनिन ग्रंथावली**, रू. सं., खण्ड 23, पृष्ठ 44)।

लेनिन ने समाजवादी निर्माण की इन समस्याओं की चर्चा, उत्पादन के नये समाजवादी सम्बन्धों की समस्याओं की चर्चा, अपनी प्रसिद्ध कृति **सोवियत सरकार के फौरी काम** में की।

समाजवादी-क्रान्तिकारियों और मेन्शेविकों के साथ मिलकर, 'वामपंथी कम्युनिस्टों' ने इन सवालों पर भी लेनिन से संघर्ष किया। बुखारिन, आसिन्स्की वगैरह इस बात का विरोध करते थे कि अनुशासन लागू किया जाये, उद्योग-धन्धों में एक आदमी का प्रबन्ध हो, उद्योग-धन्धों में पूँजीवादी विशेषज्ञ काम करें और काम-धन्धे के कारगर तरीके लागू किये जायें। वे लेनिन पर यह कह कर कीचड़ उछालते थे कि इस नीति का मतलब पूँजीवादी परिस्थितियों की तरफ लौट चलना होगा। इसके साथ ही, 'वामपंथी कम्युनिस्ट' इस त्रात्स्कीवादी मत का प्रचार करते थे कि रूस में समाजवादी निर्माण और समाजवाद की विजय असम्भव है।

'वामपंथी कम्युनिस्टों' की 'वामपंथी' लफ्फाजी इस बात को छिपाती थी कि वे कुलकों, काहिलों और मुनाफाखोरों का समर्थन करते हैं जो अनुशासन का विरोध करते थे और राज्य द्वारा आर्थिक जीवन के संचालन के विरोधी थे, हिसाब-किताब रखने और नियंत्रण करने के विरोधी थे।

नये सोवियत उद्योग-धन्धों के संगठन के उसूल तय करने के बाद, पार्टी ने देहातों की समस्याओं में हाथ लगाया। इस समय देहातों में गरीब किसानों और कुलकों के बीच संघर्ष जोरों पर था। कुलक शक्तिशाली बन रहे थे और जमीन्दारों से छीनी हुई जमीन पर कब्जा कर रहे थे। गरीब किसानों को मदद की जरूरत थी। कुलक सर्वहारा राज्य से लड़ते थे और निश्चित भाव पर गल्ला बेचने से इनकार करते थे। वे चाहते थे कि सोवियत राज्य को भूखा मार कर उसका समाजवादी निर्माण का काम बन्द कर दिया जाये। पार्टी ने क्रान्ति-विरोधी कुलकों को कुचल देने का काम अपने सामने रखा। औद्योगिक मजदूरों के दस्ते देहातों में इस उद्देश्य से भेजे गये कि कुलकों के खिलाफ गरीब किसानों के संगठन

बनायें और उनके संघर्ष को सफल बनायें और कुलकों से फालतू गल्ले की उपज छुटवायें जो वे रोके हुए थे।

लेनिन ने लिखा था :

> “साथी मजदूरो, याद रखो कि क्रान्ति नाजुक दौर से गुजर रही है। याद रखो कि तुम्हीं क्रान्ति की रक्षा कर सकते हो, दूसरा कोई नहीं कर सकता। हमें चाहिए लाखों चुने हुए, राजनीतिक रूप से आगे बढ़े हुए मजदूर, जो समाजवाद के प्रति वफादार हों, जो घूसखोरी और चोरी के लोभ में फँस ही न सकें और जो कुलकों, मुनाफाखोरों, डाकुओं, घूसखोरों और अव्यवस्था पैदा करने वालों के खिलाफ एक फौलादी शक्ति खड़ी कर दें।” (**लेनिन ग्रंथावली**, रूसी संस्करण, खण्ड 23, पृष्ठ 25)।

लेनिन ने कहा था : “रोटी की लड़ाई समाजवाद की लड़ाई है।” यह नारा देकर, मजदूर दस्तों को देहात के जिलों में भेजने का काम संगठित किया गया। अन्न के बारे में अधिनायकत्व कायम करते हुए और निश्चित दरों पर गल्ला खरीदने के लिए जन-खाद्य-कमीसारियत की संस्थाओं को विशेषाधिकार देते हुए, कई आज्ञा-पत्र जारी किये गये।

11 जून, 1918 को, **गरीब किसानों की समितियाँ** बनाने के लिए एक आज्ञा-पत्र निकाला गया। इन समितियों ने कुलकों के खिलाफ संघर्ष में, जब्त की हुई जमीन को फिर से बाँटने और खेती के औजार बाँटने में, कुलकों से फालतू अनाज इकट्ठा करने में और मजदूर केन्द्रों और लाल फौज को अन्न भेजने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। कुलकों की 5 करोड़ हेक्टेर भूमि गरीब और मध्यम किसानों के हाथ में आ गयी। कुलकों के पैदावार के साधनों का एक बड़ा भाग जब्त कर लिया गया और गरीब किसानों को दे दिया गया।

गरीब किसानों की समितियों का बनना देहातों में समाजवादी क्रान्ति के विकास की अगली मंजिल थी। गाँवों में ये समितियाँ सर्वहारा अधिनायकत्व का गढ़ थीं। ज्यादातर इन्हीं के जरिये किसानों में लाल फौज के लिए भर्ती की गयी।

गाँव के जिलों में सर्वहारा आन्दोलन और गरीब किसानों की समितियों के संगठन ने देहातों में सोवियत सत्ता को मजबूत किया। मध्यम किसानों को सोवियत सत्ता की ओर लाने में इनका जबर्दस्त राजनीतिक महत्त्व था।

1918 के अन्त में, जब उनका काम खत्म हो गया तब गरीब किसानों की समितियाँ गाँव की सोवियतों में मिला दी गयीं। इस तरह, उनका अस्तित्व खत्म हुआ।

4 जुलाई, 1918 को शुरू होने वाली सोवियतों की पाँचवीं कांग्रेस में, ‘वामपंथी’ समाजवादी-क्रान्तिकारियों ने कुलकों की हिमायत में लेनिन पर बड़ा कड़ा हमला किया। उन्होंने माँग की कि कुलकों के खिलाफ लड़ाई बन्द की जाये और देहातों में मजदूरों के अन्न-सम्बन्धी दस्ते भेजना खत्म किया जाये। जब ‘वामपंथी’ समाजवादी-क्रान्तिकारियों ने देखा कि कांग्रेस का बहुमत उनकी नीति का दृढ़ता से विरोध करता है, तो उन्होंने मास्को में बगावत शुरू कर दी। उन्होंने त्र्योखस्वयातितेल्स्की मार्ग पर कब्जा कर लिया और वहाँ से क्रेमलिन पर गोलाबारी करने लगे। बोल्शेविकों ने कुछ घण्टों में ही इस मूर्खतापूर्ण

विद्रोह को दबा दिया। 'वामपंथी' समाजवादी-क्रान्तिकारियों ने देश के दूसरे हिस्सों में भी बगावत की कोशिश की, लेकिन हर जगह यह विद्रोह तुरन्त ही दबा दिये गये।

सोवियत-विरोधी 'दक्षिणपंथी और त्रात्स्कीपंथियों के गुट' पर चलने वाले मुकदमे ने अब यह निश्चित कर दिया है कि 'वामपंथी' समाजवादी-क्रान्तिकारियों का विद्रोह बुखारिन और त्रात्स्की की जानकारी और उनकी रजामन्दी से हुआ था। सोवियत सत्ता के खिलाफ बुखारिनवादियों, त्रात्स्कीपंथियों ओर 'वामपंथी' समाजवादी-क्रान्तिकारियों के आम क्रान्ति-विरोधी षड्यंत्र का ही यह एक अंग था।

इसी मौके पर, ब्लूमकिन नामक एक 'वामपंथी' समाजवादी-क्रान्तिकारी ने, जो आगे चलकर त्रात्स्की का दलाल बना, जर्मनी से युद्ध का उकसावा पैदा करने के लिए, जर्मन दूतावास में मास्को-स्थित जर्मन राजदूत मीरबाख की हत्या कर दी। लेकिन, सोवियत सरकार ने युद्ध नहीं होने दिया और क्रान्ति-विरोधियों की उकसावा पैदा करने वाली चालें व्यर्थ कर दीं।

सोवियतों की पाँचवीं कांग्रेस ने पहला सोवियत विधान, रूसी सोवियत संघीय समाजवादी जनतंत्र का विधान स्वीकार किया।

सारांश

फरवरी से अक्टूबर 1917 तक आठ महीनों में, बोल्शेविक पार्टी ने मजदूर वर्ग के बहुमत को अपनी तरफ करने, सोवियतों में अपना बहुमत स्थापित करने और समाजवादी क्रान्ति के लिये लाखों किसानों का समर्थन हासिल करने का बहुत ही कठिन काम पूरा किया। उसने निम्न-पूँजीवादी पार्टियों (समाजवादी-क्रान्तिकारियों, मेन्शेविकों और अराजकतावादियों) की नीति का पर्दाफाश करके और पग-पग पर यह दिखला कर कि यह नीति मजदूर जनता के हितों के खिलाफ है, आम जनता को इनके असर से बचाया। बोल्शेविक पार्टी ने युद्ध के मोर्चे पर और उसके पीछे अक्टूबर समाजवादी क्रान्ति के लिए आम जनता को तैयार करने के लिए बड़े पैमाने पर राजनीतिक काम किया।

इस दौर में, पार्टी के इतिहास में निर्णायक महत्त्व की घटनाएँ थीं : विदेश में निर्वासन से लेनिन का आना, उनका अप्रैल का सैद्धान्तिक निबन्ध (अप्रैल थीसिस), अप्रैल की पार्टी कान्फ्रेंस और छठी पार्टी कांग्रेस। पार्टी के फैसले से मजदूर वर्ग को बल मिला और विजय में उसका विश्वास बढ़ा। इन फैसलों में मजदूरों को क्रान्ति की महत्त्वपूर्ण समस्याओं के समाधान मिले। अप्रैल कान्फ्रेंस ने पार्टी के सारे काम को पूँजीवादी जनवादी क्रान्ति से समाजवादी क्रान्ति की तरफ बढ़ने के संघर्ष की ओर लगाया। छठी कांग्रेस ने पूँजीपतियों और उनकी अस्थायी सरकार के खिलाफ सशस्त्र विद्रोह करने के लिए पार्टी को आगे बढ़ाया।

समझौतावादी समाजवादी-क्रान्तिकारी और मेन्शेविक पार्टियों, अराजकतावादियों और दूसरी गैर-कम्युनिस्ट पार्टियों ने अपने विकास का चक्र पूरा कर लिया : अक्टूबर क्रान्ति से पहले ही वे सब पूँजीवादी पार्टियाँ बन गयी थीं और वे पूँजीवादी व्यवस्था की रक्षा करने और उसे अटूट बनाये रखने के लिए लड़ीं। बोल्शेविक पार्टी ही एक पार्टी थी जिसने

पूँजीपतियों का तख्ता उलटने के लिए और सोवियतों की सत्ता कायम करने के लिए आम जनता के संघर्ष का नेतृत्व किया।

इसके साथ ही, पार्टी के भीतर समर्पणवादियों-जिनोवियेव, कामेनेव, राइकोव, बुखारिन, त्रात्स्की और प्याताकोव-की कोशिशों को बोल्शेविकों ने नाकाम कर दिया। ये कोशिशें इसलिए थीं कि पार्टी को समाजवादी क्रान्ति के रास्ते से हटाया जाये।

बोल्शेविक पार्टी के नेतृत्व में, गरीब किसानों के सहयोग से और फौजियों और जहाजियों की मदद से मजदूर वर्ग ने पूँजीपतियों की सत्ता खत्म कर दी, सोवियतों की सत्ता कायम की, एक नयी तरह का राज्य-समाजवादी सोवियत राज्य-कायम किया, जमीन पर जमीन्दारों की मिल्कियत खत्म की, किसानों के काम के लिए जमीन दे दी, देश की तमाम भूमि का राष्ट्रीकरण किया, पूँजीपतियों की सम्पत्ति जब्त की, रूस को युद्ध से हटाया और शान्ति हासिल की, यानी बहुत जरूरी अवकाश प्राप्त किया और इस तरह, समाजवादी निर्माण के विकास के लिए परिस्थितियाँ पैदा कीं।

अक्टूबर समाजवादी क्रान्ति ने पूँजीवाद का नाश किया, पूँजीपतियों से पैदावार के साधन छीन लिये और मिलों, कारखानों, रेलों और बैंकों को तमाम जनता की सम्पत्ति, सार्वजनिक सम्पत्ति बना दिया।

अक्टूबर समाजवादी क्रान्ति ने सर्वहारा अधिनायकत्व कायम किया और विशाल देश की हुकूमत का काम मजदूर वर्ग को सौंप दिया। इस तरह, उसे शासक वर्ग बना दिया।

इस तरह, अक्टूबर की समाजवादी क्रान्ति ने मनुष्य जाति के इतिहास में एक नया युग, सर्वहारा क्रान्तियों का युग आरम्भ किया।

आठवाँ अध्याय

विदेशी फौजी हस्तक्षेप और गृहयुद्ध के दौर में बोल्शेविक पार्टी

(1918-1920)

1. विदेशी फौजी हस्तक्षेप की शुरुआत। गृहयुद्ध का पहला दौर।

ऐसे समय जबकि पश्चिम में युद्ध अब भी पूरी तरह चालू था, ब्रेस्ट-लिटोव्स्क की शान्ति कायम होने से और सोवियत सत्ता द्वारा एक के बाद एक कई क्रान्तिकारी आर्थिक कदम उठाने पर सोवियत राज्य के दृढ़ होने से पश्चिमी साम्राज्यवादियों में, खास तौर से मित्र-देशों के साम्राज्यवादियों में, भारी खलबली मच गयी।

मित्र देशों के साम्राज्यवादियों को डर था कि जर्मनी और रूस के बीच शान्ति होने से युद्ध में जर्मनी की हालत सुधर सकती है और उसी हिसाब से उनकी अपनी फौजों की हालत बिगड़ सकती है। इसके अलावा, उन्हें डर था कि रूस और जर्मनी में शान्ति कायम होने से सभी देशों में और सभी मोर्चों पर शान्ति की इच्छा जोर पकड़ सकती है और इस तरह, युद्ध चलाने में बाधा पड़ सकती है और साम्राज्यवादियों का उद्देश्य खटाई में पड़ सकता है। अन्त में, एक विशाल देश की धरती पर वे सोवियतों की सत्ता की मौजूदगी से डरते थे। सोवियत सत्ता ने पूँजीपतियों का तख्ता उलटने के बाद घर में जो सफलताएँ पायी थीं, उनका रंग पश्चिम के मजदूरों और सैनिकों पर चढ़ सकता था। हो सकता था कि लम्बी खिंचने वाली लड़ाई से खूब असन्तुष्ट होकर, मजदूर और सैनिक रूसियों की लीक पर चल पड़ें और अपनी संगीनें अपने ऊपर जुल्म ढाने वालों और अपने मालिकों के खिलाफ ही मोड़ दें। इसलिए, मित्र देशों की हुकूमतों ने सोवियत सरकार का तख्ता उलटने के लिए और पूँजीवादी हुकूमत कायम करने के लिए रूस में हथियारबन्द दखलन्दाजी करने का फैसला किया। वे चाहते थे कि उनकी कायम की हुई पूँजीवादी हुकूमत देश में पूँजीवादी व्यवस्था बहाल कर दे, जर्मनों के साथ शान्ति-सन्धि रद्द कर दे और जर्मनी और आस्ट्रिया के खिलाफ फिर से फौजी मोर्चा कायम कर दे।

मित्र-देशों के साम्राज्यवादी इस धूर्त काम में इस कारण और भी जुट गये कि उनकी समझ में सोवियत शासन डावाँडोल था। उन्हें जरा भी सन्देह नहीं था कि सोवियत सरकार के दुश्मनों की थोड़ी सी मदद से ही उनका जल्द ही खात्मा होना अनिवार्य हो जायेगा।

सोवियत सत्ता की सफलताओं और उसके मजबूत होने से सत्ता खोने वाले वर्ग-जमीन्दार और पूँजीपति-और भी बौखला उठे। हारी हुई पार्टियाँ-संवैधानिक जनवादी, मेन्शेविक, समाजवादी-क्रान्तिकारी, अराजकतावादी और सभी तरह के राष्ट्रवादी सोवियत सत्ता की सफलताओं और उसकी मजबूती से परेशान थे। यही हाल गद्दार जनरलों, कज्जाक अफसरों वगैरह का था।

विजयी अक्टूबर क्रान्ति की शुरुआत के दिनों से ही, यह सब विरोधी लोग गला फाड़-फाड़ कर चिल्लाने लगे थे कि रूस में सोवियत सत्ता की जड़ जम ही नहीं सकती, उसका नाश निश्चित है और एक या दो हफ्तों में या एक महीने में या ज्यादा से ज्यादा दो या तीन महीनों में सोवियत सत्ता खत्म हो जायेगी। लेकिन दुश्मनों के कोसने के बावजूद, जब सोवियत सत्ता बनी ही रही और मजबूत भी होती गयी तो रूस में उसके दुश्मनों को मजबूरन मानना पड़ा कि उन्होंने जितना सोचा था उससे वह ज्यादा मजबूत निकली और उसके खात्मे के लिए क्रान्ति-विरोधी शक्तियों को बहुत कोशिश करनी पड़ेगी और भारी संघर्ष करना पड़ेगा। इसलिए उन्होंने बड़े पैमाने पर क्रान्ति-विरोधी बगावत का काम शुरू करने का फैसला किया। उन्होंने क्रान्ति-विरोधी शक्तियों को बटोरने, फौजी कार्यकर्ताओं को इकट्ठा करने और खास तौर से कज्जाक और कुलक इलाकों में विद्रोह संगठित करने का फैसला किया।

इस तरह 1918 के पूर्वार्द्ध में ही, ऐसे दो निश्चित दल बन गये जो सोवियत सत्ता को खत्म करने की मुहिम शुरू करने के लिए तैयार थे। इनमें एक तो थे मित्र देशों के विदेशी साम्राज्यवादी और दूसरे थे घर के क्रान्ति-विरोधी।

इनमें से किसी दल के पास भी अकेले सोवियत सत्ता को खत्म करने के लिए जरूरी साधन नहीं थे । रूस में, क्रान्ति-विरोधियों के पास कुछ फौजी कार्यकर्ता और लड़ने के लिए कुछ आदमी थे। ये लोग ज्यादातर कज्जाकों के उच्च वर्गों और कुलकों में से थे। सोवियत सत्ता के खिलाफ बगावत शुरू करने के लिए यह काफी थे। लेकिन, इनके पास न तो पैसा था, न हथियार ही। दूसरी तरफ, विदेशी साम्राज्यवादियों के पास पैसा भी था और हथियार भी, लेकिन वे हस्तक्षेप करने के लिए काफी तादाद में अपनी फौज को दूसरे मोर्चों से 'छुट्टी' न दे सकते थे। वे ऐसा इसी वजह से न कर सकते थे कि जर्मनी और आस्ट्रिया से युद्ध के लिए उन्हें इन फौजों की जरूरत थी, बल्कि इसलिए भी कि सोवियत सत्ता के खिलाफ युद्ध में शायद ये फौजें पूरी तरह भरोसे की साबित न हों।

सोवियत सत्ता के खिलाफ संघर्ष की परिस्थितियों ने यह आवश्यक कर दिया कि दोनों सोवियत विरोधी दल, विदेशी और घरेलू, एका कायम करें। 1918 के पूर्वार्द्ध में, यह एका कायम कर लिया गया।

सोवियत सत्ता के खिलाफ इस तरह घर में उसके दुश्मनों की क्रान्ति-विरोधी बगावतों का समर्थन पाकर, विदेशी फौजी हस्तक्षेप शुरू हुआ।

रूस में अवकाश का दौर खत्म हुआ और गृहयुद्ध का दौर शुरू हुआ। यह गृहयुद्ध सोवियत सत्ता के देशी और विदेशी दुश्मनों के खिलाफ रूस की राष्ट्रीयताओं के मजदूरों और किसानों का युद्ध था।

युद्ध का ऐलान किये बिना ही ब्रिटेन, फ्रांस, जापान और अमरीका के साम्राजयवादियों ने फौजी हस्तक्षेप शुरू किया, हालाँकि यह हस्तक्षेप युद्ध था, रूस के खिलाफ युद्ध था और साथ ही सबसे घटिया किस्म का युद्ध था। ये 'सभ्य' डाकू चुपके से और चोरी से रूसी समुद्र तट पर आ पहुँचे और रूस की धरती पर अपनी फौजें उतार दीं।

अंग्रेजों और फ्रांसीसियों ने उत्तर में फौजें उतारीं, आरखांगेल्स्क और मूरमान्स्क पर कब्जा कर लिया, स्थानीय गद्दारों की बगावत की मदद की, सोवियतों को खतम किया और गद्दारों की 'उत्तरी रूस की हुकूमत' कायम की।

जापानियों ने व्लादीवोस्तक में फौजें उतारीं, समुद्र तट के सूबे पर कब्जा कर लिया, सोवियतों को तितर-बितर कर दिया और गद्दार बागियों की मदद की, जिन्होंने आगे चलकर पूँजीवादी व्यवस्था बहाल की।

उत्तरी काकेशस में, अंग्रेजों और फ्रांसीसियों की मदद से जनरल कार्निलोव, अलेक्सियेव और देनीकिन ने एक गद्दार 'स्वयंसेवक सेना' बनायी, कज्जाकों के उच्च वर्गों की बगावत करायी और सोवियतों के खिलाफ कार्रवाई शुरू की।

दोन नदी के किनारे, जनरल क्रासनोव और मामोन्तोव ने जर्मन साम्राज्यवादियों की गुप्त मदद से (जर्मन खुल कर उन्हें मदद देने से हिचकिचाते थे, क्योंकि जर्मनी और रूस के बीच शान्ति-सन्धि हो चुकी थी) दोन प्रदेश के कज्जाकों की बगावत कराई, दोन प्रदेश पर कब्जा कर लिया और सोवियतों के खिलाफ कार्रवाई शुरू की।

मध्य वोल्गा प्रदेश और साइबेरिया में, अंग्रेजों और फ्रांसीसियों ने चेकोस्लोवाक दस्तों से विद्रोह कराया। इन दस्तों में युद्ध-बन्दी थे। इन्हें सोवियत सरकार से साइबेरिया और सुदूरपूर्व होते हुए घर लौटने की अनुमति मिल गयी थी। लेकिन, रास्ते में समाजवादी-क्रान्तिकारियों और अंग्रेजों तथा फ्रांसीसियों ने इन्हें सोवियत सत्ता के खिलाफ विद्रोह करने के लिए इस्तेमाल किया। इन दस्तों का विद्रोह वोल्गा प्रदेश और साइबेरिया में कुलकों के विद्रोह के लिए और वोत्किन्स्क और इजेव्स्क कारखानों के मजदूरों के लिए, जो अब भी समाजवादी-क्रान्तिकारियों के असर में थे, बगावत की रणभेरी बन गया। वोल्गा प्रदेश में, समारा में, एक गद्दार समाजवादी-क्रान्तिकारी हुकूमत और साइबेरिया में, ओम्स्क में, एक गद्दार हुकूमत कायम की गयी।

अंग्रेज-फ्रांसीसी-जापानी-अमरीकी गुट के हस्तक्षेप में जर्मनी ने कोई हिस्सा न लिया और न वह ले सकता था, और किसी वजह से नहीं तो इसी वजह से कि वह इस गुट से युद्ध कर रहा था। लेकिन, इसके बावजूद और रूस और जर्मनी के बीच शान्ति सन्धि होने पर भी, किसी भी बोल्शेविक को इसमें सन्देह न था कि कैसर विलियम की सरकार सोवियत रूस की वैसी ही कट्टर दुश्मन है जैसे कि अंग्रेज-फ्रांसीसी-जापानी-अमरीकी हमलावर थे और वास्तव में, जर्मन साम्राज्यवादियों ने सोवियत रूस को अकेले करने, उसे कमजोर बनाने और उसका नाश करने की भरसक कोशिश की। उन्होंने उससे उक्रेन छीन लिया; यह तो सही है कि उन्होंने गद्दार उक्रेनी रादा[1] से 'सन्धि' के अनुसार ही ऐसा

1. राष्ट्रवादी क्रान्ति-विरोधी उक्रेनी पूँजीपतियों की सरकार, जिसने क्रान्ति का गला घोंट देने के लिए आस्ट्रिया-जर्मनी के साम्राज्यवादियों की फौजों को उक्रेन में बुलाया था-अं. अनु.

किया। रादा के प्रार्थना करने पर, वे अपनी फौजें ले आये और निर्दयता से उक्रेनी जनता को लूटने और सताने लगे और उक्रेनी जनता को मना कर दिया कि सोवियत रूस से किसी भी तरह का सम्बन्ध न रखे। उन्होंने सोवियत रूस से ट्रांस-काकेशिया को अलग कर दिया। जार्जिया और अजरबैजान के राष्ट्रवादियों की प्रार्थना पर वहाँ जर्मन और तुर्क फौजें भेजीं और तिफलिस और बाकू में वे शासक बन बैठे। उन्होंने जनरल क्रासनोव को, जिसने दोन प्रदेश में सोवियत सत्ता के खिलाफ बगावत करायी थी, ढेर के ढेर हथियार और खाने-पीने का सामान दिया; हालाँकि यह सच है कि यह सब उन्होंने खुलेआम नहीं किया।

इस तरह, सोवियत रूस अपने अन्न, कच्चे माल और ईंधन के मुख्य स्रोतों से काट दिया गया।

उन दिनों सोवियत रूस की हालत बहुत कठिन थी। गोश्त और रोटी की कमी थी। मजदूर भूखे रहते थे। मास्को और पेत्रोग्राद में, उन्हें हर दूसरे दिन 1/8 पौण्ड रोटी का राशन दिया जाता था और कभी-कभी ऐसा भी होता था कि रोटी दी ही नहीं जाती थी। कारखाने बन्द थे या करीब-करीब बन्द थे, क्योंकि कच्चे माल और ईंधन का टोटा था। लेकिन, मजदूर वर्ग ने हिम्मत न हारी। और, न बोल्शेविक पार्टी ने हिम्मत हारी। उस समय की बेहिसाब कठिनाइयों को खत्म करने के लिए जो जिन्दगी और मौत की लड़ाई चली, उसने दिखा दिया कि मजदूर वर्ग के अन्दर कितनी अथाह शक्ति छिपी हुई है और बोल्शेविक पार्टी का मान कितना जबर्दस्त है।

पार्टी ने ऐलान किया कि पूरा देश एक हथियारबन्द खेमा है। पार्टी ने देश के आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक जीवन को युद्ध काल के अनुरूप ढाला। सोवियत सरकार ने घोषणा की कि 'समाजवादी पितृभूति खतरे में हैं', और उसकी रक्षा में उठ खड़े होने के लिए जनता का आह्वान किया। लेनिन ने नारा दिया : 'सब कुछ मोर्चे के लिए!', और लाखों मजदूर और किसान लाल फौज में भर्ती हुए और मोर्चे के लिये चल पड़े। पार्टी और नौजवान कम्युनिस्ट सभा के आधे सदस्य मोर्चे पर गये। पार्टी ने **पितृभूमि के लिये युद्ध** के लिए जनता को जगाया। यह युद्ध विदेशी हमलावरों और क्रान्ति से पछाड़े हुए शोषक वर्गों की बगावत के खिलाफ था। लेनिन द्वारा संगठित मजदूर-किसान रक्षा-समिति ने मोर्चे पर कुमुक, रसद, कपड़े और हथियार भेजने के काम का संचालन किया। अनिवार्य सैनिक सेवा के बदले स्वयंसेवकों की भर्ती शुरू होने से, लाल फौज में लाखों नये जवान आये और बहुत जल्द उसकी तादाद दस लाख जवानों से ऊपर हो गयी।

हालाँकि देश की हालत नाजुक थी और तरुण लाल फौज अभी मजबूत न थी, फिर भी सुरक्षा के लिए जो कदम उठाये गये, उनका पहला फल तुरन्त मिला। जनरल क्रासनोव समझता था कि जारित्सिन पर उसका कब्जा हो ही जायेगा, लेकिन वहाँ से उसे पीछे हटना पड़ा और उसे दोन नदी के पार खदेड़ दिया गया। जनरल देनीकिन की कार्रवाई उत्तरी काकेशस के छोटे इलाके में सीमित हो गई। और, जनरल कार्निलोव लाल फौज के खिलाफ लड़ते हुए मारा गया। चेकोस्लोवाक और गद्दार समाजवादी-क्रान्तिकारी दस्ते कजान, सिम्बिर्स्क और समारा से निकाल दिये गये और यूराल की तरफ खदेड़ दिये गये।

यारोस्लाव्ल में गद्दार सेविकोव की अगुवाई में बगावत हुई थी, मास्को में अंग्रेजी मिशन के प्रधान-लॉकहार्ट-ने उसका संगठन किया था। यह विद्रोह दबा दिया गया और खुद लाकहार्ट गिरफ्तार कर लिया गया। समाजवादी-क्रान्तिकारियों ने कामरेड उरित्स्की और बोलोदास्की की हत्या की थी और लेनिन के जीवन पर भी नीचतापूर्ण हमला किया था। बोल्शेविकों के खिलाफ उनके श्वेत आतंक का बदला लेने के लिए उन पर लाल आतंक ढाया गया, और मध्य रूस के हर महत्त्वपूर्ण शहर से वे पूरी तरह खदेड़ दिये गये।

तरुण लाल फौज परिपक्व हुई और युद्ध में तपकर निखरी।

लाल फौज को दृढ़ करने और उसे राजनीतिक शिक्षा देने में और उसके अनुशासन तथा लड़ाकू योग्यता को बढ़ाने में कम्युनिस्ट कमिसारों का काम निर्णायक महत्त्व का था।

लेकिन, बोल्शेविक पार्टी जानती थी कि यह लाल फौज की आरम्भिक सफलताएँ ही हैं, निर्णायक सफलताएँ नहीं हैं। उसे मालूम था कि नयी और ज्यादा गम्भीर लड़ाइयाँ आगे होने को हैं, और देश शत्रु से काफी दिनों तक और जम कर लड़ने के बाद ही खोये हुए अन्न, कच्चे माल और ईंधन के प्रदेश फिर से हासिल कर सकता है। इसलिए, बोल्शेविकों ने लम्बी लड़ाई चलाने के लिए जोरदार तैयारियाँ कीं और फैसला किया कि सारे देश को मोर्चे की सेवा में लगा दिया जाये। सोवियत सरकार ने **युद्धकालीन कम्युनिज्म** लागू किया। बड़े पैमाने के उद्योग-धन्धों के अलावा, उसने मध्यम और छोटे उद्योग-धन्धे भी अपने अधिकार में कर लिये, जिससे कि फौज और खेतिहर जनता को देने के लिए रसद इकट्ठी की जा सके। उसने गल्ले के व्यापार पर इजारेदारी लागू की, गल्ले में व्यक्तिगत व्यापार बन्द कर दिया और फालतू अनाज जब्त करने की व्यवस्था कायम की। इस व्यवस्था के अनुसार, किसानों के पास जो कुछ फालतू उपज होती, उसकी रजिस्ट्री होती थी और निश्चित भाव पर राज्य उसे खरीद लेता था जिससे कि फौज और मजदूरों को सामान भेजने के लिए गल्ला इकट्ठा किया जा सके। अन्त में, उसने सभी वर्गों के लिए अनिवार्य श्रम सेवा लागू की। पूँजीपतियों के लिए शारीरिक श्रम लाजिमी करके और इस तरह मोर्चे के ज्यादा जरूरी कामों के लिए मजदूरों को छुट्टी देकर, पार्टी इस उसूल को अमल में ला रही थी : 'जो काम नहीं करेगा, वह खायेगा भी नहीं।'

राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए जो अभूतपूर्व कठिन परिस्थितियाँ थीं, उन्हीं से ये सब कदम उठाना जरूरी हुआ। ये सब कदम अस्थायी थे, और कुल मिला कर इनको युद्धकालीन कम्युनिज्म कहा जाता था।

देश ने अपने को लम्बे और कठिन गृहयुद्ध के लिए, सोवियत सत्ता के देशी और विदेशी शत्रुओं के खिलाफ युद्ध के लिए तैयार किया। 1918 के अन्त तक, देश को फौज की ताकत तिगुनी बढ़ानी पड़ी और इस फौज के लिए रसद इकट्ठी करनी पड़ी।

लेनिन ने उस समय कहा था :

> "हमने फैसला किया था कि वसन्त तक दस लाख फौज हो जाये। अब हमें तीस लाख फौज चाहिए। यह फौज हमें मिल सकती है और यह फौज हम तैयार कर लेंगे।"

2. युद्ध में जर्मनी की हार। जर्मनी में क्रान्ति। तीसरे इण्टरनेशनल की स्थापना। आठवीं पार्टी कांग्रेस।

सोवियत देश जब विदेशी हस्तक्षेप की ताकतों के खिलाफ नयी लड़ाइयों की तैयारी कर रहा था, तब पश्चिम में युद्ध करने वाले देशों के अन्दर, मोर्चे पर और पीछे भी, निर्णायक घटनाएँ घट रही थीं। युद्ध और अन्न संकट से, जर्मनी और आस्ट्रिया का दम घुट रहा था। ब्रिटेन, फ्रांस और अमरीका तो माल के नये स्रोतों का उपयोग कर रहे थे, लेकिन जर्मनी और आस्ट्रिया अपनी थोड़ी सी बची-खुची आखिरी पूँजी खर्च किये डाल रहे थे। हालत यह थी कि जर्मनी और आस्ट्रिया एकदम पस्ती की मंजिल तक पहुँच कर अब हारे और तब हारे हो रहे थे।

इसके साथ ही, जर्मनी और आस्ट्रिया की जनता इस घातक और खत्म न होने वाली लड़ाई के खिलाफ और उसे पस्ती और भुखमरी की दशा में डालने वाली अपनी साम्राज्यवादी हुकूमतों के खिलाफ गुस्से से उबल रही थी। अक्टूबर क्रान्ति के इन्कलाबी असर का भी जबर्दस्त प्रभाव पड़ा। ब्रेस्ट-लिटोव्स्क की शान्ति होने से पहले ही, सोवियत रूस से युद्ध के दरअसल खत्म होने और उसके साथ सन्धि करने से पहले ही, सोवियत सैनिकों का आस्ट्रिया और जर्मनी के सैनिकों से भाईचारे के व्यवहार का भी ऐसा ही असर पड़ा। रूस की जनता ने अपनी साम्राज्यवादी हुकूमत का तख्ता पलट कर घृणित युद्ध का खात्मा कर दिया था। आस्ट्रिया और जर्मनी के मजदूरों के लिए यह बात एक अच्छा सबक बन गयी। जो जर्मन सैनिक पूर्वी मोर्चे पर भेजे गये थे और जो ब्रेस्ट-लिटोव्स्क की शान्ति के बाद पश्चिमी मोर्चे पर भेजे गये थे, वे उस मोर्चे पर सोवियत सैनिकों के साथ अपने भाईचारे की बात कहते थे और बतलाते थे कि सोवियत सैनिकों ने युद्ध से कैसे छुटकारा पाया। इससे जर्मन फौज का युद्ध करने के लिए मनोबल कमजोर हुए बिना न रहा। इन्हीं कारणों से, आस्ट्रिया की फौज पहले से ही टूटने लगी थी।

इन सभी कारणों से, जर्मन सैनिकों के अन्दर शान्ति की इच्छा और तीव्र हुई। उनमें पहले जैसी लड़ने की योग्यता न रही और वे मित्र देशों की फौजों के हमले के सामने पीछे हटने लगे। नवम्बर 1918 में, जर्मनी में क्रान्ति फूट पड़ी और विलियम और उसकी हुकूमत का तख्ता उलट दिया गया।

जर्मनी को मजबूरन हार माननी और शान्ति के लिए प्रार्थना करनी पड़ी।

इस तरह, पलक मारते ही जर्मनी पहले दर्जे की शक्ति से दूसरे दर्जे की शक्ति बन गया।

जहाँ तक सोवियत राज्य की स्थिति का सवाल था, इस घटना से कुछ नुकसान हुआ; क्योंकि सोवियत सत्ता के खिलाफ जिन मित्र-देशों ने हथियारबन्द हस्तक्षेप शुरू किया था, वे यूरोप और एशिया में मुख्य शक्ति बन गये। अब वे सोवियत देश में और सक्रिय रूप से हस्तक्षेप कर सकते थे, उसकी नाकेबन्दी कर सकते थे और सोवियत राज्य के गले में अपना फन्दा और मजबूत कर सकते थे। वास्तव में हुआ भी यही, जैसा कि हम आगे देखेंगे। दूसरी तरफ, इस घटना से लाभ भी था, जो हानि से बढ़कर था और जिसने

बुनियादी तौर से सोवियत रूस की स्थिति को सुधारा। सबसे पहले तो सोवियत सरकार अब ब्रेस्ट-लिटोव्स्क की डाकुओं वाली शान्ति-सन्धि खत्म कर सकती थी, हर्जाना देना बन्द कर सकती थी और जर्मन साम्राज्यवाद के जुवे से एस्तोनिया, लातविया, बेलाइस, लिथुआनिया, उक्रेन और ट्रांस-काकेशिया को मुक्त करने के लिए खुला फौजी और राजनीतिक संघर्ष आरम्भ कर सकती थी। दूसरे, और मुख्यतः यूरोप के बीच में-जर्मनी में-एक जनतांत्रिक व्यवस्था और मजदूर और सैनिक प्रतिनिधियों की सोवियतों का होना यूरोप के देशों पर क्रान्ति का रंग चढ़ाये बिना न रह सकता था। दरअसल उसने क्रान्ति का रंग चढ़ाया। और इससे रूस में सोवियत सत्ता की स्थिति और मजबूत हुए बिना न रह सकती थी। यह सही है कि जर्मन क्रान्ति समाजवादी न होकर पूँजीवादी क्रान्ति थी। सोवियतें पूँजीवादी संसद की ताबेदार संस्थाएँ थीं, क्योंकि उनमें सामाजिक-जनवादियों का प्रभुत्व था, जो रूसी मेन्शेविकों की तरह समझौतावादी थे। वास्तव में, जर्मन क्रान्ति की यही कमजोरी थी। यह क्रान्ति कितनी कमजोर थी, यह मसलन इसी बात से जाहिर होता है कि उसने जर्मन गद्दारों को रोजा लक्जेमबर्ग और कार्ल लीब्कनेख्त जैसे प्रमुख क्रान्तिकारियों को बिना चीं-चपड़ किये कत्ल कर डालने दिया। फिर भी, वह क्रान्ति ही थी। विलियम का तख्ता उलट दिया गया था और मजदूरों ने अपनी बेड़ियाँ फेंक दी थीं। यह बात खुद ही पश्चिम में क्रान्ति का ज्वार उभारने वाली, यूरोप के देशों में क्रान्ति की उठान को बुलावा देने वाली थी।

यूरोप में क्रान्ति का ज्वार उठने लगा। आस्ट्रिया में क्रान्तिकारी आन्दोलन शुरू हुआ और हंगरी में सोवियत गणतंत्र कायम हुआ। क्रान्ति के उठते हुए ज्वार के साथ, कम्युनिस्ट पार्टियाँ ऊपर आयीं।

कम्युनिस्ट पार्टियों की एकता के लिए, एक तीसरी कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल बनाने के लिए अब एक वास्तविक आधार मौजूद था।

मार्च 1919 में, लेनिन के नेतृत्व में बोल्शेविकों की पहलकदमी पर, मास्को में विभिन्न देशों की कम्युनिस्ट पार्टियों की पहली कांग्रेस हुई और उसने कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल की स्थापना की। हालाँकि नाकेबन्दी और साम्राज्यवादी दमन की वजह से बहुत से प्रतिनिधि मास्को नहीं आ सके थे, फिर भी इस पहली कांग्रेस में यूरोप और अमरीका के सबसे महत्त्वपूर्ण देशों का प्रतिनिधित्व हुआ था। कांग्रेस के काम का पथ-प्रदर्शन लेनिन ने किया।

पूँजीवादी जनतंत्र और सर्वहारा अधिनायकत्व के विषय पर, लेनिन ने रिपोर्ट पेश की। उन्होंने सोवियत व्यवस्था का महत्त्व प्रकट किया और दिखलाया कि मेहनतकश जनता के लिए वह वास्तविक जनतंत्र है। कांग्रेस ने सभी देशों के मजदूरों के नाम एक घोषणापत्र मंजूर किया। इसमें उन्हें बुलावा दिया गया कि तमाम दुनिया में सर्वहारा अधिनायकत्व और सोवियतों की विजय के लिए जम कर संघर्ष करें।

कांग्रेस ने तीसरे कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल की कार्यकारिणी समिति स्थापित की।

इस तरह, एक नयी तरह का अन्तरराष्ट्रीय क्रान्तिकारी सर्वहारा संगठन, कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल, मार्क्सवादी-लेनिनवादी इण्टरनेशनल कायम हुआ।

मार्च 1919 में, हमारी पार्टी की आठवीं कांग्रेस हुई। विरोधी तत्वों से संघर्ष के दौर में

यह कांग्रेस हुई। एक तरफ, सोवियत सत्ता के खिलाफ मित्र-देशों का प्रतिक्रियावादी गुट और मजबूत हो गया था और दूसरी तरफ, यूरोप में, खास तौर से हारे हुए देशों में, क्रान्ति के उठते हुए ज्वार ने सोवियत देश की स्थिति को काफी सुधार दिया था।

कांग्रेस में पार्टी के 3,13,766 सदस्यों की तरफ से 301 वोट देने वाले और 102 बोलने वाले लेकिन वोट न दे सकने वाले प्रतिनिधि आये।

अपने प्रारम्भिक भाषण में, लेनिन ने स्वेर्दलोव के प्रति श्रद्धांजलि भेंट की जो बोल्शेविक पार्टी के बहुत ही ऊँचे, प्रतिभाशाली संगठनकर्ता थे और कांग्रेस के शुरू होने से पहले ही जिनका देहान्त हो गया था।

कांग्रेस ने एक नया पार्टी कार्यक्रम मंजूर किया। इस कार्यक्रम में पूँजीवाद और उसके सबसे ऊँचे रूप-साम्राज्यवाद-का वर्णन दिया हुआ है। इसमें राज्य व्यवस्था के दो रूपों की तुलना की गयी है-एक तो पूँजीवादी जनवादी व्यवस्था और दूसरी सोवियत व्यवस्था। इसमें समाजवाद के लिए संघर्ष में पार्टी के निश्चित काम विस्तार से बताये गये हैं : पूँजीपतियों की सम्पत्ति जब्त करने का काम पूरा करना; एक ही समाजवादी योजना के अनुसार देश के आर्थिक जीवन का शासन, राष्ट्रीय अर्थतंत्र के संगठन में ट्रेड यूनियनों का हिस्सा लेना; समाजवादी श्रम का अनुशासन; सोवियत संस्थाओं के नियंत्रण में आर्थिक क्षेत्र में पूँजीवादी विशेषज्ञों का उपयोग; समाजवादी निर्माण में मध्यम किसानों को धीरे-धीरे और बाकायदा लाना।

कांग्रेस ने लेनिन का यह प्रस्ताव मंजूर किया कि कार्यक्रम में पूँजीवाद के सबसे ऊँचे रूप-साम्राज्यवाद-की व्याख्या शामिल करने के साथ-साथ औद्योगिक पूँजीवाद और साधारण माल उत्पादन का वर्णन, जो दूसरी पार्टी कांग्रेस में स्वीकृत पुराने कार्यक्रम में था, भी शामिल कर लिया जाये। लेनिन इस बात को जरूरी समझते थे कि कार्यक्रम में हमारी आर्थिक व्यवस्था की पेचीदगी का ध्यान रखा जाये और देश में प्रचलित विभिन्न आर्थिक रूपों पर गौर किया जाये, जिनमें मध्यम किसानों के रूप में, छोटे पैमाने का माल-उत्पादन शामिल था। इसलिए कार्यक्रम पर बहस के दौर में, लेनिन ने बुखारिन के बोल्शेविक-विरोधी मत का जोरों से खण्डन किया। बुखारिन ने प्रस्ताव किया था कि पूँजीवाद, छोटे पैमाने के माल उत्पादन और मध्यम किसानों के अर्थतंत्र से सम्बन्ध रखने वाले हिस्से कार्यक्रम से निकाल दिये जायें। बुखारिन का मत मेन्शेविक त्रात्स्कीवादी दृष्टिकोण से सोवियत राज्य के विकास में मध्यम किसानों की भूमिका को अस्वीकार करता था। इसके सिवा, बुखारिन इस बात को नजरअन्दाज करता था कि किसानों में छोटे पैमाने का माल-उत्पादन कुलक तत्व पैदा करता और पालता-पोसता था।

राष्ट्रीयताओं के मसले पर भी, लेनिन ने बुखारिन और प्याताकोव के बोल्शेविक विरोधी मत का खण्डन किया। ये लोग कार्यक्रम में राष्ट्रीयताओं के आत्मनिर्णय के अधिकार के बारे में धारा शामिल करने के खिलाफ बोले। वे राष्ट्रीयताओं की समानता के खिलाफ थे। उनका दावा था कि राष्ट्रीय समानता का नारा सर्वहारा क्रान्ति की विजय और विभिन्न राष्ट्रीयताओं के मजदूरों की एकता में बाधा डाले। लेनिन ने बुखारिन और प्याताकोव के इस नितान्त हानिकर, साम्राज्यवादी और अन्धराष्ट्रवादी मत को निर्मूल कर

दिया।

मध्यम किसानों की तरफ कौन सी नीति बरती जाये, इस विषय को आठवीं कांग्रेस में महत्त्वपूर्ण जगह दी गयी। भूमि-सम्बन्धी आज्ञा-पत्र से मध्यम किसानों की संख्या बराबर बढ़ती गयी थी और किसानों में अब उनकी बहुतायत थी। वे लोग पूँजीपतियों और सर्वहारा के बीच ढुलमुल रहते थे। इनका रुख और व्यवहार क्या है, यह गृहयुद्ध और समाजवादी निर्माण के भाग्य का फैसला करने के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण था। गृहयुद्ध का नतीजा इस पर निर्भर था कि मध्यम किसान किस तरफ झुकते हैं, कौन सा वर्ग उनकी वफादारी हासिल करता है-सर्वहारा वर्ग या पूँजीपति। 1918 की गर्मियों में, वोल्गा प्रदेश में चेकोस्लोवाक, गद्दार, कुलक, समाजवादी-क्रान्तिकारी और मेन्शेविक सोवियत सत्ता को इसीलिए हरा सके थे कि उनके समर्थन में मध्यम किसानों की एक बड़ी तादाद थी। मध्य रूस में कुलकों ने जो बगावत की थी, उस पर भी यही बात लागू होती थी। लेकिन 1918 की शरद में आम मध्यम किसान सोवियत सत्ता की तरफ झुकने लगे। किसानों ने देखा कि गद्दारों की जीत के बाद जमीन्दारों की सत्ता बहाल होती है, किसानों की जमीन छीन ली जाती है और वे लूटे जाते हैं, बेंतों से पीटे जाते हैं और उन्हें यातनाएँ दी जाती हैं। गरीब किसानों की समितियों ने कुलकों को कुचल दिया था, उनकी कार्रवाई ने भी किसानों का रुख बदलने में मदद दी। इसलिए नवम्बर 1918 में, लेनिन ने यह नारा दिया :

> "एक क्षण के लिए भी कुलकों के खिलाफ संघर्ष बन्द किये बिना और साथ ही मजबूती से गरीब किसानों पर ही भरोसा करते हुए, मध्यम किसानों से समझौता करना सीखो।" (**लेनिन ग्रंथावली**, रू.सं., खण्ड 23, पृष्ठ 294)।

यह सही है कि मध्यम किसानों का ढुलमुलपन पूरी तरह खत्म नहीं हुआ, लेकिन वे सोवियत सरकार के और नजदीक आये और ज्यादा दृढ़ता से उसका समर्थन करने लगे। आठवीं पार्टी कांग्रेस ने मध्यम किसानों के प्रति जो नीति निर्धारित की थी, उससे इस काम में बहुत हद तक आसानी हुई।

मध्यम किसानों की तरफ पार्टी की नीति में आठवीं कांग्रेस एक मोड़ थी। लेनिन की रिपोर्ट और कांग्रेस के फैसलों ने इस सवाल पर पार्टी की एक नयी नीति निर्धारित की। कांग्रेस ने माँग की कि पार्टी-संगठन और सभी कम्युनिस्ट मध्यम किसानों और कुलकों के बीच सख्ती से फर्क करें और उनको एक-दूसरे से अलग समझें और इस बात की कोशिश करें कि मध्यम किसानों की जरूरतों की तरफ खूब ध्यान देकर उनको मजदूर वर्ग के पक्ष में लायें। मध्यम किसानों के पिछड़ेपन को समझा-बुझा कर दूर करना था, न कि जोर-जबर्दस्ती और दबाव से। इसलिए, कांग्रेस ने निर्देश किया कि देहातों में समाजवादी कदम उठाने के लिए (कम्यून और कृषि संघ बनाने के लिए) दबाव से काम न लिया जाये। जहाँ भी मध्यम किसानों के महत्त्वपूर्ण हितों का सवाल हो, वहाँ उनसे व्यावहारिक समझौता किया जाये और समाजवादी तब्दीली करने के तरीकों के बारे में उन्हें रियायतें दी जायें। कांग्रेस ने मध्यम किसानों से **स्थायी सहयोग** की नीति निर्धारित की, इस सहयोग में **प्रमुख भूमिका** सर्वहारा वर्ग की ही थी।

आठवीं कांग्रेस में मध्यम किसानों के प्रति लेनिन ने जिस नयी नीति का ऐलान किया, उस पर चलने के लिए जरूरी था कि सर्वहारा गरीब किसानों पर भरोसा करें, मध्यम किसानों के साथ स्थायी सहयोग बनाये रखें और कुलकों से संघर्ष करें। आठवीं कांग्रेस से पहले पार्टी की नीति आम तौर से मध्यम किसान को तटस्थ बना देने की थी। इसका मतलब यह था कि पार्टी इस बात की कोशिश करती थी कि पार्टी मध्यम किसान, कुलकों और आम तौर से पूँजीपतियों का पक्ष न ले। लेकिन, अब इतना करना ही काफी न था। गद्दारों और विदेशी हस्तक्षेप के खिलाफ संघर्ष करने के लिए और समाजवाद के सफल निर्माण के लिए, आठवीं कांग्रेस मध्यम किसानों को तटस्थ करने की नीति से आगे बढ़ कर उनसे **स्थायी सहयोग** की नीति पर आयी।

मध्यम किसान कृषक जनता का बहुसंख्यक हिस्सा थे। इनकी तरफ कांग्रेस ने जो नीति अपनायी, उसने गृहयुद्ध में विदेशी हस्तक्षेप और उसके गद्दार पिट्ठुओं के खिलाफ सफलता निश्चित करने में निर्णायक भूमिका अदा की। 1919 की शरद में, जब किसानों को सोवियत सत्ता और देनीकिन, इन दो में से एक को चुनना था, तब उन्होंने सोवियतों का समर्थन किया और सर्वहारा अधिनायकत्व अपने सबसे खतरनाक दुश्मन को परास्त कर सका।

कांग्रेस की बहस में लाल फौज के निर्माण से सम्बन्धित समस्याओं ने खास जगह पायी। इस सिलसिले में, तथाकथित 'फौजी विरोध' सामने आया। इस 'फौजी विरोध' में अब तक कुचले जा चुके 'वामपंथी कम्युनिस्टों' के गुट के काफी भूतपूर्व सदस्य थे। लेकिन, उसमें पार्टी के कुछ ऐसे कार्यकर्ता भी थे जो कभी किसी विरोधी दल में शामिल नहीं हुए थे लेकिन जो त्रात्स्की द्वारा फौजी मामलों के संचालन के तरीकों से असन्तुष्ट थे। फौज से आये हुए प्रतिनिधियों की बहुतायत स्पष्ट ही त्रात्स्की के विरोध में थी। वे इस बात से नाराज थे कि त्रात्स्की पुरानी जारशाही सेना के फौजी विशेषज्ञों का ही आदर करता है, जिनमें से कुछ गृहयुद्ध में हमारे साथ सीधे-सीधे दगा कर रहे थे। और, फौज के पुराने बोल्शेविक कार्यकर्ताओं की तरफ त्रात्स्की का भाव शत्रु जैसा और घमण्ड से भरा हुआ था। कांग्रेस में त्रात्स्की के 'अमल' की मिसालें दी गयीं। मिसाल के लिए, उसने कोशिश की थी कि मोर्चे पर काम करने वाले फौज के कुछ प्रमुख कम्युनिस्टों को गोली मार दी जाये; सिर्फ इसलिए कि उन्होंने उसे नाराज कर दिया था। यह सीधे दुश्मन के हाथों में खेलना था। केन्द्रीय समिति के हस्तक्षेप से ही और फौजियों के विरोध से ही इन साथियों की जानें बचाई जा सकीं।

लेकिन, त्रात्स्की द्वारा पार्टी की सैनिक नीति को तोड़ने-मरोड़ने के खिलाफ लड़ते हुए, फौज बनाने के बारे में कई बातों पर 'फौजी विरोध' का मत गलत था। लेनिन और स्तालिन ने 'फौजी विरोध' का जोरों से खण्डन किया, क्योंकि वह गुरिल्ला भावना के अवशेषों का समर्थन करता था, बाकायदा लाल फौज के निर्माण का विरोध करता था, पुरानी फौज के सैनिक विशेषज्ञों के उपयोग का विरोध करता था और फौलादी अनुशासन, जिसके बिना कोई फौज सच्ची फौज नहीं हो सकती, कायम करने का विरोध करता था। कामरेड स्तालिन ने 'फौजी विरोध' का खण्डन किया और बाकायदा फौज बनाने की माँग

की, जिसमें कठोर अनुशासन की भावना हो।

कामरेड स्तालिन ने कहा :

> "या तो हम मजदूरों और किसानों की-मुख्यतः किसानों की-एक सच्ची फौज, कठोर अनुशासन मानने वाली फौज बनाते हैं और गणतंत्र की रक्षा करते हैं, या खत्म होते हैं।"

'फौजी विरोध' के पेश किये हुए कई प्रस्तावों को रद्द करते हुए, कांग्रेस ने त्रात्स्की पर यह माँग करते हुए प्रहार किया कि केन्द्रीय फौजी संस्थाओं का काम सुधारा जाये और फौज में कम्युनिस्टों की भूमिका उन्नत की जाये।

कांग्रेस में एक फौजी कमीशन बनाया गया। उसकी कोशिशों की वजह से फौजी सवाल पर कांग्रेस ने एक राय होकर फैसला मंजूर किया।

इस फैसले का नतीजा यह हुआ कि लाल फौज मजबूत हुई और पार्टी के और भी नजदीक आयी।

कांग्रेस ने पार्टी और सोवियतों के मामलों पर और सोवियतों में पार्टी की पथ-निर्देशक भूमिका पर आगे विचार किया। इस पिछले सवाल पर बहस करते हुए कांग्रेस ने अवसरवादी साप्रोनोव-आसिन्स्की गुट के मत का खण्डन किया जिसका कहना था कि पार्टी सोवियतों के काम का पथ-प्रदर्शन न करे।

अन्त में, पार्टी के अन्दर नये सदस्यों की जबर्दस्त भर्ती की वजह से पार्टी ने कुछ उपाय निश्चित किये जिससे कि पार्टी की सामाजिक बनावट सुधारी जाये। कांग्रेस ने फैसला किया कि पार्टी सदस्यों की फिर से रजिस्ट्री की जाये।

इससे, पार्टी की कतारों में पहली बार शुद्धि का काम शुरू हुआ।

3. हस्तक्षेप का विस्तार। सोवियत देश की नाकेबन्दी। कोल्चक की मुहिम और उसकी हार। देनीकिन की मुहिम और उसकी हार। तीन महीने का अवकाश। नवीं पार्टी कांग्रेस।

जर्मनी और आस्ट्रिया को हराने के बाद, मित्र देशों ने फैसला किया कि भारी फौजी ताकत सोवियत देश के खिलाफ झोंक दी जाये। जर्मनी की हार और उक्रेन तथा ट्रांस-काकेशिया से उसकी फौजों को हटाने के बाद, अंग्रेजों और फ्रांसीसियों ने जर्मनी की जगह ली। उन्होंने अपने जहाजी बेड़े काले समुद्र में भेजे और ओदेसा और ट्रांस-काकेशिया में अपनी फौजें उतारीं। मित्र देशों की हस्तक्षेप करने वाली फौज ऐसी निर्दय थी कि अधिकृत इलाकों में उसने झुण्ड के झुण्ड मजदूरों और किसानों को गोली से उड़ा देने में आगा-पीछा नहीं किया। उनके ये पाशविक काम आखिर में इस हद तक बढ़ गये कि तुर्किस्तान पर कब्जा करने के बाद परवर्ती कास्पियन प्रदेश से वे बाकू के 26 प्रमुख बोल्शेविकों को-जिनमें कामरेड शोम्यान, फियोलेतोव, जापरिजे, मालीगिन, अजीज बेकोव, कोरगानोव शामिल थे-उठा ले गये और समाजवादी-क्रान्तिकारियों की मदद से उन्हें निर्दयता से गोली मार दी।

दखलन्दाजों ने शीघ्र ही रूस की **नाकेबन्दी** का ऐलान किया। बाहरी दुनिया से मिलाने

वाले तमाम जल-मार्ग और आवागमन के दूसरे रास्ते बन्द कर दिये गये।

सोवियत भूमि लगभग हर तरफ से घिर गयी।

साइबेरिया, ओम्स्क में मित्र देशों का कठपुतला ऐडमिरल कोल्चक था, जिस पर उन्हें सबसे ज्यादा भरोसा था। उसे 'रूस का प्रधान शासक' घोषित किया गया और देश की तमाम क्रान्ति-विरोधी शक्तियाँ उसकी कमान में आ गयीं।

इस तरह, पूर्वी मोर्चा मुख्य मोर्चा बन गया।

कोल्चक ने भारी फौज इकट्ठी की और 1919 के बसन्त में लगभग वोल्गा तक आ पहुँचा। सबसे अच्छे बोल्शेविक दस्ते उससे लोहा लेने के लिए भेजे गये। तरुण कम्युनिस्ट सभा वालों और मजदूरों ने फौजी वर्दी पहनी। अप्रैल 1919 में, कोल्चक की फौज ने लाल फौज से करारी हार खाई और बहुत जल्द समूचे मोर्चे पर उसने पीछे हटना शुरू किया।

पूर्वी मोर्चे पर लाल फौज की प्रगति जब पूरे वेग पर थी, तब त्रात्स्की ने एक सन्देहजनक योजना रखी। उसने प्रस्ताव किया कि यूराल तक पहुँचने के पहले ही लाल फौज को रोक लिया जाये, कोल्चक की फौज का पीछा करना बन्द कर दिया जाये और सेना पूर्वी मोर्चे से दक्षिणी मोर्चे पर भेज दी जाये। पार्टी की केन्द्रीय समिति ने पूरी तरह अनुभव किया कि यूराल और साइबेरिया कोल्चक के हाथों में नहीं छोड़े जा सकते थे; क्योंकि वहाँ पर जापानियों और अंग्रेजों की मदद से वह फिर से शक्ति संचय कर सकता था और अपनी पहली जगह पा सकता था। इसलिए, उसने इस योजना को ठुकरा दिया और आगे बढ़ते रहने के लिए आज्ञा भेजी। त्रात्स्की इस आज्ञा से असहमत था। उसने अपना इस्तीफा दे दिया, जिसे केन्द्रीय समिति ने नामंजूर कर दिया और साथ ही उसे हुक्म भी दिया कि पूर्वी मोर्चे की कार्रवाई के संचालन में वह हिस्सा लेना तुरन्त बन्द कर दे। लाल फौज और भी वेग से कोल्चक का पीछा करती रही। उसने उसे कई बार और हराया और यूराल और साइबेरिया को गद्दारों से मुक्त किया। युद्ध के मोर्चे के पीछे वहाँ एक शक्तिशाली गुरिल्ला आन्दोलन, गद्दारों के पीछे लाल फौज का समर्थन करता था।

1919 की गर्मियों में, उत्तर-पश्चिम में (बाल्टिक प्रदेशों में, पेत्रोग्राद के पड़ोस में), क्रान्ति-विरोधियों के सरदार, जनरल यूदेनिच को साम्राज्यवादियों ने यह काम सौंपा कि पेत्रोग्राद पर हमला करके पूर्वी मोर्चे से लाल फौज का ध्यान बँटाये। भूतपूर्व अफसरों के क्रान्ति-विरोधी प्रचार से प्रभावित होकर, पेत्रोग्राद के पड़ोस के दो किलों में रहने वाले सैनिकों ने सोवियत सरकार के खिलाफ बगावत कर दी। इसके साथ ही, मोर्चे के हेड क्वार्टर पर एक क्रान्ति-विरोधी षड्यंत्र का पता लगा। दुश्मन पेत्रोग्राद के लिए खतरा पैदा कर रहा था। सोवियत सरकार ने मजदूरों और जहाजियों की मदद से जो उपाय किये, उनसे गद्दार किलों से बाहर निकाल दिये गये और यूदेनिच की फौजें हरा दी गयीं और एस्तोनिया में ठेल दी गयीं।

पेत्रोग्राद के पास यूदेनिच की हार से, कोल्चक से निपटना आसान हो गया और 1919 के अन्त तक उसकी फौज पूरी तरह हरा दी गयी। कोल्चक खुद पकड़ लिया गया और इर्कुत्स्क में क्रान्तिकारी कमेटी की आज्ञा से उसे गोली मार दी गयी।

इस तरह, कोल्चक का खात्मा हुआ।

उस समय, कोल्चक के बारे में साइबेरिया के लोगों में एक लोकप्रिय गीत गाया जाता था :

वर्दी तो ब्रिटेन की है, फ्रांस का है तामझाम,
हुक्का तो जापान का है, कोल्चक का नाम-नाम।
लत्ते हुए वर्दी के और गुदड़ी हुआ तामझाम,
ठण्डा हुआ हुक्का, और कोल्चक का मिटा नाम।

कोल्चक ने दखलन्दाजों की आशाएँ पूरी नहीं की थीं। इसलिए, उन्होंने सोवियत गणतंत्र पर हमला करने की अपनी योजना बदल दी। ओदेसा में उतारी हुई फौज वापस बुलानी पड़ी, क्योंकि सोवियत गणतंत्र की फौज से सम्पर्क होने पर उस पर भी क्रान्तिकारी रंग चढ़ गया और सैनिक अपने साम्राज्यवादी मालिकों के खिलाफ बगावत करने लगे। मिसाल के लिए, ओदेसा में आन्द्रे मार्ती के नेतृत्व में फ्रांसीसी जहाजियों ने बगावत की। इसलिए कोल्चक के हार जाने के बाद, मित्र देशों ने अपना ध्यान जनरल देनीकिन पर केन्द्रित किया। वह कार्निलोव का सहयोगी था और 'स्वयंसेवक सेना' का संगठनकर्ता था। उन दिनों, देनीकिन दक्षिण में कुबान प्रदेश में सोवियत सत्ता के खिलाफ कार्रवाई कर रहा था। मित्र देशों ने उसे लड़ाई का बहुत साज-सामान और युद्ध सज्जा दी और उसकी फौज को सोवियत सत्ता के खिलाफ उत्तर की ओर भेजा।

दक्षिणी मोर्चा अब मुख्य मोर्चा बन गया।

देनीकिन ने सोवियत सत्ता के खिलाफ अपना मुख्य हमला 1919 की गर्मी में शुरू किया। त्रात्स्की ने दक्षिणी मोर्चे को तोड़-फोड़ दिया था और हमारी फौजें हार पर हार खा रही थीं। अक्टूबर के मध्य तक, गद्दारों ने समूचे उक्रेन पर कब्जा कर लिया था, ओरेल पर अधिकार कर लिया था और तूला के नजदीक पहुँच रहे थे। हमारी फौज के लिए कारतूस, राइफलें और मशीनगनें तूला से ही आती थीं। गद्दार मास्को के नजदीक पहुँच रहे थे। सोवियत गणतंत्र की हालत बहुत ही संकटपूर्ण होती जाती थी। पार्टी ने चेतावनी दी और मुकाबला करने के लिए जनता का आह्वान किया। लेनिन ने नारा दिया : "देनीकिन के खिलाफ लड़ाई में सभी लोग चलें।" बोल्शेविकों से उत्साहित होकर, मजदूरों और किसानों ने दुश्मन को कुचलने के लिए अपनी सारी शक्ति बटोरी।

केन्द्रीय समिति ने देनीकिन को हराने की तैयारी करने के लिए दक्षिणी मोर्चे पर कामरेड स्तालिन, वोरोशिलोव, और्जोनिकित्स और बुद्योन्नी को भेजा। कामरेड स्तालिन के पहुँचने से पहले दक्षिणी मोर्चे के सेनापति ने त्रात्स्की से मिल कर यह योजना बनायी थी कि जारित्सिन से नोवोरोसीस्क की दिशा में दोन के मैदान से होकर देनीकिन पर मुख्य प्रहार किया जाये। इस तरफ सड़कें नहीं थीं और लाल फौज को ऐसे प्रदेशों से जाना पड़ता जहाँ कज्जाक रहते थे, जो इस समय अधिकतर गद्दारों के असर में थे। कामरेड स्तालिन ने इस योजना की तीव्र आलोचना की और देनीकिन को हटाने के लिए अपनी योजना केन्द्रीय समिति के सामने रखी। इस योजना के अनुसार, मुख्य प्रहार खारकोव-दोन्येत्स प्रदेश-रोस्तोव के रास्ते किया जाता। इस योजना से देनीकिन के खिलाफ हमारी फौजें निस्सन्देह तेजी से बढ़ सकतीं, क्योंकि वे मजदूर और किसान इलाके से होकर आगे बढ़तीं

जहाँ उन्हें जनता की पूरी सहानुभूति मिलती। इसके सिवा, इस इलाके में रेलों का घना जाल बिछा होने से हमारी फौजों को तमाम जरूरी रसद मिलती जाती। अन्त में, इस योजना से कोयला पैदा करने वाला दोन्येत्स प्रदेश आजाद किया जा सकता और इस तरह, हमारे देश को ईंधन मिल सकता।

पार्टी की केन्द्रीय समिति ने कामरेड स्तालिन की योजना मंजूर की। अक्टूबर 1919 के उत्तरार्द्ध में, देनीकिन खूँख्वार विरोध करने के बाद ओरेल और बोरोनेज के पास निर्णायक युद्धों में लाल फौज द्वारा परास्त किया गया। वह तेजी से पीछे हटने लगा। हमारी सेना ने उसका पीछा किया और वह दक्षिण की ओर भागा। 1920 के आरम्भ में, समूचा उक्रेन और उत्तरी काकेशस गद्दारों से साफ कर दिया गया।

दक्षिणी मोर्चे पर निर्णायक युद्धों के समय, साम्राज्यवादियों ने यूदेनिच के दस्ते फिर से पेत्रोग्राद पर झोंक दिये। इस तरह, उन्हें आशा थी कि वे दक्षिण से हमारी सेना लौटा लेंगे और देनीकिन की फौज की हालत सुधर जायेगी। गद्दार पेत्रोग्राद के दरवाजे तक पहुँच गये। क्रान्ति के इस प्रधान नगर के मजदूर उसकी रक्षा के लिए एक अटूट दीवार बन कर उठ खड़े हुए। हमेशा की तरह, कम्युनिस्ट अगली कतारों में थे। घनघोर युद्ध के बाद, गद्दार हरा दिये गये और फिर हमारी सीमाओं के उस पार एस्तोनिया में खदेड़ दिये गये।

इस तरह, देनीकिन का खात्मा हुआ।

कोल्चक और देनीकिन की हार के बाद, थोड़ा सा अवकाश मिला।

जब साम्राज्यवादियों ने देखा कि गद्दार फौजें हरा दी गयी हैं, हस्तक्षेप असफल हुआ है, सारे देश में सोवियत सत्ता अपनी स्थिति दृढ़ कर रही है और उधर पश्चिमी यूरोप में सोवियत गणतंत्र में हस्तक्षेप के खिलाफ मजदूरों का क्रोध बढ़ता जाता है, तब सोवियत राज्य की तरफ वे अपना रुख बदलने लगे। जनवरी 1920 में, ब्रिटेन, फ्रांस और इटली ने सोवियत रूस की नाकेबन्दी खत्म करने का फैसला किया।

हस्तक्षेप की दीवार में यह एक महत्त्वपूर्ण दरार थी।

अवश्य ही, इसका मतलब यह नहीं था कि सोवियत राज्य अब हस्तक्षेप और गृहयुद्ध से निपट चुका था। साम्राज्यवादी पोलैण्ड की ओर से हमले का खतरा अब भी था। हस्तक्षेप की ताकतें अभी पूरी तरह सुदूर पूर्व, ट्रांस-काकेशया और क्रीमिया से बाहर नहीं की गयी थीं। लेकिन, सोवियत रूस को कुछ समय के लिए साँस लेने का अवसर मिला था और अब वह आर्थिक विकास में और ज्यादा शक्ति लगा सकता था। पार्टी अब अपना ध्यान आर्थिक समस्याओं की ओर लगा सकती थी।

गृहयुद्ध के समय, बहुत से कुशल मजदूर मिलों और कारखानों के बन्द होने से उद्योग धन्धे छोड़ चुके थे। पार्टी ने अब ऐसे उपाय किये कि वे अपने-अपने काम से लगने के लिए उद्योग-धन्धों में लौट आयें। रेलों की हालत गम्भीर थी और कई हजार कम्युनिस्ट उन्हें ठीक करने के काम में लगाये गये। इसे किये बिना, उद्योग-धन्धों की मुख्य शाखाओं को बहाल करने का काम गम्भीरता से शुरू नहीं किया जा सकता था। खाद्य सामग्री भेजने का काम विस्तृत किया गया और सुधारा गया। सारे रूस में बिजली पहुँचाने की योजना के मसौदे तैयार करने की तैयारी शुरू हुई। लगभग 50 लाख लाल फौज के सैनिक हथियारबन्द

थे और युद्ध के खतरे की वजह से उन्हें फौज से अलग भी नहीं किया जा सकता था। इसलिए, लाल फौज का एक हिस्सा श्रम सेनाओं में बदल दिया गया और आर्थिक क्षेत्र में उससे काम लिया गया। मजदूर-किसान-सुरक्षा समिति बदल कर, श्रम और सुरक्षा समिति बना दी गयी और उसकी मदद के लिए एक राज्य नियोजन समिति (गास्प्लान) कायम की गयी।

इस तरह की परिस्थिति थी, जब नयी पार्टी कांग्रेस शुरू हुई।

मार्च 1920 के अन्त में, कांग्रेस आरम्भ हुई। उसमें 6,11,978 पार्टी सदस्यों की तरफ से 554 वोट देने वाले प्रतिनिधि और 162 मत जाहिर करने मगर वोट नहीं दे सकने वाले प्रतिनिधि शामिल हुए।

कांग्रेस ने यातायात और उद्योग-धन्धों के क्षेत्र में देश के सामने फौरी काम रखे। उसने खास तौर से इस बात पर जोर दिया कि आर्थिक जीवन के निर्माण में ट्रेड यूनियनों का हिस्सा लेना आवश्यक है।

उद्योग-धन्धों को बहाल करने के लिए और सबसे पहले रेल, ईंधन, लोहे और इस्पात के उद्योग-धन्धों को बहाल करने के लिए, कांग्रेस ने एक ही आर्थिक योजना पर विशेष ध्यान दिया। इस योजना की मुख्य बात देश में बिजली लगाने का एक मसौदा था। इसे लेनिन ने 'अगले दस या बीस वर्षों के लिए एक महान कार्यक्रम' के रूप में पेश किया था। रूस में बिजली लगाने के राज्य कमीशन (गोयलरो) ने जो मशहूर योजना बनायी थी और जिसकी शर्तें अब अपेक्षा से ज्यादा पूरी हो चुकी हैं, उसका आधार यही था।

कांग्रेस ने एक पार्टी-विरोधी गुट के मत को ठुकरा दिया, जो अपने को 'जनवादी केन्द्रीयता का गुट' कहता था और एक आदमी के प्रबन्ध और औद्योगिक संचालकों की बिना बँटी हुई जिम्मेदारी का विरोध करता था। वह इस बात का समर्थन करता था कि बिना किसी नियंत्रण के 'पूरे गुट का प्रबन्ध' हो, जिसके अनुसार, उद्योग-धन्धों के संचालन के लिए कोई भी निजी तौर पर जिम्मेदार नहीं हो। इस पार्टी-विरोधी गुट में मुख्य लोग साप्रोनोव, ऑसिन्स्की और व. स्मिर्नोव थे। कांग्रेस में राइकोव और तोम्स्की ने उनका समर्थन किया।

4. सोवियत रूस पर पोलैण्ड के जमीन्दारों का हमला। जनरल व्रांगेल की मुहिम। पोलिश योजना की असफलता। व्रांगेल की हार। हस्तक्षेप का अन्त।

कोल्चक और देनीकिन हार चुके थे। गद्दारों को निकाल कर, सोवियत गणतंत्र बराबर अपनी धरती वापस ले रहा था। उत्तरी प्रदेश, तुर्किस्तान, साइबेरिया, दोन प्रदेश, उक्रेन वगैरह से दखलन्दाजों को निकाल कर, सोवियत गणतंत्र अपने प्रदेश वापस ले रहा था। मित्र देशों को मजबूर होकर रूस की नाकेबन्दी उठा लेनी पड़ी थी। इन सब बातों के बावजूद, हस्तक्षेपकारी यह बात मानने के लिए तैयार नहीं थे कि सोवियत सत्ता अजेय साबित हो चुकी है और विजयी हो चुकी है। इसलिए, उन्होंने सोवियत रूस में एक बार फिर हस्तक्षेप

करने की कोशिश की। इस बार, उन्होंने पिल्सुदस्की और जनरल व्रांगेल दोनों को इस्तेमाल करने का विचार किया। पिल्सुदस्की एक पूँजीवादी क्रान्ति-विरोधी राष्ट्रवादी था और पोलैण्ड के राज्य का वास्तविक नेता था। जनरल व्रांगेल ने क्रीमिया में देनीकिन की बची-खुची फौज इकट्ठी की और वहाँ से दोन्येत्स प्रदेश और उक्रेन पर धावा करने की तैयारी में था।

पोलैण्ड के जमीन्दार और व्रांगेल, जैसा कि लेनिन ने कहा था, दो भुजाएँ थीं जिनसे अन्तरराष्ट्रीय साम्राज्यवाद सोवियत रूस का गला घोंट देना चाहता था।

पोल-योजना यह थी कि द्नीपर नदी के पश्चिम में सोवियत उक्रेन पर अधिकार कर लें, सोवियत बेलारूस पर कब्जा कर लें, इन प्रदेशों में पोलैण्ड के अमीरों की सत्ता बहाल करें और पोल राज्य की सीमाएँ इतनी बढ़ायें कि वे 'एक समुद्र से दूसरे समुद्र तक', दान्जिंग से ओदेसा तक फैल जायें और व्रांगेल की मदद के बदले लाल फौज को कुचलने में और सोवियत रूस में जमीन्दारों और पूँजीपतियों की सत्ता बहाल करने में उसकी सहायता करें।

मित्र देशों ने इस योजना का समर्थन किया।

सोवियत सरकार ने शान्ति कायम रखने और युद्ध से बचने के लिए पोलैण्ड से बातचीत चलाने की असफल कोशिशें कीं। पिल्सुदस्की ने शान्ति की बातचीत करने से इन्कार कर दिया। वह युद्ध चाहता था। उसका विचार था कि कोल्चक और देनीकिन से लड़कर लाल फौज थक गयी है और पोल सेना का हमला नहीं सह सकेगी।

साँस लेने के लिए जो थोड़ा अवकाश मिला था, वह खत्म हो गया।

अप्रैल 1920 में, पोलों ने सोवियत उक्रेन पर हमला किया और कीव पर कब्जा कर लिया। इसी समय, व्रांगेल ने हमला शुरू किया और दोन्येत्स प्रदेश पर धावा करने को हुआ।

इस पर, लाल फौज ने समूचे मोर्चे पर पोलों के खिलाफ जवाबी हमला किया। कीव फिर ले लिया गया और पोलैण्ड के युद्ध सामन्त उक्रेन और बेलारूस से बाहर निकाल दिये गये। दक्षिणी मोर्चे पर, लाल फौज की दुर्दम प्रगति ने उन्हें गैलीशिया में ल्वोव के सिंहद्वार तक ठेल दिया। उधर, पश्चिमी मोर्चे की सेना वारसा के निकट पहुँच रही थी। पोल फौजें बुरी तरह हारने को थीं।

लेकिन, लाल फौज के जनरल हेडक्वार्टर में त्रात्स्की और उसके अनुयायियों के सन्देहजनक कामों से सफलता मिलते-मिलते रह गयी। त्रात्स्की और तुखाचेव्स्की के दोष से, पश्चिमी मोर्चे पर वारसा की तरफ लाल फौज की प्रगति एकदम असंगठित रूप से हुई। जीते हुए स्थानों को मजबूत करने के लिए सेना को मौका नहीं दिया गया। अगले दस्ते बहुत ज्यादा आगे भेज दिये गये और रिजर्व और गोला-बारूद बहुत ज्यादा पीछे छोड़ दिये गये। इसका फल यह हुआ कि अगले दस्तों को गोला-बारूद और रिजर्व नहीं मिला और मोर्चा बेहिसाब फैल गया। इससे मोर्चे में दरार डालना आसान हुआ। नतीजा यह हुआ कि जब थोड़ी सी पोल फौज एक जगह पश्चिमी मोर्चा तोड़ कर घुस आयी तो हमारी सेना को गोला-बारूद के बिना पीछे लौटना पड़ा। जहाँ तक दक्षिणी मोर्चे की सेना का सवाल था, जो ल्वोव के सिंहद्वार तक पहुँच गयी थी और पोलों को बुरी तरह खदेड़ रही थी, उसे त्रात्स्की ने,

'क्रान्तिकारी फौजी समिति के सभापति' बदनाम त्रात्स्की ने, ल्वोव पर कब्जा करने से मना कर दिया। उसने हुक्म दिया कि घुड़सवार फौज, जो दक्षिणी मोर्चे की मुख्य सेना थी, दूर उत्तर-पूर्व में चली जाये। यह इस बहाने किया गया कि पश्चिमी मोर्चे की सहायता की जाये, हालाँकि यह देखना मुश्किल नहीं था कि पश्चिमी मोर्चे की मदद करने का सबसे अच्छा और दरअसल एक ही सम्भव उपाय ल्वोव पर अधिकार करना था। लेकिन, दक्षिणी मोर्चे से घुड़सवार फौज को हटाने, ल्वोव से उसके हटाने का वास्तविक अर्थ यही होता था कि दक्षिणी मोर्चे से भी हमारी सेना पीछे हटे। त्रात्स्की ने यह जो तोड़-फोड़ करने वाला हुक्म जारी किया, उससे दक्षिणी मोर्चे पर हमारी सेना को बिना किसी भी कारण के और समझ में नहीं आने वाले ढंग से पीछे हटना पड़ा, जिससे पोलैण्ड के जमीन्दारों को खुशी हुई।

इससे सीधे-सीधे पश्चिमी मोर्चे को मदद तो नहीं मिलती थी, लेकिन पोलैण्ड के जमीन्दारों और मित्र देशों को जरूर मदद मिलती थी।

कुछ ही दिनों में, पोलों का आगे बढ़ना रुक गया और हमारी फौजों ने नये जवाबी हमले की तैयारी की। युद्ध जारी रखने में असमर्थ होने से और लाल जवाबी हमले की सम्भावना से घबड़ा कर, पोलैण्ड ने मजबूरन द्नीपर के पश्चिम में उक्रेनी प्रदेश पर और बेलारूस पर अपना दावा छोड़ दिया और सन्धि करना ज्यादा अच्छा समझा। 20 अक्टूबर 1920 को, रीगा की सन्धि पर दस्तखत किये गये। इस सन्धि के अनुसार, गैलीशिया और बेलारूस का एक हिस्सा पोलैण्ड के पास रहा।

पोलैण्ड के सन्धि करने के बाद, सोवियत गणतंत्र ने व्रांगेल को खत्म करने का फैसला किया। अंग्रेजों और फ्रांसीसियों ने उसे तोपें, राइफलें, हथियारबन्द गाड़ियाँ, टैंक, हवाई जहाज और बिल्कुल आधुनिक तरह का लड़ाई का सामान दिया था। उसके पास लड़ाकू गद्दार पल्टनें थीं, जिनमें ज्यादातर अफसर थे। लेकिन, व्रांगेल ने कुबान और दोन प्रदेश में जो सेना उतारी थी उसकी मदद के लिए किसानों और कज्जाकों की काफी संख्या का समर्थन नहीं मिल सका। फिर भी, वह दोन्येत्स प्रदेश की देहरी तक ही बढ़ता चला आया और उसने कोयला पैदा करने वाले हमारे इलाके के लिए खतरा पैदा कर दिया। सोवियत सरकार की स्थिति उस समय इस कारण और उलझ गयी थी कि लाल फौज बहुत ज्यादा थकी हुई थी। सैनिकों को बहुत ही कठिन परिस्थितियों में आगे बढ़ना पड़ता था। व्रांगेल पर हमला करते हुए, उन्हें उसके समर्थक माखनो के अराजकतावादी गिरोहों को भी कुचलना होता था। हालाँकि व्रांगेल के पास लड़ाई का सामान ज्यादा अच्छा था और लाल फौज के पास टैंक नहीं थे, लेकिन फिर भी उसने व्रांगेल को क्रीमिया के प्रायद्वीप में खदेड़ दिया और वहाँ उसे घेर लिया। नवम्बर 1920 में, लाल सेना ने पेरेकोप की किलेबन्दी पर अधिकार कर लिया, क्रीमिया में लाल फौज फैल गयी, उसने व्रांगेल की फौज को कुचल दिया और प्रायद्वीप से गद्दारों और हस्तक्षेपकारियों को निकाल बाहर किया। क्रीमिया सोवियत प्रदेश हो गया।

पोलैण्ड की साम्राज्यवादी योजनाओं की असफलताओं और व्रांगेल की पराजय से, हस्तक्षेप का दौर खत्म हुआ।

1920 के अन्त में, ट्रांस-काकेशिया की मुक्ति शुरू हुई। अजरबैजान पूँजीवादी राष्ट्रवादी मुसावतपंथियों की गुलामी से आजाद हुआ, जार्जिया मेन्शेविक राष्ट्रवादियों और आर्मीनिया दाशनाकों से मुक्त हुए। अजरबैजान, आर्मीनिया और जार्जिया में सोवियत सत्ता की विजय हुई।

इसका मतलब यह नहीं था कि सभी हस्तक्षेप बन्द हो गये। सुदूर पूर्व में, जापानियों का हस्तक्षेप 1922 तक जारी रहा। इसके सिवा, हस्तक्षेप की नयी कोशिशें भी की गयीं (अतामान सेम्योनोव और बैरन उंगेर्न ने पूर्व में और फिन गद्दारों ने करेलिया में 1921 में हस्तक्षेप करने की कोशिश की)। लेकिन, सोवियत देश के मुख्य शत्रु, हस्तक्षेप करने वाली प्रमुख शक्तियाँ, 1920 के अन्त तक परास्त कर दी गयीं।

सोवियतों के खिलाफ विदेशी दखलन्दाजों और रूसी गद्दारों की लड़ाई का खात्मा सोवियतों की विजय में हुआ।

सोवियत गणतंत्र ने अपनी स्वाधीनता और स्वतंत्रता बनाये रखी।

विदेशी फौजी हस्तक्षेप और गृहयुद्ध का यही अन्त हुआ।

सोवियत सत्ता के लिए यह एक ऐतिहासिक विजय थी।

5. सोवियत गणतंत्र ने अंग्रेज-फ्रांसीसी-जापानी-पोल हस्तक्षेप की मिली-जुली शक्तियों और रूस के पूँजीवादी-जमीन्दार-गद्दार क्रान्ति-विरोध की ताकतों को क्यों और कैसे हराया?

हस्तक्षेप के समय के प्रमुख यूरोपीय और अमरीकी अखबारों और पत्रिकाओं को हम देखें, तो आसानी से पता चल जायेगा कि ऐसा एक भी प्रमुख फौजी या गैर-फौजी लेखक नहीं था, एक भी सैनिक विशेषज्ञ नहीं था जिसे भरोसा हो कि सोवियत सत्ता जीतेगी। इसके विपरीत, सभी प्रमुख लेखकों, सैनिक विशेषज्ञों और सभी देशों और राष्ट्रीयताओं की क्रान्ति के इतिहासकारों ने, सभी तथाकथित विद्वानों ने एक राय से यही घोषणा की थी कि सोवियतों के दिन गिने-चुने हैं और उनकी पराजय अनिवार्य है।

हस्तक्षेपकारी शक्तियों की विजय में उनके इस विश्वास का आधार था कि सोवियत रूस के पास कोई संगठित फौज नहीं है और कहना चाहिए कि युद्ध की आँच में तपते हुए उसे लाल फौज बनानी थी, लेकिन हस्तक्षेपकारियों और गद्दारों के हाथ में बहुत कुछ बनी-बनाई फौज थी।

इसके सिवा, उनके विश्वास का आधार यह था कि लाल फौज में अनुभवी सैनिक नहीं हैं, उनमें से अधिकांश क्रान्ति-विरोध से जा मिले हैं, लेकिन हस्तक्षेपकारियों और गद्दारों के पास ऐसे अनुभवी आदमी हैं।

और भी, उनके विश्वास का आधार यह था कि रूस का युद्ध-उद्योग पिछड़ा होने से लाल फौज के पास हथियारों और गोला-बारूद की कमी है। उसके पास जो सामान था, वह घटिया किस्म का था और उसे विदेश से इसलिए नहीं मिल सकता था कि चारों तरफ से नाकेबन्दी करके रूस का यातायात बिल्कुल बन्द कर दिया गया था। दूसरी तरफ, हस्तक्षेपकारियों

और गद्दारों की फौज के पास ढेरों सामान था और उसे प्रथम श्रेणी के हथियार, गोला-बारूद और लड़ाई का सामान मिलता रह सकता था।

अन्त में, उनके विश्वास का आधार यह था कि हस्तक्षेपकारियों और गद्दारों की फौज के पास रूस के सबसे उपजाऊ अन्न पैदा करने वाले प्रदेश थे, लेकिन लाल फौज के पास ऐसे इलाके नहीं थे और उसे रसद की कमी थी।

और, यह सत्य है कि लाल फौज के सामने ये सब कठिनाइयाँ और खामियाँ थीं।

इस पहलू से, और सिर्फ इसी पहलू से, हस्तक्षेपकारी सज्जन बिल्कुल ठीक कह रहे थे।

तब इसका क्या कारण है कि ऐसी भारी खामियों के होते हुए भी लाल फौज हस्तक्षेपकारियों और गद्दारों को हरा सकी, जिनमें इस तरह की खामियाँ नहीं थीं?

1. लाल फौज इसलिए जीती कि सोवियत सरकार की नीति, जिसके लिए लाल फौज लड़ रही थी, एक सही नीति थी। वह ऐसी नीति थी जो जनता के हितों के अनुकूल थी और जनता समझती और महसूस करती थी कि वह सही नीति है, उसकी अपनी नीति है बिना किसी दुराव के वह उसका समर्थन करती थी।

बोल्शेविक जानते थे कि जो फौज गलत नीति के लिए लड़ती है, ऐसी नीति के लिए जिसका जनता समर्थन नहीं करती हो, वह जीत नहीं सकती। हस्तक्षेपकारियों और गद्दारों की फौज ऐसी ही फौज थी। उसके पास सब कुछ था : अनुभवी सेनापति और प्रथम श्रेणी के हथियार, गोला-बारूद, लड़ाई का सामान और रसद। उसके पास सिर्फ एक ही चीज नहीं थी : रूस की जनता की सहानुभूति और उसका समर्थन। रूस की जनता हस्तक्षेपकारियों और गद्दार 'शासकों' की नीति का समर्थन नहीं करती थी और न कर सकती थी, क्योंकि वह नीति जन-विरोधी थी। और इसलिए, हस्तक्षेपकारियों और गद्दारों की फौज की हार हुई।

2. लाल फौज इसलिए जीती कि वह अपनी जनता के प्रति पूरी तरह सच्ची और वफादार थी। इसलिए, जनता उसे प्यार करती थी, उसकी मदद करती थी और उसे अपनी ही फौज समझती थी। लाल फौज जनता की सन्तान है; जैसे एक सच्चा बेटा अपनी माँ के प्रति सच्चा रहता है, वैसे ही लाल फौज अगर जनता के प्रति सच्ची रहे तो जनता उसका समर्थन करेगी और उसकी जीत अवश्य होगी। लेकिन जो फौज जनता के खिलाफ जाती है, वह जरूर हारेगी।

3. लाल फौज इसलिए जीती कि सोवियत सरकार युद्ध के मोर्चे की आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए मोर्चे के पीछे तमाम लोगों को, समूचे देश को बटोर सकी। जिस फौज को मोर्चे के पीछे हर तरह से मजबूत सहारा न मिलेगा, वह जरूर हार जायेगी। बोल्शेविक इस बात को जानते थे और इसीलिए युद्ध के मोर्चे को हथियार, गोला-बारूद, लड़ाई का सामान, रसद और कुमुक भेजने के लिए, उन्होंने सारे देश को एक हथियारबन्द खेमा बना दिया।

4. लाल फौज इसलिए जीती कि : क) लाल फौज के सैनिक युद्ध के उद्देश्य और लक्ष्य जानते थे और मानते थे कि वे न्यायपूर्ण हैं; ख) युद्ध के लक्ष्यों और उद्देश्यों को न्यायपूर्ण मानने से उनका अनुशासन दृढ़ हुआ और लड़ने की योग्यता बढ़ी; ग) इसका नतीजा यह

हुआ कि दुश्मन से युद्ध करते हुए, लाल फौज ने अभूतपूर्व आत्म-बलिदान और सामूहिक रूप से अतुल वीरता का परिचय दिया।

5. लाल फौज की जीत इसलिए हुई कि उसकी रीढ़, क्या मोर्चे पर और क्या उसके पीछे, बोल्शेविक पार्टी थी। बोल्शेविक पार्टी अपनी एकता और अनुशासन में अडिग थी। उसके अन्दर तीव्र क्रान्तिकारी भावना थी और सामान्य उद्देश्य के लिए वह कोई भी बलिदान करने के लिए तैयार थी। करोड़ों जनता को संगठित करने और पेचीदा परिस्थितियों में उसका नेतृत्व करने में उसकी योग्यता बेजोड़ थी।

लेनिन ने कहा था :

> "पार्टी की जागरूकता और उसके कठोर अनुशासन की वजह से, इसी वजह से कि पार्टी ने अधिकार सहित तमाम सरकारी विभागों और संस्थाओं को संगठित किया, केन्द्रीय समिति ने जो नारे दिये उन्हें एक ही आदमी की तरह दसों, बीसियों, हजारों और अन्त में करोड़ों आदमियों ने माना और इस वजह से कि इतनी कुर्बानी की गयी जिस पर विश्वास नहीं होता, वह चमत्कार हो सका जो वास्तव में हुआ। सिर्फ इन्हीं सब कारणों से, मित्र देशों के और दुनिया भर के साम्राज्यवादियों के दुबारा, तिबारा और चार बार लगातार हमले करने पर भी हम जीत सके।" (लेनिन, सं.ग्रं., अं.सं., मास्को, 1947, खण्ड 2, पृष्ठ 556)।

6. लाल फौज इसलिए जीती कि : क) वह अपनी कतारों से ही एक नये तरह के सेनापति, फ्रुन्जे, वोरोशिलोव, बुद्योन्नी, आदि जैसे आदमी पैदा कर सकी। ख) उसकी कतारों में जनता के ऐसे प्रतिभाशाली वीर लड़े जैसे कतोव्स्की, चापायेव, लाजो, इचोर्स, पार्खोमेंको, और दूसरे बहुत से वीर। ग) लाल फौज की राजनीतिक शिक्षा ऐसे आदमियों के हाथ में थी जैसे लेनिन, स्तालिन, मोलोतोव, कालिनिन, स्वेर्दलोव, कगानोविच, ओर्जोनिकित्से, किरोव, कुइबीशेव, मिकोयान, ज्दानोव, आन्द्रियेव, पेत्रोव्स्की, यारोस्लाव्स्की, जेरजिन्स्की, श्चादिन्कोव, मेखलिस, ख्रुश्चेव, श्वेर्निक, श्किर्यातो, वगैरह। घ) लाल फौज के पास फौजी कमिसारों जैसे श्रेष्ठ संगठनकर्ता और प्रचारक थे, जो लाल फौज के सैनिकों की एकता मजबूत करते थे, उनमें अनुशासन और फौजी साहस की भावना जगाते थे और जिन्होंने शक्ति के साथ-तेजी से और निर्ममता से-कई सेनापतियों की विश्वासघातक कार्रवाई को अंकुर फूटते ही निर्मूल कर दिया, लेकिन पार्टी और गैर-पार्टी के उन सेनापतियों के मान-सम्मान का उन्होंने साहस और दृढ़ता से समर्थन किया जिन्होंने सोवियत सत्ता की तरफ अपनी वफादारी साबित की थी और जो दृढ़ता से लाल फौज के दस्तों का नेतृत्व कर सकते थे।

> लेनिन ने कहा था : "फौजी कमिसारों के बिना हमारे पास लाल फौज न होती।"

7. लाल फौज इसलिए जीती कि गद्दार फौजों के पीछे, कोल्चक, देनीकिन, क्रासनोव और व्रांगेल की कतारों के पीछे पार्टी और गैर-पार्टी के उच्च्य कोटि के बोल्शेविक काम करते थे। उन्होंने हमलावरों के खिलाफ, गद्दारों के खिलाफ मजदूरों और किसानों को विद्रोह के लिए

उभारा। सोवियत सत्ता के दुश्मनों के पृष्ठ भाग को उन्होंने खोखला कर दिया और इस तरह, लाल फौज की प्रगति को उन्होंने आसान बनाया। सभी लोग जानते हैं, उक्रेन, साइबेरिया, सुदूर पूर्व, यूराल, बेलारूस और वोल्गा प्रदेश के छापेमारों ने गद्दारों और हमलावरों का पृष्ठभाग कमजोर करके लाल फौज की अमूल्य सेवा की।

8. लाल फौज इसलिए जीती कि गद्दार क्रान्ति-विरोध और विदेशी हस्तक्षेप के खिलाफ लड़ने में सोवियत गणतंत्र अकेला न था। सोवियत सत्ता के संघर्ष और उसकी सफलताओं के साथ तमाम दुनिया के मजदूरों की सहानुभूति थी और उनका समर्थन प्राप्त था। जब साम्राज्यवादी हस्तक्षेप और नाकेबन्दी के जरिये सोवियत गणतंत्र का गला घोंटने की कोशिश कर रहे थे, तब साम्राज्यवादी देशों के मजदूरों ने सोवियतों का पक्ष लिया और उनकी सहायता की। सोवियत गणतंत्र का विरोध करने वाले देशों के पूँजीपतियों के खिलाफ उनके संघर्ष ने अन्त में साम्राज्यवादियों को मजबूर किया कि वे हस्तक्षेप बन्द करें। ब्रिटेन, फ्रांस और दूसरे हस्तक्षेपकारी देशों के मजदूरों ने हड़तालें कीं, हमलावरों और गद्दार सेनापतियों के लिए भेजे जाने वाले लड़ाई के सामान को लादने से इनकार कर दिया और उन्होंने संघर्ष-कमेटियाँ बनायीं, जिनका काम इस नारे पर चलता था : 'रूस में दखलन्दाजी बन्द करो!'

लेनिन ने कहा था :

> "अन्तरराष्ट्रीय पूँजीपतियों ने हमारे खिलाफ हाथ उठाया नहीं कि उनके अपने मजदूर ही उन्हें जकड़ लेंगे।" (**लेनिन ग्रंथावली**, रूसी संस्करण, खण्ड 25, पृष्ठ 405)।

सारांश

अक्टूबर क्रान्ति से पराजित होकर, जमीन्दारों और पूँजीपतियों ने गद्दार सेनापतियों के सहयोग से सोवियत देश पर मिल कर हथियारबन्द हमला करने के लिए और सोवियत सत्ता को उलटने के लिए अपने ही देश के हितों के खिलाफ मित्र देशों की सरकारों के साथ षड्यंत्र किया। रूस के सीमान्त प्रदेशों में गद्दारों की बगावत और मित्र देशों के फौजी हस्तक्षेप का यही आधार था। इस हस्तक्षेप और बगावत के फलस्वरूप, कच्चा माल और अन्न देने वाले इलाकों से रूस अलग जा पड़ा।

जर्मनी की फौजी हार और यूरोप में दो साम्राज्यवादी गुटों के परस्पर युद्ध के बन्द होने से, मित्र देश मजबूत हुए और हस्तक्षेप ने जोर पकड़ा। इस वजह से, सोवियत रूस के लिए नयी कठिनाइयाँ पैदा हुईं।

दूसरी तरफ, जर्मनी में क्रान्ति से और यूरोप के देशों में क्रान्तिकारी आन्दोलन के अंकुर फूटने से, सोवियत सत्ता के लिए अनुकूल अन्तरराष्ट्रीय परिस्थितियाँ पैदा हुईं और सोवियत गणतंत्र की स्थिति सँभली।

बोल्शेविक पार्टी ने **पितृभूमि के लिए** युद्ध में मजदूरों और किसानों को उभारा, विदेशी हमलावरों और पूँजीपति और जमीन्दार गद्दारों के खिलाफ युद्ध में उन्हें उभारा। सोवियत

गणतंत्र और उसकी लाल फौज ने एक के बाद एक मित्र देशों के कठपुतलों-कोल्चक, यूदेनिच, देनीकिन, क्रासनोव और व्रांगेल को हराया, मित्र देशों के दूसरे कठपुतले पिल्सुदस्की को उक्रेन और बेलारूस से बाहर खदेड़ा और इस तरह, विदेशी हस्तक्षेप की फौजों को परास्त किया और उन्हें सोवियत देश से बाहर निकाल दिया।

इस तरह, समाजवाद की भूमि पर अन्तरराष्ट्रीय पूँजी का पहला हथियारबन्द आक्रमण पूरी तरह असफल हुआ।

हस्तक्षेप के दिनों में, क्रान्ति द्वारा परास्त पार्टियों-समाजवादी-क्रान्तिकारियों, मेन्शेविकों, अराजकतावादियों और राष्ट्रवादियों-ने गद्दार सेनापतियों और हमलावरों की मदद की। सोवियत गणतंत्र के खिलाफ उन्होंने क्रान्ति-विरोधी षड्यंत्र किये और सोवियत नेताओं के खिलाफ आतंकवाद का सहारा लिया। अक्टूबर क्रान्ति से पहले, मजदूर वर्ग पर इन पार्टियों का थोड़ा-बहुत असर था। गृहयुद्ध के दौर में, इन्होंने आम जनता को अच्छी तरह दिखा दिया कि वे क्रान्ति-विरोधी पार्टियाँ हैं।

गृहयुद्ध और हस्तक्षेप के दिनों में, ये पार्टियाँ राजनीतिक रूप से मर गयीं और सोवियत रूस में कम्युनिस्ट पार्टी पूरी तरह से विजयी हुई।

नवाँ अध्याय

आर्थिक पुनर्संगठन की शान्तिमय कार्रवाई की ओर संक्रमण के दौर में बोल्शेविक पार्टी

(1921-1925)

1. हस्तक्षेप की हार और गृहयुद्ध के खात्मे के बाद सोवियत गणतंत्र। पुनर्संगठन के दौर की कठिनाइयाँ।

युद्ध खत्म करने के बाद, सोवियत गणतंत्र ने शान्तिमय आर्थिक विकास का काम उठाया। युद्ध के घावों को भरना था। देश के चूर हो चुके आर्थिक जीवन को फिर से बनाना था, उसके उद्योग-धन्धों, रेलों और खेती को पुनःसंगठित करना था।

लेकिन, शान्तिमय विकास का काम बहुत ही कठिन परिस्थितियों में पूरा करना था। गृहयुद्ध में जीत आसानी से न मिली थी। चार साल तक साम्राज्यवादी युद्ध और तीन साल तक हस्तक्षेप के खिलाफ युद्ध से, देश तबाह हो गया था।

1920 में, खेती की कुल पैदावार लड़ाई से पहले की पैदावार की सिर्फ आधी रह गयी थी, जारशाही के गरीब रूसी गाँवों की पैदावार की आधी रह गयी थी। गरीबी में आटा गीला करने के लिए, 1920 में, बहुत से सूबों में फसल नहीं हुई। खेती घोर संकट में थी।

उद्योग-धन्धों की हालत और भी खराब थी। ये पूरी तरह अव्यवस्थित हो गये थे। 1920 में, बड़े पैमाने के उद्योग-धन्धों की पैदावार युद्ध से पहले की पैदावार का **सातवाँ हिस्सा** ही रह गयी थी। ज्यादातर मिलें और कारखाने बन्द थे। खानों और कोयले की खदानों में पानी भर गया था और वे धसक गयी थीं। सबसे संगीन हालत लोहे और इस्पात के धन्धों की थी। 1921 में, कच्चे लोहे की पैदावार सिर्फ 1,16,300 टन थी, यानी युद्ध से पहले की पैदावार की 3 फीसदी रह गयी थी। ईंधन की कमी थी। यातायात के साधन छिन्न-भिन्न हो गये थे। देश में धातुओं और कपास के गोदाम लगभग खाली थे। रोटी, चर्बी, गोश्त, जूते, कपड़े, माचिसें, नमक, मिट्टी का तेल और साबुन जैसी आवश्यक चीजों की भारी कमी थी।

जब युद्ध जारी था, तब लोग यह तंगी और अभाव सहते रहे थे और कभी-कभी उसे

भूल भी जाते थे। लेकिन जब लड़ाई खत्म हो गयी, तो उन्होंने अचानक अनुभव किया कि यह कमी और अभाव असहनीय है, और वे माँग करने लगे कि उसे तुरन्त दूर करना चाहिए।

किसानों में असन्तोष फैल गया। गृहयुद्ध की आँच में मजदूर वर्ग और किसानों की फौजी और राजनीतिक मैत्री तपी और मजबूत हुई थी। इस मैत्री का एक निश्चित आधार था। किसानों ने सोवियत सत्ता से जमीन पायी थी और जमीन्दारों तथा कुलकों के खिलाफ सोवियत सत्ता ने उनकी रक्षा की थी। मजदूरों को किसानों से फालतू अन्न लेने की व्यवस्था के अनुसार, खाने-पीने का सामान मिलता था।

अब यह आधार काफी नहीं था।

सोवियत राज्य को राष्ट्रीय सुरक्षा की जरूरतों की वजह से किसानों की तमाम फालतू उपज ले लेने के लिए मजबूर होना पड़ा था। गृहयुद्ध में इस फालतू अन्न लेने की व्यवस्था के बिना, युद्धकालीन कम्युनिज्म के बिना, जीत हासिल करना असम्भव होता। युद्ध और हस्तक्षेप ने इस नीति को आवश्यक बना दिया था। जब तक लड़ाई चालू थी, तब तक किसान फालतू अन्न लेने की व्यवस्था मानते रहे थे और दूसरे माल की तंगी की तरफ ध्यान न देते थे। लेकिन, जब लड़ाई खत्म हो गयी और जमीन्दारों के लौटने का कोई खतरा न रह गया था तब किसान अपनी तमाम फालतू उपज देने से, फालतू अन्न लेने की व्यवस्था से असन्तोष प्रकट करने लगे। वे माँग करने लगे कि उन्हें दूसरा माल काफी तादाद में दिया जाये।

जैसा कि लेनिन ने कहा था, युद्धकालीन कम्युनिज्म की सारी व्यवस्था किसानों के हितों से टकरा रही थी।

असन्तोष की भावना मजदूर वर्ग में भी पैदा हुई। सर्वहारा वर्ग ने गृहयुद्ध का मुख्य भार झेला था। उसने वीरता से और कुर्बानियाँ देकर गद्दार और विदेशी फौजों से युद्ध किया था और आर्थिक अव्यवस्था और अकाल की मुसीबतें सही थीं। सबसे अच्छे, सबसे वर्ग-चेतन, कुर्बानी देने वाले और अनुशासन मानने वाले मजदूरों में समाजवादी उत्साह भरा हुआ था। लेकिन, घोर आर्थिक अव्यवस्था का असर मजदूर वर्ग पर भी पड़ा। थोड़े से कल-कारखाने, जो अब भी चालू थे, वे रुक-रुक कर जब-तब चलते थे। मजदूरों को रोटी के लिए अजीब-अजीब काम करने पड़ते थे : वे सिगरेट लाइटर बनाते थे और कभी गाँवों में अन्न के बदले छोटा-मोटा माल बेचते फिरते थे। ('झोले का व्यापार')। सर्वहारा अधिनायकत्व का वर्ग-आधार कमजोर पड़ रहा था। मजदूर बिखर रहे थे, गाँवों की तरफ भाग रहे थे, मजदूर न रह कर वर्गहीन हो रहे थे। कुछ मजदूर भूख और थकान की वजह से असन्तोष के चिह्न प्रकट करने लगे थे।

पार्टी के सामने यह जरूरत पैदा हुई कि देश के आर्थिक जीवन से सम्बन्ध रखने वाले सभी सवालों पर वह एक नयी तरह की नीति निकाले, ऐसी नीति जो नयी हालत के अनुकूल हो।

और, पार्टी ने आर्थिक विकास के सवालों पर ऐसी ही नीति निकालने का काम उठाया।

लेकिन, वर्ग-शत्रु सो नहीं रहा था। उसने खेदजनक आर्थिक हालत और किसानों के असन्तोष से अपने हित में फायदा उठाने की कोशिश की। गद्दारों और समाजवादी-क्रान्तिकारियों के उकसाने से, साइबेरिया, उक्रेन और ताम्बोव प्रदेश (आन्तोनोव की बगावत) में कुलक-विद्रोह फूट पड़े। सभी तरह के क्रान्ति-विरोधी-मेन्शेविक, समाजवादी-क्रान्तिकारी, अराजकतावादी, गद्दार, पूँजीवादी राष्ट्रवादी-फिर सरगर्मी दिखाने लगे। दुश्मन ने सोवियत सत्ता से लड़ने के लिए नये दाँव-पेंच निकाले। उसने सोवियत भेष धारण किया। अब उसका नारा 'सोवियतें मुर्दाबाद!' का दिवालिया नारा न था। उसका अब नया नारा था-'सोवियतों की जय, लेकिन कम्युनिस्टों के बिना!'

वर्ग-शत्रु के नये दाँव-पेचों की एक जीती-जागती मिसाल क्रोन्स्तात का क्रान्ति-विरोधी विद्रोह था। दसवीं पार्टी कांग्रेस के एक हफ्ते पहले, मार्च 1921 में यह शुरू हुआ। गद्दारों ने, समाजवादी-क्रान्तिकारियों, मेन्शेविकों और विदेशी राज्यों के प्रतिनिधियों से सहयोग करके विद्रोह की अगुवाई की। पूँजीपतियों और जमीन्दारों की सत्ता और सम्पत्ति बहाल करने के अपने उद्देश्य को छिपाने के लिए, विद्रोहियों ने पहले 'सोवियत' साइनबोर्ड लगाया। उन्होंने नारा लगाया : 'सोवियतें कम्युनिस्टों के बिना!' क्रान्ति-विरोधियों ने एक झूठे सोवियत नारे की आड़ में सोवियतों की सत्ता उलटने के लिए मध्यवित्त जनता के असन्तोष से लाभ उठाने की कोशिश की।

क्रोन्स्तात के विद्रोह को दो कारणों से मदद मिली : जहाजियों के दस्तों की बनावट में पतन और क्रोन्स्तात में बोल्शेविक संगठन की कमजोरी। लगभग सभी पुराने जहाजी, जिन्होंने अक्टूबर क्रान्ति में हिस्सा लिया था, मोर्चे पर थे और वीरतापूर्वक लाल फौज की कतारों में लड़ रहे थे। नये जहाजियों में ऐसे लोग भर्ती हुए थे जिन्हें क्रान्ति की दीक्षा नहीं मिली थी। ये ठेठ कच्चे किसान थे, जो फालतू अन्न लेने की व्यवस्था के खिलाफ किसानों का असन्तोष प्रकट करते थे। जहाँ तक क्रोन्स्तात के बोल्शेविक संगठन का सवाल था, मोर्चे के लिए कई बार भर्ती की वजह से वह बहुत कमजोर पड़ गया था। इस कारण, समाजवादी-क्रान्तिकारी, मेन्शेविक और गद्दार क्रोन्स्तात में पैठ सके और उस पर अधिकार जमा सके।

विद्रोहियों ने उच्चकोटि के किलों, जहाजी बेड़े और हथियारों और लड़ाई के सामान की बहुत बड़ी तादाद पर कब्जा कर लिया। अन्तरराष्ट्रीय क्रान्ति-विरोधी फूले न समाये। लेकिन, उनकी हंसी-खुशी वक्त से पहले की थी। सोवियत सैनिकों ने जल्द ही विद्रोह दबा दिया। क्रोन्स्तात के विद्रोहियों के खिलाफ, पार्टी ने अपने सबसे अच्छे बेटों-दसवीं कांग्रेस के प्रतिनिधियों को भेजा, जिनके अगुवा कामरेड वोरोशिलोव थे। लाल फौज के सैनिक बर्फ की पतली तह से होकर क्रोन्स्तात की तरफ बढ़े। वह पतली तह कई जगह टूट गयी और बहुत से सैनिक डूब गये। क्रोन्स्तात के प्रायः अजेय किलों को धावा करके लेना था। लेकिन, क्रान्ति के प्रति वफादारी, वीरता और सोवियतों के लिए बलिदान करने की तत्परता की उस दिन जीत हुई। लाल सैनिकों के हमले के सामने क्रोन्स्तात के दुर्ग का पतन हुआ। क्रोन्स्तात का विद्रोह दबा दिया गया।

2. ट्रेड यूनियनों पर पार्टी में बहस। दसवीं पार्टी कांग्रेस। विरोधी दल की हार। नयी आर्थिक नीति (नेप) की स्वीकृति।

पार्टी की केन्द्रीय समिति ने, उसके लेनिनवादी बहुमत ने साफ-साफ देखा कि अब, जब युद्ध खत्म हो गया है और देश शान्तिमय आर्थिक विकास की तरफ मुड़ा है, तब युद्ध और नाकेबन्दी की उपज-युद्धकालीन कम्युनिज्म की कठोर व्यवस्था को बनाये रखने का कोई कारण नहीं है।

केन्द्रीय समिति ने अनुभव किया कि फालतू अन्न ले लेने की व्यवस्था की जरूरत खत्म हो चुकी है और उसके बदले में गल्ले के रूप में टैक्स लेने की व्यवस्था करनी चाहिए, जिससे कि किसान अपनी फालतू उपज का ज्यादा हिस्सा अपनी इच्छा से उपयोग कर सकें। केन्द्रीय समिति ने अनुभव किया कि इस उपाय से खेती फिर से हरी होगी और अनाज और उद्योग-धन्धों के विकास के लिए जरूरी औद्योगिक फसलों की काश्त बढ़ायी जा सकेगी, बिकाऊ माल का चलन फिर जारी किया जा सकेगा, शहरों को माल भेजने में सुधार होगा और मजदूरों और किसानों के सहयोग के लिए एक नयी बुनियाद, एक आर्थिक बुनियाद रची जा सकेगी।

केन्द्रीय समिति ने यह भी अनुभव किया कि सबसे पहला काम उद्योग-धन्धों को फिर से जगाना है, लेकिन वह समझती थी कि मजदूर वर्ग और ट्रेड यूनियनों की सहायता लिये बिना यह काम नहीं हो सकता। उसका विचार था कि मजदूर इस काम में लगाये जा सकते हैं जब उन्हें दिखाया जाये कि आर्थिक तोड़-फोड़ जनता की वैसी ही खतरनाक दुश्मन है जैसी कि हस्तक्षेप और नाकेबन्दी थी। केन्द्रीय समिति का विचार था कि पार्टी और ट्रेड यूनियनें इस काम में जरूर सफल हो सकती हैं अगर वे मजदूर वर्ग पर अपना असर फौजी आज्ञाओं के जरिये न डालें, जैसा कि मोर्चे पर होता था जहाँ कि आज्ञाएँ देना सचमुच जरूरी था, बल्कि समझाने-बुझाने के तरीके से, मजदूर वर्ग की दिलजमई के तरीके से असर डालें।

लेकिन, पार्टी के सभी सदस्य केन्दीय समिति की राय के न थे। छोटे-छोटे विरोधी गुट-त्रात्स्कीपंथी, 'मजदूर विरोध', 'वामपंथी कम्युनिस्ट', 'जनवादी मध्यमार्गी', वगैरह-झगड़ रहे थे और शान्तिमय आर्थिक निर्माण की तरफ बढ़ने में जो कठिनाइयाँ सामने आ रही थीं, उनसे विचलित हो रहे थे और ढुलमुलपन दिखा रहे थे। पार्टी के अन्दर मेन्शेविक, समाजवादी-क्रान्तिकारी, बुन्द और बरोत्वापंथी[1] पार्टियों के काफी भूतपूर्व सदस्य थे और रूस के सीमान्त इलाकों से सभी तरह के अर्द्ध-राष्ट्रवादी थे। इनमें से ज्यादातर एक या दूसरे विरोधी गुट के साथ हो जाते थे। ये लोग सच्चे मार्क्सवादी नहीं थे। वे आर्थिक विकास के नियमों से अपरिचित थे और उन्हें लेनिनवादी पार्टी शिक्षा न मिली थी। वे विरोधी गुटों की उलझन और ढुलमुलपन को और बढ़ाने का ही काम करते थे। उनमें से कुछ का विचार था कि युद्धकालीन कम्युनिज्म की कठोर व्यवस्था को ढीला करना गलत

---

1. उक्रेन के सामाजिक क्रान्तिकारियों का वाम अंग, एक अन्धराष्ट्रवादी पार्टी; 1918 तक वह बरोत्वा नाम का मुखपत्र निकालती थी-अं. अनु.

होगा, बल्कि इसके विपरीत, 'लगाम जरा और खींचनी चाहिए।' और, दूसरों का ख्याल था कि पार्टी और राज्य को आर्थिक बहाली के काम से अलग रहना चाहिए और उसे पूरी तरह ट्रेड यूनियनों के हाथ में छोड़ देना चाहिए।

यह बात स्पष्ट थी कि पार्टी के अन्दर कुछ गुटों में जब ऐसी उलझन फैली हुई थी, जो बहस के शौकीन थे, तब एक न एक तरह के विरोधी 'नेता' पार्टी को बहस में पड़ने के लिए जरूर मजबूर करते।

और, हुआ भी यही।

ट्रेड यूनियनों की भूमिका पर बहस शुरू हुई, हालाँकि उस समय पार्टी नीति के लिए ट्रेड यूनियनें मुख्य समस्या न थीं।

बहस त्रात्स्की ने शुरू की और लेनिन के खिलाफ, केन्द्रीय समिति के लेनिनवादी बहुमत के खिलाफ लड़ाई शुरू की। परिस्थिति को और पेचीदा बनाने के ख्याल से, पाँचवीं अखिल रूसी ट्रेड यूनियन कान्फ्रेंस के कम्युनिस्ट प्रतिनिधियों की एक बैठक में, जो नवम्बर 1920 के आरम्भ में हुई थी, उसने 'लगाम और खींचने' और ट्रेड यूनियनों के कान खींचने के सन्देहनजक नारे दिये। त्रात्स्की ने माँग की कि ट्रेड यूनियनों का तुरन्त 'सरकारीकरण' हो। मजदूर वर्ग के सिलसिले में, वह समझाने-बुझाने के तरीके के खिलाफ था। वह इस पक्ष में था कि ट्रेड यूनियनों में फौजी तरीके लागू किये जायें। वह उनमें जनवाद के प्रसार, ट्रेड यूनियन की संस्थाओं को चुनने के उसूल के खिलाफ था।

समझाने-बुझाने के तरीकों के बिना, मजदूर वर्ग के संगठनों की कार्रवाई सोची भी नहीं जा सकती। लेकिन इन तरीकों के बदले, त्रात्स्कीवादी एकदम जोर-जबर्दस्ती और हुक्म चलाने के तरीके इस्तेमाल करने का सुझाव रखते थे। ट्रेड यूनियनों में, जहाँ भी वे प्रमुख जगहों में थे, वहाँ, वे इस नीति को लागू करते थे और झगड़े पैदा करते थे; यूनियनों में फूट और पस्ती पैदा करते थे। अपनी नीति से, त्रात्स्कीवादी आम गैर-पार्टी मजदूरों को पार्टी से भिड़ा रहे थे, मजदूर वर्ग में फूट डाल रहे थे।

वास्तव में, ट्रेड यूनियनों का महत्त्व मजदूर सभाई सवाल से ज्यादा था। जैसा कि रूसी कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) की केन्द्रीय समिति की विस्तारित बैठक के 17 जनवरी 1925 के प्रस्ताव में आगे कहा गया था, बहस की जड़ यह थी कि "किसानों की तरफ, जो युद्धकालीन कम्युनिज्म का विरोध कर रहे थे, कौन सी नीति अपनायी जाये; आम गैर-पार्टी मजदूरों की तरफ कौन सी नीति अपनाई जाये; और आम तौर से जब गृहयुद्ध समाप्त हो रहा था, तब आम जनता की तरफ पार्टी का रुख क्या हो।" (**सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) के प्रस्ताव,** रू.सं., भाग 1, पृष्ठ 651)।

त्रात्स्की की अगुवाई में, दूसरे पार्टी-विरोधी गुट चले : 'मजदूर विरोध' (श्लियाप्नीकोव, मेदवेद्येव, कोलोन्तायी, वगैरह), 'जनवादी-मध्यमार्गी' (साप्रोनोव, द्रोवनिस, बोगुस्लाव्स्की, आसिन्स्की, व. स्मिर्नोव, वगैरह), 'वामपंथी कम्युनिस्ट' (बुखारिन, प्रेयाब्राजन्स्की)।

'मजदूर विरोध' ने यह माँग करते हुए नारा दिया कि समूचे अर्थतंत्र का संचालन एक 'अखिल रूसी उत्पादक कांगेस को, सौंप दिया जाये। वे चाहते थे कि पार्टी की भूमिका नहीं के बराबर रह जाये। आर्थिक विकास के लिये, वे सर्वहारा अधिनायकत्व का महत्त्व

अस्वीकार करते थे। 'मजदूर विरोध' का दावा था कि ट्रेड यूनियनों के हितों और सोवियत राज्य और कम्युनिस्ट पार्टी के हितों में विरोध है। उनका कहना था कि मजदूर वर्ग के संगठन का सबसे ऊँचा रूप ट्रेड यूनियनें हैं, न कि पार्टी। 'मजदूर-विरोध' बुनियादी तौर से एक अराजकतावादी-संघाधिपत्यवादी-पार्टी विरोधी गुट था।

'जनवादी केन्द्रवादियों' की माँग थी कि गुटों और दलों के लिए पूरी आजादी हो। त्रात्स्कीपंथियों की तरह, 'जनवादी मध्यमार्गी' सोवियतों और ट्रेड यूनियनों में पार्टी के नेतृत्व को कमजोर बनाना चाहते थे। लेनिन ने जनवादी-केन्द्रवादियों' को 'गुल-गपाड़ा करने में खलीफाओं' का गुट कहा था और उनकी नीति को समाजवादी-क्रान्तिकारी-मेन्शेविक नीति कहा था।

लेनिन और पार्टी के खिलाफ इस लड़ाई में त्रात्स्की का सहायक बुखारिन था। प्रेओब्राजन्स्की, सेरेब्रियाकोव और सोकोल्निकोव के साथ बुखारिन ने एक 'मध्यस्थ' गुट बनाया था। यह गुट त्रात्स्कीवादियों की हिमायत करता था और उनकी रक्षा करता था, जो कि सबसे गन्दे गुटबाज थे। लेनिन ने कहा था कि बुखारिन का व्यवहार 'सैद्धान्तिक पतन की हद' है। बहुत जल्द बुखारिनपंथी लेनिन के विरोध में त्रात्स्कीवादियों से मिल गये।

लेनिन और लेनिनवादियों ने अपना मुख्य प्रहार पार्टी-विरोधी गुटबन्दी की जड़, त्रात्स्कीपंथियों पर किया। उन्होंने त्रात्स्कीवादियों की निन्दा की कि वे ट्रेड यूनियनों और फौजी संस्थाओं का भेद भूल जाते हैं और उन्हें चेतावनी दी कि ट्रेड यूनियनों में फौजी तरीके लागू नहीं किये जा सकते। लेनिन और लेनिनवादियों ने अपनी नीति रखी, जो विरोधी गुटों की नीति की भावना से बिल्कुल उल्टी थी। इस नीति के अनुसार, ट्रेड यूनियनों को शासन का स्कूल, प्रबन्ध करने का स्कूल, कम्युनिज्म का स्कूल बताया गया। इस नीति के अनुसार, ट्रेड यूनियनों की तमाम कार्रवाई का आधार समझाने-बुझाने का तरीका होना चाहिये। तभी ट्रेड यूनियनें आर्थिक अव्यवस्था खत्म करने के लिए तमाम मजदूरों को उभार सकेंगी और उन्हें समाजवादी निर्माण के काम में लगा सकेंगी।

विरोधी गुटों के खिलाफ, इस लड़ाई में पार्टी-संगठन लेनिन के चारों तरफ सिमट आये। मास्को में खास तौर से तीखा संघर्ष हुआ। यहाँ पर विरोधी दल ने अपनी मुख्य शक्ति लगा दी, जिससे कि राजधानी के पार्टी संगठन पर उनका दखल हो जाये। लेकिन, मास्को के बोल्शेविकों के जोरदार विरोध ने गुटबन्दी की इन तमाम साजिशों को नाकाम कर दिया। उक्रेन के पार्टी-संगठनों में भी तीखा संघर्ष छिड़ गया। उस समय, उक्रेन की कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति के मंत्री कामरेड मोलोतोव थे। उनके नेतृत्व में उक्रेन के बोल्शेविकों ने त्रात्स्कीवादियों और श्लियाप्नीकोव पंथियों को परास्त किया। उक्रेन की कम्युनिस्ट पार्टी लेनिन की पार्टी की वफादार समर्थक रही। बाकू में विरोधियों को परास्त करने का काम कामरेड और्जोनिकित्से के नेतृत्व में हुआ। मध्य एशिया में पार्टी-विरोधी गुटों के खिलाफ कामरेड कगानोविच ने संघर्ष का नेतृत्व किया।

पार्टी के सभी महत्त्वपूर्ण स्थानीय संगठनों ने लेनिन की नीति का समर्थन किया।

8 मार्च 1921 को, दसवीं पार्टी कांग्रेस शुरू हुई। पार्टी में 7,32,521 सदस्यों की तरफ

से 694 वोट देने वाले प्रतिनिधि आये और 296 प्रतिनिधि राय जाहिर करने वाले लेकिन वोट न दे सकने वाले थे।

कांग्रेस ने ट्रेड यूनियनों पर बहस का निचोड़ सामने रखा और भारी बहुमत से लेनिन की नीति का समर्थन किया।

कांग्रेस का उद्घाटन करते हुए लेनिन ने कहा कि बहस फिजूल का ऐश थी। उन्होंने ऐलान किया कि दुश्मनों ने सोचा था कि पार्टी में अन्दरूनी संघर्ष छिड़ जायेगा और कम्युनिस्ट पार्टी में फूट पड़ जायेगी।

यह महसूस करते हुए कि बोल्शेविक पार्टी और सर्वहारा अधिनायकत्व के लिए गुटबाज दलों का रहना कितना ज्यादा खतरनाक है, दसवीं कांग्रेस ने **पार्टी एकता** पर खास तौर से ध्यान दिया। इस सवाल पर, लेनिन ने रिपोर्ट पेश की। कांग्रेस ने सभी विरोधी गुटों की निन्दा की और घोषित किया कि वे 'दरअसल सर्वहारा क्रान्ति के वर्ग-शत्रुओं की मदद कर रहे थे।'

कांग्रेस ने आज्ञा दी कि सभी गुटबाज दलों को तुरन्त भंग किया जाये और सभी पार्टी संगठनों को आज्ञा दी कि वे इस बारे में खुद सतर्क रहें कि कहीं गुटबन्दी शुरू न हो, और जो कांग्रेस का फैसला न माने उसे बिना किसी शर्त के और तुरन्त ही पार्टी से निकाल दिया जाये। कांग्रेस ने केन्द्रीय समिति को अधिकार दिया कि अगर उसी के सदस्य अनुशासन तोड़ें या गुटबन्दी फिर चालू करें या गुटबन्दी बर्दाश्त करें तो उन्हें सभी तरह का पार्टी-दण्ड दिया जाये, जिसमें केन्द्रीय समिति से और पार्टी से निकालना भी शामिल था।

ये सभी फैसले 'पार्टी एकता' पर एक विशेष प्रस्ताव में रखे गये थे, जिसे लेनिन ने पेश किया था और कांग्रेस ने मंजूर किया था।

इस प्रस्ताव ने सभी पार्टी सदस्यों को याद दिलाया था कि पार्टी की कतारों में एकता और दृढ़ता, सर्वहारा की हिरावल में एकमत का होना ऐसे समय पर खास तौर से जरूरी था जब दसवीं कांग्रेस के दौर में कई बातों से देश के मध्यवित्त लोगों में ढुलमुलपन बढ़ गया था।

प्रस्ताव में कहा गया था :

> "इसके बावजूद, ट्रेड यूनियनों पर पार्टी की आम बहस से पहले ही गुटबन्दी के कुछ चिह्न पार्टी में दिखाई देने लगे थे जैसे विभिन्न नीतियाँ लेकर गुटों का बनना, एक हद तक अलग रहने और अपने ही गुट का अनुशासन कायम करने की कोशिश। तमाम वर्ग-चेतन मजदूरों को साफ-साफ समझ लेना चाहिए कि किसी भी तरह की गुटबन्दी कितनी हानिकर है और उसके लिए हरगिज इजाजत नहीं दी जा सकती। अमल में, गुटबन्दी का लाजिमी नतीजा यह होता है कि सामूहिक काम कमजोर पड़ जाता है और पार्टी के दुश्मन, जो उससे इसलिए चिपके हुए हैं कि वह शासक पार्टी है, बार-बार ओर जोरदार कोशिश करते हैं कि (पार्टी के अन्दर) फूट को और गहरा करें और क्रान्ति-विरोधी उद्देश्यों के लिए उसे इस्तेमाल करें।"

और भी, इसी प्रस्ताव में कांग्रेस ने कहा था :

> "सर्वहारा के दुश्मन पूरी तरह से संगत कम्युनिस्ट लाइन से हर भटकाव का किस तरह फायदा उठाते हैं, यह बहुत अच्छी तरह क्रोन्स्तात के विद्रोह में देखा गया। उस समय, दुनिया के सभी देशों के पूँजीवादी क्रान्ति-विरोधियों और गद्दारों ने तुरन्त ही अपनी इच्छा प्रकट की थी कि वे सोवियत व्यवस्था के नारे मंजूर करने के लिए तैयार हैं। शर्त यही थी कि इस तरह वे रूस में सर्वहारा अधिनायकत्व का तख्ता उलट दें। और उस समय, क्रोन्स्तात में समाजवादी-क्रान्तिकारियों और आम तौर से पूँजीवादी क्रान्ति-विरोधियों ने रूस की सोवियत सरकार के खिलाफ बगावत करने के नारे दिये, जो ऊपर से सोवियत सत्ता के हित में दिखाई देते थे। इन बातों से, पूरी तरह साबित होता है कि गद्दार कम्युनिस्टों का भेष धारण करने की कोशिश करते हैं और कर भी लेते हैं और कम्युनिस्टों से भी ज्यादा 'वामपंथी' बनते हैं। उनका उद्देश्य सिर्फ यह होता है कि रूस में सर्वहारा क्रान्ति के गढ़ को कमजोर किया जाये और उसे खत्म किया जाये। क्रोन्स्तात का विद्रोह होने से पहले, पेत्रोग्राद में जो मेन्शेविक पर्चे बाँटे गये, उनसे भी जाहिर होता है कि रूसी कम्युनिस्ट पार्टी के मतभेदों से मेन्शेविकों ने किस तरह लाभ उठाया, जिससे कि वे क्रोन्स्तात के विद्रोहियों, समाजवादी-क्रान्तिकारियों और गद्दारों को बढ़ावा दें और उनकी मदद करें जबकि उनका दावा यह था कि वे विद्रोह का विरोध करते हैं और सोवियत सत्ता के समर्थक हैं, सिर्फ थोड़ी हेर-फेर का ही भेद है।"

प्रस्ताव में कहा गया कि पार्टी को अपने प्रचार में विस्तार से बताना चाहिए कि पार्टी एकता के लिए और सर्वहारा के हिरावल के उद्देश्य की एकता के लिए गुटबन्दी कितनी हानिकर और खतरनाक है। सर्वहारा अधिनायकत्व की सफलता के लिए पार्टी एकता और सर्वहारा के हिरावल के उद्देश्य की एकता एक बुनियादी शर्त है।

दूसरी तरफ, कांग्रेस के प्रस्ताव में कहा गया था कि पार्टी अपने प्रचार में यह समझाये कि सोवियत सत्ता के दुश्मनों ने जो नये दाँव-पेंच इस्तेमाल किये थे, उनकी विशेषता क्या थी।

प्रस्ताव में कहा गया था :

> "इन दुश्मनों ने समझ लिया है कि गद्दारों के खुले झण्डे के नीचे क्रान्ति-विरोध की सफलता असम्भव है। वे भरसक कोशिश कर रहे हैं कि रूसी कम्युनिस्ट पार्टी के अन्दरूनी मतभेदों से फायदा उठायें, और किसी न किसी तरह उन राजनीतिक गुटों के हाथ में, जो ऊपर से सोवियत सत्ता मानने के बिल्कुल नजदीक हैं, सत्ता देकर क्रान्ति-विरोध को आगे बढ़ायें।" (लेनिन, सं.ग्रं. अं. सं., मास्को 1947, खण्ड 2, पृष्ठ 680)।

प्रस्ताव में आगे कहा गया था कि पार्टी को अपने प्रचार में "पिछली क्रान्तियों के सबक भी बताने चाहिए, जिनमें क्रान्ति-विरोधी आम तौर से उन निम्न-पूँजीवादी गुटों का

समर्थन कर चुके थे जो उग्र क्रान्तिकारी पार्टी के सबसे ज्यादा नजदीक थे। क्रान्ति-विरोधियों का उद्देश्य होता था कि क्रान्तिकारी अधिनायकत्व को कमजोर करें और उसका तख्ता उलट दें, और इस तरह, आगे चलकर क्रान्ति-विरोध की पूरी जीत के लिए, पूँजीपतियों और जमीन्दारों की जीत के लिए रास्ता साफ कर दें।”

‘पार्टी एकता’ पर प्रस्ताव से मिलता-जुलता प्रस्ताव “हमारी पार्टी में संघाधिपत्यवादी और अराजकतावादी भटकाव” पर था। इसे भी लेनिन ने पेश किया था और कांग्रेस ने उसे स्वीकार किया था। इस प्रस्ताव में, दसवीं कांग्रेस ने तथाकथित ‘मजदूर-विरोध’ की निन्दा की। कांग्रेस ने कहा कि अराजकतावादी संघाधिपत्यवादी भटकाव के विचारों का प्रचार कम्युनिस्ट पार्टी की सदस्यता के साथ नहीं चल सकता और पार्टी का आह्वान किया कि इस भटकाव का जोरों से विरोध करे।

दसवीं कांग्रेस ने फालतू अन्न लेने की व्यवस्था की जगह गल्ले के रूप में टैक्स लेने के बारे में नयी **आर्थिक नीति (नेप)** के बारे में बहुत ही महत्त्वपूर्ण फैसला किया।

युद्धकालीन कम्युनिज्म से नेप की तरफ यह मोड़, लेनिन की नीति की बुद्धिमानी और दूरदर्शिता की बहुत अच्छी मिसाल है।

कांग्रेस के प्रस्ताव में, फालतू अन्न लेने की व्यवस्था के बदले गल्ले के रूप में टैक्स लेने का सवाल लिया गया। फालतू अन्न लेने की व्यवस्था के अनुसार जितना टैक्स बाँधा गया था, गल्ले के रूप में टैक्स उससे कम रखा गया। टैक्स की पूरी तादाद वसन्त की बुवाई के पहले हर साल बता देनी होगी। टैक्स कब देना होगा, इसकी तारीखें बहुत ही स्पष्ट रूप से बतानी होंगी। टैक्स के अलावा जितनी भी उपज हो, उसका उपयोग पूरी तरह किसान के हाथ में था। वह अपनी इच्छा से इस फालतू उपज को बेच सकता था। अपने भाषण में, लेनिन ने कहा कि व्यापार करने की आजादी से देश में एक हद तक पहले पूँजीवाद उभरेगा। यह जरूरी होगा कि व्यक्तिगत व्यापार की आज्ञा दी जाये और व्यक्तिगत कारखानेदारों को छोटे धन्धे करने दिये जायें। लेकिन, इस तरफ से डर की कोई बात न थी। लेनिन का विचार था कि व्यापार में थोड़ी आजादी मिलने से किसान को आर्थिक पहलकदमी का मौका मिलेगा, उसे पैदावार बढ़ाने की प्रेरणा मिलेगी और खेती में तेजी से उन्नति होगी। इस आधार पर जो उद्योग-धन्धे राज्य के अधिकार में थे, वे बहाल किये जा सकेंगे और व्यक्तिगत पूँजी की जगह लेंगे। शक्ति और साधन इकट्ठा करने पर, समाजवाद की आर्थिक बुनियाद के रूप में, शक्तिशाली उद्योग-धन्धे निर्मित हो सकेंगे और तब देहात में पूँजीवाद के अवशेष खत्म करने के लिए जम कर हमला किया जा सकेगा।

युद्धकालीन कम्युनिज्म शहर और देहात के पूँजीवादी तत्वों के किले को हल्ला बोलकर सामने से धावा करके लेने की कोशिश था। इस हमले में, पार्टी बहुत आगे निकल आयी थी और खतरा यह था कि आधार से उसका सम्बन्ध न टूट जाये। अब लेनिन ने प्रस्ताव किया कि थोड़ा पीछे हटा जाये, थोड़ी देर के लिए आधार के नजदीक लौटा जाये, किले पर हल्ला बोलने के बदले घेरा डालने का धीमा तरीका अपनाया जाये, जिससे कि ताकत बटोरी जा सके और फिर हमला किया जा सके।

त्रात्स्कीपंथियों और दूसरे अवसरवादियों का कहना था कि नेप **पीछे हटने के सिवा और कुछ नहीं है।** यह व्याख्या उनके मतलब की थी, क्योंकि उनकी लाइन पूँजीवाद को फिर बहाल करने की थी। नेप की यह व्याख्या बहुत ही हानिकर और लेनिनवाद-विरोधी था। वास्तव में, नेप एक ही साल तक चालू रही थी कि लेनिन ने ग्यारहवीं पार्टी कांग्रेस में कहा था कि **पीछे हटना खत्म हो गया है,** और उन्होंने नारा दिया : **"व्यक्तिगत पूँजी पर हमले की तैयारी!"** (**लेनिन ग्रंथावली**, रू.सं., खण्ड 27, पृष्ठ 213)।

विरोध करने वाले अधकचरे मार्क्सवादी थे और बोल्शेविक नीति के सवालों के बारे में महाअज्ञानी थे। वे न ही नेप का मतलब समझते थे, न नेप की शुरुआत में जो पीछे हटना शुरू हुआ था उसकी विशेषता समझते थे। नेप क्या थी, इसे हम ऊपर बता चुके हैं। जहाँ तक पीछे हटने का सवाल है, पीछे हटना बहुत तरह का होता है। ऐसा समय आता है कि पार्टी या फौज को इसलिए पीछे हटना होता है कि उसकी पराजय हुई है। ऐसी हालत में फौज या पार्टी इसलिए पीछे हटती है कि नयी लड़ाइयों के लिए अपने को और अपनी कतारों को बनाये रहे। जब नेप की शुरुआत हुई, तो लेनिन ने इस तरह के पीछे हटने का प्रस्ताव नहीं किया था। कारण यह कि पराजित होना या मुसीबत में पड़ना तो दूर, पार्टी ने खुद गृहयुद्ध में हस्तक्षेपकारियों और गद्दारों को हराया था। लेकिन, ऐसा अवसर भी आता है जब कोई विजयी पार्टी या फौज अपने पीछे आधार बनाये बिना प्रगति करती हुई बहुत आगे बढ़ जाती है। इससे भारी खतरा पैदा होता है। अपने आधार से नाता न टूट जाये, इसलिए अनुभवी पार्टी या फौज ऐसी हालत में थोड़ा पीछे हटना, अपने आधार के थोड़ा नजदीक लौटना और उससे ज्यादा सम्पर्क कायम करना जरूरी समझती है, जिससे कि वह तमाम आवश्यक चीजें पा सके और तब ज्यादा विश्वास और ज्यादा सफलता की गारण्टी के साथ अपना आक्रमण जारी रख सके। लेनिन ने नयी आर्थिक नीति से अस्थायी रूप से इसी तरह पीछे हटना शुरू किया था। कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल की चौथी कांग्रेस के सामने नेप शुरू करने के कारणों पर रिपोर्ट देते हुए, लेनिन ने साफ-साफ कहा था, "अपने आर्थिक हमले में हम बहुत आगे बढ़ आये थे, हमने अपने लिए पर्याप्त आधार नहीं बनाया था।" और इसलिए, अपनी पृष्ठभूमि मजबूत करने के लिए अस्थायी रूप से पीछे लौटना जरूरी था।

विरोधियों की मुसीबत यह थी कि अपने अज्ञान की वजह से नेप के अनुसार पीछे हटने की इस विशेषता को वे नहीं समझते थे, और जब तक जिन्दा रहे तब तक नहीं समझ पाये।

नयी आर्थिक नीति पर, दसवीं कांग्रेस के फैसलों ने समाजवाद के निर्माण के लिए मजदूर वर्ग और किसानों के टिकाऊ आर्थिक सहयोग को पक्का कर दिया।

कांग्रेस के एक दूसरे फैसले से भी यह प्रमुख उद्देश्य पूरा होता था। यह फैसला राष्ट्रीयताओं के सवाल पर था। कामरेड स्तालिन ने राष्ट्रीयताओं के मसले पर रिपोर्ट पेश की। उन्होंने कहा कि हम लोगों ने राष्ट्रीय उत्पीड़न खत्म कर दिया है, लेकिन इतना ही काफी नहीं है। काम यह है कि पुराने जमाने की निकम्मी विरासत को दूर किया जाये, पहले के पीड़ित लोगों के आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक पिछड़ेपन को दूर किया

जाये। उन्हें इस तरह मदद देनी थी कि वे मध्य रूस के बराबर आ जायें।

कामरेड स्तालिन ने और आगे राष्ट्रीयताओं के सवाल पर दो पार्टी-विरोधी भटकावों का जिक्र किया। एक तो प्रमुख राष्ट्रीयता (वृहत रूसी) का अन्धराष्ट्रवाद था, और दूसरा स्थानीय राष्ट्रवाद था। कांग्रेस ने दोनों भटकावों को कम्युनिज्म और सर्वहारा अन्तरराष्ट्रीयता के लिए हानिकर और खतरनाक बता कर, उनकी निन्दा की। इसके साथ ही, उसने अपना मुख्य प्रहार बड़े खतरे, मुख्य राष्ट्रीयता के अन्धराष्ट्रवाद पर किया, यानी गैर-रूसी राष्ट्रीयताओं की तरफ जारशाही में वृहत रूसी अन्धराष्ट्रवादियों ने जैसा रुख दिखाया था, दूसरी राष्ट्रीयताओं की तरफ उसके अवशेषों और बचे-खुचे प्रभाव पर मुख्य प्रहार किया।

3. नेप के प्रथम फल। ग्यारहवीं पार्टी कांग्रेस। सोवियत समाजवादी गणतंत्र संघ का निर्माण। लेनिन की बीमारी। लेनिन की सहकार योजना। बारहवीं पार्टी कांग्रेस।

पार्टी के ढुलमुल लोगों ने नयी आर्थिक नीति का विरोध किया। विरोध दो तरफ से होता था। पहले तो 'वामपंथी' हल्ला-गुल्ला करने वाले थे; लोमीनीत्से, शात्स्किन, आदि जैसे राजनीतिक अजूबे भी थे, जो इस बात के 'सबूत' पेश करते थे कि नेप का मतलब है-अक्टूबर क्रान्ति से मिले हुए लाभ छोड़ देना, पूँजीवाद की तरफ लौट चलना और सोवियत सत्ता का पतन। अपनी राजनीतिक निरक्षरता और आर्थिक विकास के नियमों के अज्ञान की वजह से, ये लोग पार्टी की नीति न समझते थे। वे एकदम बदहवास हो गये और पस्ती और निराशा फैलाने लगे। दूसरे, ठेठ घुटने टेकनेवाले लोग थे-त्रात्स्की, रादेक, जिनोवियेव, सकोल्निकोव, कामेनेव, श्लियापनीकोव, बुखारिन, राइकोव, वगैरह जैसे लोग, जिन्हें विश्वास न था कि हमारे देश का समाजवादी विकास हो सकता है। ये लोग पूँजीवाद को 'सर्वशक्तिमान' समझ कर, उसके सामने घुटने टेकते थे और सोवियत देश में पूँजीवाद की स्थिति मजबूत करने के प्रयत्न में व्यक्तिगत पूँजी के लिए लम्बी-चौड़ी रियायतें माँगते थे। ये रियायतें देशी और विदेशी दोनों तरह की व्यक्तिगत पूँजी के लिए थीं। वे माँग करते थे कि आर्थिक क्षेत्र में सोवियत सत्ता की कई अहम जगहें व्यक्तिगत पूँजीपतियों को दे दी जायें और ये पूँजीपति या तो रियायत पाने वाले, या मिली-जुली ज्वाइंट स्टाक कम्पनियों में राज्य के साझीदार की तरह काम करें।

दोनों ही दल मार्क्सवाद और लेनिनवाद के लिए गैर थे।

पार्टी ने दोनों ही का पर्दाफाश किया और उन्हें अकेला कर दिया। पार्टी ने बदहवासी फैलाने वालों और घुटना टेकनेवालों की कड़ी आलोचना की।

पार्टी-नीति के इस विरोध ने एक बार फिर इस बात की याद दिलायी कि पार्टी से ढुलमुल लोगों को निकालना जरूरी है। इसलिए 1921 में, केन्द्रीय समिति ने पार्टी की शुद्धि का संगठन किया, जिससे पार्टी को काफी मजबूत करने में मदद मिली। शुद्धि का काम खुली सभाओं में, गैर-पार्टी जनता के सामने और उसके सहयोग से किया गया था। लेनिन ने सलाह दी कि पार्टी से पूरी तरह "बदमाशों, नौकरशाहों, बेईमान या ढुलमुल कम्युनिस्टों को

और मेन्शेविकों को, जिन्होंने नया चेहरा लगा लिया है लेकिन जिनका दिल मेन्शेविक ही है" बाहर निकाल दिया जाये। (लेनिन, सं.ग्र., अं.सं., मास्को, 1947, खण्ड 2, पृष्ठ 746)।

कुल मिलाकर, 1,70,000 आदमियों या पूरे सदस्यों के लगभग 25 फीसदी लोग शुद्धि के फलस्वरूप पार्टी से निकाल दिये गये।

शुद्धि से पार्टी बहुत मजबूत हुई, उसकी सामाजिक बनावट सुधरी, आम जनता का विश्वास उसमें और बढ़ा और उसका मान-सम्मान ज्यादा हो गया। पार्टी के अन्दर भीतरी दृढ़ता आयी और अनुशासन सुधरा।

नयी आर्थिक नीति सही है, यह पहले ही साल में साबित हो गया था। उसकी मंजूरी से एक नये आधार पर मजदूरों और किसानों का सहयोग मजबूत करने में बहुत मदद मिली। सर्वहारा अधिनायकत्व की शक्ति और बल बढ़ा। कुलक-डकैती पूरी तरह खत्म कर दी गयी। फालतू अन्न लेने की व्यवस्था समाप्त हो चुकी थी, इसलिए मध्यम किसानों ने कुलक जत्थों से लड़ने में सोवियत सरकार की मदद की। आर्थिक क्षेत्र में सभी अहम जगहें-बड़े पैमाने के उद्योग-धन्धे, यातायात के साधन, बैंक, जमीन, देशी और विदेशी व्यापार, सोवियत सरकार के हाथ में रहे। आर्थिक क्षेत्र में, पहले से अच्छी हालत की तरफ पार्टी ने मोड़ लिया। खेती जल्दी ही उन्नति करने लगी। उद्योग-धन्धों और रेलों को अपनी पहली सफलताएँ मिलीं। आर्थिक पुनर्जागरण शुरू हुआ, जिसकी गति बहुत धीमी लेकिन बहुत निश्चित थी। मजदूरों और किसानों ने महसूस किया और देखा कि पार्टी सही रास्ते पर है।

मार्च 1922 में, पार्टी की ग्यारहवीं कांग्रेस हुई। इसमें 5,32,000 पार्टी सदस्यों की तरफ से 522 वोट देने वाले प्रतिनिधि आये। पार्टी सदस्यों की तादाद पिछली कांग्रेस से कम थी। 165 प्रतिनिधि बोलने वाले लेकिन वोट न दे सकने वाले थे। पार्टी सदस्यों में कमी का सबब पार्टी की शुद्धि थी, जो तब तक शुरू हो चुकी थी।

इस कांग्रेस में, नयी आर्थिक नीति के पहले साल के नतीजों का पार्टी ने लेखा-जोखा लिया। इन नतीजों के आधार पर, लेनिन कांग्रेस में ऐलान कर सके :

> "एक साल तक हम पीछे हटते आये हैं। पार्टी के नाम पर, अब हमें रुकना चाहिए। पीछे हटने का उद्देश्य पूरा हो चुका है। वह दौर खत्म हो गया है, या खत्म होने को है। अब हमारा उद्देश्य दूसरा है-अपनी शक्तियों को फिर से संगठित करना।" (उप., पृष्ठ 782-83)।

लेनिन ने कहा कि नेप पूँजीवाद और समाजवाद के बीच जिन्दगी और मौत की लड़ाई थी। सवाल यह था-'कौन जीते?' हम जीतें, इसके लिए जरूरी था कि देहात और शहर के बीच माल की अदला-बदली को भरसक बढ़ाकर मजदूर वर्ग और किसानों के सम्बन्ध को समाजवादी उद्योग-धन्धों और किसानों की खेती के सम्बन्ध को सुरक्षित कर लिया जाये। इस उद्देश्य के लिए, प्रबन्ध करने की कला और सफल व्यापार करने की कला सीखना जरूरी था।

उस समय, पार्टी के सामने जो समस्याएँ थीं उनकी मुख्य कड़ी व्यापार थी। जब तक यह समस्या न हल होती, तब तक शहर और देहात के बीच माल के विनिमय को बढ़ाना

असम्भव होता, मजदूरों और किसानों के आर्थिक सहयोग को दृढ़ करना, खेती को बढ़ाना या अव्यवस्था की हालत से उद्योग-धन्धों को निकालना असम्भव होता।

उस समय, सोवियत व्यापार अभी बहुत अविकसित था। व्यापार करने की व्यवस्था बहुत ही अपर्याप्त थी। कम्युनिस्टों ने अभी व्यापार की कला सीखी न थी। उन्होंने अपने दुश्मन-नेपमैन[1]-को जाँचा न था, और न यह सीखा था कि कैसे उसका मुकाबला करना चाहिए। व्यक्तिगत व्यापारियों, या नेपमैनों ने सोवियत व्यापार की अविकसित दशा से फायदा उठाया था, जिससे कि वे सूती कपड़ों या दूसरे माल के व्यापार में, जिसकी आम माँग हो, अपना सिक्का जमा लें। राज्य के व्यापार और सहकारी व्यापार का संगठन सबसे अधिक महत्त्व का हो गया था।

ग्यारहवीं कांग्रेस के बाद, आर्थिक क्षेत्र में दूने जोर के साथ काम शुरू हुआ। हाल में फसल न होने के असर को सफलता से दूर किया गया। किसानों की खेती में जल्द सुधार हुआ। रेलें पहले से अच्छा काम करने लगीं। अधिकाधिक कल-कारखाने चालू हुए।

अक्टूबर 1922 में, सोवियत गणतंत्र ने एक महान विजय का समारोह मनाया। सोवियत देश के अन्तिम भाग को, जो अभी तक हमलावरों के हाथ में था, व्लादीवोस्तक को, लाल फौज और सुदूरपूर्व के छापेमारों ने जापानियों के हाथ से छीन लिया।

सोवियत गणतंत्र की समूची धरती हस्तक्षेपकारियों से पाक कर दी गयी। समाजवादी निर्माण और देश की सुरक्षा की जरूरतों की माँग थी कि सोवियत जनता के संघ को और मजबूत बनाया जाये। इसलिए, अब आवश्यकता पैदा हुई कि एक ही संघ राज्य में सोवियत गणतंत्रों को और निकटता से गूँथा जाये। समाजवाद के निर्माण के लिए, जनता की सभी शक्तियों को मिलाना था। देश को अजेय बनाना था। ऐसी परिस्थिति तैयार करनी थी जिससे कि हमारे देश में हर राष्ट्रीयता का चौमुखी विकास हो सके। इसके लिए जरूरी था कि सभी सोवियत राष्ट्रीयताएँ एक ही संघ में एक-दूसरे के और निकट लाई जायें।

दिसम्बर 1922 में, सोवियतों की पहली अखिल संघीय कांग्रेस हुई। इसमें, लेनिन और स्तालिन के प्रस्ताव पर, सोवियत राष्ट्रीयताओं का एक स्वैच्छिक राज्य संघ-सोवियत समाजवादी गणतंत्र संघ (सो.स.ग.सं.) बनाया गया। पहले सो.स.ग.सं. में रूसी सोवियत संघीय समाजवादी गणतंत्र (रू.सो.सं.ग.प्र.), ट्रांस-काकेशिया का सोवियत संघीय समाजवादी गणतंत्र (ट्रां.सो.सं.स.ग.), उक्रेन का सोवियत समाजवादी गणतंत्र (उ.सो.स.प्र,ग.), और बेलारूस का सोवियत समाजवादी जनतंत्र (बे.सो.सं.प्र.) शामिल थे। कुछ दिन बाद, मध्य एशिया में तीन स्वतंत्र संघीय सोवियत गणतंत्र-उजबेक, तुर्कमान और ताजिक गणतंत्र-बने। ये सभी जनतंत्र सोवियत राज्यों के एक ही संघ-सो.स.ग.सं.-में स्वेच्छा और समानता के आधार पर संयुक्त हुए हैं। इनमें से हरेक को यह अधिकार है कि वह आजादी से सोवियत संघ से अलग हो सकता है।

सोवियत समाजवादी गणतंत्र संघ के बनने का मतलब था-सोवियत सत्ता का मजबूत होना

---

1. नयी आर्थिक नीति (नेप) के शुरू के दिनों में व्यक्तिगत कारखानेदार, व्यापारी, या मुनाफाखोर-अं. अनु.।

और राष्ट्रीयताओं के मसले पर बोल्शेविक पार्टी की लेनिनवादी-स्तालिनवादी नीति की महान विजय।

नवम्बर 1922 में, मास्को-सोवियत के एक विस्तृत अधिवेशन में लेनिन ने एक भाषण दिया, जिसमें सोवियत शासन के पाँच वर्षों का लेखा-जोखा लिया और यह दृढ़ विश्वास प्रकट किया कि "नयी आर्थिक नीति का रूस, समाजवादी रूस बनेगा।" देश के लिए, उनका यह अन्तिम भाषण था। उसी शरद में, पार्टी पर भारी विपत्ति पड़ी : लेनिन बुरी तरह बीमार पड़ गये। समूची पार्टी और तमाम मेहनतकश जनता के लिए, उनकी बीमारी एक बहुत गहरा और व्यक्तिगत शोक थी। अपने प्रिय लेनिन के जीवन की चिन्ता से सभी लोग विचलित थे। लेकिन, बीमारी में भी लेनिन ने काम करना बन्द न किया। जब वह बहुत बीमार थे, तब भी उन्होंने कई बहुत ही महत्त्वपूर्ण लेख लिखे। इन अन्तिम रचनाओं में, अब तक के किये हुए काम का सिंहावलोकन किया और अपने देश में समाजवादी निर्माण के उद्देश्य के लिए किसानों का सहयोग प्राप्त करके समाजवाद के निर्माण के लिए एक योजना की रूपरेखा बनाई। इस रूपरेखा में उनकी सहकार योजना थी, जिससे कि समाजवाद के निर्माण में किसानों का सहयोग प्राप्त किया जा सके।

लेनिन की राय में, सहकारी समितियाँ आम तौर से और खेती की सहकारी समितियाँ खास तौर से अगली मंजिल की तरफ बढ़ने का एक साधन हैं। यह साधन छोटे व्यक्तिगत खेतों से लेकर पैदावार के बड़े पैमाने के संघों तक, या सामूहिक खेतों तक लाखों किसानों की पहुँच और समझ के भीतर था। लेनिन ने बताया कि हमारे देश में खेती के विकास में जिस नीति पर चलना था, वह यह थी कि सहकारी समितियों के जरिये समाजवाद के निर्माण में किसानों को खींचा जाये, पहले बेचने में और फिर खेती की उपज पैदा करने में, धीरे-धीरे खेती में सामूहिक उसूल लागू किया जाये। लेनिन ने कहा था कि सर्वहारा अधिनायकत्व और मजदूर-किसान सहयोग होने पर, किसानों का सर्वहारा नेतृत्व पक्का होने पर और समाजवादी उद्योग-धन्धे होने पर लाखों किसानों को समेटने वाली एक सुसंगठित उत्पादक सहकारी व्यवस्था एक मात्र साधन है, जिससे हमारे देश में पूरी तरह समाजवादी समाज का निर्माण हो सकता है।

अप्रैल 1923 में, पार्टी ने बारहवीं कांग्रेस की। बोल्शेविकों ने जब से सत्ता सँभाली, तबसे यह पहली कांग्रेस थी जिसमें लेनिन नहीं आ सके थे। कांग्रेस में, 3,86,000 पार्टी सदस्यों की तरफ से 408 वोट देने वाले प्रतिनिधि आये थे। यह तादाद पिछली कांग्रेस से कम थी। कमी का सबब यह था कि इस बीच पार्टी की शुद्धि चलती रही थी और उसके फलस्वरूप पार्टी सदस्यों की काफी प्रतिशत संख्या निकाल दी गयी थी। 417 प्रतिनिधि बोलने वाले लेकिन वोट न दे सकने वाले थे।

बारहवीं पार्टी कांग्रेस ने अपने फैसलों में उन सिफारिशों को रखा, जिन्हें लेनिन ने हाल के लेखों और खतों में पेश किया था।

कांग्रेस ने उन लोगों को कड़ी फटकार बताई जो नेप का मतलब समाजवादी उद्देश्य से पीछे हटना, पूँजीवाद के सामने आत्मसमर्पण करना समझते थे और जो पूँजीवादी गुलामी की तरफ लौट चलने का समर्थन करते थे। कांग्रेस में, इस तरह के प्रस्ताव त्रात्स्की

के अनुयायियों, रादेक और क्रासेन ने रखे। उन्होंने सुझाव रखा कि हम अपने को विदेशी पूँजीपतियों की दया पर छोड़ दें, उन्हें रियायतें देकर, सोवियत राज्य के जीवन के लिए आवश्यक धन्धे उन्हें सौंप कर, उनके सामने घुटने टेक दें। उनका प्रस्ताव था कि अक्टूबर क्रान्ति ने जार सरकार के जो कर्ज रद्द कर दिये थे, उन्हें भरा जाये। पार्टी ने इन समर्पणवादी प्रस्तावों को गद्दारी कह कर, उनकी निन्दा की। उसने रियायतें देने की नीति को ठुकराया नहीं, लेकिन उसे ऐसे धन्धों के लिए ही ठीक समझा और उतनी ही हद तक ठीक समझा जिस हद तक कि सोवियत राज्य को फायदा हो।

कांग्रेस से पहले ही, बुखारिन और सोकोल्निकोव ने प्रस्ताव किया था कि विदेशी व्यापार पर राज्य का इजारा खत्म कर दिया जाये। यह प्रस्ताव इस विचार पर निर्भर था कि नेप के माने पूँजीवाद के आगे घुटने टेकना है। लेनिन ने बुखारिन को मुनाफाखोरों, नेपमैनों और कुलकों का हिमायती कहा था। 12वीं कांग्रेस ने विदेशी व्यापार के इजारे को कमजोर करने की कोशिशों को दृढ़ता से ठुकरा दिया।

कांग्रेस ने पार्टी पर किसानों के प्रति त्रात्स्की की ऐसी नीति लादने की कोशिश को भी ठुकरा दिया जो घातक होती। कांग्रेस ने कहा कि देश में छोटे पैमाने की खेती की बहुतायत एक सच्चाई है, जिसे भुलाया नहीं जा सकता। उसने जोर देकर कहा कि उद्योग-धन्धों का विकास, जिसमें बड़े उद्योग-धन्धों का विकास भी शामिल है, किसान जनता के हितों के खिलाफ हरगिज न चलना चाहिए। उसका आधार मजदूरों से निकट सम्बन्ध होना चाहिए, यह विकास तमाम मेहनतकश जनता के हित में होना चाहिए। ये फैसले त्रात्स्की को जवाब थे, जिसने प्रस्ताव किया था कि उद्योग-धन्धों का निर्माण किसानों का शोषण करके हो, और जो दरअसल मजदूर-किसानों के सहयोग की नीति नहीं मानता था।

साथ ही, त्रात्स्की ने यह भी प्रस्ताव रखा कि बड़े कारखाने, जैसे पुतिलोव, ब्रियान्स्क, वगैरह जो कि देश की रक्षा के लिए महत्त्वपूर्ण थे, बन्द कर दिये जायें। बहाना यह था कि उनसे मुनाफा नहीं होता। कांग्रेस ने त्रात्स्की के इन प्रस्तावों को गुस्से के साथ ठुकरा दिया।

लेनिन के प्रस्ताव पर, जो कांग्रेस को लिखित रूप में भेजा गया था, बारहवीं कांग्रेस ने पार्टी के केन्द्रीय कन्ट्रोल कमीशन और मजदूर-किसान निरीक्षण-समिति को एक ही संस्था में मिला दिया। इस संयुक्त संस्था को ये महत्त्वपूर्ण कार्य सौंपे गये थे-पार्टी एकता की रक्षा करना, पार्टी और नागरिक अनुशासन को मजबूत करना और सोवियत राज्य के यंत्र को हर तरह से उन्नत करना।

कांग्रेस के कार्यक्रम में एक महत्त्वपूर्ण बात राष्ट्रीयताओं का सवाल थी, जिस पर कामरेड स्तालिन ने रिपोर्ट पेश की। कामरेड स्तालिन ने राष्ट्रीयताओं के सवाल पर हमारी नीति के अन्तरराष्ट्रीय महत्त्व पर जोर दिया। पूरब और पश्चिम के सताये हुए लोगों के लिए सोवियत संघ राष्ट्रीय प्रश्न के समाधान और राष्ट्रीय उत्पीड़न के खात्मे का आदर्श था। उन्होंने बताया कि सोवियत संघ की राष्ट्रीयताओं में आर्थिक और सांस्कृतिक असमानता को खत्म करने के लिए जोरदार कदम उठाना आवश्यक है। उन्होंने पार्टी को बुलावा दिया

कि राष्ट्रीयताओं के सवाल पर होने वाले भटकावों के खिलाफ-वृहद रूसी अन्धराष्ट्रवाद और स्थानीय पूँजीवादी राष्ट्रवाद-के खिलाफ जम कर लड़े।

राष्ट्रवादी गुमराहों और उनकी प्रमुख राष्ट्रीयता की नीति का, जिसे वे अल्पसंख्यक राष्ट्रीयताओं की तरफ बरतते थे, कांग्रेस में पर्दाफाश किया गया। उस समय, जार्जिया के राष्ट्रवादी गुमराह मिदवानी वगैरह पार्टी का विरोध कर रहे थे। वे ट्रांस-काकेशिया का संघ बनाने के खिलाफ थे और ट्रांस-काकेशिया की राष्ट्रीयताओं में भाईचारा बढ़ाने के खिलाफ थे। ये गुमराह जार्जिया की दूसरी राष्ट्रीयताओं की तरफ प्रमुख राष्ट्रीयता के सीधे अन्धराष्ट्रवादियों की तरह व्यवहार कर रहे थे। वे तिफलिस से गैर-जार्जियन लोगों को, विशेषकर आर्मीनियनों को, सामूहिक रूप से निकाल रहे थे। उन्होंने कानून बना दिया था कि जार्जियन औरतें गैर-जार्जियन लोगों से ब्याह करेंगी तो अपनी नागरिकता खो देंगी। त्रात्स्की, रादेक, बुखारिन, स्क्रिपनिक और रकोव्स्की जार्जिया के राष्ट्रवादी गुमराहों का समर्थन करते थे।

कांग्रेस के थोड़े ही दिन बाद, राष्ट्रीय गणतंत्रों से पार्टी-कार्यकर्ताओं की एक विशेष कान्फ्रेंस राष्ट्रीय प्रश्न पर विचार करने के लिए बुलाई गयी। यहाँ सुल्तान गालियेव वगैरह तातार पूँजीवादी राष्ट्रवादियों के एक गुट और फैजुल्ला खोजायेव वगैरह उजबेक राष्ट्रवादी गुमराहों के एक गुट का पर्दाफाश किया गया।

बारहवीं पार्टी कांग्रेस ने पिछले दो साल में नयी आर्थिक नीति के परिणामों की जाँच-पड़ताल की। ये परिणाम हौसला बढ़ाने वाले थे, और उनसे अन्तिम विजय में विश्वास पैदा होता था।

कामरेड स्तालिन ने कांग्रेस में कहा था :

> "हमारी पार्टी की एकता और दृढ़ता कायम रही है। हमारी पार्टी एक महत्त्वपूर्ण मोड़ में खरी उतरी है, और जीत के झण्डे फहराती हुई आगे बढ़ रही है।"

4. आर्थिक पुनर्संगठन की कठिनाइयों के खिलाफ संघर्ष। त्रात्स्कीवादियों का अपनी कार्रवाई बढ़ाने के लिए लेनिन की बीमारी से फायदा उठाना। नयी पार्टी बहस। त्रात्स्कीपंथियों की हार। लेनिन की मृत्यु। लेनिन-भर्ती। तेरहवीं पार्टी कांग्रेस।

राष्ट्रीय अर्थतंत्र को बहाल करने के संघर्ष ने पहले ही वर्षों में पर्याप्त फल दिये। 1924 तक, सभी क्षेत्रों में प्रगति दिखाई दी। 1921 के बाद, खेती का इलाका काफी बढ़ गया था। किसानों की खेती बराबर उन्नत हो रही थी। समाजवादी उद्योग-धन्धे बढ़ रहे थे, और उनका प्रसार हो रहा था। मजदूर वर्ग संख्या में बहुत बढ़ गया था। तनख्वाहें बढ़ गयी थीं। 1920 और 1921 के मुकाबले में, मजदूरों और किसानों के लिए जीवन आसान और सुन्दर हो गया था।

लेकिन, आर्थिक अव्यवस्था का असर अब भी महसूस होता था। उद्योग-धन्धे युद्ध के पहले के स्तर से अब भी नीचे थे, और उनका विकास देश की माँग के बहुत पीछे था।

1923 के अन्त में, करीब दस लाख बेकार थे। राष्ट्रीय अर्थतंत्र इतने धीरे विकसित हो रहा था कि बेकारों को खपा न सकता था। व्यापार का विकास तैयार माल की बहुत बढ़ी-चढ़ी कीमतों से रुक रहा था। ये कीमतें नेपमैन और हमारे व्यापारी संगठनों के नेपमैन तत्व देश पर लाद रहे थे। इस वजह से, सोवियत रूबल बुरी तरह झकोले खाने लगा और उसका मूल्य गिरने लगा। इन कारणों से, मजदूरों और किसानों की दशा सुधारने में बाधा पड़ती थी।

1923 की शरद में, हमारे औद्योगिक और व्यापारी संगठनों द्वारा सोवियत की भाव-सम्बन्धी नीति के उल्लंघन से आर्थिक कठिनाइयाँ कुछ बढ़ गयीं। तैयार माल की कीमत और खेतों की उपज की कीमत में बहुत बड़ा अन्तर था। गल्ले की कीमत कम थी और तैयार माल की कीमत बेहद ऊँची थी। उद्योग-धन्धों पर बहुत ज्यादा ऊपरी खर्च का भार था, जिससे माल की कीमत बढ़ जाती थी। किसानों को अपने गल्ले के लिए जो पैसा मिलता था, उसका मूल्य तेजी से गिरता गया। उधर त्रात्स्कीवादी प्याताकोव उस समय राष्ट्रीय अर्थतंत्र की प्रधान समिति में था। उसने प्रबन्धकों और संचालकों को यह मुजरिमाना हुक्म दिया कि तैयार माल के बेचने से जितना मुनाफा खींच सकें, खींचें और जहाँ तक भाव ऊँचा कर सकें, करें। ऊपर से, उद्देश्य यह लगता था कि उद्योग-धन्धों का विकास हो। लेकिन, इससे हालत और बदतर हुई। वास्तव में, इस नेपमैन की नीति से उद्योग-धन्धों की बुनियाद संकुचित और कमजोर ही हो सकती थी। किसानों के लिये तैयार माल खरीदने में कोई लाभ न था, और उन्होंने उसे खरीदना बन्द कर दिया। नतीजा यह हुआ कि उद्योग-धन्धों के लिए विक्रय-संकट पैदा हो गया। तनख्वाहें देने में कठिनाइयाँ पैदा हुईं। इससे, मजदूरों में असन्तोष भड़क उठा। ज्यादा पिछड़े हुए मजदूरों ने कुछ कारखानों में काम बन्द कर दिया।

पार्टी की केन्द्रीय समिति ने इन कठिनाइयों और असंगतियों को दूर करने के लिए कदम उठाये। विक्रय-संकट दूर करने का उपाय किया गया। रोजाना खर्च में आने वाले माल का भाव कम कर दिया गया। फैसला किया गया कि मुद्रा-सम्बन्धी सुधार किया जाये और एक पक्की और टिकाऊ मुद्रा की इकाई-चेरवोनेत्स-मंजूर की जाये। साधारण रूप से तनख्वाहों का दिया जाना जारी हो गया। राज्य और सरकारी समितियों के जरिये व्यापार को बढ़ाने और व्यक्तिगत व्यापारियों और मुनाफाखोरों को हटाने के लिए उपायों की रूपरेखा बनाई गयी।

अब जरूरत इस बात की थी कि हर कोई इस मिली-जुली कोशिश में लग जाये, आस्तीनें चढ़ा ले और जोश के साथ काम में लग जाये। जितने भी लोग पार्टी के प्रति वफादार थे, उन्होंने ऐसा ही सोचा और किया। लेकिन, त्रात्स्कीवादियों की बात दूसरी थी। लेनिन भारी बीमारी की वजह से काम न कर सकते थे। उनकी अनुपस्थिति से उन्होंने पार्टी और उसके नेतृत्व पर नया हमला करने के लिए लाभ उठाया। उन्होंने तय किया कि पार्टी को तोड़ने और उसके नेतृत्व को पछाड़ने के लिए यह उपयुक्त घड़ी है। पार्टी के खिलाफ उन्हें जो भी हथियार मिला, उन्होंने चलाया : जर्मनी और बल्गारिया में 1923 की शरद में क्रान्ति की पराजय, घर में आर्थिक कठिनाइयाँ और लेनिन की बीमारी।

सोवियत राज्य की इस कठिन घड़ी में, जब पार्टी के नेता रोग शैया पर थे, त्रात्स्की ने बोल्शेविक पार्टी पर अपना हमला शुरू किया। पार्टी के भीतर जितने भी लेनिनवाद विरोधी थे, उन सबको बटोरा और पार्टी, उसके नेतृत्व और उसकी नीति के खिलाफ एक विरोधी दल भी जोड़-तोड़ कर बना डाला। इस दल की नीति 46 विरोधियों की घोषणा कहलाती थी। लेनिनवादी पार्टी से लड़ने के लिए सभी विरोधी गुट-त्रात्स्कीपंथी, जनवादी मध्यमार्गी, 'वामपंथी कम्युनिस्ट' और 'मजदूर विरोधी' गुटों के बचे-खुचे लोग-मिल गये। अपनी घोषणा में, उन्होंने भविष्यवाणी की कि घोर आर्थिक संकट आने वाला है और सोवियत सत्ता खत्म हो जायेगी। उन्होंने माँग की कि इस परिस्थिति से बचने का एक ही तरीका है कि दल और गुट बनाने की आजादी दी जाये।

यह फिर से दलबन्दी बहाल करने के लिए संघर्ष था, जिस पर दसवीं पार्टी कांग्रेस ने लेनिन के प्रस्ताव पर रोक लगा दी थी।

त्रात्स्कीवादियों ने खेती या उद्योग-धन्धों के सुधार के लिए, बिकाऊ माल के चलन के सुधार के लिए, या मेहनतकश जनता की हालत सुधारने के लिए एक भी निश्चित प्रस्ताव नहीं किया। इससे उन्हें दिलचस्पी तक न थी। उन्हें सिर्फ एक बात से दिलचस्पी थी कि लेनिन की गैर-हाजिरी से फायदा उठाकर पार्टी में फिर से गुटबन्दी बहाल की जाये, उसकी जड़ें खोदी जायें और उसकी केन्द्रीय समिति को कमजोर बनाया जाये।

छियालीस लोगों की घोषणा के बाद, त्रात्स्की ने एक खत छापा जिसमें उसने पार्टी कार्यकर्ताओं को गालियाँ दीं और पार्टी के खिलाफ नये कीचड़ उछालने वाले आरोप लगाये। इस खत में, त्रात्स्की ने फिर वही मेन्शेविक राग अलापे जो पार्टी उससे बहुत पहले सुन चुकी थी।

सबसे पहले त्रात्स्कीवादियों ने पार्टी मशीनरी पर हमला किया। वे जानते थे कि एक मजबूत ढाँचे के बिना पार्टी जीवित नहीं रह सकती, और न काम कर सकती हैं। विरोधियों ने कोशिश की कि पार्टी के ढाँचे को कमजोर कर दें और तोड़ दें, पार्टी सदस्यों को उससे भिड़ा दें और नये सदस्यों को पार्टी के पुराने महारथियों से लड़ा दें। इस खत में, त्रात्स्की ने विद्यार्थियों को उभारा, नौजवान पार्टी सदस्यों को उभारा, जो अभी तक त्रात्स्कीवाद के खिलाफ पार्टी की लड़ाई के इतिहास से परिचित न थे। विद्यार्थियों का समर्थन पाने के लिए, त्रात्स्की ने उनकी तारीफ करते हुए उन्हें पार्टी का पक्का 'तापमान यंत्र' बताया और साथ ही यह भी कहा कि पुराने लेनिनवादी नेताओं का पतन हो चुका है। दूसरी इंटरनेशनल के नेताओं के पतन का हवाला देते हुए, उसने यह गन्दा इशारा किया कि पुराने बोल्शेविक नेता भी उसी रास्ते जा रहे हैं। पार्टी के पतन के बारे में यह शोरगुल मचा कर, त्रात्स्की ने खुद अपने पतन और अपनी पार्टी-विरोधी साजिशों पर पर्दा डालना चाहा।

त्रात्स्कीवादियों ने दोनों ही विरोधी दस्तावेज घुमाये : 46 विरोधियों की घोषणा, और त्रात्स्की का खत। उन्होंने इन लेखों को जिलों में और पार्टी केन्द्रों में घुमाया और पार्टी सदस्यों के सामने बहस के लिए रखा।

उन्होंने बहस के लिए पार्टी को चुनौती दी।

इस तरह, त्रात्स्कीवादियों ने पार्टी को एक आम बहस में पड़ने के लिए मजबूर किया,

ठीक जैसे कि दसवीं पार्टी कांग्रेस से पहले ट्रेड यूनियनों के सवाल पर बहस के सिलसिले में किया था।

हालाँकि पार्टी देश के आर्थिक जीवन की कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण समस्याओं में लगी हुई थी, लेकिन उसने चुनौती स्वीकार कर ली और बहस शुरू कर दी।

सारी पार्टी बहस में लग गयी। संघर्ष ने बहुत ही कटु रूप धारण किया। सबसे तीखा संघर्ष मास्को में था, क्योंकि त्रात्स्कीवादियों की सबसे ज्यादा कोशिश यही थी कि राजधानी के पार्टी-संगठन पर कब्जा कर लें। लेकिन, इससे उन्हीं के मुँह पर कालिख पुत गयी। मास्को में, और सोवियत संघ के दूसरे हिस्सों में भी उन्हें बुरी तरह मुँहकी खानी पड़ी। सिर्फ विश्वविद्यालयों और दफ्तरों के कुछ केन्द्रों ने ही त्रात्स्कीवादियों को कुछ वोट दिये।

जनवरी 1924 में, पार्टी ने अपनी तेरहवीं कान्फ्रेंस की। कान्फ्रेंस ने बहस के नतीजों का सार रूप देते हुए, कामरेड स्तालिन की रिपोर्ट सुनी। कान्फ्रेंस ने त्रात्स्कीवादी-विरोध की निन्दा की और उसे मार्क्सवाद से निम्न-पूँजीवादी भटकाव बताया। कान्फ्रेंस के फैसलों को आगे चलकर, तेरहवीं पार्टी कांग्रेस ने और कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल की पाँचवीं कांग्रेस ने अनुमोदित किया। अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट सर्वहारा ने त्रात्स्कीवाद के खिलाफ संघर्ष में बोल्शेविक पार्टी का समर्थन किया।

लेकिन, त्रात्स्कीवादी अपनी तोड़-फोड़ की हरकतों से बाज न आये। 1924 की शरद में, त्रात्स्की ने "अक्टूबर की शिक्षा" नाम का एक लेख प्रकाशित किया, जिसमें उसने त्रात्स्कीवाद को लेनिनवाद की जगह देने की कोशिश की। हमारी पार्टी और उसके नेता लेनिन पर कीचड़ उछालने के सिवा यह और कुछ न था। कम्युनिज्म और सोवियत सत्ता के तमाम दुश्मनों ने इस कीचड़-उछाल पर्चे को हाथों-हाथ लिया। बोल्शेविज्म के वीर इतिहास को इस तरह बेहयाई से तोड़ने-मरोड़ने पर, पार्टी को बेहद गुस्सा आया। कामरेड स्तालिन ने त्रात्स्कीवाद को लेनिनवाद की जगह रखने की इस कोशिश की तीव्र निन्दा की। उन्होंने कहा कि "यह पार्टी का कर्त्तव्य है कि एक सैद्धान्तिक रुझान के रूप में त्रात्स्कीवाद को दफना दे।"

विचारधारा के रूप में, त्रात्स्कीवाद की हार और लेनिनवाद के समर्थन में कामरेड स्तालिन की सैद्धान्तिक रचना **लेनिनवाद के मूल सिद्धान्त** जो 1924 में प्रकाशित हुई, एक प्रभावशाली देन थी। यह पुस्तक लेनिनवाद की उत्कृष्ट व्याख्या और सिद्धान्त में उसका जबर्दस्त समर्थन है। यह रचना दुनिया भर के बोल्शेविकों के हाथ में मार्क्सवादी सिद्धान्त का कारगर हथियार थी और आज भी है।

त्रात्स्कीवाद के खिलाफ संघर्षों में, कामरेड स्तालिन ने पार्टी को उसकी केन्द्रीय समिति के चारों तरफ समेटा और हमारे देश में समाजवाद की विजय के लिए संघर्ष करने में उसे बटोरा। कामरेड स्तालिन ने साबित किया कि अगर समाजवाद की तरफ सफलतापूर्वक प्रगति निश्चित करनी है, तो त्रात्स्कीवाद का एक सिद्धान्त के रूप में विनाश जरूरी है।

त्रात्स्कीवाद के खिलाफ संघर्ष के इस दौर का सिंहावलोकन करते हुए, कामरेड स्तालिन

ने कहा :

> "जब तक त्रात्स्कीवाद पछाड़ा नहीं जाता, तब तक नेप की परिस्थितियों में विजय पाना असम्भव होगा; आज के रूस को समाजवादी रूस में बदलना असम्भव होगा।"

लेकिन पार्टी की लेनिनवादी नीति को जो सफलताएँ मिलीं, उन पर पार्टी और मजदूर वर्ग के लिए एक महान दुखद घटना की काली छाया पड़ी। 21 जनवरी 1924 को मास्को के पास गोर्की नाम के गाँव में, बोल्शेविक पार्टी के निर्माता, हमारे नेता और शिक्षक लेनिन का देहान्त हो गया। तमाम दुनिया के मजदूर वर्ग ने लेनिन की मृत्यु को एक बहुत ही दुखदायी घटना के रूप में लिया। लेनिन की शवयात्रा के दिन अन्तरराष्ट्रीय सर्वहारा ने पाँच मिनट तक काम बन्द रखने का ऐलान किया। रेलें, मिलें, और कारखाने बन्द हो गये। जब लेनिन को समाधि-स्थान की तरफ ले जाया गया, तब तमाम दुनिया की श्रमिक जनता ने अपने सबसे अच्छे मित्र और रक्षक, अपने शिक्षक और पिता लेनिन को अपने असहनीय दुख की श्रद्धांजलि अर्पित की।

लेनिन की मृत्यु पर, सोवियत संघ का मजदूर वर्ग और भी मजबूती से लेनिनवादी पार्टी के चारों तरफ सिमट आया। उन शोक के दिनों में, हर वर्ग-चेतन मजदूर ने कम्युनिस्ट पार्टी की तरफ, लेनिन के निर्देशों को अमल में लाने वाली पार्टी की तरफ अपना रुख स्पष्ट किया। पार्टी की केन्द्रीय समिति के पास मजदूरों की हजारों-हजार अर्जियाँ पार्टी में भर्ती होने के लिए आयीं। केन्द्रीय समिति ने आगे बढ़े हुए मजदूरों के इस आन्दोलन का स्वागत किया, और लेनिन भर्ती की घोषणा की-पार्टी की कतारों में आगे बढ़े हुए मजदूरों की भर्ती की घोषणा की। हजारों-हजार मजदूर पार्टी के अन्दर आये। ये ऐसे लोग थे जो पार्टी के उद्देश्य के लिए, लेनिन के उद्देश्य के लिए अपनी जान देने को तैयार थे। थोड़े ही दिनों में, 2,40,000 से ऊपर मजदूर बोल्शेविक पार्टी की कतारों में शामिल हो गये। मजदूर वर्ग के ये प्रमुख हिस्से थे; सबसे वर्ग-चेतन और क्रान्तिकारी, सबसे ज्यादा साहसी और अनुशासन मानने वाले थे। यही लेनिन-भर्ती थी।

लेनिन की मृत्यु से जो प्रतिक्रिया हुई, उसने दिखा दिया कि आम जनता से हमारी पार्टी का सम्बन्ध कितना निकट है और मजदूरों के दिल में लेनिनवादी पार्टी कितना ऊँचा स्थान रखती है।

लेनिन के लिए शोक के दिनों में, कामरेड स्तालिन ने सोवियत संघ की सोवियतों की दूसरी कांग्रेस में पार्टी के नाम पर एक गम्भीर प्रतिज्ञा की। उन्होंने कहा :

> "हम कम्युनिस्ट एक खास साँचे में ढले हुए लोग हैं। हमारा निर्माण कुछ विशेष तत्वों से हुआ है। हम वह हैं जो महान सर्वहारा रण-विशारद की फौज, कामरेड लेनिन की फौज हैं। मनुष्य के लिए इस फौज का सैनिक होने से ज्यादा गौरव की बात दूसरी नहीं है। जिस पार्टी के जन्मदाता और नेता कामरेड लेनिन है, उसके सदस्य बनने से ज्यादा गौरव की बात और दूसरी नहीं है।...
>
> "हमसे विदा होते हुए, कामरेड लेनिन ने आज्ञा दी थी कि हम पार्टी सदस्य के महान नाम को ऊँचा रखें और उसकी पवित्रता की रक्षा करें। कामरेड लेनिन, हम आपसे

प्रतिज्ञा करते हैं कि हम आपकी इस आज्ञा को सम्मान सहित पूरा करेंगे!...

"हमसे विदा होते हुए, कामरेड लेनिन ने आज्ञा दी थी कि आँख की पुतली की तरह हम अपनी पार्टी की एकता की रक्षा करें। कामरेड लेनिन, हम आपसे प्रतिज्ञा करते हैं कि हम इस आज्ञा को भी सम्मान सहित पूरा करेंगे!...

"हमसे विदा होते हुए, कामरेड लेनिन ने आज्ञा दी थी कि हम सर्वहारा अधिनायकत्व को दृढ़ करें और उसकी रक्षा करें। कामरेड लेनिन, हम आपसे प्रतिज्ञा करते हैं कि हम इस आज्ञा को भी सम्मानसहित पूरा करने में कुछ उठा न रखेंगे!...

"हमसे विदा होते हुए, कामरेड लेनिन ने आज्ञा दी थी कि हम अपनी पूरी शक्ति से मजदूरों और किसानों के सहयोग को दृढ़ करें। कामरेड लेनिन, हम आपसे प्रतिज्ञा करते हैं, कि हम इस आज्ञा को भी सम्मान सहित पूरा करेंगे!...

"कामरेड लेनिन ने बार-बार इस बात पर जोर दिया था कि अपने देश की राष्ट्रीयताओं के स्वेच्छा से बने हुए संघ को बनाये रखना जरूरी है, गणतंत्र संघ के ढाँचे के अन्दर राष्ट्रीयताओं के भाईचारे के सहयोग को बनाये रखना जरूरी है। हमसे विदा होते हुए, कामरेड लेनिन ने आज्ञा दी थी कि हम गणतंत्रों के संघ को दृढ़ करें और उसका प्रसार करें। कामरेड लेनिन, हम आपसे प्रतिज्ञा करते हैं कि हम इस आज्ञा को भी सम्मान सहित पूरा करेंगे!...

"कई बार लेनिन ने हमें बताया था कि लाल फौज को मजबूत करना और उसकी हालत सुधारना हमारी पार्टी का एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य है।... साथियो, आओ, हम प्रतिज्ञा करें कि हम अपनी लाल फौज और लाल जल-सेना को मजबूत बनाने में कुछ भी न उठा रखेंगे।....

"हमसे विदा होते हुए, कामरेड लेनिन ने आज्ञा दी थी कि हम कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल के उसूलों के प्रति वफादार रहें। कामरेड लेनिन, हम आपसे प्रतिज्ञा करते हैं कि तमाम दुनिया के मेहनतकशों के संघ, कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल, को मजबूत करने और उसका विस्तार करने में हम अपने प्राणों की बाजी लगा देंगे!"

बोल्शेविक पार्टी ने यह प्रतिज्ञा अपने नेता लेनिन के प्रति की थी, जिनकी स्मृति युगों-युगों तक जीवित रहेगी।

मई 1924 में, पार्टी की तेरहवीं कांग्रेस हुई। इसमें 7,35,881 पार्टी सदस्यों की तरफ से, 748 वोट देने वाले प्रतिनिधि आये थे। पिछली कांग्रेस की तुलना में, इस स्पष्ट बढ़ोत्तरी का कारण लेनिन-भर्ती में ढाई लाख नये सदस्यों का पार्टी में आना था। 416 प्रतिनिधि बोलने वाले लेकिन वोट न दे सकने वाले थे।

कांग्रेस ने एक राय होकर त्रात्स्कीवादी विरोध की नीति का खण्डन किया और उसे मार्क्सवाद से निम्न-पूँजीवादी भटकाव, लेनिनवाद का संशोधन बतलाया। कांगेस ने 'पार्टी मामलों' और 'बहस के नतीजों' पर 13वीं पार्टी कान्फ्रेंस के प्रस्तावों का अनुमोदन किया।

देहात और शहर का सम्बन्ध मजबूत करने के लिये, कांगेस ने निर्देश किया कि उद्योग-धन्धों को, सबसे पहले हल्के उद्योग-धन्धों को और फैलाया जाये और लोहे और

इस्पात के धन्धों को तुरन्त बढ़ाने की जरूरत पर विशेष जोर दिया जाये।

कांगेस ने घरेलू व्यापार के जन-कमिसार मण्डल के बनने का अनुमोदन किया। उसने व्यापारी संस्थाओं के सामने यह काम रखा कि वे बाजार का नियंत्रण अपने हाथ में लें और व्यापार के क्षेत्र से व्यक्तिगत पूँजी को बाहर निकालें।

कांग्रेस ने किसानों को सस्ती दर पर राज्य की तरफ से और ज्यादा कर्ज देने का निर्देश किया, जिससे कि देहातों से सूदखोरों को निकाला जा सके।

कांग्रेस ने किसानों के बीच सहकारी आन्दोलन के ज्यादा से ज्यादा विकास के लिये आह्वान किया, और इस आन्दोलन को ही गाँवों के अन्दर मुख्य काम बताया।

अन्त में, कांग्रेस ने लेनिन भर्ती के गम्भीर महत्त्व पर जोर दिया, और इस आवश्यकता की तरफ पार्टी का ध्यान खींचा कि नौजवान पार्टी सदस्यों-और सबसे अधिक लेनिन-भर्ती में आये हुए लोगों-को लेनिनवाद के सिद्धान्तों की शिक्षा देने के लिये और ज्यादा कोशिश की जाये।

5. पुनर्संगठन के दौर के खात्मे की तरफ सोवियत संघ। समाजवादी निर्माण और हमारे देश में समाजवाद की विजय का सवाल। जिनोवियेव-कामेनेव का 'नया विरोध'। चौदहवीं पार्टी कांग्रेस। देश के समाजवादी औद्योगीकरण की नीति।

नयी आर्थिक नीति के अनुसार मेहनत से काम करते हुए, बोल्शेविक पार्टी और मजदूर वर्ग को चार साल से ऊपर हो गये थे। आर्थिक पुनर्संगठन का वीरतापूर्ण काम अब खत्म होने को था। सोवियत संघ की आर्थिक और राजनीतिक शक्ति बराबर बढ़ रही थी।

इस समय तक, अन्तरराष्ट्रीय परिस्थिति में तब्दीली हो चुकी थी। साम्राज्यवादी युद्ध के बाद, पूँजीवाद आम जनता के पहले क्रान्तिकारी हमले को सह चुका था। जर्मनी, इटली, बल्गारिया, पोलैण्ड और दूसरे कई देशों में क्रान्तिकारी आन्दोलन दबा दिया गया था। इस काम में, पूँजीपतियों को समझौतावादी सामाजिक-जनवादी पार्टियों के नेताओं से मदद मिली थी। कुछ समय के लिए, क्रान्ति का ज्वार मन्द पड़ रहा था। पश्चिमी यूरोप में, कुछ समय के लिए आंशिक रूप से पूँजीवाद सँभल गया था; आंशिक रूप से पूँजीवाद की स्थिति मजबूत हुई थी। लेकिन, पूँजीवाद के सँभलने से पूँजीवादी समाज का विघटन करने वाली बुनियादी असंगतियाँ दूर न हुईं। इसके विपरीत, आंशिक रूप से पूँजीवाद के सँभलने से मजदूरों और किसानों का विरोध, साम्राज्यवाद और औपनिवेशिक राष्ट्रीयताओं का विरोध, विभिन्न देशों के साम्राज्यवादी गुटों का विरोध और बढ़ गया। पूँजीवाद के सँभलने से अन्तरविरोधों के नये विस्फोट के लिए, पूँजीवादी देशों में नये संकटों के लिए बारूद बिछायी जा रही थी।

पूँजीवाद के सँभलने के साथ-साथ सोवियत संघ की हालत भी सँभल रही थी। लेकिन, सँभलने के इन दो कामों का रूप बुनियादी तौर से भिन्न था। पूँजीवाद के सँभलने से, पूँजीवाद के एक नये संकट की अगवानी की सूचना मिलती थी। सोवियत संघ के सँभलने

का मतलब था-सोवियत देश की आर्थिक और राजनीतिक शक्ति की और बढ़ोत्तरी।

पश्चिम में क्रान्ति की पराजय के बावजूद, अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र में सोवियत संघ की स्थिति और मजबूत होती गयी, हालाँकि यह सही है कि उसकी रफ्तार और धीमी हो गयी।

1922 में, जिनोआ, इटली में, एक अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलन में सोवियत संघ को बुलाया गया। पूँजीवादी देशों में क्रान्ति की पराजय से शेर होकर, साम्राज्यवादी हुकूमतों ने जिनोआ-सम्मेलन में सोवियत संघ पर नया दबाव, इस बार कूटनीतिक रूप में, डालने की कोशिश की। साम्राज्यवादियों ने सोवियत गणतंत्र के सामने बदतमीजी भरी माँगें पेश कीं। उन्होंने माँग की कि अक्टूबर क्रान्ति से जिन कल-कारखानों का राष्ट्रीकरण हो गया था, वे विदेशी पूँजीपतियों को लौटा दिये जायें। उन्होंने माँग की कि जार सरकार को दिया हुआ ऋण भरा जाये। इसके बदले, साम्राज्यवादी जागीरों ने वायदा किया कि वे सोवियत राज्य को छोटी-मोटी रकमें उधार दे देंगे।

सोवियत संघ ने ये माँगें ठुकरा दीं।

जिनोआ-सम्मेलन निष्फल रहा।

अंग्रेजों के विदेश-मंत्री लॉर्ड कर्जन ने 1923 में नये हस्तक्षेप की धमकी देते हुए अल्टीमेटम दिया। उसे भी माकूल मुँहतोड़ जवाब दिया गया।

सोवियत राज्य की शक्ति का परिचय पाकर और उसके टिकाऊपन के बारे में विश्वास जमने पर, एक के बाद एक पूँजीवादी जागीरों ने हमारे देश के साथ कूटनीतिक सम्बन्ध कायम करना शुरू किया। 1924 में, ब्रिटेन, फ्रांस, जापान, और इटली के साथ कूटनीतिक सम्बन्ध बहाल हुए।

जाहिर था कि सोवियत संघ को साँस लेने के लिए लम्बा अवकाश, शान्ति की अवधि मिली थी।

घरेलू स्थिति भी बदली। बोल्शेविक पार्टी के नेतृत्व में मजदूरों और किसानों ने जो आत्मबलिदान किया था, वह सफल हुआ। राष्ट्रीय अर्थतंत्र तेजी से विकसित हो रहा है, यह स्पष्ट था। 1924-'25 के आर्थिक वर्ष में, खेती की उपज युद्ध के पहले के स्तर के नजदीक पहुँच गयी थी। अब वह युद्ध से पहले की उपज की 87 फीसदी थी। 1925 में, सोवियत संघ के बड़े उद्योग-धन्धे युद्ध के पूर्व की औद्योगिक उपज की लगभग तीन-चौथाई पैदा कर रहे थे। 1924-25 के आर्थिक वर्ष में, सोवियत संघ 38,50,00,000 रूबल बड़े निर्माण-कार्यों में लगा सका। देश में बिजली लगाने की योजना सफलता से आगे बढ़ रही थी। राष्ट्रीय अर्थतंत्र के मुख्य स्थानों पर समाजवाद अपनी स्थिति मजबूत कर रहा था। उद्योग-धन्धों और व्यापार में, व्यक्तिगत पूँजी के खिलाफ संघर्ष में महत्त्वपूर्ण सफलताएँ मिली थीं।

आर्थिक प्रगति के साथ-साथ, मजदूरों और किसानों की स्थिति में और सुधार हुआ। मजदूर वर्ग तेजी से बढ़ रहा था। तनख्वाह बढ़ गयी थी और उसके साथ, श्रम की उत्पादकता भी बढ़ गयी थी। किसानों का जीवन स्तर बहुत सुधर गया था। 1924-'25 में, मजदूर-किसान राज्य छोटे किसानों की मदद के लिए लगभग 29 करोड़ रूबल नियत कर

सका। मजदूरों और किसानों की स्थिति सुधरने से, आम जनता की राजनीतिक कार्रवाई और बढ़ी। सर्वहारा अधिनायकत्व अब और मजबूत हो गया। बोल्शेविक पार्टी का मान-सम्मान तथा प्रभाव और बढ़ गया।

राष्ट्रीय अर्थतंत्र के पुनर्संगठन का काम पूरा होने को था। लेकिन, सोवियत संघ के लिए, समाजवाद का निर्माण करते हुए, देश के लिए सिर्फ आर्थिक रूप से बहाल होना, युद्ध के पूर्व के स्तर तक पहुँचना ही काफी न था। युद्ध के पूर्व का स्तर एक पिछड़े हुए देश का स्तर था। उससे आगे प्रगति करनी थी। सोवियत राज्य को साँस लेने के लिये जो लम्बा अवकाश मिला था, उससे अगले विकास की सम्भावना पक्की होती थी।

लेकिन, इससे एक सवाल जोरों से सामने आया; हमारे विकास, हमारे निर्माण की दिशा क्या होगी, उसका रूप क्या होगा? सोवियत संघ में समाजवाद का भविष्य क्या है? सोवियत संघ में आर्थिक विकास किस ओर होगा; समाजवाद की दिशा में, या और किसी तरफ? हम समाजवादी आर्थिक व्यवस्था का निर्माण करें, और कर भी सकते हैं या नहीं, या हमारी तकदीर में किसी दूसरी आर्थिक व्यवस्था के लिए, पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था के लिए खाद डालना ही बदा है? क्या सोवियत संघ में समाजवादी आर्थिक व्यवस्था का निर्माण करना मुमकिन भी है, और अगर है तो क्या पूँजीवादी देशों में क्रान्ति के विलम्ब के बावजूद, पूँजीवाद के सँभलने के बावजूद, उसका निर्माण हो सकता है? क्या नयी आर्थिक नीति की राह से समाजवादी आर्थिक व्यवस्था का निर्माण करना मुमकिन है? यह नीति देश में हर तरह से समाजवाद की शक्तियों को बढ़ा रही थी और मजबूत कर रही थी, फिर भी उससे एक हद तक पूँजीवाद की बढ़ोत्तरी होती थी। समाजवादी आर्थिक व्यवस्था का किस तरह निर्माण हो; किस छोर से उसके निर्माण में हाथ लगाया जाये?

पुनर्संगठन के दौर के समाप्त होते-होते, ये तमाम सवाल पार्टी के सामने आये। ये सवाल सिर्फ सिद्धान्त के सवाल न थे बल्कि अमली सवाल थे, आये दिन की आर्थिक नीति के सवाल थे।

इन सब सवालों का सीधा और साफ जवाब देना जरूरी था, जिससे कि हमारे पार्टी सदस्य जो उद्योग-धन्धों और खेती के विकास में लगे हुए थे, और आम तौर से जनता भी, इस बात को जान सकें कि किस दिशा में काम करना चाहिए, समाजवाद की तरफ या पूँजीवाद की तरफ?

इन सवालों का साफ जवाब न देने पर, हमारा तमाम अमली निर्माण कार्य दिशाहीन हो जाता, अँधेरे में टटोलने जैसा होता, व्यर्थ की मेहनत होती।

पार्टी ने इन सभी सवालों का निश्चित और साफ जवाब दिया।

पार्टी ने कहा, हाँ, हमारे देश में समाजवादी आर्थिक व्यवस्था का निर्माण हो सकता है और होना चाहिए, क्योंकि समाजवादी आर्थिक व्यवस्था के निर्माण के लिए, पूरी तरह समाजवादी समाज रचने के लिए, हमारे पास सभी आवश्यक साधन हैं। अक्टूबर 1917 में, अपना राजनीतिक अधिनायकत्व कायम करके मजदूर वर्ग ने पूँजीवाद को राजनीतिक रूप से परास्त किया था। उसके बाद से, सोवियत सरकार पूँजीवाद की आर्थिक शक्ति चूर करने के लिए हर उपाय करती रही थी और समाजवादी आर्थिक व्यवस्था के निर्माण के

लिए अनुकूल हालत पैदा करने को कदम उठाती रही थी। उसके उपाय ये थे : जमीन्दारों और पूँजीपतियों की सम्पत्ति जब्त करना; जमीन, मिलों, कारखानों, रेलों और बैंकों को जन-सम्पत्ति बनाना; नयी आर्थिक नीति मंजूर करना, राज्य के अधिकार में समाजवादी उद्योग-धन्धों का निर्माण और लेनिन की सहकार योजना को लागू करना। अब मुख्य काम यह था कि समूचे देश में नयी समाजवादी आर्थिक व्यवस्था के निर्माण का काम उठाया जाये और इस तरह, आर्थिक रूप से भी पूँजीवाद को चूर कर दिया जाये। हमारा सभी अमली काम, हमारी सभी कार्रवाई इसी उद्देश्य को पूरा करने के लिए होनी चाहिए। मजदूर वर्ग यह कर सकता था, और करेगा। इस विराट कार्य की शुरुआत देश के औद्योगीकरण से होनी चाहिए। देश का समाजवादी औद्योगीकरण इसकी मुख्य कड़ी था। उसी से समाजवादी आर्थिक व्यवस्था का निर्माण शुरू होना चाहिए। न तो पश्चिम में क्रान्ति का विलम्ब, और न गैर-सोवियत देशों में पूँजीवाद का आंशिक रूप से सँभलना समाजवाद की तरफ हमारी प्रगति को रोक सकता था। नयी आर्थिक नीति से यह काम आसानी से हो सकता था, क्योंकि पार्टी ने यह नीति इसी निश्चित उद्देश्य से लागू की थी कि हमारी आर्थिक व्यवस्था के लिए समाजवादी नींव डालने में आसानी हो।

क्या हमारे देश में समाजवादी निर्माण की विजय सम्भव है?-इस सवाल का पार्टी ने यही जवाब दिया था।

लेकिन, पार्टी जानती थी कि एक देश में समाजवाद की जीत का मसला यहीं खत्म न होता था। सोवियत संघ में समाजवाद का निर्माण मनुष्य जाति के इतिहास में एक युगान्तरकारी मोड़ होगा, सोवियत संघ के मजदूर वर्ग और किसानों की विजय होगी, जिससे विश्व इतिहास में एक नया युग शुरू होगा। फिर भी, यह सोवियत संघ की घरेलू बात थी और समाजवाद की जीत के मसले का एक हिस्सा ही थी। समस्या का दूसरा हिस्सा उसका अन्तरराष्ट्रीय पहलू था। इस सैद्धान्तिक स्थापना का समर्थन करते हुए कि एक ही देश में समाजवाद की जीत हो सकती है, कामरेड स्तालिन ने बार-बार कहा था कि सवाल को दोनों पहलुओं से देखना चाहिए-एक तो घरेलू और दूसरा अन्तरराष्ट्रीय। जहाँ तक समस्या के घरेलू पहलू का सवाल था, यानी देश के अन्दर वर्ग-सम्बन्धों का सवाल था, सोवियत संघ के मजदूर वर्ग और किसान आर्थिक रूप से अपने पूँजीपतियों को पछाड़ने और पूरी तरह समाजवादी समाज का निर्माण करने में समर्थ थे। लेकिन समस्या का अन्तरराष्ट्रीय पहलू भी था, यानी विदेशी सम्बन्धों का क्षेत्र, सोवियत संघ और पूँजीवादी देशों के सम्बन्धों का क्षेत्र भी था। अन्तरराष्ट्रीय पूँजीपति सोवियत व्यवस्था से नफरत करते थे और सोवियत संघ में हथियारबन्द हस्तक्षेप फिर शुरू करने का मौका ढूँढ़ रहे थे, सोवियत संघ में पूँजीवाद को बहाल करने की नयी कोशिशों के लिए मौका ढूंढ़ रहे थे। और, अभी सोवियत संघ एकमात्र समाजवादी देश था, दूसरे सभी देश पूँजीवादी थे। इसलिए, सोवियत संघ पूँजीवादी संसार से बराबर घिरा हुआ ही था, जिससे पूँजीवादी हस्तक्षेप का खतरा पैदा होता था। स्पष्ट है कि जब तक यह पूँजीवादी घेरा रहेगा, तब तक पूँजीवादी हस्तक्षेप का खतरा भी रहेगा। क्या सोवियत जनता अपनी ही कोशिशों से इस बाहरी खतरे को, सोवियत संघ में पूँजीवादी हस्तक्षेप के खतरे को मिटा सकती थी? नहीं, वह इस खतरे को नहीं मिटा सकती

थी। इसलिए नहीं मिटा सकती थी कि पूँजीवादी हस्तक्षेप का खतरा मिटाने के लिए पूँजीवादी घेरे को मिटाना जरूरी था। और, पूँजीवादी घेरा तभी मिटाया जा सकता था जब कम से कम कई देशों में सर्वहारा क्रान्ति की जीत हो। इससे नतीजा निकलता था कि सोवियत संघ में समाजवाद की विजय, जो पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था को मिटाने और समाजवादी आर्थिक व्यवस्था को बनाने में मिली थी, उसे अन्तिम विजय नहीं माना जा सकता था। कारण यह कि विदेशी हथियारबन्द हस्तक्षेप का खतरा और पूँजीवाद को बहाल करने की कोशिशों का खतरा मिटाया न गया था और समाजवादी देश के पास इस खतरे के विरुद्ध कोई गारण्टी न थी। विदेशी पूँजीवादी हस्तक्षेप के खतरे को मिटाने के लिए पूँजीवादी घेरे को ही मिटाना जरूरी होगा।

यह ठीक है कि जब तक सोवियत सरकार सही नीति पर चलेगी, तब तक सोवियत जनता और उसकी लाल फौज नये विदेशी पूँजीवादी हस्तक्षेप को वैसे ही मार भगायेगी जैसे उसने 1918-'20 में पहले पूँजीवादी हस्तक्षेप को मार भगाया था। लेकिन, इसका यह मतलब न था कि नये पूँजीवाद हस्तक्षेप का खतरा मिट जायेगा। पहले हस्तक्षेप की हार से नये हस्तक्षेप का खतरा न मिटा था, क्योंकि हस्तक्षेप के खतरे की जड़-पूँजीवादी घेरा-बराबर कायम थी। इसलिए, पूँजीवादी घेरे के बने रहने पर नये हस्तक्षेप की हार से भी उसका खतरा न मिटेगा।

इससे नतीजा निकलता था कि पूँजीवादी देशों में सर्वहारा क्रान्ति की विजय से सोवियत संघ की मेहनतकश जनता को गहरी दिलचस्पी थी।

हमारे देश में समाजवाद की जीत के सवाल पर, पार्टी की नीति यही थी।

केन्द्रीय समिति ने माँग की कि आगे होने वाली चौदहवीं पार्टी कान्फ्रेंस में इस नीति पर बहस हो और इसे पार्टी नीति के तौर पर, एक पार्टी कानून के तौर पर, जिसे मानने के लिए सभी पार्टी सदस्य बाध्य हों, स्वीकार किया जाये और उसका अनुमोदन किया जाये।

पार्टी की यह नीति विरोधियों के सिर पर वज्र बन कर गिरी; सबसे पहले इस कारण से कि पार्टी ने उसे एक निश्चित अमली रूप दे दिया था, देश के समाजवादी औद्योगीकरण की अमली योजना से उसे जोड़ दिया था और यह माँग की थी कि उसे पार्टी कानून का रूप दिया जाये, चौदहवीं पार्टी कान्फ्रेंस के प्रस्ताव का रूप दिया जाये, जिसे मानने के लिए सभी पार्टी सदस्य बाध्य हों।

त्रात्स्कीवादियों ने इस पार्टी नीति का विरोध किया और उसके खिलाफ मेन्शेविक 'स्थायी क्रान्ति का सिद्धान्त' रखा। इसे मार्क्सवादी सिद्धान्त कहना मार्क्सवाद का अपमान करना होगा। यह सिद्धान्त सोवियत संघ में समाजवादी निर्माण की विजय हो सकती है, यह मानने को तैयार न था।

बुखारिनपंथियों ने खुल कर पार्टी नीति का विरोध करने की हिम्मत नहीं की। लेकिन, उन्होंने चुपके-चुपके उसके खिलाफ अपना ही 'सिद्धान्त' रखा; सिद्धान्त यह था कि पूँजीपति शान्तिमय ढंग से विकसित होकर समाजवाद की मंजिल में पहुँच जायेंगे। इसे उन्होंने 'अमीर बनो!' का 'नया' नारा देकर और स्पष्ट बना दिया था। बुखारिनपंथियों के

अनुसार, समाजवाद की जीत का मतलब था-पूँजीपतियों को पालना-पोसना और अमीर बनाना, न कि उनका नाश करना।

जिनोवियेव और कामेनेव यह दावा लेकर आगे आये कि सोवियत संघ में समाजवाद की विजय इसलिए असम्भव है कि देश कौशल में, और आर्थिक रूप से पिछड़ा हुआ है। लेकिन, उन्होंने तुरन्त ही पर्दे की ओट हो जाना ज्यादा बुद्धिमानी की बात समझी।

चौदहवीं पार्टी कान्फ्रेंस (अप्रैल 1925) ने छिपे और खुले अवसरवादियों के इन तमाम समर्पणवादी 'सिद्धान्तों' का खण्डन किया, सोवियत संघ में समाजवाद की विजय के लिए काम करने की पार्टी की नीति का अनुमोदन किया, और इस पर एक प्रस्ताव भी पास किया।

और कोई चारा न देखकर, जिनोवियेव और कामेनेव ने इस प्रस्ताव के पक्ष में वोट देना ही ठीक समझा। लेकिन, पार्टी जानती थी कि उन्होंने अपने संघर्ष को सिर्फ टाला ही है और चौदहवीं पार्टी कांग्रेस में 'पार्टी से जम कर लड़ने' का फैसला किया है। वे लेनिनग्राद में अपने अनुयायी बटोर रहे थे, और उन्होंने तथाकथित 'नव विरोध' बनाया।

दिसम्बर 1925 में, चौदहवीं पार्टी कांग्रेस शुरू हुई।

पार्टी के अन्दर हालत गम्भीर और उत्तेजनापूर्ण थी। उसके इतिहास में कभी ऐसा न हुआ था कि लेनिनग्राद जैसे महत्त्वपूर्ण पार्टी केन्द्र के समूचे प्रतिनिधि-मण्डल ने अपनी केन्द्रीय समिति के विरोध में खड़े होने की तैयारी की हो।

कांग्रेस में, 6,43,000 पार्टी सदस्यों की तरफ से और 4,45,000 उम्मीदवार सदस्यों की तरफ से, 665 वोट देने वाले और 641 बोलने लेकिन वोट न दे सकने वाले प्रतिनिधि आये थे। पार्टी सदस्यों की तादाद पिछली कांग्रेस से थोड़ी कम थी। कमी का कारण यह था कि आंशिक रूप से शुद्धि हुई थी। विश्वविद्यालयों और दफ्तरों के पार्टी-संगठनों की शुद्धि हुई थी, जिनमें पार्टी-विरोधी लोग घुस गये थे।

केन्द्रीय समिति की राजनीतिक रिपोर्ट कामरेड स्तालिन ने पेश की। उन्होंने सोवियत संघ की आर्थिक और राजनीतिक शक्ति की बढ़ोत्तरी का सजीव चित्र खींचा। सोवियत आर्थिक व्यवस्था से जो लाभ हुए थे, उनसे उद्योग-धन्धे और खेती-दोनों अपेक्षाकृत कम ही समय में पुनर्संगठित हो गये थे और युद्ध के पूर्व के स्तर तक पहुँच रहे थे। ये नतीजे अच्छे थे, लेकिन कामरेड स्तालिन ने प्रस्ताव किया कि यहीं रुक न जाना चाहिए क्योंकि इनसे इस सच्चाई का खण्डन न होता था कि हमारा देश अब भी एक पिछड़ा हुआ खेतिहर देश है। देश की कुल उपज का दो-तिहाई हिस्सा खेती से था, और सिर्फ एक-तिहाई हिस्सा उद्योग-धन्धों से। कामरेड स्तालिन ने कहा कि पार्टी के सामने अब सीधे यही समस्या है कि अपने देश को औद्योगिक देश बनायें, जो आर्थिक रूप से पूँजीवादी देशों से स्वाधीन हो। यह किया जा सकता था, और जरूर किया जाना चाहिए था। अब देश के समाजवादी औद्योगीकरण के लिए, समाजवाद की विजय के लिए संघर्ष करना पार्टी का मुख्य काम था।

कामरेड स्तालिन ने कहा था :

> "हमारी आम नीति का आधार, उसका सार-तत्व यह है-अपने देश को खेतिहर देश से एक ऐसे औद्योगिक देश में परिवर्तित करना, जो अपने लिए आवश्यक मशीनें अपनी ही कोशिश से बना सके।"

देश के औद्योगीकरण से उसकी आर्थिक स्वाधीनता निश्चित होती, अपनी रक्षा करने की शक्ति दृढ़ होती और सोवियत संघ में समाजवाद की विजय के लिए परिस्थिति तैयार होती।

जिनोवियेवपंथियों ने पार्टी की आम नीति का विरोध किया। समाजवादी औद्योगीकरण की स्तालिन योजना के खिलाफ, जिनोवियेवपंथी देकोल्निकोव ने एक पूँजीवादी योजना रखी, जो उन दिनों साम्राज्यवादी डाकुओं में बहुत प्रचलित थी। इस योजना के अनुसार, सोवियत संघ को खेतिहर देश बना रहना था, जो मुख्य रूप से कच्चा माल और अन्न पैदा कर, उन्हें बाहर भेजे और अपने यहाँ मशीनें मंगाये, जिन्हें न तो वह खुद बनाये और न उसे खुद बनाना चाहिए। 1925 की जैसी हालत थी, उसमें यह योजना उद्योग-धन्धों में आगे बढ़े हुए बाहर के देशों द्वारा सोवियत संघ को आर्थिक रूप से गुलाम बनाने की योजना के बराबर थी। यह योजना पूँजीवादी देशों के साम्राज्यवादी लुटेरों के हित में सोवियत संघ का औद्योगिक पिछड़ापन बनाये रखने के लिए थी।

इस योजना को मानने से, हमारा देश पूँजीवादी संसार का एक अपाहिज, कृषि-प्रधान, खेतिहर पुछल्ला बन जाता। उससे चारों तरफ के पूँजीवादी संसार के सामने वह कमजोर और अरक्षित रह जाता और अन्त में, वह योजना सोवियत संघ में समाजवाद के उद्देश्य के लिए घातक होती।

कांग्रेस ने जिनोवियेवपंथियों की आर्थिक 'योजना' को सोवियत संघ की गुलामी की योजना कहकर उसकी निन्दा की।

'नव विरोध' के दूसरे हमले भी ऐसे ही नाकाम हुए। मिसाल के लिये, जब उन्होंने (लेनिन के विरोध में) यह दावा किया कि हमारे राजकीय उद्योग-धन्धे समाजवादी उद्योग-धन्धे नहीं हैं, या जब उन्होंने (फिर लेनिन के विरोध में) कहा कि मध्यम किसान समाजवाद के निर्माण के काम में मजदूर वर्ग के सहयोगी नहीं हो सकते।

कांग्रेस ने 'नव विरोध' के इन हमलों को लेनिनवाद-विरोधी कह कर उनकी निन्दा की।

कामरेड स्तालिन ने 'नव विरोध' के त्रात्स्कीवादी मेन्शेविक सार-तत्व का भण्डाफोड़ कर दिया। उन्होंने दिखाया कि जिनोवियेव और कामेनेव पार्टी के उन्हीं दुश्मनों का पुराना राग अलाप रहे हैं जिनके खिलाफ लेनिन ने डट कर संघर्ष किया था।

स्पष्ट था कि जिनोवियेवपंथी भोंड़े तरीके से भेष बदले हुए त्रात्स्कीवादियों के अलावा कुछ नहीं हैं।

कामरेड स्तालिन ने इस बात पर जोर दिया कि हमारी पार्टी का मुख्य काम समाजवाद के निर्माण में मजदूर वर्ग और मध्यम किसान के बीच दृढ़ सहयोग बनाये रखना है। उन्होंने उस समय पार्टी के अन्दर किसान समस्या पर प्रचलित दो भटकावों की तरफ इशारा किया। ये दोनों भटकाव इस तरह के सहयोग के लिए एक खतरा थे। पहला भटकाव

वह था जो कुलक खतरे को कम करके आँकता था और उसे नाकुछ बताता था। दूसरा भटकाव वह था जो कुलकों से बुरी तरह भयभीत था और मध्यम किसान की भूमिका को कम करके आँकता था। इस सवाल के जवाब में कि कौन सा भटकाव ज्यादा खराब है, कामरेड स्तालिन ने जवाब दिया :

> "जितना एक खराब है उतना ही दूसरा। और, अगर ये भटकाव बढ़ने दिये गये तो ये पार्टी को तोड़ सकते हैं और उसका नाश कर सकते हैं। सौभाग्य से, हमारी पार्टी में ऐसी ताकते हैं जो उसे दोनों भटकावों से मुक्त कर सकती हैं।"

और, सचमुच पार्टी ने दक्षिण और 'वामपंथी' दोनों ही भटकावों की जड़ें काट दीं और उनसे अपने को मुक्त किया।

आर्थिक विकास के सवाल पर बहस का सार-तत्व पेश करते हुए, चौदहवीं पार्टी कांग्रेस ने विरोधियों की घुटना-टेकू योजनाएँ ठुकरा दीं और अपने प्रस्ताव में, जो अब प्रसिद्ध हो गया है, कहा :

> "आर्थिक विकास के क्षेत्र में कांग्रेस का कहना है कि हमारे देश में, सर्वहारा अधिनायकत्व के देश में, 'एक पूर्ण समाजवादी समाज के निर्माण के लिए हर जरूरी चीज' (लेनिन) मौजूद है। कांग्रेस समझती है कि हमारी पार्टी का मुख्य काम सोवियत संघ में समाजवाद के निर्माण की विजय के लिए संघर्ष करना है।"

चौदहवीं पार्टी कांग्रेस ने नयी पार्टी नियमावली स्वीकार की।

चौदहवीं कांग्रेस के बाद, हमारी पार्टी सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) -सो.सं.क.पा.(बो.)-कहलाती रही है।

हालाँकि जिनोवियेवपंथी कांग्रेस में हारे, फिर भी उन्होंने पार्टी के सामने सिर न झुकाया। उन्होंने चौदहवीं कांग्रेस के फैसलों के खिलाफ लड़ाई शुरू की। कांग्रेस के तुरन्त ही बाद, जिनोवियेव ने नौजवान कम्युनिस्ट सभा की लेनिनग्राद की सूबा-कमेटी की एक बैठक बुलायी। इसके प्रमुख दल को जिनोवियेव, जलूत्स्की, बकायेव, येवदोकीमोव, कुकलिन, सफारोव, और दूसरे दगेबाजों ने पार्टी की लेनिनवादी केन्द्रीय समिति की तरफ घृणा की भावना में सिखा-पढ़ाकर बड़ा किया था। इस बैठक में, लेनिनग्राद की सूबा-कमेटी ने, नौजवान कम्युनिस्ट सभा के इतिहास में अभूतपूर्व एक प्रस्ताव पास किया : उसने चौदहवीं पार्टी कांग्रेस के फैसले मानने से इनकार कर दिया।

लेकिन, लेनिनग्राद की नौजवान कम्युनिस्ट सभा के जिनोवियेवपंथी नेता किसी भी तरह लेनिनग्राद के आम नौजवान कम्युनिस्ट सभा वालों का मनोभाव प्रकट न करते थे। इसलिए, वे आसानी से हरा दिये गये और जल्द ही लेनिनग्राद संगठन ने नौजवान कम्युनिस्ट सभा में अपना योग्य स्थान पा लिया।

चौदहवीं कांग्रेस की समाप्ति के करीब, कांग्रेस के प्रतिनिधियों का एक दल-कामरेड मोलोतोव, किरोव, वोरोशिलोव, कालिनिन, आन्द्रियेव, आदि-लेनिनग्राद भेजा गया। उसका काम था कि लेनिनग्राद के पार्टी-संगठन के सदस्यों को समझाये कि कांग्रेस में लेनिनग्राद के प्रतिनिधि-मण्डल ने, जिसने झूठे बहाने करके अपना चुनाव हासिल किया था, कैसा

मुजरिमाना, बोल्शेविक-विरोधी रुख अपनाया था। जिन सभाओं में कांग्रेस की रिपोर्ट पेश की गयी, उनमें हंगामे भरे दृश्य देखने को मिले। लेनिनग्राद के पार्टी-संगठन की एक असाधारण कान्फ्रेंस की गयी। लेनिनग्राद के पार्टी सदस्यों के भारी बहुमत ने (97 फीसदी से ऊपर ने) चौदहवीं पार्टी कांग्रेस के फैसले का पूरी तरह अनुमोदन किया और पार्टी-विरोधी जिनोवियेवपंथी 'नव विरोध' की निन्दा की। उस समय तक, 'नव-विरोध' दल बिना फौज के सिपहसालारों का एक दल रह गया था।

लेनिनग्राद के बोल्शेविक लेनिन-स्तालिन की पार्टी की अगली कतारों में ही रहे।

चौदहवीं पार्टी कांग्रेस के परिणामों का सार देते हुए, कामरेड स्तालिन ने लिखा था :

> "सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) की चौदहवीं कांग्रेस का महत्त्व इस बात में है कि वह 'नव विरोध' की गलतियों की जड़ों तक का पर्दाफाश कर सकी, उसने शक-शुबहा करने और रोने-भिनभिनाने को घृणापूर्वक ठुकरा दिया, उसने साफ-साफ और निश्चित रूप से समाजवाद के लिए भावी संघर्ष का रास्ता दिखाया, पार्टी के सामने विजय की सम्भावना स्पष्ट की, और इस तरह सर्वहारा को समाजवाद के निर्माण की विजय में अजेय विश्वास से सुसज्जित कर दिया।" (स्तालिन, **लेनिनवाद की समस्याएँ,** अं.सं., मास्को, पृष्ठ 177)।

सारांश

आर्थिक पुनर्संगठन के शान्तिमय काम की तरफ बढ़ने के वर्ष, बोल्शेविक पार्टी के इतिहास में बहुत ही नाजुक दौर के वर्ष थे। एक विषम परिस्थिति में, पार्टी युद्धकालीन कम्युनिज्म की नीति से नयी आर्थिक नीति की तरफ एक कठिन मोड़ ले सकी। पार्टी ने एक नयी आर्थिक बुनियाद पर मजदूरों और किसानों के सहयोग को और दृढ़ किया। सोवियत समाजवादी गणतंत्र संघ कायम हुआ।

नयी आर्थिक नीति के द्वारा, देश के आर्थिक जीवन को पुनर्संगठित करने में निर्णायक सफलताएँ मिलीं। सोवियत संघ आर्थिक पुनर्संगठन के दौर से सफल होकर निकला और उसने एक नये दौर, देश के औद्योगीकरण के दौर में प्रवेश किया।

गृहयुद्ध से शान्तिमय समाजवादी निर्माण की तरफ बढ़ने में, खास तौर से शुरू की मंजिलों में, भारी कठिनाइयाँ सामने आयीं। इस समूचे दौर में, बोल्शेविज्म के दुश्मनों ने, सो.सं.क.पा. (बो.) की कतारों में पार्टी-विरोधी लोगों ने, लेनिनवादी पार्टी के खिलाफ घोर संग्राम किया। इन पार्टी-विरोधी लोगों का सरदार त्रात्स्की था। इस संघर्ष में, उसके पिट्ठू कामेनेव, जिनोवियेव और बुखारिन थे। लेनिन की मृत्यु के बाद विरोधियों ने सोचा था कि वे बोल्शेविक पार्टी की कतारों में पस्ती फैलायेंगे, पार्टी में फूट डाल देंगे और सोवियत संघ में समाजवाद की विजय की सम्भावना में अविश्वास फैला देंगे। दरअसल, त्रात्स्कीवादी सोवियत संघ में एक दूसरी पार्टी बनाने की, नये पूँजीपतियों का राजनीतिक संगठन, पूँजीवाद को बहाल करने की पार्टी बनाने की कोशिशें कर रहे थे।

पार्टी लेनिन के झण्डे के नीचे अपनी लेनिनवादी केन्द्रीय समिति के चारों ओर, कामरेड

स्तालिन के चारों ओर सिमट आयी, और उसने त्रात्स्कीपंथियों और लेनिनग्राद के उनके नये दोस्तों-'नव विरोध' वाले जिनोवियेव, कामेनेव-दोनों को मात दी।

साधन और शक्ति इकट्ठी करके, बोल्शेविक पार्टी देश को उसके इतिहास की एक नयी मंजिल तक, समाजवादी औद्योगीकरण की मंजिल तक लाई।

दसवाँ अध्याय

देश के समाजवादी औद्योगीकरण के लिए संघर्ष में बोल्शेविक पार्टी

(1926-1929)

1. समाजवादी औद्योगीकरण के दौर में कठिनाइयाँ और उन्हें दूर करने के लिए संघर्ष। त्रात्स्कीवादियों और जिनोवियेवपंथियों के पार्टी-विरोधी गुट का निर्माण। गुट के सोवियत-विरोधी कारनामे। गुट की हार।

चौदहवीं कांग्रेस के बाद, पार्टी ने सोवियत सरकार की आम नीति-देश के समाजवादी औद्योगीकरण-को अमल में लाने के लिए जोरदार संघर्ष शुरू किया।

पुनर्संगठन के दौर में, सबसे पहला काम खेती को सँभालना था, जिससे कि कच्चा माल और अन्न मिल सके और उद्योग-धन्धे, मौजूदा मिलें और कारखाने पुनर्संगठित और चालू किये जा सकें।

सोवियत सरकार ने यह काम अपेक्षाकृत आसानी से कर लिया।

लेकिन, पुनर्संगठन के इस दौर में तीन मुख्य खामियाँ थीं।

पहली तो यह कि मिलें और कारखाने पुराने थे, जिनमें घिसी-पिटी और बाबा आदम के जमाने की मशीनें लगी हुई थीं। ये कल-कारखाने कुछ ही दिनों में ठप्प हो सकते थे। काम यह था कि बिल्कुल आधुनिक पैमाने पर इनमें नया साज-सामान लगाया जाये।

दूसरी यह कि बहाली के दौर में उद्योग-धन्धों का आधार बहुत ही संकुचित था। उनमें मशीन बनाने वाले कारखाने बिल्कुल न थे, लेकिन ये देश के लिए एकदम जरूरी थे। इस तरह के सैकड़ों कारखाने बनाने थे क्योंकि इनके बिना किसी भी देश को सचमुच उद्योग-धन्धों वाला देश न समझा जा सकता था। अब काम यह था कि ऐसे कारखाने बनाये जायें, और बिल्कुल आधुनिक पैमाने पर उनमें साज-सामान लगाया जाये।

तीसरी यह कि इस दौर में ज्यादातर हल्के उद्योग-धन्धे ही चालू रहे थे। इनको सुधारा और चालू किया गया था। लेकिन एक हद तक पहुँच कर, हल्के उद्योग-धन्धों के अगले विकास में एक अड़चन पैदा होती थी। अड़चन थी-भारी उद्योग-धन्धों की खामी। कहना न होगा कि देश के लिए दूसरी चीजें भी जरूरी थीं, जो सिर्फ अच्छी तरह विकसित भारी

उद्योग-धन्धों से ही पूरी हो सकती थीं। अब काम यह था कि भारी उद्योग-धन्धों पर जोर दिया जाये।

ये सब नये काम समाजवादी औद्योगीकरण की नीति से पूरे होने थे।

यह जरूरी था कि बहुत से नये उद्योग-धन्धे बनाये जायें, जो जारशाही रूस में न थे। नयी मशीनें, कल-पुर्जे, मोटर, रसायन, लोहे और इस्पात के कारखाने बनाये जायें, इंजन बनाने और यंत्र-शक्ति को पैदा करने के काम का संगठन किया जाये और कोयला और धातुओं की खुदाई का काम बढ़ाया जाये। सोवियत संघ में समाजवाद की जीत के लिए, यह बहुत ही जरूरी था।

यह जरूरी था कि गोला-बारूद का सामान तैयार करने वाले नये उद्योग-धन्धे बनाये जायें; तोपें, गोले, हवाई जहाज, टैंक और मशीनगन बनाने के लिए नये कारखाने खड़े किये जायें। पूँजीवादी संसार से घिरे हुए, सोवियत संघ की रक्षा के लिये यह बहुत ही जरूरी था।

आधुनिक खेती की मशीनें बनाने के लिए, ट्रैक्टर के कल-कारखाने खड़े करना जरूरी था। खेती को ये मशीनें देना जरूरी था, जिससे कि लाखों छोटे-छोटे अलग-थलग किसान बड़े पैमाने की सामूहिक खेती की मंजिल में प्रवेश कर सकें। देहातों में समाजवाद की विजय के लिए यह एकदम जरूरी था।

यह सब औद्योगीकरण की नीति से होने वाला था, क्योंकि देश के समाजवादी औद्योगीकरण का मतलब ही यह था।

जाहिर है कि इतने बड़े पैमाने के निर्माण-कार्य के लिए, करोड़ों रूबल की पूँजी दरकार होगी। दूसरे देशों से उधार लेने की बात ही बेकार थी, क्योंकि पूँजीवादी देशों ने उधार देने से इनकार कर दिया था। हमें अपने ही साधनों से, बिना बाहरी सहायता के निर्माण करना था। लेकिन, उस समय हमारा देश गरीब था।

हमारी एक मुख्य कठिनाई यही थी।

आम तौर से, पूँजीवादी देश अपने भारी उद्योग-धन्धे विदेश से पाये हुए धन से निर्मित करते हैं। यह धन या तो उपनिवेशों की लूट से मिलता है, या हरायी हुई राष्ट्रीयताओं से हर्जाना वसूल कर, या दूसरे देशों से उधार लेकर इकट्ठा किया जाता है। सोवियत संघ धन इकट्ठा करने के लिए उसूलन ऐसे नीच उपायों से काम न ले सकता था, जैसे कि उपनिवेशों या हरायी हुई राष्ट्रीयताओं की लूट। जहाँ तक बाहर से उधार लेने का सम्बन्ध था, सोवियत संघ के लिए वह रास्ता भी बन्द था, क्योंकि पूँजीवादी देश उसे कुछ भी देने से इनकार कर रहे थे। पैसा देश के भीतर ही इकठ्ठा करना था।

और, पैसा इकट्ठा हुआ। सोवियत संघ में धन के ऐसे साधन टटोले गये जैसे किसी भी पूँजीवाद देश में न किये जा सकते थे। सोवियत राज्य ने उन तमाम मिलों, कारखानों और जमीनों को ले लिया था जिन्हें अक्टूबर की समाजवादी क्रान्ति ने पूँजीपतियों और जमीन्दारों से छीना था। सोवियत राज्य के हाथ में यातायात के सभी साधन, बैंक और देशी और विदेशी व्यापार था। राज्य की मिलों और कारखानों, यातायात के साधनों, व्यापार और बैंकों से जो मुनाफा होता था, वह कामचोर पूँजीवादी वर्ग की जेब में न जाता

था, बल्कि अब उद्योग-धन्धों के विस्तार को बढ़ाने के लिए लगाया गया।

सोवियत सरकार ने जार का वह कर्ज रद्द कर दिया था जिसे भरने में जनता सिर्फ सूद के रूप में करोड़ों स्वर्ण रूबल देती थी। जमीन पर जमीन्दारों की मिल्कियत खत्म करके, सोवियत सरकार ने किसानों को लगान के रूप में लगभग 50 करोड़ स्वर्ण रूबल के सालाना भुगतान से मुक्त कर दिया था। इस बोझ से मुक्त होकर, किसान इस हालात में थे कि नये और शक्तिशाली उद्योग-धन्धे बनाने में राज्य की सहायता करें। किसानों को ट्रैक्टर और खेती की दूसरी मशीनें हासिल करने में गहरी दिलचस्पी थी।

आमदनी के ये सभी साधन सोवियत राज्य के हाथ में थे। भारी उद्योग-धन्धों के निर्माण के लिये, उनसे करोड़ों रूबल मिल सकते थे। जरूरत सिर्फ इस बात की थी कि सीधे-सीधे कामकाजी रुख अपनाया जाये, धन को एकदम किफायत के साथ खर्च किया जाये, उद्योग-धन्धों को चलाने में धन और शक्ति की बचत हो, पैदावार के खर्च में कमी हो, जिस खर्च से पैदावार न हो उसे बन्द कर दिया जाये, वगैरह।

और, सोवियत सरकार ने यही रास्ता अपनाया।

सख्त किफायतशारी की व्यवस्था होने से, भारी औद्योगिक विकास के लिए आवश्यक रकम हर साल बढ़ती गयी। इसी से, यह मुमकिन हुआ कि ऐसे विराट निर्माण कार्यों में हाथ लगाया जाये जैसे द्नीपर पन-बिजली स्टेशन, तुर्किस्तान-साइबेरिया रेलवे, स्तालिनग्राद का ट्रैक्टर का कारखाना, मशीनें बनाने वाले कई कारखाने, आमो (जिस) मोटर बनाने का कारखाना, वगैरह।

1926-27 में, लगभग एक अरब रूबल उद्योग-धन्धों में लगाये गये थे। लेकिन तीन साल बाद, पाँच अरब लगाना सम्भव हुआ।

औद्योगीकरण बराबर प्रगति करता जा रहा था।

पूँजीवादी देश सोवियत संघ में समाजवादी आर्थिक व्यवस्था की बढ़ती हुई आर्थिक शक्ति को पूँजीवादी व्यवस्था की हस्ती के लिये एक संकट ही समझते थे। इसलिए, जहाँ तक उनसे हो सका, साम्राज्यवादियों ने सोवियत संघ पर नया दबाव डालने की कोशिश की, देश में दुविधा और बेचैनी का भाव फैलाने की कोशिश की और सोवियत संघ में औद्योगीकरण को असफल करने या कम से कम उसमें अड़चनें डालने की कोशिश की।

मई 1927 में, ब्रिटिश कंजरवेटिव कट्टरपंथियों ने, जिनकी उस समय सरकार थी, आर्कोस (ब्रिटेन-स्थित सोवियत व्यापारी संस्था) पर एक उकसावा पैदा करने वाला हमला संगठित किया। 26 मई 1927 को, अंग्रेजों की कंजरवेटिव सरकार ने सोवियत संघ से कूटनीतिक और व्यापारिक सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया।

7 जून 1927 को, एक रूसी गद्दार ने जो पोलैण्ड का नागरिक बन गया था, वारसा-स्थित सोवियत राजदूत कामरेड वोईकोव की हत्या कर डाली।

इसी समय, खुद सोवियत संघ के अन्दर अंग्रेज जासूसों और तोड़-फोड़ करने वालों ने लेनिनग्राद में एक पार्टी क्लब की बैठक में बम फेंके, जिससे तीस आदमी घायल हुए, जिनमें से कुछ के घाव चिन्ताजनक थे।

1927 की गर्मियों में, लगभग एक ही साथ बर्लिन, पेकिंग, शंघाई और टीन्सटिन के

सोवियत दूतावासों और व्यापार प्रतिनिधि-मण्डलों पर हमले किये गये।

इससे सोवियत सत्ता के लिए और भी कठिनाइयाँ पैदा हो गईं।

लेकिन, सोवियत संघ ने इन धमकियों में आने से इनकार कर दिया और साम्राज्यवादियों और उनके दलालों की भड़काने वाली कोशिशों को आसानी से काट दिया।

पार्टी और सोवियत राज्य के लिए त्रात्स्कीपंथियों और दूसरे विरोधियों की तोड़-फोड़ की कार्रवाई से भी कम कठिनाइयाँ पैदा न हुईं। कामरेड स्तालिन ने ठीक ही कहा था कि सोवियत सत्ता के खिलाफ "चेम्बरलेन से लेकर, त्रात्स्की तक एक संयुक्त मोर्चा सा बनाया जा रहा है।" चौदहवीं पार्टी कांग्रेस के फैसलों के बावजूद और पार्टी के प्रति वफादारी की कसमें खाने के बावजूद, विरोधियों ने अभी हथियार न डाले थे। उल्टे, उन्होंने पार्टी को कमजोर बनाने और तोड़ने के लिए और भी जोरशोर से कोशिशें आरम्भ कीं।

1926 की गर्मियों में, त्रात्स्कीवादियों और जिनोवियेवपंथियों ने एक पार्टी-विरोधी गुट बनाने के लिए एका किया। उन्होंने इसे हारे हुए विरोधी दलों के बचे-खुचे लोगों को समेटने के लिए एक केन्द्र बनाया। उन्होंने अपनी गुप्त लेनिनवाद-विरोधी पार्टी बनाने के लिए नींव डाली। इस तरह, उन्होंने गुटबाजी के खिलाफ पार्टी कांग्रेसों के फैसलों और पार्टी नियमावली को बुरी तरह तोड़ा। पार्टी की केन्द्रीय समिति ने चेतावनी दी कि अगर यह पार्टी-विरोधी गुट-जो बदनाम मेन्शेविक अगस्त-गुट से मिलता-जुलता है-न तोड़ा गया, तो उसके अनुयायियों के लिए बुरा होगा। लेकिन, गुट के समर्थकों ने अपना हाथ न रोका।

उसी साल की शरद में, पन्द्रहवीं पार्टी कान्फ्रेंस शुरू होने से पहले, उन्होंने इस कोशिश में मास्को, लेनिनग्राद और दूसरे शहरों के कारखानों की पार्टी मीटिंगों पर फिर धावा बोला कि पार्टी को एक नयी बहस के लिए मजबूर किया जाये। जिस नीति को लेकर वे पार्टी सदस्यों में बहस चलाना चाहते थे, वह वही त्रात्स्कीवादी-मेन्शेविक, लेनिनवाद-विरोधी पुरानी नीति का पैबन्द लगाया हुआ रूप था। पार्टी सदस्यों ने विरोधियों को मुँहतोड़ जवाब दिया और कई जगह तो उन्हें मीटिंगों से बाहर निकाल दिया। केन्द्रीय समिति ने गुट के समर्थकों को फिर चेतावनी दी और कहा कि पार्टी उनकी तोड़-फोड़ की कार्रवाई को और ज्यादा बर्दाश्त नहीं कर सकती।

तब विरोधियों ने त्रात्स्की, जिनोवियेव, कामेनेव और सोकोल्निकोव के दस्तखतों से एक बयान केन्द्रीय समिति को दिया, जिसमें अपनी गुटबन्दी की निन्दा की और आगे वफादार रहने का वायदा किया। फिर भी, गुट बना ही रहा और उसके समर्थक पार्टी के खिलाफ गुपचुप काम करने से बाज न आये। वे अपनी लेनिनवाद-विरोधी पार्टी जोड़ते-बटोरते रहे, अपना गैर-कानूनी छापाखाना शुरू कर दिया, अपने समर्थकों से सदस्यता की फीस इकट्ठी करने लगे और अपनी नीति का दस्तावेज घुमाने लगे।

त्रात्स्कीवादियों और जिनोवियेवपंथियों का यह व्यवहार देखकर, पन्द्रहवीं पार्टी कान्फ्रेंस (नवम्बर 1926) और कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल की कार्यकारिणी समिति के विस्तृत अधिवेशन (दिसम्बर 1926) ने त्रात्स्कीवादियों और जिनोवियेवपंथियों के गुट के सवाल पर विचार किया और इसके अनुयायियों को फूट डालनेवाला कहकर, जिनकी नीति ठेठ मेन्शेविज्म थी, उनकी निन्दा की।

लेकिन, इससे भी उनके होश ठिकाने न आये। 1927 में, ठीक उन्हीं दिनों जबकि ब्रिटिश कंजरवेटिवों ने सोवियत संघ से व्यापारिक और कूटनीतिक सम्बन्ध-विच्छेद किया था, गुट ने और भी जोश से पार्टी पर हमला किया। उसने एक नया लेनिनवाद-विरोधी मंच बनाया, तथाकथित 'तेरासी का मंच' और पार्टी सदस्यों में यह दस्तावेज घुमाना शुरू किया। और साथ ही, उसने यह माँग की कि केन्द्रीय समिति एक नयी आम पार्टी बहस शुरू करे।

यह दस्तावेज विरोधियों के दस्तावेजों में शायद सबसे झूठा और मक्कारी से भरा हुआ था।

त्रात्स्कीवादियों और जिनोवियेवपंथियों ने अपने दस्तावेज में कहा कि उन्हें पार्टी के फैसले मानने से कोई ऐतराज नहीं है और वे सब वफादारी के पक्ष में हैं। लेकिन वास्तव में, वे पार्टी फैसलों को बुरी तरह तोड़ते थे और पार्टी के प्रति और उसकी केन्द्रीय समिति के प्रति वफादारी के विचार का ही मखौल उड़ाते थे।

उन्होंने अपने दस्तावेज में कहा था कि पार्टी एकता से उन्हें कोई ऐतराज नहीं है और वे फूट के खिलाफ हैं : लेकिन वास्तव में, वे बुरी तरह पार्टी एकता तोड़ते थे, फूट के लिए काम करते थे और अभी भी उनकी अपनी गैर-कानूनी लेनिनवाद-विरोधी पार्टी थी, जिसके सभी लक्षण एक सोवियत-विरोधी, क्रान्ति-विरोधी पार्टी के थे।

उन्होंने अपने दस्तावेज में कहा था कि वे सब औद्योगीकरण की नीति के पक्ष में है और वे केन्द्रीय समिति पर यह दोष तक लगाते थे कि वह काफी तेजी से औद्योगीकरण नहीं कर रही। लेकिन वास्तव में, सोवियत संघ में समाजवाद की विजय पर पार्टी के प्रस्ताव की नुक्ताचीनी करने के अलावा वे कुछ न करते थे। वे समाजवादी औद्योगीकरण की नीति का मखौल उड़ाते थे। वे माँग करते थे कि कई मिलें और कारखाने विदेशियों को रियायत के रूप में सौंप दिये जायें। उन्होंने अपनी सबसे बड़ी उम्मीदें सोवियत संघ में विदेशी पूँजीपतियों के लिए रियायतों से बाँध रखी थीं।

उन्होंने अपने दस्तावेज में कहा था कि वे सब सामूहिक खेती के आन्दोलन के पक्ष में है, और वे केन्द्रीय समिति पर इसका दोष तक लगाते थे कि वह सामूहिकीकरण में काफी जल्दी नहीं कर रही है। लेकिन वास्तव में, वे किसानों को समाजवादी निर्माण में लगाने की नीति का मखौल उड़ाते थे। वे इस धारणा का प्रचार करते थे कि मजदूर वर्ग और किसानों के बीच 'न सुलझने वाले झगड़े' अनिवार्य है। उन्होंने अपनी उम्मीदें देहातों के 'सुसंस्कृत पट्टेदारों', दूसरे शब्दों में कुलकों, पर बाँध रखी थीं।

विरोधियों के सभी दस्तोवेजों में, यह सबसे झूठा था।

उसका उद्देश्य पार्टी को धोखा देना था।

केन्द्रीय समिति ने तुरन्त ही आम बहस शुरू करने से इनकार कर दिया। उसने विरोधियों को सूचना दे दी कि आम बहस पार्टी नियमावली के अनुसार ही, यानी पार्टी कांग्रेस के दो महीने पहले ही शुरू हो सकती है।

अक्टूबर 1927 में, यानी पन्द्रहवीं कांग्रेस से दो महीने पहले, पार्टी की केन्द्रीय समिति ने आम पार्टी बहस का ऐलान किया और लड़ाई शुरू हो गयी। त्रात्स्कीवादियों और जिनोवियेवपंथियों के गुट के लिए उसका नतीजा सचमुच ही शोचनीय हुआ। 7,24,000 पार्टी

सदस्यों ने केन्द्रीय समिति की नीति के लिए वोट दिया। चार हजार या एक फीसदी से भी कम ने त्रात्स्कीवादियों और जिनोवियेवपंथियों के गुट के लिए वोट दिया। पार्टी-विरोधी गुट पूरी तरह पछाड़ दिया गया। पार्टी सदस्यों के भारी बहुमत ने एक राय से गुट की नीति को ठुकरा दिया।

पार्टी की बहुत साफ-साफ जाहिर होने वाली इच्छा यही थी, जिस पार्टी के फैसले के लिए खुद विरोधियों ने अपील की थी।

लेकिन, गुट के समर्थकों ने इससे भी सबक न सीखा। पार्टी की इच्छा मानने के बदले, उन्होंने उसे विफल करने का फैसला किया। बहस खत्म होने के पहले ही, यह देखकर कि उनकी कैसी बुरी हार होने वाली है, उन्होंने पार्टी और सोवियत सरकार के खिलाफ संघर्ष के और भी तेज रूपों से काम लेने का फैसला किया। उन्होंने तय किया कि मास्को और लेनिनग्राद में खुला विरोध प्रदर्शन किया जाये। प्रदर्शन के लिए उन्होंने 7 नवम्बर का दिन चुना, अक्टूबर क्रान्ति की वर्षगाँठ का दिन चुना, जिस दिन सोवियत संघ की मेहनतकश जनता हर साल देश भर में क्रान्तिकारी प्रदर्शन करती है। इस तरह, त्रात्स्कीवादियों और जिनोवियेवपंथियों ने उसी के बराबर प्रदर्शन करने की योजना बनाई। जैसी कि उम्मीद की जा सकती थी, गुट के समर्थक सिर्फ अपने मुट्ठी भर पिछलग्गुओं को सड़कों पर ला सके। ये पिछलगुये और उनके संरक्षक आम प्रदर्शन में बह गये और सड़कों में खो गये।

अब इसमें कोई भी शक न रहा कि त्रात्स्कीवादी और जिनोवियेवपंथी निश्चित रूप से सोवियत-विरोधी हो गये हैं। आम पार्टी बहस के दौर में, उन्होंने केन्द्रीय समिति के खिलाफ पार्टी से अपील की थी। अब इस टुटपुंजिया प्रदर्शन के दौर में, पार्टी और सोवियत राज्य के खिलाफ उन्होंने विरोधी वर्गों से अपील करने का रास्ता अपनाया। जब एक बार उन्होंने तय कर लिया था कि बोल्शेविक पार्टी की जड़ काटनी है, तब उन्हें सोवियत राज्य की जड़ काटने की हद तक बढ़ना ही था, क्योंकि सोवियत संघ में बोल्शेविक पार्टी और राज्य दोनों अभिन्न हैं। ऐसी हालत में, त्रात्स्कीवादियों और जिनोवियेवपंथियों के गुट के नेताओं ने अपने को पार्टी से फरार कर लिया था, क्योंकि जो आदमी सोवियत विरोधी कार्रवाई की हद तक उतर चुके थे, वे अब बोल्शेविक पार्टी की कतारों में बर्दाश्त न किये जा सकते थे।

14 नवम्बर 1927 को, केन्द्रीय समिति और केन्द्रीय कन्ट्रोल कमीशन की संयुक्त बैठक ने त्रात्स्की और जिनोवियेव को पार्टी से निकाल दिया।

2. समाजवादी औद्योगीकरण की प्रगति। खेती का पिछड़ना। पन्द्रहवीं पार्टी कांग्रेस। खेती में सामूहिकीकरण की नीति। त्रात्स्कीवादियों और जिनोवियेवपंथियों के गुट की हार। राजनीतिक दुरंगापन।

1927 के आखिर तक, इसमें शक न रह गया था कि समाजवादी औद्योगीकरण की नीति को निर्णायक सफलता मिली है। नयी आर्थिक नीति के दौर में, थोड़े ही दिनों में औद्योगीकरण ने काफी प्रगति की थी। उद्योग-धन्धों और खेती की कुल उपज (जिसमें लकड़ी और

मछलियों के धन्धे भी शामिल थे) युद्ध के पूर्व के स्तर तक पहुँच गयी थी, और उससे आगे भी बढ़ गयी थी। औद्योगिक उपज देश की कुल उपज का 42 फीसदी भाग बन चुकी थी, जो युद्ध से पहले का अनुपात था।

उद्योग-धन्धों का समाजवादी क्षेत्र तेजी से बढ़ रहा था और व्यक्तिगत पूँजी का क्षेत्र घट रहा था। समाजवादी क्षेत्र की उपज 1924-25 में कुल उपज के 81 फीसदी भाग से, 1926-27 में 86 फीसदी तक पहुँच गयी। इसी बीच, व्यक्तिगत पूँजी के क्षेत्र की उपज 19 फीसदी से घटकर 14 फीसदी तक रह गयी थी।

इसका मतलब यह था कि सोवियत संघ में औद्योगीकरण का समाजवादी रूप उभर आया था, उद्योग-धन्धों का विकास पैदावार की समाजवादी व्यवस्था की जीत की तरफ हो रहा था; और उद्योग-धन्धों के बारे में यह सवाल कि 'जीत किसकी होगी?' समाजवाद के पक्ष में हल हो चुका था।

व्यापार क्षेत्र में, व्यक्तिगत सौदागर को भी कम तेजी से नहीं हटाया गया। खुदरा बाजार में उसका हिस्सा 1924-25 में 42 फीसदी से गिरकर, 1926-27 में 32 फीसदी तक आ गया था। थोक बाजार का जिक्र ही क्या, जहाँ व्यक्तिगत सौदागर का हिस्सा इसी बीच 9 फीसदी से गिरकर 5 फीसदी रह गया था।

बड़े पैमाने के समाजवादी उद्योग-धन्धों की बढ़ोत्तरी इससे भी तेज रफ्तार से हुई। 1927 में, पुनर्संगठन के दौर के बाद के पहले साल में, इनकी उपज पहले साल से 18 फीसदी बढ़ गयी। बढ़ोत्तरी का यह एक रिकार्ड था, जो सबसे आगे बढ़े हुए पूँजीवादी देशों के लिए भारी उद्योग-धन्धों की पहुँच से बाहर था।

लेकिन खेती में, खास तौर से गल्ला पैदा करने में, हालत दूसरी थी। हालाँकि कुल मिलाकर खेती युद्ध के पूर्व के स्तर से आगे बढ़ गयी थी, लेकिन उसकी सबसे महत्त्वपूर्ण शाखा-अनाज पैदा करने की शाखा-की कुल उपज युद्ध-पूर्व की 91 फीसदी ही थी, जबकि फसल का बाजार में बेचा जाने वाला हिस्सा, यानी वह अनाज जो शहरों की खपत के लिए बेचा जाता था, मुश्किल से युद्ध-पूर्व के आँकड़ों का 37 फीसदी हो पाया था। और भी, सभी लक्षण यह बता रहे थे कि बाजार के लिए अनाज की तादाद में और भी कमी होने का खतरा है।

इसका मतलब यह था कि बड़े खेत, जो बाजार के लिए अन्न पैदा करते थे, उनका टूट कर छोटे खेत बनना और छोटे खेतों का और भी छोटे टुकड़ों में बँटना, यह सिलसिला जो 1918 में शुरू हुआ था, अब भी चालू था। ये छोटे खेत और टुकड़े अमल में आर्थिक व्यवस्था के कुदरती रूप की की तरफ लौट रहे थे और अनाज की नगण्य तादाद ही बाजार के लिए भेज सकते थे। 1927 के दौर में, हालाँकि अनाज की फसल युद्ध के पूर्व के दौर से कुछ ही कम थी, लेकिन शहरों को भेजने के लिए बाजार में आने वाला अतिरिक्त अनाज युद्ध-पूर्व के बाजार में भेजे जानेवाले फालतू अनाज के एक-तिहाई से कुछ ही ज्यादा था।

इसमें कोई सन्देह न था कि यदि अनाज की खेती की यही दशा रही तो फौज और शहर के लोगों को हमेशा ही अकाल का सामना करना पड़ेगा।

यह अनाज की खेती का संकट था, जिसके बाद पशु-पालन का संकट पैदा होना जरूरी था।

इस कठिनाई से बचने का एक ही तरीका था कि बड़े पैमाने की खेती की जाये, जिसमें ट्रैक्टरों और खेती की मशीनों से काम लिया जा सके और बाजार के लिए भेजे जाने योग्य अतिरिक्त अनाज कई गुना बढ़ सके। देश के सामने दो रास्ते थे : या तो बड़े पैमाने की **पूँजीवादी खेती** करे, जिससे किसान-जनता तबाह हो जाती, मजदूर और किसानों का सहयोग टूट जाता, कुलक शक्ति बढ़ जाती और देहातों में समाजवाद का पतन हो जाता; या फिर छोटे-छोटे खेतों को बड़े **समाजवादी** खेतों, सामूहिक खेतों में मिला लिया जाता, जिससे अनाज की खेती को तेजी से बढ़ाने के लिए और बाजार के लिए अतिरिक्त अनाज की तादाद में तुरन्त वृद्धि करने के लिए ट्रैक्टर और दूसरी आधुनिक मशीनें काम में लाई जा सकतीं।

स्पष्ट है कि बोल्शेविक पार्टी और सोवियत राज्य दूसरी राह पर ही, खेती को बढ़ाने की सामूहिक राह पर ही चल सकते थे।

इस मामले में, पार्टी का निर्देश लेनिन की यह सीख करती थी, जो उन्होंने छोटे पैमाने की खेती से बड़े पैमाने की सहकारी, सामूहिक खेती की तरफ बढ़ने की जरूरत के बारे में दी थी :

(क) "छोटे खेतों के लिए गरीबी से बचने का कोई भी रास्ता नहीं है।" (**लेनिन ग्रंथावली**, रू.सं., खं. 24, पृष्ठ 540)।

(ख) "अगर हम स्वाधीन भूमि पर स्वाधीन नागरिकों की तरह भी पुराने ढंग से अपने छोटे खेतों पर किसानी करते रहें, तो भी तबाही लाजिमी होगी।" (**लेनिन ग्रंथावली,** रू.सं., खं. 20, पृ. 417)।

(ग) "अगर किसानों की खेती को आगे बढ़ाना है, तो हमें दूसरी मंजिल की तरफ उसकी बढ़ोत्तरी को भी पक्का कर लेना चाहिए। लाजिमी तौर से, यह दूसरी मंजिल ऐसी होगी जिसमें छोटे, अलग-थलग खेत, सबसे कम लाभदायी और सबसे पिछड़े हुए खेत धीरे-धीरे घुलमिल कर बड़े पैमाने के सामूहिक खेत बन जायेंगे।" (**लेनिन ग्रंथावली**, रू.सं., खं. 26, पृ. 299)।

(घ) "अगर हम अमल में किसानों को समझा सकें कि जमीन को मिल-जुलकर सामूहिक, सहकारी संघ के तरीके से जोतने-बोने में क्या फायदा है, अगर हम सहकारी या संघ की खेती के जरिये किसानों की मदद कर सकें, तो मजदूर वर्ग, जिसके हाथ में राज्यसत्ता है, सचमुच किसानों को समझा सकेगा कि उसकी नीति सही है और लाखों किसानों का सच्चा और पक्का समर्थन पा सकेगा।" (**लेनिन ग्रंथावली,** सं.ग्रं., अं.सं., मास्को, 1947 खं. 2, पृ. 539)।

पन्द्रहवीं पार्टी कांग्रेस से पहले हालत यही थी।

2 दिसम्बर 1927 को, पन्द्रहवीं पार्टी कांग्रेस शुरू हुई। इसमें 8,87,233 पार्टी सदस्यों और 3,48,957 उम्मीदवार सदस्यों की तरफ से, 898 प्रतिनिधि वोट देने वाले और 771 प्रतिनिधि बोलने वाले लेकिन वोट न दे सकने वाले शामिल हुए।

केन्द्रीय समिति की तरफ से अपनी रिपोर्ट में, कामरेड स्तालिन ने औद्योगीकरण की सफलताओं और समाजवादी उद्योग-धन्धों के तेजी से बढ़ने का हवाला दिया और पार्टी के सामने यह काम रखा :

> "शहरों और देहातों की सभी आर्थिक शाखाओं में अपनी समाजवादी अहम स्थिति को दृढ़ करना और राष्ट्रीय अर्थतंत्र से पूँजीवादी तत्वों को निकालने के रास्ते पर चलना।"

उद्योग-धन्धों से खेती की तुलना करते हुए और खेती के, खास तौर से अनाज की पैदावार के पिछड़ेपन का जिक्र करते हुए, कामरेड स्तालिन ने जोर दिया कि खेती की इस दुर्दशा से तमाम राष्ट्रीय अर्थतंत्र खतरे में पड़ रहा था। खेती की यह दशा इसलिए थी कि खेत अलग-थलग थे और उनमें आधुनिक मशीनें इस्तेमाल नहीं की जा सकती थीं।

कामरेड स्तालिन ने पूछा : "इससे निकलने का रास्ता क्या है?"

> उन्होंने कहा : "निकलने का रास्ता यही है कि बिखरे हुए, छोटे खेतों को बड़े संयुक्त खेत बनाया जाये, जिनका आधार मिली-जुली खेती हो; नये और ज्यादा ऊँचे कौशल के आधार पर जमीन की सामूहिक खेती शुरू की जाये। निकलने का रास्ता यही है कि छोटे-छोटे और टुकड़ों जैसे खेतों को धीरे-धीरे, लेकिन निश्चित रूप से, दबाव से नहीं, लेकिन मिसाल से और समझा-बुझाकर, बड़े खेतों में मिलाया जाये। इनका आधार खेती की मशीनों और ट्रैक्टरों से और घनी खेती करने के वैज्ञानिक तरीकों से मिली-जुली सहकारी, सामूहिक खेती हो। निकलने का और कोई रास्ता नहीं है।"

पन्द्रहवीं कांग्रेस ने खेती के **सामूहिकीकरण** को ज्यादा से ज्यादा बढ़ाने का बुलावा देते हुए प्रस्ताव पास किया। कांग्रेस ने सामूहिक खेतों और सरकारी खेतों का विस्तार करने और उन्हें मजबूत करने की एक योजना स्वीकार की। खेती के सामूहिकीकरण के संघर्ष में किन तरीकों से काम लिया जायेगा, इसके बारे में कांग्रेस ने स्पष्ट निर्देश किये।

इसके साथ ही, कांग्रेस ने यह भी निर्देश किया :

> "कुलक-विरोधी हमले को आगे बढ़ाया जाये और कई ऐसे नये उपाय किये जायें जिनसे देहातों में पूँजीवाद के विकास पर रोक लगे और छोटी किसानी करने वालों को समाजवाद की तरफ बढ़ाया जा सके।" (**सो.सं.कं.पा. (बो) के प्रस्ताव**, रू.सं., खं. 2, पृ. 260)।

अन्त में, यह देखते हुए कि आर्थिक नियोजन की जड़ जम चुकी है और इस उद्देश्य से कि सारे आर्थिक मोर्चे पर पूँजीवादी तत्वों के खिलाफ समाजवाद का बाकायदा हमला संगठित करना है, कांग्रेस ने उपयुक्त संस्थाओं को आज्ञा दी कि राष्ट्रीय अर्थतंत्र के विकास के लिये पहली पंचवर्षीय योजना बनायी जाये।

समाजवादी निर्माण की समस्याओं पर फैसले लेने के बाद, कांग्रेस ने त्रात्स्कीवादियों और जिनोवियेवपंथियों के गुट को खत्म करने के सवाल पर बहस करनी शुरू की।

कांग्रेस इस नतीजे पर पहुँची कि "विचारधारा में, विरोधी लेनिनवाद से नाता तोड़ चुके हैं। वे पतित होकर एक मेन्शेविक गुट बन गये हैं। उन्होंने देशीय और अन्तरराष्ट्रीय पूँजीपतियो की शक्ति के सामने घुटने टेकने का रास्ता अपना लिया है और वे वस्तुगत रूप से सर्वहारा अधिनायकत्व की व्यवस्था के खिलाफ क्रान्ति-विरोध का हथियार बन चुके हैं।" (**सो.सं.क.पा. (बो) के प्रस्ताव,** रू.सं., खं. 2, पृ. 232)।

कांग्रेस ने देखा कि पार्टी और विरोधी दल के भेद कार्यक्रम के भेद बन गये हैं और त्रात्स्की के विरोधी दल ने सोवियत सत्ता के खिलाफ संघर्ष का रास्ता अपनाया है। इसलिए, कांग्रेस ने घोषणा की कि त्रात्स्की के विरोधी दल का साथ देना और उसके मत का प्रचार करना बोल्शेविक पार्टी की सदस्यता के साथ नहीं चल सकता।

कांग्रेस ने केन्द्रीय समिति और केन्द्रीय कन्ट्रोल कमीशन की संयुक्त बैठक द्वारा, त्रात्स्की और जिनोवियेव को पार्टी से निकालने के बारे में प्रस्ताव का अनुमोदन किया। कांग्रेस ने फैसला किया कि त्रात्स्कीवादियों और जिनोवियेवपंथियों के गुट के सभी सक्रिय सदस्यों को निकाल दिया जाये, जैसे कि रादेक, प्रेयोब्राजेन्स्की, रकोव्स्की, प्याताकोव, सेरेब्रियाकोव, ई.स्मिरनोव, कामेनेव, सारकिस, साफारोव, लिफशित्स, म्दीवानी, स्मिल्गा और पूरा 'जनवादी मध्यमार्गी गुट' (साप्रोनोव, व. स्मिरनोव, बोगुस्लाव्स्की, द्रोबनिस इत्यादि)।

सैद्धान्तिक रूप से हार कर और संगठनात्मक रूप से खदेड़े जाकर, त्रात्स्कीवादियों और जिनोवियेवपंथियों के गुट के अनुयायियों ने जनता में अपना बचा-खुचा असर भी खो दिया।

पन्द्रहवीं पार्टी कांग्रेस के तुरन्त बाद ही, निकाले हुए लेनिनवाद-विरोधी लोग बयान दाखिल करने लगे, जिनमें उन्होंने त्रात्स्कीवाद को तिलांजलि देने की बात कही और पार्टी मे ंफिर से लिये जाने की प्रार्थना की। यह सही है कि उस समय पार्टी अभी यह न जान सकी थी कि त्रात्स्की, रकोव्स्की, रादेक, क्रिस्तियान्स्की, सोकोल्निकोव इत्यादि बहुत दिनों से जनता के दुश्मन हैं, विदेशी जासूस-विभागों के भर्ती किये हुए दलाल हैं, और कामेनेव, जिनोवियेव, प्याताकोव वगैरह अभी भी पूँजीवादी देशों के सोवियत-शत्रुओं से सम्बन्ध स्थापित कर रहे हैं, जिससे कि सोवियत जनता के खिलाफ वे उनसे 'सहयोग' कायम कर सकें। लेकिन, अनुभव ने पार्टी को सिखा दिया था कि इन लोगों से, जिन्होंने लेनिन और लेनिनवादी पार्टी पर बहुत ही नाजुक मौकों पर हमला किया था, हर तरह की बदमाशी की उम्मीद की जा सकती है। इसलिए पार्टी में फिर से दाखिल होने के लिए, उन्होंने अपनी अर्जियों में जो बयान दिये थे, पार्टी उन्हें सन्देह की निगाह से देखती थी। उनकी सच्चाई की पहली कसौटी के रूप में, पार्टी में उनको फिर से दाखिल करने के लिए ये शर्तें रखी गयीं :

(क) वे खुल्लमखुल्ला त्रात्स्कीवाद को बोल्शेविक-विरोधी और सोवियत-विरोधी विचारधारा कहकर उसकी निन्दा करें।

(ख) वे खुल्लमखुल्ला पार्टी नीति को एकमात्र सही नीति स्वीकार करें।

(ग) वे बिना किसी शर्त के पार्टी और उसकी संस्थाओं के फैसलों को मानें।

(घ) वे कुछ समय परीक्षा का बितायें, जिसमें पार्टी उन्हें परखेगी। यह समय खत्म होने

पर, परीक्षा-फल के अनुसार, पार्टी हरेक प्रार्थी की भर्ती के सवाल पर अलग-अलग विचार करेगी।

पार्टी का विचार था कि निकाले हुए लोग खुल्लमखुल्ला इन बातों को स्वीकार करेंगे तो इससे पार्टी का भला ही होगा। इससे त्रात्स्कीवादियों, जिनोवियेवपंथियों की कतारों की एकता टूट जायेगी, उनकी हिम्मत पस्त होगी, सबको मालूम होगा कि पार्टी सही है और समर्थ है और अगर प्रार्थी ईमानदार हुए तो पार्टी अपने भूतपूर्व कार्यकर्ताओं को अपनी कतारों में ले लेगी। अगर वे ईमानदार न हुए, तो जनता के सामने उनका पर्दाफाश किया जायेगा। सबको मालूम हो जायेगा कि ये कुछ भटके हुए लोग नहीं हैं, बल्कि सिद्धान्तहीन, पैसा-कमाऊ लोग हैं, मजदूर वर्ग को धोखा देने वाले हैं और कभी न सुधरनेवाले दगेबाज हैं।

अधिकांश निकाले हुओं ने भर्ती होने की शर्तें मान लीं और अखबारों में इसी आशय के खुले बयान दिये।

उनसे उदारता का व्यवहार करने के लिए, और फिर पार्टी तथा मजदूर वर्ग के कार्यकर्ता बनने का अवसर उन्हें देने के लिए, पार्टी ने उन्हें फिर अपनी कतारों में ले लिया।

लेकिन, वक्त ने दिखा दिया कि कुछ अपवाद छोड़कर त्रात्स्कीवादियों और जिनोवियेवपंथियों के 'सरदारों' ने जो गलतियाँ मानी थीं, वे आदि से अन्त तक झूठी और धूर्ततापूर्ण थीं।

आगे चलकर, मालूम हुआ कि अपनी अर्जियाँ देने के पहले ही ये सज्जन किसी राजनीतिक प्रवृत्ति के नुमाइन्दे न रह गये थे, जो जनता के सामने अपने मत का समर्थन करने के लिए तैयार रहते। वे पैसा कमाऊ लोगों का सिद्धान्तहीन गुट बन चुके थे, जो सरेआम अपने ही विचारों के अवशेषों को पैरों तले रौंदने को तैयार थे, सरेआम पार्टी के मत की तारीफ करने के लिए तैयार थे, जो मत उनके लिये गैर था। वे गिरगिट की तरह हर रंग बदलने के लिये तैयार थे, बशर्ते कि वह पार्टी और मजदूर वर्ग की कतारों में बने रह सकें और उन्हें मजदूर वर्ग तथा उसकी पार्टी का अहित करने का मौका मिल सके।

त्रात्स्कीवादियों और जिनोवियेवपंथियों के गुट के 'सरदार' राजनीतिक धोखेबाज, राजनीतिक दगेबाज साबित हुए।

राजनीतिक दगेबाज आम तौर से धोखेबाजी से शुरू करते हैं और जनता को, मजदूर वर्ग को और मजदूर वर्ग की पार्टी को धोखा देकर अपने नीच उद्देश्य हासिल करने की कोशिश करते हैं। लेकिन, राजनीतिक धोखेबाजों को धोखे की टट्टी भर न समझना चाहिए। राजनीतिक धोखेबाज राजनीतिक कमाऊ-खाऊ लोगों का सिद्धान्तहीन गिरोह होते हैं। जनता का विश्वास कभी का गवाँकर, वे धोखा देकर, गिरगिटों की तरह रंग बदल कर, प्रपंच करके, किसी भी उपाय से, बशर्ते कि उनकी राजनीतिक हस्ती बनी रहे, फिर जनता का विश्वास हासिल करने की कोशिश करते हैं। राजनीतिक दगेबाज राजनीतिक कमाऊ-खाऊ लोगों का सिद्धान्तहीन गिरोह होते हैं जो कहीं भी, जरायमपेशा लोगों में भी, समाज के सबसे पतित लोगों में भी, जनता के कट्टर शत्रुओं में भी, अपने सहायक ढूँढ़ने के लिए तैयार रहते हैं; बशर्ते कि किसी 'शुभ' घड़ी में वे फिर राजनीतिक मंच पर आ कूदें

और जनता के 'शासक' बनकर उसकी पीठ पर लद जायें।

त्रात्स्कीवादियों और जिनोवियेवपंथियों के गुट के 'सरदार' इसी तरह के राजनीतिक दगाबाज थे।

3. कुलक-विरोधी हमला। पार्टी-विरोधी बुखारिन-राइकोव गुट। पहली पंचवर्षीय योजना की स्वीकृति। समाजवादी होड़। आम सामूहिक खेती के आन्दोलन की शुरुआत।

एक तरफ तो त्रात्स्कीवादियों और जिनोवियेवपंथियों ने पार्टी-नीति के खिलाफ, समाजवाद के निर्माण के खिलाफ और सामूहिकीकरण के खिलाफ आन्दोलन किया। दूसरी तरफ, बुखारिनपंथियों ने प्रचार किया कि सामूहिक खेतों से कुछ न बनेगा, कुलकों को अलग छोड़ देना चाहिए क्योंकि खुद 'बढ़ते हुए' वे समाजवाद में आ जायेंगे और पूँजीपतियों का धनी होना समाजवाद के लिए कोई खतरा न होगा। इन सब बातों का देश के पूँजीवादी लोगों ने, और सबसे ज्यादा कुलकों ने स्वागत किया। अखबारों की टीका-टिप्पणी से, कुलक समझ गये कि वे अकेले नहीं हैं, उनके हिमायती और वकील त्रात्स्की, जिनोवियेव, कामेनेव, बुखारिन, राइकोव, वगैरह के रूप में मौजूद हैं। यह स्वाभाविक ही था कि सोवियत सरकार की नीति के खिलाफ कुलकों की विरोध भावना और दृढ़ हो जाये। और सचमुच, कुलकों का विरोध अधिकाधिक दृढ़ होता गया। उनके पास अतिरिक्त अन्न के काफी गोदाम थे, लेकिन उन्होंने सामूहिक रूप से इन्हें सोवियत सरकार को बेचने से इनकार कर दिया। सामूहिक खेतों के किसानों, पार्टी के कार्यकर्ताओं और देहातों के सरकारी कर्मचारियों के खिलाफ, उन्होंने आतंक शुरू किया और सामूहिक खेत और सरकारी खलिहान जला दिये।

पार्टी ने महसूस किया कि जब तक कुलक-विरोध न तोड़ा जायेगा, जब तक तमाम किसानों के देखते हुए वे खुली लड़ाई में हराये न जायेंगे, तब तक मजदूर वर्ग और लाल फौज को अन्न की कमी बनी रहेगी और सामूहिकीकरण का आन्दोलन किसानों में सामूहिक रूप न ले सकेगा।

पन्द्रहवीं पार्टी कांग्रेस के निर्देशों का पालन करते हुए, पार्टी ने जम कर कुलक-विरोधी मुहिम शुरू की। उसने इस नारे को अमली रूप दिया : मजबूती से गरीब किसानों का सहारा लो, मध्यम किसानों से सहयोग मजबूत करो और कुलकों से जम कर लड़ो। अतिरिक्त अन्न निश्चित भाव से राज्य को बेचने से कुलकों ने जब इन्कार किया, तो पार्टी और सरकार ने कुलकों के खिलाफ कई संकटकालीन उपाय करके इसका जवाब दिया। दण्ड-विधान की 107वीं धारा लागू की गयी, जिससे अदालतें सरकार को निश्चित मूल्य पर अनाज न बेचने पर कुलकों और मुनाफाखोरों का अतिरिक्त अन्न जब्त कर सकती थीं। गरीब किसानों को कई विशेषाधिकार दिये गये, जिनके अनुसार जब्त किये हुए कुलकों के अनाज का चौथाई हिस्सा उनके काम के लिये दे दिया जाता।

इन संकटकालीन उपायों का फल निकला : गरीब और मध्यम किसान कुलक-विरोधी

लड़ाई में जुट गये। कुलक अकेले पड़ गये। मुनाफाखोरों और कुलकों का विरोध तोड़ दिया गया। 1928 के अन्त तक ही, सोवियत राज्य के पास खरचने के लिए काफी गल्ला इकट्ठा हो गया और सामूहिक खेती का आन्दोलन और भी निश्चित डग भरता हुआ आगे बढ़ चला।

उसी साल, कोयले की खानों वाले दोन्येत्स प्रदेश के शाख्ती जिले में तोड़-फोड़ करने वालों के एक बड़े संगठन का पता लगा। इसमें पूँजीवादी विशेषज्ञ थे। शाख्ती जिले के तोड़-फोड़ करने वाले खानों के भूतपूर्व मालिकों ने-रूसी और विदेशी पूँजीपतियों-से साँठ-गाँठ की थी, और कई विदेशी सैनिक जासूस-विभागों से उनका सम्बन्ध था। उनका उद्देश्य था कि समाजवादी उद्योग-धन्धों के विकास को अव्यवस्थित कर दिया जाये और सोवियत संघ में पूँजीवाद को बहाल करने में सहायता दी जाये। तोड़-फोड़ करने वालों ने कोयले की पैदावार कम करने के लिए जानबूझ कर खानों की बदइन्तजामी की थी, मशीनें और हवा देने वाले यंत्रों को खराब किया था; खानों, कारखानों और बिजलीघरों में आग लगा दी थी। तोड़-फोड़ करने वालों ने जानबूझ कर मजदूरों की हालत सुधारने में बाधा डाली थी और सोवियत के श्रमरक्षा कानूनों को तोड़ा था।

तोड़फोड़ करने वालों पर मुकदमा चला, और उन्हें अपने किये की सजा मिली।

पार्टी की केन्द्रीय समिति ने सभी पार्टी-संगठनों को निर्देश किया कि शाख्ती मुकदमे से आवश्यक नतीजे निकालें। कामरेड स्तालिन ने कहा कि बोल्शेविक प्रबन्धकों को खुद पैदावार के कौशल में विशेषज्ञ बनना चाहिए, जिससे कि पुराने पूँजीवादी विशेषज्ञों में से तोड़फोड़ करने वालों के झाँसे में वे न आयें, और मजदूर वर्ग की कतारों से आने वाले कौशल के नये जानकारों की शिक्षा के काम को बढ़ाना चाहिए।

केन्द्रीय समिति के एक फैसले के अनुसार, टेक्नीकल कालेजों में नौजवान विशेषज्ञों की शिक्षा का काम सुधारा गया। हजारों पार्टी सदस्य नौजवान कम्युनिस्ट सभा के सदस्य और मजदूर वर्ग के पक्ष के प्रति वफादार गैर-पार्टी लोग शिक्षा के लिये बटोरे गये।

कुलकों के खिलाफ पार्टी का हमला शुरू होने से पहले और जब पार्टी त्रात्स्कीवादियों और जिनोवियेवपंथियों के गुट को खत्म करने में लगी हुई थी, बुखारिन-राइकोव गुट बहुत कुछ चुप पड़ा हुआ था। खुलकर त्रात्स्कीवादियों की मदद करने की हिम्मत न कर सकता था, बल्कि अपने को पार्टी-विरोधी शक्तियों का रिजर्व बनाये हुए था और कभी-कभी त्रात्स्कीवादियों के खिलाफ पार्टी के साथ भी कदम उठाता था। लेकिन, जब पार्टी ने कुलक-विरोधी मुहिम शुरू की और कुलकों के खिलाफ संकटकालीन उपाये किये, तो बुखारिन-राइकोव गुट ने अपनी नकाब उतार फेंकी और पार्टी की नीति पर सरेआम हमला करने लगा। बुखारिन-राइकोव गुट की कुलक आत्मा उस पर हावी हो गयी, और वे लोग खुल कर कुलकों की हिमायत करने लगे। उन्होंने माँग की कि संकटकालीन उपाय खत्म कर दिये जायें। उन्होंने सीधे-सादे लोगों को इस तर्क से डराया कि खेती का 'पतन' होने लगेगा और यह दावा तक करने लगे कि यह सिलसिला शुरू भी हो गया है। कृषि-संगठन के बेहतर रूपों, सामूहिक खेतों और सरकारी खेतों की बढ़ोत्तरी की तरफ आँखें बन्द करके और कुलक खेती को घटते देखकर, उन्होंने इस घटती को खेती की ही घटती कहना शुरू

कर दिया। अपने दावे को सिद्धान्त का सहारा देने के लिये, उन्होंने बेसिरपैर का 'वर्ग-संघर्ष के मद्धिम पड़ने का सिद्धान्त' भी गढ़ डाला। इस सिद्धान्त के आधार पर, उनका कहना था कि पूँजीवादी तत्वों के खिलाफ समाजवाद की हर विजय से वर्ग-संघर्ष मद्धिम पड़ता जायेगा, जल्द ही वर्ग-संघर्ष बिल्कुल ठण्डा पड़ जायेगा और वर्ग-शत्रु अपनी तमाम जगहें बिना लड़े ही छोड़ देगा, और इसलिए कुलक-विरोधी मुहिम की जरूरत न थी। इस तरह उन्होंने अपने नंगे-बूचे पूँजीवादी सिद्धान्त को फिर सजाने की कोशिश की कि कुलक शान्तिमय उपायों से आगे बढ़ते हुए समाजवाद में पहुँच जायेंगे। लेनिनवाद की इस सुपरिचित सैद्धान्तिक स्थापना को वे कुचलते गये कि जैसे-जैसे समाजवाद की प्रगति से वर्ग-शत्रु के पैरों के नीचे से जमीन खिसकेगी, वैसे-वैसे वर्ग-शत्रु का विरोध और तीव्र रूप धारण करता जायेगा और वर्ग-संघर्ष तभी 'ठण्डा' पड़ेगा जब वर्ग-शत्रु का नाश कर दिया जायेगा।

यह देखना आसान है कि बुखारिन-राइकोव गुट के रूप में पार्टी के सामने एक दक्षिणपंथी अवसरवादियों का गुट था। यह गुट त्रात्स्कीवादियों और जिनोवियेवपंथियों के गुट से सिर्फ देखने में ही भिन्न था, सिर्फ इस बात में भिन्न था कि त्रात्स्कीवादी और जिनोवियेवपंथी समर्पणवादियों को 'स्थायी क्रान्ति के बारे में' वामपंथी क्रान्तिकारी लफ्फाजी से अपनी असलियत छिपाने का थोड़ा अवसर मिला था, जबकि बुखारिन-राइकोव गुट जो कुलक-विरोधी मुहिम के लिए पार्टी पर हमला करता था, अपना समर्पणवादी रूप छिपा न सकता था और उसे हमारे देश की प्रतिक्रियावादी शक्तियों, खास तौर से कुलकों की हिमायत खुलकर, बिना नकाब या पर्दे के करनी पड़ती थी।

पार्टी समझ गयी कि बुखारिन-राइकोव गुट पार्टी-विरोधी संयुक्त कार्रवाई के लिए त्रात्स्कीवादियों और जिनोवियेवपंथियों के गुट के बचे-खुचे लोगों से जरूर आगे-पीछे मिल जायेगा।

अपनी राजनीतिक विज्ञप्तियों के साथ-साथ, बुखारिन-राइकोव गुट अपने अनुयायियों को बटोरने और संगठित करने का 'काम करता रहा'। बुखारिन के जरिये, उन्होंने नये पूँजीवादी लोगों को इकठ्ठा किया, जैसे कि स्लेपकोव, मेरित्स्की, आइखिनवाल्ड, गोल्डनबर्ग; तोम्स्की के जरिये, मजदूर सभाओं के ऊँचे नौकरशाहों को इकट्ठा किया (मेलूनीचान्स्की, दोगादोव, वगैरह); राइकोव के जरिये, ऊँचे पस्त सोवियत कर्मचारियों को इकट्ठा किया (अ. स्मिर्नोव, आइसमोन्त, ब. शिमत, वगैरह)। इस गुट की तरफ वे लोग आसानी से खिंच आये जिनका राजनीतिक रूप से पतन हो गया था और जो अपनी समर्पणवादी भावना को छिपाते न थे।

लगभग इसी समय, बुखारिन-राइकोव गुट को मास्को पार्टी-संगठन के ऊँचे कार्यकर्ताओं का समर्थन मिल गया था (उगलानोव, कोतोव, ऊखानोव, रियूतिन, यागोदा, पलोन्स्की, वगैरह)। दक्षिणपंथियों का एक हिस्सा आड़ में रहा और उसने पार्टी नीति पर खुला हमला न किया। मास्को के पार्टी-प्रेस और पार्टी मीटिंगों में, कहा जाता था कि कुलकों के साथ रियायतें तो करनी ही चाहिए, कुलकों पर भारी टैक्स लगाना उचित नहीं है, औद्योगीकरण जनता के लिए बोझ बन रहा है और भारी उद्योग-धन्धों का निर्माण असामयिक है। उगलानोव

ने दूनीपर पन-बिजली योजना का विरोध किया और माँग की कि भारी उद्योग-धन्धों से पैसा हटा कर हल्के उद्योग-धन्धों में लगाया जाये। उगलानोव और दूसरे दक्षिणपंथी समर्पणवादियों का कहना था कि मास्को हल्के उद्योग-धन्धों का शहर रहा है और रहेगा, और मास्को में इंजीनियरिंग के कारखाने बनाना जरूरी नहीं है।

मास्को पार्टी-संगठन ने उगलानोव और उसके अनुयायियों का पर्दाफाश किया, उन्हें अन्तिम चेतावनी दी और पार्टी की केन्द्रीय समिति के चारों और पहले से भी ज्यादा निकट खिंच आया। 1928 में, सो.सं.क.पा. (बो.) की मास्को-कमेटी की प्लेनरी बैठक में, कामरेड स्तालिन ने कहा कि दो मोर्चों पर लड़ाई चलानी चाहिए और मुख्य वार दक्षिणपंथी भटकाव पर होना चाहिए। कामरेड स्तालिन ने कहा कि पार्टी के अन्दर दक्षिणपंथी कुलकों के दलाल हैं।

कामरेड स्तालिन ने कहा था :

> "हमारी पार्टी में दक्षिणपंथी भटकाव की जीत से पूँजीवाद की शक्तियों को छूट मिलेगी, सर्वहारा की क्रान्तिकारी जगहें कमजोर पड़ जायेंगी और हमारे देश में पूँजीवाद को बहाल करने का अवसर बढ़ जायेगा।" (स्तालिन, **लेनिनवाद की समस्याएँ**, अं.सं, मास्को, 1947, पृ. 233)।

1929 के आरम्भ में, पता लगा कि दक्षिणपंथी समर्पणवादियों की आज्ञा से बुखारिन ने कामेनेव के जरिये त्रात्स्कीवादियों से साँठगाँठ की है और पार्टी के खिलाफ संयुक्त लड़ाई चलाने के लिए उनसे समझौते की बातचीत कर रहा है। केन्द्रीय समिति ने दक्षिणपंथी समर्पणवादियों को मुजरिमाना हरकतों का पर्दाफाश किया और उन्हें चेतावनी दी कि बुखारिन, राइकोव, तोम्स्की, वगैरह के लिये इसका शोचनीय परिणाम हो सकता है। लेकिन, दक्षिणपंथी समर्पणवादी चेतावनी सुनने के लिए तैयार न थे। केन्द्रीय समिति की एक बैठक में, एक घोषणा के रूप में उन्होंने नई पार्टी-विरोधी नीति रखी, जिसका केन्द्रीय समिति ने खण्डन किया। उसने उन्हें फिर चेतावनी दी और याद दिलाया कि त्रात्स्कीवादियों और जिनोवियेवपंथियों के गुट का हश्र क्या हुआ। इसके बावजूद, बुखारिन-राइकोव गुट अपनी पार्टी-विरोधी कार्रवाई में लगा ही रहा। राइकोव, तोम्स्की और बुखारिन ने केन्द्रीय समिति को अपने इस्तीफे दे दिये। उन्हें उम्मीद थी कि वे इस तरह पार्टी को डरा देंगे। केन्द्रीय समिति ने इस्तीफे देने की इस तोड़-फोड़ वाली नीति की निन्दा की। अन्त में, नवम्बर 1929 में, केन्द्रीय समिति के प्लेनम ने घोषित किया कि दक्षिणपंथी अवसरवादियों के मत के प्रचार के साथ पार्टी सदस्यता नहीं चल सकती। उसने फैसला किया कि दक्षिणपंथी समर्पणवादियों को उकसानेवाले और उनके नेता बुखारिन को केन्द्रीय समिति की पोलिटिकल ब्यूरो से निकाल दिया जाये और उसने राइकोव, तोम्स्की और दक्षिणपंथी विरोधी दल के दूसरे सदस्यों को गम्भीर चेतावनी दी।

यह देखकर कि मामला बिगड़ रहा है, दक्षिणपंथी समर्पणवादियों के सरदारों ने एक बयान दिया, जिसमें उन्होंने अपनी भूलें स्वीकार कीं और पार्टी की राजनीतिक नीति को सही माना। दक्षिणपंथी समर्पणवादियों ने तय किया कि कुछ समय के लिए पीछे हटें, जिससे

अपनी कतारों को टूटकर बिखरने से बचाया जा सके।

दक्षिणपंथी समर्पणवादियों के खिलाफ पार्टी की लड़ाई की पहली मंजिल यहाँ समाप्त हुई।

पार्टी के भीतर के नये मतभेद सोवियत संघ के बाहरी दुश्मनों का ध्यान खींचे बिना न रहे। यह समझ कर कि पार्टी के अन्दर 'नये मतभेद' उसकी कमजोरी का चिह्न हैं, उन्होंने सोवियत संघ को फिर युद्ध में उलझाने की कोशिश की और औद्योगीकरण का काम पूरी तरह चालू हो जाने से पहले ही उसे रोकने की कोशिश की। 1929 की गर्मियों में, साम्राज्यवादियों ने चीन और सोवियत संघ के बीच झगड़ा पैदा करा दिया और चीनी पूर्वी रेलवे पर (जो सोवियत संघ की थी) कब्जा करने के लिए चीन के फौजी सरदारों को भड़काया और हमारे सुदूर पूर्वी सीमान्त पर चीनी गद्दारों की फौजों को हमला करने के लिए उकसाया। लेकिन, चीन के फौजी सरदारों का यह हमला तुरन्त ही कुचल दिया गया। लाल फौज से खदेड़े जाकर, फौजी सरदार पीछे हटे और संघर्ष का अन्त मंचूरिया के अधिकारियों के साथ शान्ति-सन्धि पर दस्तखत करने में हुआ।

सभी अड़चनों के सामने, बाहरी शत्रुओं की साजिशों और पार्टी के भीतर मतभेदों के बावजूद, सोवियत संघ की शान्ति की नीति फिर विजयी हुई।

इसके बाद शीघ्र ही, ब्रिटेन से सोवियत संघ के व्यापारिक और कूटनीतिक सम्बन्ध फिर कायम हो गये, जिन्हें अंग्रेज कंजरवेटिवों ने तोड़ दिया था।

देशी और विदेशी दुश्मनों के हमलों को सफलता से विफल करते हुए, पार्टी भारी उद्योग-धन्धों को विकसित करने में, समाजवादी प्रतियोगिता संगठित करने में, सरकारी और सामूहिक खेतों के निर्माण में और अन्त में राष्ट्रीय अर्थतंत्र के विकास के लिये पहली पंचवर्षीय योजना को मंजूर करने और उसे अमल में लाने के लिए जमीन तैयार करने में जोरशोर से लगी हुई थी।

अप्रैल 1929 में, पार्टी की सोलहवीं कान्फ्रेंस हुई, जिसमें विचार करने के लिए मुख्य एजेण्डा पहली पंचवर्षीय योजना थी। कान्फ्रेंस ने पहली पंचवर्षीय योजना के दक्षिणपंथी अवसरवादियों द्वारा समर्थित 'अल्पतम' रूप को ठुकरा दिया और 'महत्तम रूप' को मंजूर किया, जिसे हर हालत में मान्य समझा गया।

इस तरह, पार्टी ने समाजवाद के निर्माण के लिये प्रसिद्ध पहली पंचवर्षीय योजना स्वीकार की।

पंचवर्षीय योजना ने तय किया कि 1928-33 की अवधि में 64 अरब 60 करोड़ रूबल पूँजी राष्ट्रीय अर्थतंत्र में लगायी जाये। इस धन में से, 19 अरब 50 अरब रूबल उद्योग-धन्धों और बिजली के विकास में लगाने थे, 10 अरब रूबल यातायात के साधनों के विकास में, और 23 अरब 20 करोड़ रूबल खेती के विकास में लगाने थे।

सोवियत संघ के उद्योग-धन्धों और खेती को आधुनिक कौशल से लैस करने के लिये, यह एक भगीरथ योजना थी।

कामरेड स्तालिन ने कहा था :

“पंचवर्षीय योजना का बुनियादी काम यह है कि हमारे देश में ऐसे उद्योग-धन्धों का निर्माण करे जो समाजवाद के आधार पर न सिर्फ तमाम उद्योग-धन्धों को ही फिर से सुसज्जित और संगठित करें, बल्कि यातायात और खेती को भी सुसज्जित और पुनर्संगठित करें।” (स्तालिन, **लेनिनवाद की समस्याएँ**, अं. सं., मास्को, 1947, पृष्ठ 397)।

इस योजना की विशालता से बोल्शेविक चकित या विचलित न हुए। औद्योगीकरण और सामूहिकीकरण की तमाम प्रगति ने उसके लिये रास्ता तैयार किया था, और उससे पहले श्रमसम्बन्धी उत्साह की एक लहर आयी थी, जिसने मजदूरों और किसानों को अपने में समेट लिया था और जो समाजवादी होड़ के रूप में प्रकट हुई थी।

सोलहवीं पार्टी कान्फ्रेंस ने तमाम श्रमिक जनता के नाम एक अपील मंजूर की, जिसमें समाजवादी होड़ को और बढ़ाने के लिए बुलावा दिया गया।

समाजवादी होड़ ने आदर्श मेहनत और श्रम की तरफ एक नये रुख की बहुत सी मिसालें पैदा कीं। बहुत से कारखानों, सामूहिक खेतों और सरकारी खेतों में मजदूरों और सामूहिक किसानों ने अपनी प्रतियोजनाएँ बनायीं, जिनमें सरकारी योजनाओं में दी हुई पैदावार से ज्यादा पैदावार का लक्ष्य रखा गया। उन्होंने मेहनत में वीरता दिखाई। पार्टी और सरकार ने समाजवादी विकास के लिये जो योजनाएँ बनायी थीं उनको उन्होंने पूरा ही न किया, बल्कि उनसे आगे भी बढ़ गये। श्रम की तरफ रुख बदल गया था। पूँजीवाद में मेहनत बेगार और कैद की तरह थी। उसके बदले, अब मेहनत करना “सम्मान की बात थी, गौरव की बात थी, शूरता और वीरता की बात थी”। (**स्तालिन**)।

तमाम देश में एक विराट पैमाने पर नया औद्योगिक निर्माण चल रहा था। दूनीपर की पन-बिजली योजना पूरे जोरों पर थी। क्रामातोर्स्क और गोरलोव्का के लोहे और इस्पात के कारखानों को बनाने और लुगान्स्क के मोटर के कारखानों को फिर से बनाने का काम दोन-प्रदेश में शुरू हो गया था। कोयले की नयी खानें और नये ढलाईघर बन गये थे। यूराल में, यूराल मशीन बिल्डिंग कारखाने और वेदेज्निकी और सोलिकाम्स्क के रसायन के कारखाने बनाये जा रहे थे। मागनितोगोर्स्क की लोहे और इस्पात की मिलों के निर्माण का काम शुरू हो गया था। मास्को और गोर्की में बड़े मोटर के कारखाने बनाने का काम अच्छी तरह चालू हो गया था। दोन नदी के तट पर रोस्तोव में विशाल ट्रैक्टर के कारखाने, हारवेस्टर कम्बाइन के कारखाने और खेती की मशीनें बनाने के एक विराट कारखाने के निर्माण का काम भी अच्छी तरह चालू हो गया था। सोवियत संघ को कोयला देने वाली दूसरे नम्बर की कुज्नेत्स्क खानों का भी विस्तार किया जा रहा था। ग्यारह महीनों में ही, स्तालिनग्राद के पास के मैदानों में ट्रैक्टर के विशाल कारखाने खड़े हो गये। दूनीपर पन-बिजली स्टेशन और स्तालिनग्राद के कारखाने बनाने में, मजदूरों ने श्रम की उत्पादकता के विश्व-रिकार्ड तोड़ दिये।

ऐसे विराट पैमाने पर औद्योगिक निर्माण, नये विकास के लिये ऐसा उत्साह, करोड़ों मजदूरों में ऐसी श्रम-सम्बन्धी वीरता इतिहास के लिये अनूठी थी।

यह दरअसल श्रम-सम्बन्धी उत्साह की उठान थी, जिसे समाजवादी होड़ ने पैदा किया

और बढ़ावा दिया था।

इस बार, किसान मजदूरों से पीछे न रहे। देहातों में भी यह श्रम-सम्बन्धी उत्साह आम किसानों में फैल गया, जो अपने सामूहिक खेत संगठित कर रहे थे। आम किसान जनता निश्चित रूप से सामूहिक खेती की तरफ बढ़ने लगी। इसमें सरकारी खेतों और मशीन और ट्रैक्टर स्टेशनों ने बड़ी भूमिका निभायी। झुण्ड के झुण्ड किसान सरकारी खेतों और मशीन और ट्रैक्टर स्टेशनों में इसलिए आते थे कि ट्रैक्टर और खेती की दूसरी मशीनों का चलना देखें, वे उनके चलने की तारीफ करते थे और वहीं पर और उसी समय वे फैसला करते थे : 'आओ, हम भी सामूहिक खेती में शामिल हों।' किसान अभी तक अलग-थलग और बिखरे हुए थे। हरेक अपने छोटे से, टुकड़ों जैसे खेत पर अकेले काम करता था। उनके पास काम देने वाले औजार या ट्रैक्टरों जैसी चीजें थी ही नहीं। नयी धरती को जोतने-बोने के लिये, उनके पास कोई साधन न था। अपने खेतों को उन्नत करने के लिये कोई सम्भावना न दिखाई देती थी। गरीबी से वे तबाह थे, और अकेल पड़ कर किसी तरह अपनी तरकीबों से काम लेते थे। आखिर, किसानों को बाहर निकलने का रास्ता मिल गया था, एक सुन्दर जीवन की राह मिल गयी थी। वह राह यह थी कि वे अपने छोटे खेतों को मिलाकर सहकारी योजनाएँ, सामूहिक खेत चलायें। उन्हें ट्रैक्टर मिल गये, जो अब किसी भी 'कठोर भूमि', किसी भी नयी धरती को तोड़ सकते थे। अब उन्हें राज्य से मशीन, धन, जन और सलाह के रूप में मदद मिलती थी। उन्हें अब कुलक-गुलामी से मुक्त होने का अवसर मिला था। सोवियत सरकार ने अभी हाल में कुलकों को हरा दिया था और उन्हें धूल चाटने पर मजबूर किया था, जिससे लाखों किसानों को खुशी हुई।

इसी आधार पर, सामूहिक खेती का सामूहिक आन्दोलन शुरू हुआ जो आगे चलकर, खास तौर से 1929 के खत्म होते-होते, तेजी से आगे बढ़ा। उसकी रफ्तार अभूतपूर्व थी, और हमारे समाजवादी उद्योग-धन्धों के लिये भी नयी थी।

1928 में, सामूहिक खेतों की काश्त का पूरा इलाका 13,90,000 हेक्टेयर था; 1929 में वह 42,62000 हेक्टेयर हुआ, और 1930 में सामूहिक खेतों की ही जोती जाने वाली जमीन की योजना में 1,50,000000 हेक्टेयर जमीन आ चुकी थी।

"महान परिवर्तन का एक वर्ष" (1929) नाम के अपने लेख में, कामरेड स्तालिन ने सामूहिक खेतों की बढ़ोत्तरी की रफ्तार के सिलसिले में कहा था :

> "मानना होगा कि विकास का ऐसा प्रबल वेग हमारे अपने समाज की सम्पत्ति बने हुए बड़े पैमाने के उद्योग-धन्धों के लिये भी अभूतपूर्व है, जो आम तौर से विकास की अपने विशेष गति के लिये प्रसिद्ध है।"

सामूहिक खेती के आन्दोलन की प्रगति में यह एक मोड़ थी।

यह सामूहिक खेतों के सामूहिक आन्दोलन की शुरुआत थी।

'महान परिवर्तन का एक वर्ष' नाम के अपने लेख में, कामरेड स्तालिन ने पूछाः

> "मौजूदा सामूहिक खेती के आन्दोलन की नयी विशेषता क्या है?"

> और, उन्होंने जवाब दिया :

"मौजूदा सामूहिक खेती के आन्दोलन की नयी और निर्णायक विशेषता यह है कि किसान सामूहिक खेतों में अलग-थलग गुटों में शामिल नहीं हो रहे, जैसा कि पहले होता था, बल्कि समूचे गाँवों में, समूचे वोलोस्तों (देहाती मण्डलों), तमाम जिलों और समूचे प्रदेशों तक में एक साथ शामिल हो रहे हैं। इसका मतलब क्या है? इसका मतलब यह है कि मध्यम किसान सामूहिक खेती के आन्दोलन में शामिल हो गया है! और, खेती के विकास में बुनियादी तब्दीली का यही आधार है जो सोवियत सत्ता की सबसे महत्त्वपूर्ण सफलता है।..."

इसका मतलब यह था कि समय आ रहा था, या आ ही गया था, जबकि ठोस सामूहिकीकरण के आधार पर एक वर्ग रूप में कुलकों को खत्म कर दिया जाये।

सारांश

1926-'29 के दौर में, देश के समाजवादी औद्योगीकरण के लिये संघर्ष में देशी और विदेशी मोर्चों पर पार्टी ने महान कठिनाइयों का सामना किया और उन पर विजय प्राप्त की। पार्टी और मजदूर वर्ग की कोशिशों का अन्त समाजवादी औद्योगीकरण की नीति की विजय में हुआ।

मुख्य रूप से, औद्योगीकरण की एक बहुत ही कठिन समस्या, यानी भारी उद्योग-धन्धों के निर्माण के लिये धन इकट्ठा करने की समस्या हल की जा चुकी थी। समूचे राष्ट्रीय अर्थतंत्र को फिर से सुसज्जित कर सकने योग्य भारी उद्योग-धन्धों की नींव डाल दी गयी।

समाजवादी निर्माण की पहली पंचवर्षीय योजना स्वीकृत हुई। नये कारखानों, सरकारी और सामूहिक खेतों के निर्माण का काम बहुत बड़े पैमाने पर बढ़ा।

समाजवाद की ओर इस प्रगति के साथ, देहातों में वर्ग-संघर्ष तीखा हुआ, और पार्टी का अन्दरूनी संघर्ष भी तेज हुआ। इस संघर्ष के मुख्य नतीजे ये थे : कुलक-विरोध दबा दिया गया, त्रात्स्कीवादी और जिनोवियेवपंथी समर्पणवादियों के गुट का भण्डाफोड़ हो गया कि वह सोवियत-विरोधी गुट है, दक्षिणपंथी समर्पणवादियों का पर्दाफाश हुआ कि वे कुलकों के दलाल हैं, त्रात्स्कीवादी पार्टी से निकाल दिये गये और यह घोषित किया गया कि त्रात्स्कीवादियों और दक्षिणपंथी अवसरवादियों के मत सो.सं.क.पा. (बो.) की सदस्यता के साथ नहीं चल सकते।

बोल्शेविक पार्टी द्वारा सैद्धान्तिक रूप से हराये जाकर और मजदूर वर्ग में पूरी तरह समर्थन खोकर, त्रात्स्कीवादी एक राजनीतिक रुझान न रह गये। वे राजनीतिक धोखेबाजों का सिद्धान्तहीन, कमाऊ-खाऊ गिरोह, राजनीतिक दगाबाजों का गिरोह भर रह गये।

भारी उद्योग-धन्धों की नींव डालने के बाद, पार्टी ने सोवियत संघ के समाजवादी पुनर्संगठन की पहली पंचवर्षीय योजना को पूरी करने के लिये मजदूर वर्ग और किसानों को बटोरा। समूचे देश में, करोड़ों श्रमिक जनता के अन्दर समाजवादी होड़ बढ़ी, जिससे श्रम-सम्बन्धी उत्साह की एक विशाल लहर पैदा हुई और श्रम-सम्बन्धी नये अनुशासन का जन्म हुआ।

इस दौर का अन्त महान परिवर्तन के वर्ष से हुआ। उस साल की विशेषता यह थी कि उद्योग-धन्धों में समाजवाद की भारी जीत हुई, खेती में पहली महत्त्वपूर्ण सफलताएँ मिलीं, मध्यम किसान सामूहिक खेतों की तरफ झुका और सामूहिक खेती के सामूहिक आन्दोलन की शुरुआत हुई।

ग्यारहवाँ अध्याय

खेती के सामूहिकीकरण के लिए संघर्ष में बोल्शेविक पार्टी

(1930-1934)

1. 1930-34 में अन्तरराष्ट्रीय परिस्थिति। पूँजीवादी देशों में आर्थिक संकट। जापान का मंचूरिया हड़पना। जर्मनी में राज्यसत्ता पर फासिस्ट अधिकार। युद्ध के दो केन्द्र।

सोवियत संघ में देश के समाजवादी औद्योगीकरण में महत्त्वपूर्ण प्रगति हुई थी और उद्योग-धन्धे तेजी से आगे बढ़ रहे थे। उधर पूँजीवादी देशों पर 1929 के अन्त में एक अभूतपूर्व पैमाने पर सत्यानाशी विश्व आर्थिक संकट फट पड़ा और अगले तीन वर्षों में बराबर तीव्र होता गया। उद्योग-धन्धों का संकट खेती के संकट के साथ मिला हुआ था, जिससे कि पूँजीवादी देशों की हालत और भी खराब हो गयी।

1930-33 में, आर्थिक संकट के इन तीन वर्षों में, अमरीका की औद्योगिक पैदावार घट कर 65 फीसदी रह गयी; ब्रिटेन की 86 फीसदी, जर्मनी की 66 फीसदी और फ्रांस की 77 फीसदी रह गयी। पैदावार की यह फीसदी कमी 1929 की तुलना में थी। लेकिन, इसी बीच सोवियत संघ की औद्योगिक पैदावार दुगुनी से ज्यादा हो गयी, और 1929 से 1933 में 201 फीसदी बढ़ गयी। समाजवादी आर्थिक व्यवस्था पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था से श्रेष्ठ है, उसका यह एक और सबूत था। इससे पता लगता था कि संसार में समाजवाद का देश ही ऐसा देश है जो आर्थिक संकटों से मुक्त है।

विश्व आर्थिक संकट ने 2 करोड़ 40 लाख बेकारों को भुखमरी, गरीबी और तबाही का शिकार बना दिया। खेती के संकट से लाखों किसान मुसीबत में पड़ गये।

विश्व आर्थिक संकट से साम्राज्यवादी देशों का अन्तरविरोध बढ़ गया, विजेता और विजित देशों का विरोध, साम्राज्यवादी जागीरों और उपनिवेशों और पराधीन देशों का विरोध, मजदूरों और पूँजीपतियों का विरोध, किसानों और जमीन्दारों का विरोध और बढ़ गया।

सोलहवीं पार्टी कांग्रेस में केन्द्रीय समिति की ओर से रिपोर्ट देते हुए, कामरेड स्तालिन ने बताया कि पूँजीपति आर्थिक संकट से निकलने के लिये एक तरफ तो फासिस्ट तानाशाही कायम करेंगे, मजदूर वर्ग को कुचलने की कोशिश करेंगे, यानी सबसे प्रतिक्रियावादी, घोर अन्धराष्ट्रवादी, सबसे साम्राज्यवादी पूँजीपतियों की तानाशाही कायम करने की कोशिश करेंगे, और दूसरी तरफ अरक्षित देशों की बलि देकर उपनिवेशों और प्रभाव-क्षेत्रों का फिर से बँटवारा करने के लिये युद्ध भड़काने की कोशिश करेंगे।

ठीक यही हुआ भी।

1932 में, जापान ने युद्ध के खतरे को बढ़ा दिया। यह देखकर कि आर्थिक संकट की वजह से यूरोप के राज्य और संयुक्त राष्ट्र अमरीका अपने घरेलू मामलों में पूरी तरह उलझे हुए हैं, जापानी साम्राज्यवादियों ने तय किया कि इस मौके से लाभ उठायें और अरक्षित चीन पर दबाव डालें, जिससे कि उसे जीत सकें और वहाँ जाकर राज करें। 'स्थानीय घटनायें' जिन्हें जापानी साम्राज्यवादियों ने ही भड़काया था, बेइमानी से उनसे फायदा उठाते हुए, डाकुओं की तरह चीन से युद्ध का ऐलान किये बिना, उन्होंने अपनी फौजें मंचूरिया में भेज दी। जापानी सैनिकों ने तमाम मंचूरिया पर अधिकार कर लिया और इस तरह वहाँ एक सुविधाजनक फौजी अड्डा बना लिया, जहाँ से वे उत्तरी चीन को जीत सकें और सोवियत संघ पर हमला कर सकें। अपने हाथ खुले रखने के लिये, जापान लीग ऑफ नेशन्स से निकल आया और बड़ी सरगर्मी से हथियारबन्दी करने लगा।

इससे अमरीका, ब्रिटेन और फ्रांस को सुदूर पूर्व में अपनी जल-सेना को मजबूत करने की प्रेरणा मिली। स्पष्ट था कि जापान चीन को जीतना चाहता है और उस देश से यूरोप और अमरीका की साम्राज्यवादी ताकतों को निकालना चाहता है। इसका जवाब उन्होंने अपनी हथियारबन्दी बढ़ाकर दिया।

लेकिन, जापान का एक और उद्देश्य भी था यानी सोवियत सुदूर पूर्व पर कब्जा करना। स्वाभाविक था कि सोवियत संघ इस खतरे की तरफ आँखें बन्द न कर सकता था और वह अपने सुदूरपूर्वी राज्य की सुरक्षा को जोरों से दृढ़ करने लगा।

इस तरह सुदूर पूर्व में एक जापानी फासिस्ट की बदौलत पहला युद्ध केन्द्र बना।

लेकिन, आर्थिक संकट ने सुदूर पूर्व में ही पूँजीवाद के अन्तरविरोधों को न बढ़ाया; उसने उन्हें यूरोप में भी बढ़ाया। उद्योग-धन्धों और खेती के लम्बे संकट ने, भारी बेकारी ने और गरीब वर्गों की रोजी का दिन पर दिन ठिकना न रहने से, मजदूरों और किसानों का असन्तोष बढ़ता गया। मजदूर वर्ग के असन्तोष ने क्रान्तिकारी विरोध का रूप लिया। यह बात खास तौर से जर्मनी में हुई, जो आर्थिक रूप से युद्ध से, अंग्रेज और फ्रांसीसी विजेताओं को हर्जाना देने से और आर्थिक संकट से चूर हो गया था। जर्मन मजदूर वर्ग दुहरी गुलामी में तड़प रहा था, देशी और विदेशी, अंग्रेज और फ्रांसीसी पूँजीपतियों की गुलामी में। यह असन्तोष कितना बढ़ गया था, यह इस बात से साफ जाहिर होता था कि सत्ता पर फासिस्ट अधिकार होने से पहले पिछले राइखस्टाग के चुनाव में जर्मन कम्युनिस्ट पार्टी को 60 लाख वोट मिले थे। जर्मन पूँजीपतियों ने देखा कि जर्मनी में जो

पूँजीवादी स्वाधीनता कायम है, उससे उनका नुकसान हो सकता है और मजदूर वर्ग क्रान्तिकारी आन्दोलन को बढ़ाने के लिये इस स्वाधीनता का उपयोग कर सकता है। इसलिए, उन्होंने फैसला किया कि जर्मनी में पूँजीपतियों की सत्ता बनाये रखने का एक ही तरीका है और वह यह कि पूँजीवादी स्वाधीनता खत्म कर दी जाये, राइखस्टाग को शून्य के बराबर कर दिया जाये, और एक आतंकवादी-राष्ट्रवादी तानाशाही कायम की जाये, जो मजदूर वर्ग का दमन कर सके और उन निम्न-पूँजीवादियों को अपना आधार बनाये जो युद्ध में जर्मनी की हार का बदला लेना चाहते थे। और इसलिए, उन्होंने फासिस्ट पार्टी को सत्ता सौंपी। जनता को धोखा देने के लिये, यह पार्टी अपने को ***राष्ट्रीय समाजवादी*** पार्टी कहती थी। पूँजीपति अच्छी तरह जानते थे कि फासिस्ट पार्टी सबसे पहले उन साम्राज्यवादी पूँजीपतियों की प्रतिनिधि है जो सबसे प्रतिक्रियावादी और मजदूर वर्ग से सबसे ज्यादा शत्रु-भाव रखने वाले हैं। दूसरे, वे जानते थे कि बदला लेनेवालों की यह सबसे खुली पार्टी है जो लाखों राष्ट्रवादी रुझान रखने वाले मध्यवित्त लोगों को बरगला सकती है। इस काम में, मजदूर वर्ग से गद्दारी करने वालों, जर्मन सामाजिक-जनवादी पार्टी के नेताओं ने उनकी मदद की और अपनी समझौते की नीति से फासिस्टवाद का रास्ता साफ कर दिया।

ऐसी ही परिस्थिति में, जर्मन फासिस्ट 1933 में सत्तारूढ़ हो सके।

17वीं पार्टी कांग्रेस को अपनी रिपोर्ट देते हुए, कामरेड स्तालिन ने जर्मनी की घटनाओं का विश्लेषण करते हुए कहा था :

> "जर्मनी में फासिस्टवाद की जीत को मजदूर वर्ग की कमजोरी का चिह्न और सामाजिक-जनवादी पार्टी द्वारा, जिसने फासिस्टवाद का रास्ता साफ किया, मजदूर वर्ग के प्रति विश्वासघात का नतीजा ही न समझना चाहिए। उसे पूँजीपतियों की कमजोरी का चिह्न भी समझना चाहिये। उसे इस बात का चिह्न भी समझना चाहिये कि पूँजीपति अब संसदशाही और पूँजीवादी जनतंत्र के पुराने तरीकों से राज्य नहीं कर सकते थे, इसलिए उन्हें अपनी घरेलू नीति में राज करने के आतंकवादी तरीकों से काम लेना पड़ता है.... ।" (स्तालिन, **लेनिनवाद की समस्याएँ**, अं.सं., मास्को, 1947, पृष्ठ 461)।

जर्मन फासिस्टों ने राइखस्टाग में आग लगाकर, निर्दयता से मजदूर वर्ग का दमन करके, उसके संगठन तोड़कर और पूँजीवादी-जनवादी स्वाधीनता खत्म करके, अपनी घरेलू नीति का श्रीगणेश किया। उन्होंने लीग ऑफ नेशंस से हटकर और यूरोप के राज्यों के सीमान्तों को जर्मनी के हित में बलपूर्वक संशोधित करने के लिये सरेआम युद्ध की तैयारी करके, अपनी वैदेशिक नीति का श्रीगणेश किया।

इस तरह, मध्य यूरोप में जर्मन फासिस्टों की बदौलत दूसरा युद्ध-केन्द्र बना।

यह स्वाभाविक था कि सोवियत संघ ऐसी गम्भीर घटना की तरफ अपनी आँखें बन्द करके न रह सकता था। वह पश्चिम के घटना-क्रम को सावधानी से देखने और पश्चिमी सीमान्तों पर अपनी सुरक्षा को दृढ़ करने लगा।

2. कुलकों को नियंत्रित करने की नीति से, वर्ग रूप में कुलकों को खत्म करने की नीति की तरफ आना। सामूहिक खेती के आन्दोलन में पार्टी की नीति को तोड़ने-मरोड़ने के खिलाफ संघर्ष। तमाम मोर्चे पर पूँजीवादी तत्वों के खिलाफ हमला। सोलहवीं पार्टी कांग्रेस।

1929 और 1930 में, किसानों का सामूहिक रूप से सामूहिक खेतों में आना पार्टी और सरकार के तमाम पिछले काम का नतीजा था। समाजवादी उद्योग-धन्धे, जो खेती के लिये ट्रैक्टर और मशीनें सामूहिक पैमाने पर बनाने लगे थे, बढ़े। 1928 और 1929 में, गल्ला खरीदने के आन्दोलन के दौर में, कुलकों के खिलाफ जोरदार कदम उठाये गये। खेती की सहकारी समितियाँ, जिन्होंने धीरे-धीरे किसानों को सामूहिक खेती का आदी बनाया, फैलीं। पहले सामूहिक खेतों और सरकारी खेतों को अच्छी सफलताएँ मिलीं। इन सभी बातों से, दृढ़ सामूहिकीकरण के लिये रास्ता साफ हुआ जबकि समूचे गाँवों, जिलों और प्रदेशों के किसान सामूहिक खेतों में शामिल हुए।

दृढ़ सामूहिकीकरण कोई शान्तिमय सिलसिला न था। ऐसा नहीं होता था कि किसानों की बहुतायत सामूहिक खेतों में भर्ती होती चली जाती हो। यह कुलकों के खिलाफ आम किसान जनता का संघर्ष था। दृढ़ सामूहिकीकरण का मतलब था कि जिस गाँव के इलाकों में सामूहिक खेत बनता था, वहाँ की तमाम जमीन सामूहिक खेत की हो जाती थी। लेकिन, इस जमीन का काफी हिस्सा कुलकों के हाथ में होता था। इसलिए, किसान उनकी जमीन छीन लेते थे, खेतों से उन्हें भगा देते थे, उनके गाय-बैल और मशीनें ले लेते थे, और माँग करते थे कि उन्हें गिरफ्तार किया जाये और सोवियत अधिकारी उन्हें जिले से निकाल दें।

इसलिए, दृढ़ सामूहिकीकरण का मतलब था-कुलकों को खत्म करना।

दृढ़ सामूहिकीकरण के आधाार पर, यह वर्ग रूप में कुलकों को खत्म करने की नीति थी।

इस समय तक, सोवियत संघ के पास काफी मजबूत भौतिक आधार हो गया था जिससे कि कुलकों का खात्मा किया जा सके, उनका विरोध तोड़ा जा सके, वर्ग रूप में उन्हें खत्म किया जा सके और कुलक खेती की जगह सामूहिक और सरकारी खेती ले सके।

1927 में, कुलक 60 करोड़ पूड से ऊपर अनाज पैदा करते थे, जिसमें से 13 करोड़ पूड बिकाऊ होता था। उसी साल, सामूहिक और सरकारी खेतों से 3 करोड़ 50 लाख पूड ही बिकाऊ अनाज निकला। बोल्शेविक पार्टी ने सरकारी और सामूहिक खेतों को विकसित करने की दृढ़ नीति का पालन किया, और साथ ही ट्रैक्टरों और खेती की मशीनों से देहात की मदद करने में समाजवादी उद्योग-धन्धों ने प्रगति की। इन कारणों से, 1929 में, सामूहिक खेत और सरकारी खेत एक महत्त्वपूर्ण जगह बना चुके थे। उस साल, सामूहिक और सरकारी खेतों ने 40 करोड़ पूड से कम अनाज पैदा किया, जिनमें से 13 करोड़ पूड से ऊपर अनाज बेचा गया। 1927 में कुलकों ने जितना अनाज बेचा था, यह राशि उससे

ज्यादा थी। 1930 में, सामूहिक और सरकारी खेतों को बाजार के लिए 40 करोड़ पूड से ऊपर अनाज पैदा करना था, और सचमुच उन्होने इतना पैदा किया। 1927 में, कुलकों ने जितना बिकाऊ अनाज पैदा किया था, यह राशि उससे कहीं ज्यादा थी।

इस तरह, देश के आर्थिक जीवन में वर्ग-शक्तियों का परस्पर सम्बन्ध बदल गया। कुलकों के फालतू अनाज के बदले, सामूहिक और सरकारी खेतों की उपज से काम लेना जरूरी भौतिक आधार बन गया था। इसलिए, बोल्शेविक पार्टी कुलकों को नियंत्रित करने की नीति से एक नयी नीति, वर्ग रूप में उन्हें खत्म करने की नीति की तरफ बढ़ सकी। इस नयी नीति का आधार दृढ़ सामूहिकीकरण था।

1929 से पहले, सोवियत सत्ता कुलकों को नियंत्रित करने की नीति पर चलती थी। उसने कुलकों पर भारी टैक्स लगाये थे और उन्हें बाध्य किया था कि निश्चित भाव पर राज्य को अनाज बेचें। लगान पर जमीन उठाने के कानून से, उसने एक हद तक उठायी जाने वाली जमीन को नियंत्रित कर दिया था। निजी खेतों में किराये पर मजदूरी के बारे में कानून बनाकर, उसने कुलक खेतों को सीमित कर दिया था। लेकिन, सोवियत सरकार ने अभी कुलकों को खत्म करने की नीति शुरू न की थी। जमीन को उठाने और भाड़े पर मजदूरी कराने के कानून से, कुलक अपना काम कर सकते थे। उनकी सम्पत्ति जब्त करने के बारे में मनाही का कानून होने से, उन्हें इस तरफ से एक हद तक गारण्टी भी मिली हुई थी। इस नीति का फल यह हुआ कि कुलक वर्ग की बढ़ोत्तरी रुकी। उस वर्ग के कुछ हिस्से इन रोकों का दबाव न सह कर अपने धन्धे से अलग जा पड़े और तबाह हो गये। लेकिन, इस नीति ने वर्ग रूप में कुलकों की आर्थिक बुनियाद का नाश न किया था और न उनका खात्मा किया था। यह नीति उन्हें नियंत्रित करने की थी, न कि उन्हें खत्म करने की। यह नीति एक समय तक बहुत जरूरी थी, यानी तब तक जब तक कि सामूहिक और सरकारी खेत कमजोर थे और अनाज की पैदावार में कुलकों की जगह न ले सकते थे।

1929 के अन्त में, सामूहिक और सरकारी खेती की बढ़ोत्तरी होने के बाद, सोवियत सत्ता इस नीति से तेजी से मुड़ कर, कुलकों को खत्म करने की नीति, वर्ग रूप में उनका नाश करने की नीति की तरफ बढ़ी। उसने जमीन को उठाने और भाड़े पर मजदूरी कराने के कानून रद्द कर दिये, और इस तरह, कुलकों को जमीन और भाड़े के मजदूर दोनों से वंचित कर दिया। कुलकों की सम्पत्ति जब्त करने पर जो पाबन्दी लगी थी, वह उठा दी गयी। किसानों को सामूहिक खेतों के लाभ के लिये कुलकों के जानवर, मशीनें और खेत की दूसरी और सम्पत्ति जब्त करने की आज्ञा मिल गयी। कुलकों की सम्पत्ति जब्त कर ली गयी। उनकी सम्पत्ति वैसे ही जब्त की गयी जैसे 1918 में उद्योग-धन्धों के क्षेत्र में पूँजीपतियों की सम्पत्ति जब्त कर ली गयी थी। अन्तर इतना था कि कुलकों के पैदावार के साधन राज्य के हाथ में न आये, बल्कि सामूहिक खेती में मिले हुए किसानों के हाथ में गये।

यह एक गम्भीर क्रान्ति थी, समाज की पुरानी गुणात्मक दशा से एक नयी गुणात्मक दशा की तरफ छलाँग थी, जिसके परिणाम अक्टूबर 1917 की क्रान्ति जैसे ही थे।

इस क्रान्ति की अपनी विशेषता यह थी कि वह ऊपर से राज्य की पहलकदमी से की

गयी थी और लाखों किसानों ने नीचे से उसका सीधा समर्थन किया था। ये किसान कुलक-गुलामी से मुक्ति पाने के लिये लड़ रहे थे और सामूहिक खेतों में आजादी से रहना चाहते थे।

इस क्रान्ति ने एक ही वार में समाजवादी निर्माण की तीन मूल समस्याओं को हल कर दिया :

(क) उसने हमारे गाँवों के सबसे बहुसंख्यक शोषक वर्ग, पूँजीवाद को बहाल करने के मुख्य आधार, कुलक वर्ग को खत्म कर दिया;

(ख) उसने हमारे देश के सबसे बहुसंख्यक मेहनतकश वर्ग, किसान वर्ग को पूँजीवाद को पनपाने वाली व्यक्तिगत खेती की राह से सहकारी, सामूहिक, समाजवादी खेती की राह पर लगा दिया;

(ग) उसने सोवियत व्यवस्था को खेती में एक समाजवादी आधार दिया। खेती राष्ट्रीय अर्थतंत्र की सबसे बड़ी और बहुत ही आवश्यक, लेकिन सबसे कम विकसित शाखा थी।

उसने पूँजीवाद को बहाल करने के लिये देश के अन्तिम मुख्य आधार को खत्म कर दिया और साथ ही समाजवादी आर्थिक व्यवस्था रचने के लिये नयी और निर्णायक परिस्थितियाँ पैदा कर दीं।

वर्ग रूप में कुलकों को खत्म करने की नीति के कारणों की व्याख्या करते हुए और दृढ़ सामूहिकीकरण के लिये किसानों के सामूहिक आन्दोलन के नतीजों का सारांश देते हुए, कामरेड स्तालिन ने 1929 में लिखा था :

> "सभी देशों के पूँजीपति सोवियत संघ में पूँजीवाद को बहाल करने, 'व्यक्तिगत सम्पत्ति के पवित्र सिद्धान्त' को बहाल करने का सपना देख रहे हैं। उनकी अन्तिम आशा पर पानी फिर रहा है, और उनका सपना टूट रहा है। वे समझते थे कि पूँजीवाद के लिये जमीन में खाद का काम देने के लिये किसान हैं। वे ही किसान अब सामूहिक रूप से 'व्यक्तिगत सम्पत्ति' का प्रशंसित झण्डा छोड़ रहे हैं और सामूहिक खेती का रास्ता, समाजवाद का रास्ता अपना रहे हैं। पूँजीवाद को बहाल करने की अन्तिम आशा खत्म हो रही है।" (स्तालिन, **लेनिनवाद की समस्याएँ,** अं.सं., मास्को, 1947, पृष्ठ 298)।

5 जनवरी 1930 को, सो.सं.क.पा. (बो.) की केन्द्रीय समिति ने एक ऐतिहासिक प्रस्ताव पास किया-"सामूहिकीकरण की रफ्तार और सामूहिक खेतों के विकास में मदद देने के लिये सरकारी उपाय"। इस प्रस्ताव में, वर्ग रूप में कुलकों को खत्म करने की नीति रखी गयी थी। इस फैसले में, इस बात का पूरी तरह ध्यान रखा गया था कि सोवियत संघ के विभिन्न जिलों में हालत अलग-अलग है और विविध इलाके सामूहिकीकरण के लिये अलग-अलग सीमाओं तक तैयार हैं।

सामूहिकीकरण की अलग-अलग रफ्तारें कायम की गयीं। इस उद्देश्य के लिये, सो.सं. क.पा. (बो.) की केन्द्रीय समिति ने सोवियत संघ के इलाकों को तीन भागों में बाँट दिया।

पहले भाग में प्रमुख अनाज उपजाने वाले इलाके थे, यानी उत्तरी काकेशस (कुबान,

दोन और तेरेक), मध्य वोल्गा और निम्न वोल्गा, जो सामूहिकीकरण के लिये सबसे ज्यादा तैयार थे, क्योंकि उनके पास सबसे ज्यादा ट्रैक्टर थे, सबसे ज्यादा सरकारी खेत थे और पिछले गल्ला खरीदने के आन्दोलनों में कुलकों से लड़ने का उन्हें सबसे ज्यादा तर्जुबा था। केन्द्रीय समिति ने प्रस्ताव किया कि अनाज पैदा करने वाले प्रदेशों के इस भाग में सामूहिकीकरण मुख्य रूप से 1931 के वसन्त तक पूरा हो जाना चाहिए।

दूसरा भाग इन अनाज उपजाने वाले इलाकों का था-उक्रैन, काली मिट्टी का मध्य प्रदेश, साइबेरिया, यूराल, कजाकिस्तान, वगैरह। यहाँ पर मुख्य रूप से सामूहिकीकरण का काम 1932 के वसन्त तक पूरा हो सकता था।

दूसरे प्रदेश, मण्डल. और गणतंत्र (मास्को प्रदेश, ट्रांस-काकेशिया, मध्य एशियाई गणतंत्र, वगैरह) पंचवर्षीय योजना के अन्त तक, यानी 1933 तक सामूहिकीकरण का सिलसिला जारी रख सकते थे।

सामूहिकीकरण की बढ़ती हुई रफ्तार ध्यान में रखते हुए, पार्टी की केन्द्रीय समिति ने जरूरी समझा कि ट्रैक्टर हारवेस्टर कम्बाइन, ट्रैक्टर से खिंचने वाली मशीनें आदि बनाने वाले कारखानों के निर्माण का काम और तेज किया जाये। इसके साथ ही, केन्द्रीय समिति ने माँग की कि : "सामूहिक खेती के आन्दोलन की मौजूदा मंजिल में घोड़ों से काम लेने के महत्त्व को जो कम करके आँकने की प्रवृत्ति है और जिससे घोड़े बेतहाशा बेचे जा रहे थे या निकाले जा रहे थे, उसको दृढ़ता से रोका जाये।"

1929-'30 के लिये, मूल योजना में सामूहिक खेतों को जो सरकारी रकम उधार दी जाने वाली थी, वह दुगुनी (50 करोड़ रूबल) कर दी गयी।

सामूहिक खेतों की जमीन नापने और उसकी हदबन्दी का खर्च सरकार बर्दाश्त करती।

प्रस्ताव में एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण निर्देश यह था कि मौजूदा मंजिल में सामूहिक खेती के आन्दोलन का मुख्य रूप कृषि संघ ही होगा, जिनमें सिर्फ पैदावार के मुख्य साधनों का सामूहिकीकरण होता है।

केन्द्रीय समिति ने पार्टी-संगठनों को बहुत गम्भीर चेतावनी दी कि "वे ऊपर से 'आज्ञापत्र' निकाल कर, जबर्दस्ती सामूहिक खेती के आन्दोलन को बढ़ाने की कोई भी कोशिश न करें। इससे यह खतरा पैदा हो सकता था कि सामूहिक खेतों के संगठन में सच्ची समाजवादी होड़ के बदले नकली सामूहिकीकरण चालू हो जाये।" (**सो.सं.क.पा. (बो.) के प्रस्ताव,** रू.सं., भाग 2, पृष्ठ 662)।

इस प्रस्ताव में, केन्द्रीय समिति ने स्पष्ट कर दिया कि पार्टी की नयी नीति को देहातों में कैसे लागू करना चाहिए।

वर्ग रूप में कुलकों को खत्म करने और दृढ़ सामूहिकीकरण की नीति से, एक शक्तिशाली सामूहिक खेती के आन्दोलन को बढ़ावा मिला। समूचे गाँवों और जिलों के किसान सामूहिक खेती में शामिल हो गये। उन्होंने कुलकों को अपने रास्ते से खदेड़ दिया और कुलक गुलामी से अपने को मुक्त कर लिया।

सामूहिकीकरण की इस अपूर्व प्रगति के साथ-साथ, पार्टी के कार्यकर्ताओं के कुछ दोष, सामूहिक खेती के विकास में पार्टी की नीति को तोड़ने-मरोड़ने की बातें जल्द ही सामने

आयीं। हालाँकि केन्द्रीय समिति ने पार्टी के कार्यकर्ताओं को सावधान कर दिया था कि सामूहिकीकरण की सफलता से होश न खो बैठें, फिर भी उनमें से बहुत से नकली तौर पर सामूहिकीकरण की रफ्तार तेज करने लगे और उन्होंने देशकाल की परिस्थितियों का ध्यान न रखा और इस बात का विचार न किया कि किस हद तक किसान सामूहिक खेतों में शामिल होने के लिये तैयार हैं।

पता लगा कि स्वेच्छा से सामूहिक खेत बनाने का उसूल तोड़ा जा रहा है और कई जिलों में किसानों को यह धमकी देकर कि उनकी सम्पत्ति जब्त कर ली जायेगी, उनके अधिकार छीन लिये जायेंगे, वगैरह, जबर्दस्ती सामूहिक खेतों में भर्ती किया जा रहा है।

कई जिलों में, सामूहिकीकरण के बारे में पार्टी की नीति के बुनियादी उसूलों को धीरज के साथ समझाने और तैयारी का काम करने के बदले, ऊपर से नौकरशाही तरीके से हुक्मनामे भेजे जा रहे थे, सामूहिक खेत बनाने के बारे में अतिरंजित और झूठे आँकड़े दिये जा रहे थे और सामूहिकीकरण की औसत दर को नकली तौर से बढ़ा कर दिखाया जा रहा था।

हालाँकि केन्द्रीय समिति ने स्पष्ट कर दिया था कि सामूहिक खेती के आन्दोलन का मुख्य रूप कृषि संघ होना चाहिए, जिसमें सिर्फ पैदावार के मुख्य साधनों का सामूहिकीकरण होगा, फिर भी कई जगह कृषि संघ को लाँघने और सीधे कम्यून में पहुँच जाने की मूर्खतापूर्ण कोशिशें की गयीं। मकान, दूध देने वाली गायें, छोटे जानवर, मुर्गियाँ, वगैरह, जो बाजार के काम न आयी थीं, उन सबका सामूहिकीकरण हो गया था।

सामूहिकीकरण की प्राथमिक सफलता से बदहवास होकर, कई प्रदेशों के अधिकारियों ने सामूहिकीकरण की रफ्तार और मियाद के बारे में केन्द्रीय समिति की स्पष्ट आज्ञाओं का उल्लंघन किया। भारी आँकड़े देने के उत्साह में, मास्को प्रदेश के नेतृत्व ने अपने मातहतों को राह दिखा दी कि 1930 के वसन्त तक सामूहिकीकरण पूरा कर डालें, हालाँकि इसके लिये उनके पास तीन साल से कम समय नहीं था (1932 के अन्त तक)। ट्रांस-काकेशिया और मध्य एशिया में इससे भी ज्यादा भोंड़े रूप में केन्द्रीय समिति के निर्देश तोड़े गये।

अपने ही उकसावा पैदा करने वाले उद्देश्यों के लिये, नीति के इस तोड़ने-मरोड़ने से फायदा उठा कर, कुलक और उनके गुर्गे खुद ही सुझाते थे कि कृषि संघों के बदले कम्यून बना लिये जायें और तुरन्त ही मकान, छोटे-मोटे जानवर और मुर्गी-बत्तखें भी सामूहिक बना ली जायें। इसके अलावा, कुलक किसानों को सिखाते थे कि सामूहिक खेतों में शामिल होने से पहले अपने जानवर मार डालो क्योंकि 'आखिर तो वे हाथ से निकल ही जायेंगे।'

वर्ग-शत्रु ने हिसाब लगाया था कि सामूहिकीकरण के सिलसिले में स्थानीय संगठनों ने जो गलतियाँ की हैं और पार्टी की नीति को तोड़ा-मरोड़ा है, उससे किसान भड़क जायेंगे और सोवियत सत्ता से बगावत कर बैठेंगे।

पार्टी-संगठनों की गलतियों के फलस्वरूप और वर्ग-शत्रु की सीधी भड़काने वाली कार्रवाई के कारण, सामूहिकीकरण की आम निश्चित सफलताओं के बावजूद, फरवरी

1930 के दूसरे पखवारे में कई जिलों के किसानों में गम्भीर असन्तोष के खतरनाक चिह्न दिखाई दिये। जहाँ-तहाँ कुलक और उनके गुर्गे सीधी सोवियत-विरोधी कार्रवाई कराने के लिये किसानों को भड़काने में सफल भी हुए।

पार्टी की नीति के तोड़ने-मरोड़ने से सामूहिकीकरण खतरे में पड़ सकता है, इसके कई भयंकर चिह्न देखकर पार्टी की केन्द्रीय समिति ने तुरन्त ही हालत सुधारने, जितनी जल्द हो सके गलतियाँ सुधारने का काम पार्टी के कार्यकर्ताओं के सामने रखने का कदम उठाया। 2 मार्च 1930 को, केन्द्रीय समिति के फैसले से, कामरेड स्तालिन का लेख-**"सफलता से उन्मत्त"**-छपा। यह लेख उन सबके लिये चेतावनी था जिन्होंने सामूहिकीकरण की सफलता से बदहवास होकर भारी गलतियाँ की थीं और पार्टी की नीति से अलग हट गये थे, जो सामूहिक खेतों में शामिल होने के लिये किसानों से जोर-जबर्दस्ती करने की कोशिश कर रहे थे। लेख में, सबसे ज्यादा जोर इस बात पर दिया गया कि सामूहिक खेतों का निर्माण स्वेच्छा से होना चाहिए और जब सामूहिकीकरण की रफ्तार और तरीके निश्चित किये जायें, तब सोवियत संघ के विभिन्न जिलों की अलग-अलग स्थितियों का ध्यान रखना जरूरी है। कामरेड स्तालिन ने इस बात को दुहराया कि सामूहिक खेती के आन्दोलन का मुख्य रूप कृषि संघ है, जिसमें सिर्फ पैदावार के मुख्य साधन, मुख्यतः वे जो अनाज पैदा करने में काम आते हैं, सामूहिक बनाये जायें, लेकिन घरेलू जमीन, मकान, दूध देने वाले मवेशी, छोटे-मोटे जानवर, मुर्गी-बत्तखें, वगैरह सामूहिक नहीं बनायी जायेंगी।

कामरेड स्तालिन का लेख बहुत ही राजनीतिक महत्त्व का था। उसने पार्टी-संगठनों को अपनी गलतियाँ सुधारने में मदद दी और सोवियत सत्ता के दुश्मनों पर भारी वार किया जो उम्मीद कर रहे थे कि सोवियत सत्ता से किसानों को भिड़ा देने के लिये पार्टी की नीति के तोड़ने-मरोड़ने के लिये फायदा उठायेंगे। आम किसान जनता ने देख लिया कि स्थानीय अधिकारियों ने पार्टी की नीति को जिस मूर्खतापूर्ण 'वामपंथी' तरीके से तोड़ा-मरोड़ा था, उससे बोल्शेविक पार्टी की नीति का कोई सम्बन्ध नहीं है। लेख से किसानों का चित्त शान्त हुआ।

पार्टी की नीति के तोड़ने-मरोड़ने और गलतियों को सुधारने के लिये कामरेड स्तालिन के लेख ने जो काम शुरू किया था, उसे पूरा करने के लिये सो.सं.क.पा. (बो.) की केन्द्रीय समिति ने उन पर दूसरा वार करने का फैसला किया। 15 मार्च 1930 को, उसने "सामूहिक खेती-आन्दोलन में पार्टी की नीति का तोड़ना-मरोड़ना खत्म करने के उपाय" नाम का प्रस्ताव पास किया।

प्रस्ताव ने, जो गलतियाँ हुई थीं, उनकी विस्तार से छानबीन की और दिखलाया कि वह पार्टी की लेनिनवादी-स्तालिनवादी नीति से हटने का नतीजा है, पार्टी के निर्देशों को खुलकर तोड़ने का नतीजा है।

केन्द्रीय समिति ने बताया कि यह 'वामपंथी' तोड़-मरोड़ सीधे वर्ग-शत्रु की सहायता करती है।

केन्द्रीय समिति ने निर्देश दिये कि "जो लोग पार्टी की नीति की तोड़-मरोड़ का सच्चाई से मुकाबला करने के लिये तैयार नहीं हैं, या मुकाबला नहीं कर सकते, वे अपनी जगह

से हटा दिये जायें, और उनकी जगह दूसरे आदमी रखे जायें।"। (**सो.सं.क.पा. (बो.) के प्रस्ताव,** भाग 2, पृ. 663)।

केन्द्रीय समिति ने कुछ मण्डल और प्रादेशिक पार्टी-संगठनों के नेतृत्व बदल दिये (मास्को प्रदेश, ट्रांस-काकेशिया), जिन्होंने राजनीतिक गलतियाँ की थीं और उन्हें सुधारने में अपने को असमर्थ साबित किया था।

3 अप्रैल 1930 को, कामरेड स्तालिन का लेख-**"सामूहिक खेती में काम करने वाले साथियों को उत्तर"**-प्रकाशित हुआ। इसमें किसान समस्या पर गलतियों का मूल कारण बतलाया गया और सामूहिक खेती-आन्दोलन में जो बड़ी भूलें हुई थीं, उनकी जड़ बतलाई गई। मूल कारण ये थे-मध्यम किसान की तरफ गलत रवैया; इस लेनिनवादी उसूल को तोड़ना कि सामूहिक खेतों का निर्माण स्वेच्छा से ही होना चाहिए, इस लेनिनवादी उसूल को तोड़ना कि सोवियत संघ के विभिन्न जिलों के अलग-अलग हालात का ध्यान रखना चाहिए और कृषि संघ की मंजिल लाँघ कर सीधे कम्यून में पहुँच जाने की कोशिशें।

इन उपायों का फल यह हुआ कि कई जिलों में स्थानीय पार्टी के कार्यकर्ताओं ने पार्टी की नीति को जो तोड़ा-मरोड़ा था, पार्टी ने उसका सुधार कर दिया।

पार्टी के ऐसे कार्यकर्ता काफी थेजो सफलता से बदहवास होकर पार्टी की नीति से जल्दी-जल्दी दूर चले जा रहे थे। इन्हें तुरन्त सुधारने के लिये धारा के खिलाफ चलने में केन्द्रीय समिति ने अपने को समर्थ दिखाया और उसे बहुत ही दृढ़ता से काम लेना पड़ा।

सामूहिक खेती आन्दोलन में, पार्टी की नीति की तोड़-मरोड़ को सुधारने में पार्टी सफल हुई।

इससे सामूहिक खेती के आन्दोलन की सफलता को मजबूत करना मुमकिन हुआ।

इससे सामूहिक खेती के आन्दोलन की नयी और शक्तिशाली प्रगति करना भी सम्भव हुआ।

वर्गरूप में कुलकों को खत्म करने की पार्टी की नीति अपनाने से पहले, मुख्यतः शहरों में औद्योगिक मोर्चे पर पूँजीवादी तत्व खत्म करने के लिये उनके खिलाफ जोरदार मुहिम शुरू की गयी थी। अभी तक देहात और खेती, शहरों और उद्योग-धन्धों के पीछे घिसट रहे थे। इसलिए, वह मुहिम चौमुखा, आम और सम्पूर्ण रूप धारण न कर सकी थी। लेकिन, अब देहात का पिछड़ापन बीते जमाने की बात हो रहा था, अब कुलक वर्ग को खत्म करने के लिये किसान-संघर्ष ने स्पष्ट रूप ले लिया था और पार्टी ने कुलक वर्ग को खत्म करने की नीति अपनायी थी। इसलिए, पूँजीवादी तत्वों के खिलाफ हमले ने आम रूप धारण कर लिया; आंशिक हमला समूचे मोर्चे पर हमला बन गया। जिस समय सोलहवीं पार्टी कांग्रेस बुलायी गयी, उस समय पूँजीवादी तत्वों के खिलाफ हमला समूचे मोर्चे पर चालू था।

सोलहवीं पार्टी कांग्रेस 26 जून, 1930 को शुरू हुई। इसमें 12,60,874 पार्टी सदस्यों और 7,11,609 उम्मीदवार सदस्यों की तरफ से, 1,268 वोट देने वाले प्रतिनिधि और 891 बोलने वाले लेकिन वोट न दे सकने वाले प्रतिनिधि आये।

पार्टी के इतिहास में, सोलहवीं पार्टी कांग्रेस "पूरे मोर्चे पर समाजवाद के भारी हमले

की कांग्रेस, वर्ग रूप में कुलकों को खत्म करने की और दृढ़ सामूहिकीकरण को अमल में लाने की कांग्रेस" (**स्तालिन**) कहलाती है।

केन्द्रीय समिति की राजनीतिक रिपोर्ट पेश करते हुए, कामरेड स्तालिन ने बताया कि समाजवादी मुहिम बढ़ाते हुए बोल्शेविक पार्टी ने कौन सी महान सफलताएँ हासिल की हैं।

अब तक समाजवादी औद्योगीकरण इतना बढ़ चुका था कि देश की कुल पैदावार में उद्योग-धन्धों का हिस्सा खेती से बढ़ गया था। 1929-30 के आर्थिक साल में, देश की समूची पैदावार का 53 फीसदी हिस्सा उद्योग-धन्धों की उपज बन गया था, जबकि खेती का हिस्सा 47 फीसदी के लगभग था।

1926-27 के आर्थिक साल में, 15वीं पार्टी कांग्रेस के समय, उद्योग-धन्धों की पूरी उपज युद्ध के पूर्व की पैदावार की सिर्फ 102.5 फीसदी थी। 1929-30 के साल में, सोलहवीं कांग्रेस के समय, यह उपज लगभग 180 फीसदी तक पहुँच गयी थी।

भारी उद्योग-धन्धे-पैदावार के साधनों का निर्माण, मशीनें बनाना-निश्चित रूप से शक्ति में बढ़ते जा रहे थे।

कामरेड स्तालिन ने कांग्रेस में हार्दिक हर्षध्वनि के बीच, कहा :

> "...हम अपने देश के **खेतिहर** से **औद्योगिक** देश बनने की देहरी पर हैं।"

फिर भी, कामरेड स्तालिन ने बताया कि औद्योगिक विकास की ऊँची रफ्तार का मतलब औद्योगिक विकास का ऊँचा स्तर नहीं है। समाजवादी उद्योग-धन्धों के विकास की अपूर्व गति के बावजूद, जहाँ तक औद्योगिक विकास का स्तर का सवाल था, हम अब भी आगे बढ़े हुए पूँजीवादी देशों से बहुत ही पीछे थे। यह बात बिजली के बारे में थी, हालाँकि सोवियत संघ में बिजली लगाने के काम में अभूतपूर्व प्रगति हुई थी। यही बात धातुओं के बारे में सही थी। योजना के अनुसार, 1929-30 के साल में सोवियत संघ में कच्चे लोहे की पैदावार 55 लाख टन होनी थी, लेकिन 1929 में जर्मनी में कच्चे लोहे की पैदावार एक करोड़ 34 लाख टन थी और फ्रांस में एक करोड़ 4 लाख 50 हजार टन थी। कम से कम समय में अपना आर्थिक और कौशल-सम्बन्धी पिछड़ापन दूर करने के लिये, यह जरूरी था कि औद्योगिक विकास की हमारी गति और तेज की जाये और उन अवसरवादियों के खिलाफ बहुत ही दृढ़ता से संघर्ष किया जाये जो समाजवादी उद्योग-धन्धों के विकास की रफ्तार को घटाने की कोशिश कर रहे थे।

कामरेड स्तालिन ने कहा :

> "…. जो लोग हमारे उद्योग-धन्धों के विकास की रफ्तार को घटाने की जरूरत की बात करते हैं, वे समाजवाद के दुश्मन हैं, वर्ग-शत्रुओं के दलाल हैं।" (स्तालिन, **लेनिनवाद की समस्याएँ,** रू.सं., पृष्ठ 369)।

जब पहली पंचवर्षीय योजना के पहले साल का कार्यक्रम सफलता से पूरा हो गया और उससे आगे भी लोग बढ़ गये, तब आम जनता में एक नया नारा पैदा हुआ : **'पंचवर्षीय योजना चार वर्षों में पूरी करो।'** उद्योग-धन्धों की कई शाखायें (तेल, कच्चा कोयला, आम मशीनें बनाने का काम, खेती की मशीनें, बिजली का सामान) अपनी योजनायें इतनी

सफलता से पूरी कर रही थीं कि उनकी पंचवर्षीय योजनायें ढाई या तीन साल में पूरी हो सकती थीं। इससे साबित होता था कि 'पंचवर्षीय योजना चार वर्षों में'-यह नारा बिल्कुल सुगम था, और इस तरह जो इसे शक की निगाह से देखते थे उनके अवसरवाद का पर्दाफाश हो गया।

सोलहवीं कांग्रेस ने पार्टी की केन्द्रीय समिति को निर्देश दिया कि वह "इस बात को निश्चित करे कि समाजवादी निर्माण की **उत्साही बोल्शेविक रफ्तार** बनी रहे और **पंचवर्षीय योजना सचमुच चार साल में पूरी हो जाये।"**

जिस समय सोलहवीं पार्टी कांग्रेस हुई, उस समय तक सोवियत संघ की खेती के विकास में महत्त्वपूर्ण तब्दीली हो चुकी थी। आम किसान जनता समाजवाद की तरफ मुड़ चुकी थी। 1 मई 1930 तक, मुख्य अनाज उपजाने वाले इलाकों में 40-45 फीसदी किसान परिवार सामूहिकीकरण में शामिल हो चुके थे (जबकि वसन्त 1928 तक 2-3 फीसदी तक ही शामिल हुए थे)। सामूहिक खेतों की काश्त जमीन 3 करोड़ 60 लाख हेक्तार तक पहुँच गयी।

केन्द्रीय समिति ने 5 जनवरी 1930 के प्रस्ताव में जो कार्यक्रम बढ़ाकर (3 करोड़ हेक्टेयर) रखा था, वह सीमा से ज्यादा पूरा हो गया था। दो साल की अवधि में, सामूहिक खेती के विकास का पंचवर्षीय कार्यक्रम डेढ़ गुना पूरा हो चुका था।

तीन साल में, सामूहिक खेतों ने जो बाजार में उपज भेजी थी, वह 40 गुना से ज्यादा बढ़ चुकी थी। 1930 में ही, बाजार के लिये जितना गल्ला आता था उसका आधे से ज्यादा सामूहिक खेतों से आया था, और इसमें सरकारी खेतों के अनाज की बिल्कुल गिनती न थी।

इसका मतलब यह था कि अब से खेती के भाग्य का निपटारा किसानों के अलग-थलग खेत न करेंगे बल्कि सामूहिक और सरकारी खेत करेंगे।

आम किसानों के सामूहिक खेतों में शामिल होने से पहले सोवियत सत्ता मुख्यतः समाजवादी उद्योग-धन्धों पर निर्भर रहती थी, लेकिन अब वह तेजी से बढ़ते हुए खेती के समाजवादी नाके पर, सामूहिक और सरकारी खेतों पर भी निर्भर रहने लगी।

जैसा कि 16वीं पार्टी कांग्रेस ने अपने एक प्रस्ताव में कहा था, सामूहिक खेतों के किसान 'सोवियत सत्ता के वास्तविक और दृढ़ स्तम्भ बन गये थे।

3. राष्ट्रीय अर्थतंत्र की सभी शाखाओं के पुनर्संगठन की नीति। कौशल का महत्त्व। सामूहिक खेती के आन्दोलन का और भी प्रसार। मशीन और ट्रैक्टर स्टेशनों के राजनीतिक विभाग। चार साल में पंचवर्षीय योजना पूरी करने के नतीजे। समूचे मोर्चे पर समाजवाद की विजय। सत्रहवीं पार्टी कांग्रेस।

जब भारी उद्योग-धन्धे, और खास तौर से मशीन बनाने वाले धन्धे, निर्मित हो गये और मजबूती से अपने पैरों पर खड़े हो गये, और इसके सिवा यह भी स्पष्ट हो गया कि उनका विकास काफी तेज रफ्तार से हो रहा है, तब पार्टी के सामने दूसरा काम यह आया

कि राष्ट्रीय अर्थतंत्र की सभी शाखाओं को आधुनिकतम तरीके से अप-टू-डेट लाइन पर पुनर्संगठित करे। ईंधन के उद्योग-धन्धों, धातुओं के उद्योग-धन्धों, हल्के उद्योग-धन्धों, लकड़ी के उद्योग-धन्धों, लड़ाई का सामान बनाने वाले उद्योग-धन्धों, यातायात की व्यवस्था और खेती को आधुनिक कौशल, आधुनिकतम मशीनों से सुसज्जित करे। खेतों की उपज और तैयार माल की माँग में जबर्दस्त बढ़ोत्तरी को देखते हुए, यह जरूरी था कि पैदावार की सभी शाखाओं की उपज को दुगुना और तिगुना बढ़ाया जाये। लेकिन, यह तब तक नहीं हो सकता था जब तक कि मिलें और कारखाने, सरकारी और सामूहिक खेत पर्याप्त रूप से अप-टू-डेट सामान से लैस न किये जायें। कारण यह कि उपज की आवश्यक बढ़त पुराने साज-सामान से न हो सकती थी।

जब तक राष्ट्रीय अर्थतंत्र की मुख्य शाखाओं को पुनर्संगठित न किया जाये, तब तक देश और उसकी आर्थिक व्यवस्था की नयी और बराबर बढ़ती हुई माँगों को पूरा करना असम्भव था।

पुनर्संगठन के बिना, समूचे मोर्चे पर समाजवाद के हमले को पूरा करना असम्भव होगा। कारण यह कि शहर और देहात के पूँजीवादी तत्वों से न सिर्फ श्रम और सम्पत्ति के नये संगठन द्वारा लड़ना और उन्हें हराना था बल्कि नये कौशल द्वारा, कौशल की श्रेष्ठता द्वारा भी लड़ना और उन्हें हराना था।

पुनर्संगठन के बिना, आर्थिक रूप से और कौशल में आगे बढ़े हुए पूँजीवादी देशों के बराबर पहुँचना और आगे निकल जाना असम्भव होगा। कारण यह कि सोवियत संघ औद्योगिक विकास की रफ्तार में तो पूँजीवादी देशों से आगे निकल गया था, लेकिन औद्योगिक विकास के स्तर में, औद्योगिक उपज की तादाद में वह उनसे अब भी बहुत पीछे था।

हम उनके बराबर पहुँच जायें, इसके लिये जरूरी था कि पैदावार की हर शाखा नये कौशल से लैस की जाये और कौशल की सबसे अप-टू-डेट लाइन पर पुनर्संगठित की जाये।

इस तरह, कौशल का सवाल निर्णायक महत्त्व का सवाल बन गया था।

हमारे मशीनें बनाने वाले उद्योग-धन्धे आधुनिक ढंग का सामान दे सकते थे, इसलिए इस काम में मुख्य बाधा आधुनिक मशीनों और कलपुर्जों का अभाव इतनी न थी जितनी कि हमारे प्रबन्धकों का कौशल के प्रति गलत रवैया, पुनर्संगठन के दौर में कौशल के महत्त्व को कम करके आँकने और उसे घृणा से देखने की प्रवृत्ति थी। उनकी राय में कौशल की बातें 'विशेषज्ञों' के लिये थीं, वे गौण महत्त्व की चीजें थीं, जिन्हें 'पूँजीवादी विशेषज्ञों' के हाथ में छोड़ा जा सकता था। उनका विचार था कि कम्युनिस्ट प्रबन्धकों को पैदावार के कौशल-सम्बन्धी पहलू में दखल न देना चाहिए और उन्हें अधिक महत्त्वपूर्ण पहलू यानी उद्योग-धन्धों के 'आम' प्रबन्ध की तरफ ध्यान देना चाहिए।

इसलिए पैदावार के मामले में, पूँजीवादी 'विशेषज्ञों' को पूरी छूट मिली हुई थी और कम्युनिस्ट प्रबन्धकों ने अपने लिये 'आम' संचालक का काम, कागजों पर दस्तखत करने का काम रख छोड़ा था।

कहना न होगा कि इस तरह का रवैया होने पर 'आम' संचालन लाजिमी तौर पर संचालन का मखौल भर रह जाता था, कागजों पर थोपी दस्तखतबाजी, कागजों का निरर्थक उलटफेर भर रह जाता था।

यह स्पष्ट है कि अगर कम्युनिस्ट प्रबन्धक कौशल के मामलों की तरफ यह घृणा का रवैया बनाये ही रहते तो आगे बढ़े हुए पूँजीवादी देशों से आगे निकलना तो दरकिनार हम उनके बराबर भी न पहुँच पाते। इस तरह का रवैया, खास तौर से पुनर्संगठन के दौर में, हमारे देश को पिछड़ा बना रहने के लिये मजबूर करता और विकास की हमारी रफ्तार घटा देता। हकीकत यह थी कि कौशल-सम्बन्धी मामलों की तरफ यह रवैया कम्युनिस्ट प्रबन्धकों के एक हिस्से की इस गुप्त इच्छा के लिये एक नकाब, एक पर्दा था कि वे औद्योगिक विकास की रफ्तार को घटा दें, रोक दें, जिससे कि उनका 'काम आसान रहे' और पैदावार की जिम्मेदारी वे 'विशेषज्ञों' पर डाल सकें।

यह जरूरी था कि कम्युनिस्ट प्रबन्धकों का ध्यान कौशल-सम्बन्धी मामलों की तरफ खींचा जाये, उनके अन्दर कौशल का शौक पैदा किया जाये। उन्हें यह बताना जरूरी था कि बोल्शेविक प्रबन्धकों के लिये आधुनिक कौशल पर हावी होना एकदम जरूरी है, वरना हम इस खतरे का सामना करेंगे कि अपने देश को पिछड़ेपन और ठहराव की दशा में रहने के लिये मजबूर कर दें।

जब तक यह समस्या हल न होती थी तब तक आगे प्रगति असम्भव थी।

इस सिलसिले में, औद्योगिक प्रबन्धकों की पहली कान्फ्रेंस (फरवरी 1931) में कामरेड स्तालिन का भाषण बहुत ही महत्त्वपूर्ण था।

कामरेड स्तालिन ने कहा था :

> "कभी-कभी यह पूछा जाता है कि रफ्तार को थोड़ा कम कर देना, प्रगति पर थोड़ी रोक लगाना क्या सम्भव नहीं है। नहीं साथियो, यह सम्भव नहीं है। रफ्तार कम न करनी चाहिए!... रफ्तार कम करने का मतलब होगा, पीछे रह जाना। और जो पीछे रह जाते हैं, वे मार खाते हैं। लेकिन, हम मार नहीं खाना चाहते। नहीं, मार खाना हमें कतई मंजूर नहीं।
>
> "पुराने रूस के इतिहास की एक विशेषता यह थी कि पीछे रहने की वजह से, अपने पिछड़ेपन की वजह से उसने बार-बार मार खाई। मंगोल खानों ने उसे पीटा। तुर्क सरदारों ने उसे पीटा। स्वीडेन के सामन्तों ने उसे पीटा। पोलैण्ड और लिथुआनिया के जमीन्दारों ने उसे पीटा। ब्रिटेन और फ्रांस के पूँजीपतियों ने उसे पीटा। जापानी जागीरदारों ने उसे पीटा। सबने उसे पीटा-उसके पिछड़ेपन की वजह से।....
>
> "आगे बढ़े हुए देशों से हम पचास या सौ साल पीछे हैं। यह फासला हमें दस साल में तय करना है। या तो हम उसे तय करते हैं, या वे हमें कुचल डालेंगे।
>
> "ज्यादा से ज्यादा दस साल में, हम आगे बढ़े हुए पूँजीवादी देशों से जितना पीछे हैं उतना, फासला हमें तय करना है। हमारे पास ऐसा करने के लिये सभी 'वस्तुगत' अवसर मौजूद हैं। एक ही चीज की कमी है-इन अवसरों से ठीक फायदा उठाने की योग्यता। और, यह हम पर निर्भर है। सिर्फ हम पर। वक्त आ गया है कि हम इन

अवसरों से काम लेना सीखें। वक्त आ गया है कि पैदावार में दखल न देने की सड़ी हुई नीति को हम खत्म करें। वक्त आ गया है कि हम एक नीति, एक समयानुकूल नीति, हर चीज में दखल देने की नीति अपनाएँ। अगर तुम कारखाने के मैनेजर हो तो कारखाने के सभी मामलों में दखल दो। हर चीज देखो-भालो, कोई चीज भी आँख से ओझल न होने दो; सीखो और फिर सीखो। बोल्शेविकों को चाहिये कि कौशल पर हावी हों। वक्त आ गया है कि बोल्शेविक ही खुद विशेषज्ञ बनें। **पुनर्संगठन के दौर में हर चीज का फैसला कौशल पर निर्भर है।"** (स्तालिन, **लेनिनवाद की समस्याएँ**, अं. सं., मास्को, 1947, पृष्ठ 355-58)।

कामरेड स्तालिन के भाषण का ऐतिहासिक महत्त्व इस बात में है कि उसने कौशल की तरफ कम्युनिस्ट प्रबन्धकों के नफरत के रवैये को खत्म कर दिया, उसने उन्हें कौशल के सवाल से आँखें चार करने पर मजबूर किया, उसने खुद बोल्शेविकों द्वारा कौशल पर हावी होने के संघर्ष का नया दौर शुरू किया, और इस तरह आर्थिक पुनर्संगठन के काम को आगे बढ़ाने में मदद दी।

इसके बाद से, कौशल का ज्ञान पूँजीवादी 'विशेषज्ञों' का इजारा न रह गया और खुद बोल्शेविक प्रबन्धकों के लिये बहुत ही महत्त्व की बात हो गया। और, 'विशेषज्ञ' शब्द लोगों को नीचा दिखाने के लिये नहीं रहा बल्कि खुद उन बोल्शेविकों का गौरववाचक सम्बोधन हो गया जो कौशल पर हावी हो गये थे।

इसके बाद, हजारों लाल विशेषज्ञों की पलटनें तैयार होनी थीं, और हुईं, जो कौशल पर हावी हो चुकी थीं और जो उद्योग-धन्धों का संचालन कर सकती थीं।

ये कौशल जानने वाले, नये सोवियत बुद्धिजीवी थे, मजदूर वर्ग और किसानों के बुद्धिजीवी थे। हमारे उद्योग-धन्धों के प्रबन्ध में अब वे मुख्य शक्ति हैं।

इन सबसे आर्थिक पुनर्संगठन का काम आगे बढ़ता था, और वह आगे बढ़ा।

पुनर्संगठन का काम उद्योग-धन्धों और यातायात तक सीमित न रहा। वह खेती में और भी तेजी से बढ़ा। इसका कारण ढूँढ़ने दूर न जाना पड़ेगा। दूसरी शाखाओं के मुकाबले में, खेती में मशीनें कम चली थीं और यहाँ पर आधुनिक मशीनों की जरूरत दूसरी जगहों से ज्यादा महसूस होती थी। अब यह एकदम जरूरी था कि आधुनिक खेती की मशीनों को ज्यादा से ज्यादा भेजा जाये क्योंकि सामूहिक खेती की संख्या माह-दर-माह और हफ्ते-दर-हफ्ते बढ़ रही थी, और उसके साथ ही हजारों ट्रेक्टरों और खेती की दूसरी मशीनों की माँग बढ़ रही थी।

1931 के साल में, सामूहिक खेती के आन्दोलन की और भी प्रगति देखी गयी। अनाज उपजाने वाले मुख्य जिलों में, 80 फीसदी से ऊपर किसानों के निजी खेत मिलकर सामूहिक खेत बन चुके थे। यहाँ पर मुख्य रूप से अभी सामूहिकीकरण पूरा हो चुका था। कम महत्त्व के अनाज पैदा करने वाले जिलों में और उन जिलों में जो औद्योगिक फसलें पैदा करते थे, 50 फीसदी से ऊपर निजी खेती करने वाले किसान सामूहिक खेती में शामिल हो चुके थे। अब तक दो लाख सामूहिक खेत थे और चार हजार सरकारी खेत थे, जो देश की कुल काश्त का दो-तिहाई भाग जोतते-बोते थे; निजी खेती करने वाले किसान सिर्फ

एक-तिहाई भाग जोतते-बोते थे।

देहात में समाजवाद के लिये यह बहुत बड़ी विजय थी।

लेकिन, सामूहिक खेती के आन्दोलन की प्रगति अभी गहराई के मुकाबले में चौड़ाई में ही ज्यादा नापी जा सकती थी। सामूहिक खेत तादाद में बढ़ रहे थे और एक जिले से दूसरे जिले में फैल रहे थे, लेकिन सामूहिक खेतों के काम में या उनके कार्यकर्ताओं के कौशल में उतनी ही उन्नति न हुई थी। इसका सबब यह था कि सामूहिक खेतों के प्रमुख कार्यकर्ताओं और शिक्षित आदमियों की बढ़ोत्तरी खुद सामूहिक खेतों की तादाद की बढ़ोत्तरी का साथ न दे पा रही थी। इसका नतीजा यह हुआ कि नये सामूहिक खेतों का काम हमेशा सन्तोषजनक न होता था, और खुद सामूहिक खेत अभी कमजोर थे। देहात में सामूहिक खेतों के लिये अनिवार्य रूप से आवश्यक शिक्षित आदमी (हिसाब रखने वाले, स्टोर मैनेजर, सचिव, वगैरह) कम थे, और किसान बड़े पैमाने के सामूहिक धन्धों का प्रबन्ध करने में अनुभवहीन थे। इन कारणों से भी, सामूहिक खेतों की प्रगति रुकती थी। सामूहिक खेतों के किसान कल तक निजी खेती करने वाले किसान थे। उन्हें छोटे खेतों में किसानी का तर्जुबा था, लेकिन बड़े, सामूहिक खेतों का प्रबन्ध करने का कोई तर्जुबा न था। यह तर्जुबा एक दिन में हासिल न हो सकता था।

इसलिए, सामूहिक खेती के काम की शुरू की मंजिलों में गम्भीर दोष पाये गये। यह देखा गया कि सामूहिक खेतों में काम का संगठन अब भी बुरा है। श्रम-सम्बन्धी अनुशासन ढीला है। बहुत से सामूहिक खेतों में आमदनी का बँटवारा काम के दिनों के हिसाब से नहीं होता, बल्कि कुनबे में खाने वालों की तादाद के हिसाब से होता था। अकसर ऐसा होता था कि ईमानदारी से कैद-बामशक्कत करने वाले सामूहिक किसानों के मुकाबले में ढील डालने वाले ज्यादा हिस्सा पाते थे। सामूहिक खेती के प्रबन्ध के इन दोषों से, उनके सदस्यों की पहलकदमी घटती थी। बहुत बार ऐसा होता था कि ऐन मौसम के दिनों में भी सामूहिक खेतों के सदस्य काम से गैर-हाजिर हो जाते थे और फसल का एक हिस्सा ठण्ड में बर्फ गिरने तक भी बिना काटे पड़ा रहने देते थे, और कटाई का काम इतनी लापरवाही से होता था कि बहुत सा गल्ला बरबाद हो जाता था। मशीनों, घोड़ों और आम तौर से काम के बारे में व्यक्तिगत जिम्मेदारी न होने से, सामूहिक खेत कमजोर हो जाते थे और उनकी आमदनी कम हो जाती थी।

हालत खास तौर पर तब खराब होती थी जब कुलक या उनके गुर्गे सामूहिक खेतों में घुस आते थे और वहाँ विश्वास की जगहें पा जाते थे। यह बात अनूठी न थी कि कुलक उन जिलों में चले जायें जहाँ लोग उन्हें जानते न थे, और वहाँ सामूहिक खेतों में तोड़-फोड़ करने और शरारत करने के निश्चित इरादे से उनमें घुस जायें। कभी-कभी पार्टी कार्यकर्ताओं और सोवियत कर्मचारियों की चौकसी के अभाव में, कुलक अपने ही जिलों के सामूहिक खेतों में पैठ जाते थे। सामूहिक खेतों में भूतपूर्व कुलकों का घुसना इसलिए आसान हो गया कि उन्होंने अपने दाँव-पेंच बुनियादी तौर से बदल दिये थे। पहले वे सामूहिक खेतों से खुलकर लड़े थे, उन्होंने सामूहिक खेतों के प्रमुख कार्यकर्ताओं और सबसे आगे बढ़े हुए सामूहिक किसानों पर निर्दयता से जुल्म किये थे, नीचता से उनकी हत्या की थी, उनके

घर और खलिहान जला दिये थे। उन्होंने सोचा था कि इन तरीकों से वे आम किसानों को डरा देंगे और उन्हें सामूहिक खेतों में शामिल होने से रोक लेंगे। सामूहिक खेतों के खिलाफ उनकी यह खुली लड़ाई असफल हो गयी थी, इसलिए उन्होंने अपने दाँव-पेच बदल दिये थे। उन्होंने अपनी भरी हुई बन्दूकें अलग रख दी थीं और ऐसे सीधे-सादे, भोले-भोले बन गये जो चींटी पर भी पाँव न रखें। वे सोवियतों के वफादार समर्थक बनने का बहाना करने लगे। एक बार सामूहिक खेतों में घुस आने पर, वे चोरी-चोरी तोड़-फोड़ करते रहते थे। वे कोशिश करते थे कि सामूहिक खेतों को भीतर से तोड़ें, श्रम-सम्बन्धी अनुशासन कमजोर करें और फसल का हिसाब-किताब गड़बड़ करें, और जो काम किया जाये, उसका हिसाब बिगाड़ दें। उनकी नीच योजना का यह एक अंग था कि सामूहिक खेतों के घोड़ों में गलतोड़, खाज और दूसरी छूत की बीमारियाँ लगाकर उन्हें मार डालें, या उनकी देखभाल न करके या ऐसे ही दूसरे उपायों से उन्हें अपाहिज कर दें। इन कामों में, वे अकसर सफल भी होते थे। उन्होंने ट्रैक्टरों और खेतों की मशीनों को नुकसान पहुँचाया।

कुलक अकसर सामूहिक खेतों के किसानों को इसलिए धोखा दे लेते थे और बिना सजा पाये तोड़-फोड़ कर जाते थे कि सामूहिक खेत अब भी कमजोर थे और उनके कर्मचारी अभी अनुभवहीन थे।

कुलकों की तोड़-फोड़ खत्म करने के लिये और सामूहिक खेतों को जल्द मजबूत करने के लिये, उन्हें आदमी, सलाह और नेतृत्व के रूप में तुरन्त ही कारगर मदद देनी जरूरी थी।

यह मदद बोल्शेविक पार्टी से मिलने वाली थी।

पार्टी की केन्द्रीय समिति ने जनवरी 1933 में, सामूहिक खेतों के लिये काम करने वाले मशीन और ट्रैक्टर स्टेशनों में **राजनीतिक विभाग** संगठित करने का फैसला किया। लगभग 17,000 पार्टी कार्यकर्ता इन राजनीतिक विभागों में काम करने के लिये और सामूहिक खेतों की सहायता करने के लिये देहात भेजे गये।

यह सहायता बहुत ही कारगर हुई।

दो वर्षों (1933 और 1934) में, मशीन और ट्रैक्टर स्टेशनों के राजनीतिक विभागों ने सामूहिक किसानों का एक सक्रिय दल बनाने में, सामूहिक खेतों के काम के दोष दूर करने में, उन्हें मजबूत करने में और कुलक शत्रुओं और तोड़-फोड़ करने वालों से उन्हें मुक्त करने में बहुत सा काम किया।

राजनीतिक विभागों ने अपना काम सम्मान सहित पूरा किया। उन्होंने संगठन और योग्यता, दोनों ही तरह से सामूहिक खेतों को मजबूत किया, उनके लिये कुशल कार्यकर्ता तैयार किये, उनका प्रबन्ध सुधारा और सामूहिक खेतों के सदस्यों का राजनीतिक स्तर ऊँचा किया।

सामूहिक खेतों को मजबूत करने में, सामूहिक किसानों को प्रेरणा देने में, सामूहिक खेतों के अग्रिम कार्यकर्ताओं की पहली अखिल संघीय कांग्रेस (फरवरी 1933), और इस कांग्रेस में कामरेड स्तालिन के भाषण का बहुत महत्त्व था।

देहात की पुरानी, सामूहिक खेतों से पहले की व्यवस्था की नयी, सामूहिक खेतों की

व्यवस्था से तुलना करते हुए, कामरेड स्तालिन ने कहा था :

> "पुरानी व्यवस्था में, हर किसान अलग-थलग काम करता था, अपने बाप-दादों के पुराने तरीकों पर ही चलता था और मेहनत के पुराने पड़ चुके औजार इस्तेमाल करता था। वह जमीन्दारों और पूँजीपतियों के लिये, कुलकों और मुनाफाखोरों के लिये काम करता था और दूसरों को अमीर बनाते हुए, गरीबी में दिन काटता था। नयी, सामूहिक खेती की व्यवस्था में, किसान मिलजुल कर, परस्पर सहयोग से काम करते हैं, आधुनिक औजारों-ट्रैक्टरों और खेती की मशीनों-की मदद से काम करते हैं। वे अपने लिये और सामूहिक खेती के लिये काम करते हैं। वे पूँजीपतियों और जमीन्दारों के बिना, कुलकों और मुनाफाखोरों के बिना रहते हैं। वे अपनी खुशहाली और संस्कृति का स्तर दिन-प्रतिदिन ऊँचा करने के उद्देश्य से काम करते हैं।" (स्तालिन, **लेनिनवाद की समस्याएँ**, अं.सं., मास्को, 1947, पृष्ठ 443)।

कामरेड स्तालिन ने अपने भाषण में बतलाया कि सामूहिक खेती का रास्ता अपनाने से किसानों ने क्या पाया है। बोल्शेविक पार्टी ने लाखों गरीब किसानों की मदद की थी कि वे सामूहिक खेतों में शामिल हों और कुलक-दासता से बच सकें। सामूहिक खेतों में शामिल होकर और काम के लिये सबसे बढ़िया जमीनें और पैदावार के सबसे अच्छे साधन इस्तेमाल करके, वे लाखों गरीब किसान जो पहले गरीबी में दिन काटते थे, अब सामूहिक किसान बनकर मध्यम किसानों के स्तर तक उठ आये थे, और अब उन्हें रोटी-रोजी की चिन्ता न रह गयी थी।

सामूहिक खेतों के विकास में यह पहला कदम था, पहली सफलता थी।

कामरेड स्तालिन ने कहा कि दूसरा कदम यह है कि सामूहिक किसानों को-पहले के गरीब किसानों और पहले के मध्यम किसानों, दोनों को ही-और भी ऊँचे स्तर तक उठाया जाये, सभी सामूहिक किसानों को खुशहाल और सभी सामूहिक खेतों को बोल्शेविक बनाया जाये।

कामरेड स्तालिन ने कहा :

> "सामूहिक किसानों को खुशहाल बनाने के लिये सिर्फ एक चीज करना जरूरी है और वह यह कि वे सामूहिक खेतों में पूरी ईमानदारी से काम करें, वे ट्रैक्टरों और मशीनों से योग्यतापूर्वक काम लें, काश्त के जानवरों का योग्यता से इस्तेमाल करें, योग्यता से जमीन जोते-बोयें और सामूहिक खेतों की सम्पत्ति की देखभाल करें।" (उपर्युक्त, पृष्ठ 448)।

लाखों सामूहिक किसानों पर कामरेड स्तालिन के भाषण का गहरा असर पड़ा, और वह सामूहिक खेतों के लिये एक अमली कार्यक्रम बन गया।

1934 के आखिर तक, सामूहिक खेत सबल और अजेय शक्ति बन गये। सोवियत संघ के तीन-चौथाई किसान परिवार अभी ही उनमें शामिल थे और कुल खेती की 90 फीसदी जमीन अब तक उनमें आ चुकी थी।

1934 में ही, सोवियत गाँवों में 2,81,000 ट्रैक्टर और 32,000 हार्वेस्टर कम्बाइन मशीनें काम करती थीं। उस साल, चैत की बुवाई 1933 के मुकाबले में 15-20 दिन पहले

पूरी हो गयी, और 1932 के मुकाबले में 30-40 दिन पहले पूरी हो गयी। राज्य को गल्ला देने की योजना 1932 से तीन महीने पहले ही पूरी हो गयी।

इससे जाहिर होता था कि पार्टी से और मजदूर-किसान राज्य से भारी सहायता मिलने की बदौलत दो साल में सामूहिक खेत कितनी मजबूती से कायम हो गये थे।

सामूहिक खेती की व्यवस्था की पक्की जीत से और उसके साथ होने वाले खेती के सुधार से, सोवियत सरकार अन्न और दूसरी तमाम उपज का राशन खत्म कर सकी और खाद्य सामग्री की बेरोक बिक्री चालू कर सकी।

मशीनों और ट्रैक्टर स्टेशनों के राजनीतिक विभाग जिस काम के लिये अस्थायी रूप से बनाये गये थे वह पूरा हो गया था। इसलिए, केन्द्रीय समिति ने फैसला किया कि अपनी-अपनी जगह जिला पार्टी समितियों में मिलाकर, उन्हें साधारण पार्टी संस्थाएँ बना दिये जाये।

खेती और उद्योग-धन्धे, दोनों ही में यह सभी सफलताएँ इसी वजह से हुईं कि पंचवर्षीय योजना कामयाबी से पूरी की जा चुकी थी।

1933 के आरम्भ होने तक, यह स्पष्ट हो गया था कि पहली पंचवर्षीय योजना समय से पहले पूरी हो चुकी है, 4 साल 3 महीने में पूरी हो चुकी है।

सोवियत संघ के मजदूर वर्ग और किसानों के लिये, यह एक महान और युगान्तरकारी विजय थी।

जनवरी 1933 में, केन्द्रीय समिति और पार्टी के केन्द्रीय कन्ट्रोल-कमीशन की प्लेनरी बैठक में रिपोर्ट देते हुए, कामरेड स्तालिन ने पहली पंचवर्षीय योजना के नतीजों का सिंहावलोकन किया। रिपोर्ट ने यह बात साफ कर दी कि पहली पंचवर्षीय योजना को पूरा करने की अवधि में, पार्टी और सोवियत सरकार ने नीचे लिखे हुए बड़े नतीजे हासिल किये थे :

(क) सोवियत संघ खेतिहर देश से औद्योगिक देश बनाया जा चुका था, क्योंकि औद्योगिक उपज देश की तमाम पैदावार की 70 फीसदी तक पहुँच गयी थी।

(ख) समाजवादी आर्थिक व्यवस्था ने उद्योग-धन्धों के क्षेत्र में पूँजीवादी तत्वों को खत्म कर दिया था, और अब वह उद्योग-धन्धों में एकमात्र आर्थिक व्यवस्था रह गयी थी।

(ग) समाजवादी आर्थिक व्यवस्था ने 'वर्ग रूप' में कुलकों को खेती के क्षेत्र से बाहर कर दिया था और वह खेती में प्रमुख शक्ति बन गयी थी।

(घ) सामूहिक खेती की व्यवस्था ने गाँव में दरिद्रता और अभाव खत्म कर दिया था और लाखों गरीब-किसान रोटी-रोजी की चिन्ता से मुक्त होने के स्तर तक आ गये थे।

(ङ) उद्योग-धन्धों में, समाजवादी व्यवस्था ने बेकारी खत्म कर दी थी और कुछ शाखाओं में आठ घण्टे का दिन कायम रखते हुए, बाकी तमाम धन्धों में सात घण्टे का दिन और अस्वास्थ्यकर कामों में छह घण्टे का दिन चालू कर दिया था।

(च) राष्ट्रीय अर्थतंत्र की सभी शाखाओं में, समाजवाद की जीत ने मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण को खत्म कर दिया था।

पहली पंचवर्षीय योजना की सफलताओं का सार-तत्व यह था कि उन्होंने मजदूरों और

किसानों को शोषण के जुवे से पूरी तरह आजाद कर दिया था, और सोवियत संघ में सभी कामकाजी जनता के लिये खुशहाल और सुसंस्कृत जीवन का दरवाजा खोल दिया था।

जनवरी 1934 में, पार्टी ने सत्रहवीं कांग्रेस की। इसमें 18,74,488 पार्टी सदस्यों और 9,35,298 उम्मीदवार सदस्यों की तरफ से 1,225 वोट देने वाले प्रतिनिधि और 736 बोलने लेकिन वोट न दे सकने वाले प्रतिनिधि शामिल हुए।

पिछली कांग्रेस से अब तक पार्टी ने जो काम किया था, कांग्रेस ने उसका लेखा-जोखा लिया। आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन के सभी अंगों में समाजवाद ने जो निर्णायक सफलताएँ पायी थीं, कांग्रेस ने उन्हें नोट किया और यह बात भी दर्ज की कि पार्टी की आम नीति सारे मोर्चे पर विजयी हुई है।

इतिहास में, सत्रहवीं पार्टी कांग्रेस 'विजेताओं की कांग्रेस' कहलाती है।

केन्द्रीय समिति के काम की रिपोर्ट देते हुए, कामरेड स्तालिन ने बताया कि जिस दौर का लेखा-जोखा लिया जा रहा है उसमें सोवियत संघ के अन्दर कौन से बुनियादी परिवर्तन हुए हैं :

> "इस दौर में, सोवियत संघ मूल रूप से बदला जा चुका है और पिछड़ेपन और मध्यकाल की केंचुल उतार कर फेंक चुका है। खेतिहर देश से, अब वह औद्योगिक देश बन गया है। छोटे पैमाने की निजी खेती के देश से, वह सामूहिक, मशीनों से होने वाली बड़े पैमाने की खेती का देश बन गया है। एक अपढ़, अज्ञानी और असंस्कृत देश से, वह शिक्षित और सुसंस्कृत देश बन गया है-या कहना चाहिए बन रहा है-जिसमें उच्च, माध्यमिक और प्राथमिक स्कूलों का एक विशाल जाल बिछा हुआ है, जो सोवियत संघ की राष्ट्रीयताओं की भाषाओं में शिक्षा देते हैं।" (स्तालिन, **लेनिनवाद की समस्याएँ**, अं.सं., मास्को, 1947, पृष्ठ 470)।

इस समय तक, देश के 99 फीसदी उद्योग-धन्धे समाजवादी हो चुके थे। समाजवादी खेती-सामूहिक और सरकारी खेतों-में, देश की कुल खेती की भूमि का 90 फीसदी हिस्सा आ गया था। जहाँ तक व्यापार का सवाल था, इस क्षेत्र से पूँजीवादी तत्व पूरी तरह निकाले जा चुके थे।

जब नयी आर्थिक नीति शुरू की जा रही थी, तब लेनिन ने कहा था कि हमारे देश में पाँच सामाजिक-आर्थिक रूपों के तत्व हैं। पहला रूप दादापंथी आर्थिक व्यवस्था का था, जो बहुत करके आर्थिक व्यवस्था का कुदरती रूप था, यानी जिसमें प्रायः कुछ भी व्यापार न होता था। दूसरा रूप छोटे पैमाने के माल-उत्पादन का था। यह रूप अधिकांश खेतों में देखा जाता था, जो अपनी खेती की उपज बेचते थे और कारीगरों के रूप में भी यह व्यवस्था देखी जाती थी। नेप के पहले वर्षों में, अधिकांश आबादी इसी आर्थिक रूप में शामिल थी। तीसरा रूप व्यक्तिगत पूँजीवाद का था, जो नेप के प्रारम्भिक दौर में फिर जागने लगा था। चौथा रूप जागीरी पूँजीवाद का था, मुख्यतः रियायतों की शकल में, जो काफी हद तक विकसित न हुआ था। पाँचवाँ रूप समाजवाद का था : समाजवादी उद्योग-धन्धे जो अभी कमजोर थे, सरकारी और सामूहिक खेत, जो नेप के आरम्भ में आर्थिक

दृष्टि से नगण्य थे, सरकारी व्यापार और सहकार समितियाँ, जो उस समय कमजोर थीं।

लेनिन ने कहा था कि इन सभी रूपों में समाजवादी रूप को सबसे आगे आना चाहिए।

नयी आर्थिक नीति यों बनायी गयी थी कि आर्थिक व्यवस्था के समाजवादी रूपों की पूरी जीत हो।

सत्रहवीं पार्टी कांग्रेस के समय तक, यह उद्देश्य पूरा भी हो चुका था।

कामरेड स्तालिन ने कहा था :

> "हम अब कह सकते हैं कि पहला, तीसरा और चौथा सामाजिक-आर्थिक रूप अब नहीं है। दूसरा सामाजिक-आर्थिक रूप गौण जगह ठेल दिया गया है, और पाँचवाँ सामाजिक-आर्थिक रूप-समाजवादी रूप-अब सर्वेसर्वा बन गया है, और समूचे राष्ट्रीय अर्थतंत्र में एकमात्र प्रभावशाली शक्ति बन गया है।" (उप., पृष्ठ 472)।

कामरेड स्तालिन की रिपोर्ट में, सैद्धान्तिक-राजनीतिक नेतृत्व के सवाल को अहम जगह दी गयी थी। उन्होंने पार्टी को चेतावनी दी थी कि हालाँकि उसके दुश्मन, सभी रंग-रूप के अवसरवादी और राष्ट्रवादी भटकाव वाले हराये जा चुके हैं, लेकिन उनकी विचारधारा के अवशेष अब भी कुछ पार्टी सदस्यों के दिमाग में बाकी हैं, और अकसर आगे आ जाते हैं। आर्थिक जीवन में और खास तौर से लोगों के दिमाग में, पूँजीवाद के अवशेष एक ऐसी उपजाऊ भूमि हैं जहाँ हारे हुए लेनिनवाद-विरोधी गुटों की विचारधारा पनपती है। लोगों की जहनियत उनकी आर्थिक हालत के विकास के साथ नहीं बढ़ती चलती। नतीजा यह होता है कि पूँजीवादी विचारों के अवशेष लोगों के दिमाग में फिर भी थे, और तब भी रहेंगे जबकि पूँजीवाद आर्थिक जीवन से खत्म भी कर दिया जायेगा। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि चारों तरफ की पूँजीवादी दुनिया, जिसके खिलाफ हमें अपनी तलवार का पानी बनाये रखना है, इन अवशेषों को जगाने और पालने-पोसने की कोशिश कर रही थी।

कामरेड स्तालिन ने राष्ट्रीयताओं के सवाल पर लोगों के दिमाग में जो पूँजीवाद के अवशेष थे और जहाँ उनकी जड़ें खास तौर से मजबूत थीं, उनकी भी चर्चा की। बोल्शेविक पार्टी दो मोर्चों पर लड़ रही थी, वृहत रूसी अन्धराष्ट्रवाद के खिलाफ और स्थानीय राष्ट्रवाद के खिलाफ, दोनों ही भटकावों से लड़ रही थी। कई जनतंत्रों में (उक्रैन, बेलारूस, वगैरह में) पार्टी-संगठनों ने स्थानीय राष्ट्रवाद के खिलाफ संघर्ष ढीला कर दिया था और उसे इस हद तक बढ़ जाने दिया था कि वह विरोधी शक्तियों से, हस्तक्षेप की शक्तियों से मिल गया था और राज्य के लिये खतरा बन गया था। राष्ट्रीयताओं के सवाल पर कौन सा भटकाव ज्यादा खतरनाक है, इस सवाल का जवाब देते हुए, कामरेड स्तालिन ने कहा था :

> "ज्यादा खतरनाक भटकाव वह है जिसके खिलाफ हमने लड़ना बन्द कर दिया है, और इस तरह उसे राज्य के लिये खतरा बन जाने दिया है।" (उप. पृष्ठ 407)।

कामरेड स्तालिन ने पार्टी का आह्वान किया कि वह सैद्धान्तिक-राजनीतिक काम में और सक्रिय हो, विरोधी वर्गों की विचारधारा और उसके अवशेषों का और लेनिनवाद के

विरोधी रुझानों का बाकायदा पर्दाफाश करे।

उन्होंने अपनी रिपोर्ट में आगे बताया कि सही फैसले लेने से ही सफलता पक्की नहीं हो जाती। सफलता पक्की करने के लिये, यह जरूरी है कि ठीक आदमी ठीक जगह पर रखे जायें, ऐसे आदमी जो प्रमुख संस्थाओं के फैसलों को अमल में ला सकें और फैसले पूरे करने की निगरानी कर सकें। इन संगठनात्मक उपायों के बिना, यह खतरा था कि फैसले अमली जीवन से जुदा रह कर कागज के टुकड़े भर बने रहें। इस बात के समर्थन में, कामरेड स्तालिन ने लेनिन की इस प्रसिद्ध उक्ति का हवाला दिया कि संगठन के काम में मुख्य बात आदमियों का चुनाव और फैसले पूरे करने की निगरानी है। कामरेड स्तालिन ने कहा कि जो फैसले लिये जाते हैं और उन्हें अमल में लाने के लिये और उन्हें पूरा करने की निगरानी रखने के लिये जो संगठनात्मक काम किया जाता है, उनके बीच की दरार हमारे अमली काम का मुख्य दोष है।

पार्टी और हुकूमत के फैसलों को पूरा करने की और उनकी अच्छी देखभाल रखने के लिये, सत्रहवीं पार्टी कांग्रेस ने सो.सं.क.पा. (बो.) के अधीन एक पार्टी कण्ट्रोल-कमीशन बनाया और सोवियत संघ की जन-कमिसार समिति के अधीन एक सोवियत कण्ट्रोल कमीशन बनाया। इन्होंने मजदूर-किसान निगरानी और केन्द्रीय कण्ट्रोल कमीशन की संयुक्त संस्था की जगह ली। बारहवीं पार्टी कांग्रेस ने जिस काम के लिये यह संस्था बनायी थी, वह काम पूरा हो चुका था।

कामरेड स्तालिन ने नयी मंजिल में पार्टी के संगठनात्मक कामों की रूपरेखा इस तरह सामने रखी थी :

(1) हमारा संगठनात्मक काम पार्टी की राजनीतिक नीति की जरूरतों के अनुकूल होना चाहिए;

(2) संगठनात्मक नेतृत्व को राजनीतिक नेतृत्व के स्तर तक उठाना चाहिए;

(3) संगठनात्मक नेतृत्व को पूरी तरह इस योग्य बनाना चाहिए कि वह पार्टी के राजनीतिक नारों और फैसलों को निश्चित रूप से अमल में ला सके।

अन्त में, कामरेड स्तालिन ने पार्टी को सावधान किया कि हालाँकि समाजवाद ने भारी सफलताएँ प्राप्त की हैं, ऐसी सफलताएँ जिन पर हम सही गर्व कर सकते हैं, लेकिन इससे हमें बदहवास न होना चाहिए, अपना 'सिर न फिर जाने देना चाहिए', सफलता पर पाँव फैलाकर सो न जाना चाहिए।

कामरेड स्तालिन ने कहा :

"...हमें पार्टी को थपकी देकर सुलाना नहीं चाहिए, बल्कि उसकी चौकसी तेज करनी चाहिए; उसे थपकी देकर सुलाना न चाहिए, बल्कि काम करने के लिये उसे तैयार रखना चाहिए; उसे निहत्था नहीं करना चाहिए, बल्कि हथियारबन्द करना चाहिए; उसे भंग न करना चाहिए, बल्कि दूसरी पंचवर्षीय योजना पूरी करने के लिये उसे मुस्तैद रखना चाहिए।" (उप., पृष्ठ 517)

राष्ट्रीय अर्थतंत्र के विकास के लिये, दूसरी पंचवर्षीय योजना पर सत्रहवीं कांग्रेस ने कामरेड मोलोतोव और कुइविशेव की रिपोर्टें सुनीं। दूसरी पंचवर्षीय योजना का कार्यक्रम

पहली पंचवर्षीय योजना से भी बड़ा था। 1937 में, दूसरी पंचवर्षीय योजना पूरी होने तक युद्ध-पूर्व के मुकाबले में, औद्योगिक उपज लगभग आठ गुनी बढ़ानी थी। दूसरी पंचवर्षीय योजना के दौर में, सभी शाखाओं में लगायी हुई पूँजी 1 खरब 33 अरब रूबल होनी थी, जबकि पहली पंचवर्षीय योजना के दौर में 64 अरब रूबल से कुछ ही अधिक पूँजी लगी थी।

बड़े पैमाने के इस नये निर्माण कार्य का विशाल दायरा यह बात निश्चित करता था कि राष्ट्रीय अर्थतंत्र की सभी शाखायें फिर पूरी तरह कौशल से लैस हो जायें।

दूसरी पंचवर्षीय योजना को मुख्यतः खेती में मशीनें लागू करने का काम पूरा करना था। कुल ट्रैक्टर शक्ति 1932 में 22 लाख 50 हजार हॉर्स पावर से बढ़कर, 1937 में 80 लाख हार्स पावर से ऊपर पहुँचानी थी। इस योजना में, खेती के वैज्ञानिक तरीकों का विस्तार से प्रयोग करने का ख्याल रखा गया था (फसलों की सही अदल-बदल, चुने हुए बीज का प्रयोग, शरद में जुताई, वगैरह)।

यातायात और चिट्ठी-पत्री के साधनों को कौशल से पुनर्संगठित करने के लिये, एक विशाल योजना बनायी गयी।

दूसरी पंचवर्षीय योजना में, मजदूरों और किसानों के भौतिक और सांस्कृतिक जीवन-स्तर को और उन्नत करने के लिये एक विस्तृत कार्यक्रम बनाया गया।

सत्रहवीं कांग्रेस ने संगठन की बातों पर बहुत ध्यान दिया, और कामरेड कगानोविच की रिपोर्ट के सिलसिले में पार्टी और सोवियतों के काम पर फैसले मंजूर किये। अब, जबकि पार्टी की आम नीति विजयी हो चुकी थी और पार्टी की नीति लाखों मजदूरों और किसानों के तजुर्बे से परखी और कसी जा चुकी थी, तब संगठन का सवाल और भी महत्त्वपूर्ण हो गया था। दूसरी पंचवर्षीय योजना के नये और पेचीदा काम पूरे करने के लिये, यह जरूरी था कि सभी क्षेत्रों में काम का स्तर ऊँचा किया जाये।

संगठनात्मक सवालों पर कांग्रेस के फैसलों में कहा गया था :

> "दूसरी पंचवर्षीय योजना के मुख्य काम यह हैं-पूँजीवादी तत्वों को पूरी तरह खत्म करना, आर्थिक जीवन और लोगों के दिमाग से पूँजीवाद के अवशेष खत्म करना, आधुनिकतम कौशल के अनुसार सारे राष्ट्रीय अर्थतंत्र को पूरी तरह पुनर्संगठित करना, नये कौशल के सामान और नये धन्धों का उपयोग करना सीखना, खेती में मशीनें चालू करना और उसकी पैदावार बढ़ाना। यह काम हमारे सामने बार-बार और जोरों से यह समस्या पेश करते हैं कि **सभी क्षेत्रों में काम सुधारा जाये, और सबसे पहले अमली संगठनात्मक नेतृत्व का काम सुधारा जाये।**" (**सो.सं.क.पा. (बो.) के प्रस्ताव,** रू.सं., भाग 2, पृष्ठ 591)।

सत्रहवीं कांग्रेस ने नयी पार्टी नियमावली मंजूर की। यह नियमावली पहले की नियमावली से सबसे पहले इस बात में भिन्न थी कि इसमें एक भूमिका थी। इस भूमिका में, कम्युनिस्ट पार्टी की थोड़े में व्याख्या की गयी है और सर्वहारा संघर्ष में उसकी भूमिका और सर्वहारा अधिनायकत्व की व्यवस्था में उसकी जगह की व्याख्या की गयी है। नयी नियमावली

में, विस्तार से पार्टी सदस्यों के कर्त्तव्य बताये गये हैं। नये सदस्यों को भर्ती करने के बारे में नियम और कठोर कर दिये गये और हमदर्दों के गुटों के बारे में एक धारा जोड़ दी गयी। इस नयी नियमावली से, पार्टी-संगठन की बनावट की विस्तृत व्याख्या मिलती थी। इसमें पार्टी केन्द्रों, या जैसा कि सत्रहवीं पार्टी कांग्रेस के बाद उनका नाम पड़ गया है, प्राथमिक संगठनों के बारे में धारायें फिर से लिखी गयी थीं। पार्टी के अन्दरूनी जनवाद और पार्टी अनुशासन से सम्बन्धित धाराओं को भी फिर से लिखा गया था।

4. बुखारिनपंथियों का राजनीतिक दगेबाजी तक उतरना। त्रात्स्कीपंथी दगेबाजों का हत्यारों और जासूसों का एक गद्दार गुट बनना। स.म. किरोव की नीच हत्या। बोल्शेविक चौकसी बढ़ाने के लिये पार्टी के उपाय।

हमारे देश में समाजवाद की सफलताओं से, न सिर्फ पार्टी को खुशी हुई, न सिर्फ मजदूरों और सामूहिक किसानों को खुशी हुई, बल्कि सोवियत बुद्धिजीवियों को और सोवियत संघ के सभी ईमानदार नागरिकों को भी खुशी हुई।

लेकिन, हराये हुए शोषक वर्गों के बचे-खुचे लोगों को इनसे खुशी नहीं हुई, उल्टे जैसे-जैसे समय बीतता गया वे और भी जलभुन कर राख होते गये।

पराजित वर्गों के पिट्ठू, बुखारिन और त्रात्स्की के अनुयायियों में से बचे-खुचे टुटपुँजिये आपे से बाहर होते गये।

ये लोग मजदूरों और सामूहिक किसानों की सफलताओं का मूल्य जनता के हितों को ध्यान में रखकर न आँकते थे। जनता हर सफलता का हर्ष से अभिनन्दन करती थी। ये लोग इन सफलताओं का मूल्यांकन उस पतित और सड़े-गले गुट को ध्यान में रखकर करते थे जिसका जीवन की वास्तविकता से कोई सम्बन्ध न रह गया था। हमारे देश में, समाजवाद की सफलताओं का मतलब था-पार्टी नीति की जीत और इन लोगों की नीति का निरा दिवालियापन। इसलिए, ये सज्जन खुली हकीकत को मानने और सार्वजनिक उद्देश्य में मिलकर आगे बढ़ने के बदले पार्टी और जनता से अपनी असफलता का, अपने दिवालियेपन का बदला लेने लगे। मजदूरों और सामूहिक किसानों के उद्देश्य के खिलाफ वे तोड़-फोड़ और कमीनी हरकतें करने लगे; खानों को बारूद से उड़ाने, कारखानों में आग लगाने और सामूहिक और सरकारी खेतों में तोड़-फोड़ के काम करने लगे। उनका उद्देश्य यह था कि मजदूरों और सामूहिक किसानों की सफलताओं को नाकाम कर दिया जाये ओर सोवियत सरकार के खिलाफ जनता का असन्तोष उभारा जाये। यह सब करते हुए, अपने पिद्दी गुट को भण्डाफोड़ और सत्यानाश से बचाने के लिये, वे पार्टी के प्रति वफादार होने का स्वाँग करते थे, उसके तलुवे चाटते थे, उसकी तारीफें करते थे, उसके सामने नाक रगड़ते थे और हकीकत में मजदूरों और किसानों के खिलाफ चोरी से तोड़-फोड़ का काम किये चले जा रहे थे।

सत्रहवीं पार्टी कांग्रेस में, बुखारिन, राइकोव और तोम्स्की ने पश्चाताप प्रकट करते हुए भाषण दिये, पार्टी की प्रशंसा की और उसकी सफलताओं की तारीफ के पुल बाँध दिये।

लेकिन, कांग्रेस ने देखा कि उनके भाषणों में बेईमानी और दगाबाजी का स्वर छिपा हुआ है। पार्टी अपने सदस्यों से यह उम्मीद नहीं करती कि उसकी तारीफों के पुल बाँधें और उसकी सफलताओं की प्रशंसा के गीत गायें, बल्कि यह उम्मीद करती है कि वे समाजवादी मोर्चे पर ईमानदारी से काम करें। और, बुखारिनपंथियों ने ऐसा करने का बहुत दिन से कोई ढंग ही न दिखाया था। पार्टी ने देखा कि इन सज्जनों के थोथे व्याख्यान दरअसल कांग्रेस से बाहर उनके समर्थकों के लिये हैं, जिससे कि वे दगाबाजी में सबक सीखें और साथ ही हथियार भी न डालें।

सत्रहवीं कांग्रेस में, जिनोवियेव और कामेनेव ने भी भाषण दिये। उन्होंने गलतियों के लिये अपनी बेहद लानत-मलामत की और पार्टी की सफलताओं के लिये उसकी बेहद तारीफ की। लेकिन, कांग्रेस से यह छिपा न रहा कि उनकी उबा देने वाली लानत-मलामत और पार्टी की उनके द्वारा खुशामदी तारीफ उनकी बेचैन और बेईमान आत्मा को छिपाने के लिये ही थी। फिर भी, पार्टी अभी यह न जानती थी और न उसे यह शक था कि कांग्रेस में अपने मीठे-मीठे भाषण करने वाले यह लोग तभी स.म. किरोव के जीवन के खिलाफ एक नीच षड्यंत्र भी रच रहे थे।

1 दिसम्बर 1934 को, स.म. किरोव लेनिनग्राद में, स्मोल्नी में पिस्तौल की गोली से नीचतापूर्वक मारे गये।

हत्यारा अपना काम करते हुए ही पकड़ लिया गया। वह एक गुप्त क्रान्ति-विरोधी गुट का सदस्य निकला। इस गुट के लोग लेनिनग्राद में जिनोवियेवपंथियों के एक सोवियत-विरोधी गुट के सदस्य थे।

स.म. किरोव को पार्टी और मजदूर वर्ग प्यार करते थे। उनकी हत्या से, जनता में भारी हलचल हुई। सारे देश में, गुस्से और भारी क्षोभ की लहर फैल गयी।

जाँच-पड़ताल से मालूम हुआ कि 1933 और 1934 में लेनिनग्राद में एक गुप्त क्रान्ति-विरोधी आतंकवादी गुट कायम हुआ था। इसमें जिनोवियेव विरोध के भूतपूर्व सदस्य थे, और इनके सिरे पर तथाकथित 'लेनिनग्राद केन्द्र' था। इस गुट का उद्देश्य कम्युनिस्ट पार्टी के नेताओं की हत्या करना था। उन्होंने अपना पहला शिकार स.म. किरोव को चुना। इस क्रान्ति-विरोधी गुट के सदस्यों की गवाही से पता चला कि उनका सम्बन्ध विदेशी पूँजीवादी जागीरों के प्रतिनिधियों से है, और उनसे उन्हें पैसा मिलता है।

सोवियत संघ की प्रधान अदालत के फौजी न्यायालय ने इस संगठन के उन सदस्यों को सबसे बड़ा दण्ड, गोली मारने का दण्ड दिया, जिनका पर्दाफाश हो चुका था।

कुछ दिन बाद ही, 'मास्को केन्द्र' नाम के एक गुप्त क्रान्ति-विरोधी संगठन की हकीकत का पता चला। शुरू की ही जाँच-पड़ताल और मुकदमे से, पता चला कि जिनोवियेव, कामेनेव, येवदोकिमोव और इस संगठन के दूसरे नेताओं ने अपने अनुयायियों में आतंकवादी जहनियत पैदा करने और पार्टी की केन्द्रीय समिति और सोवियत सरकार के सदस्यों की हत्या का षड्यंत्र रचने में नीचतापूर्ण भूमिका अदा की है।

ये लोग दगाबाजी और पाजीपन की इस सतह तक उतर आये थे कि जिनोवियेव ने, जो किरोव की हत्या का एक संगठनकर्ता और उकसाने वाला था और जिसने हत्यारे से जल्द

ही अपना काम करने को कहा था, किरोव की मृत्यु पर उनकी बहुत तारीफ करते हुए एक संवेदनापूर्ण लेख लिखा था और यह माँग की थी कि वह प्रकाशित किया जाये।

जिनोवियेवपंथियों ने अदालत में पश्चाताप करने का स्वाँग किया, लेकिन कठघरे में भी वे अपनी दुरंगी चालों से बाज न आये। उन्होंने त्रात्स्की से अपना सम्बन्ध छिपाया। उन्होंने यह बात छिपायी कि त्रात्स्कीवादियों के साथ उन्होंने भी अपने को फासिस्ट जासूस-विभागों के हाथ बेच दिया है। उन्होंने अदालत से यह बात छिपायी कि बुखारिनपंथियों से उनका सम्बन्ध है और फासिस्ट गुर्गों का एक संयुक्त त्रात्स्की-बुखारिन गुट बना हुआ है।

जैसा कि आगे पता चला, कामरेड किरोव की हत्या इस संयुक्त त्रात्स्की-बुखारिन गुट का काम था।

फिर भी, 1935 में, यह साफ हो गया था कि जिनोवियेव गुट एक छिपा हुआ गद्दार संगठन है, जिसके सदस्यों के साथ गद्दारों जैसा व्यवहार करना बिल्कुल उचित होगा।

एक साल बाद, पता चला कि किरोव की हत्या के सही-सही, वास्तविक और सीधे संगठनकर्ता त्रात्स्की, जिनोवियेव, कामेनेव, और उनके साथी-संघाती थे और उन्होंने केन्द्रीय समिति के दूसरे सदस्यों की भी हत्या करने की तैयारी की थी। जिनोवियेव, कामेनेव, बकायेव, येवदोकिमोव, पिकेल, इ.न. स्मिरनोव, भ्राचकोव्स्की, तेस्वगन्यान, राइनगोल्ड वगैरह पर मुकदमा चला। प्रत्यक्ष सबूत सामने होने पर, उन्हें सरेआम खुली अदालत में मंजूर करना पड़ा कि उन्होंने किरोव की हत्या का ही संगठन नहीं किया था बल्कि पार्टी और हुकूमत के तमाम दूसरे नेताओं की हत्या की भी योजना बना रहे थे। बाद की जाँच-पड़ताल से, यह बात निश्चित हुई कि ये गुण्डे जासूसी के काम और तोड़-फोड़ के काम संगठित करने में लगे हुए थे। मास्को में, 1936 में जो मुकदमा चला, उससे पता चला कि इन लोगों का कैसा भीषण नैतिक और राजनीतिक पतन हुआ है, इनकी घृणित गुण्डागीरी और गद्दारी क्या है, जिसे पार्टी के प्रति वफादारी की झूठी कसमें खाकर उन्होंने छिपाया था।

हत्यारों और जासूसों के इस गिरोह का सरगना और खास भड़काने वाला जूडस (विश्वासघाती) त्रात्स्की था। त्रात्स्की के क्रान्ति-विरोधी हुक्मों को अमल में लाने वाले उसके सहायक और दलाल जिनोयियेव, कामेनेव और उनके त्रात्स्कीवादी गुर्गे थे। वे इस बात की तैयारी कर रहे थे कि साम्राज्यवादी देश हमला करें तो सोवियत संघ को हरा दिया जाये। जहाँ तक कि मजदूरों और किसानों के राज्य का सवाल था, वे पराजयवादी हो चुके थे। वे जर्मन और जापानी फासिस्टों के घृणित चाकर और दलाल बन चुके थे।

स.म. किरोव की नीच हत्या के लिये जिन लोगों पर मुकदमे चले थे, उन से पार्टी-संगठनों को यह मुख्य सबक लेना था कि वे अपने राजनीतिक अन्धेपन और राजनीतिक लापरवाही को दूर करें, और अपनी चौकसी तथा तमाम पार्टी सदस्यों की चौकसी बढ़ायें।

पार्टी-संगठनों के नाम स.म. किरोव की नीच हत्या के विषय पर, एक गश्ती चिट्ठी में, पार्टी की केन्द्रीय समिति ने कहा था :

"(क) एक गलत धारणा बन गयी है कि हम जैसे मजबूत होते जायेंगे, वैसे ही

दुश्मन और भी पालतू और ज्यादा निर्दोष होता जायेगा। इससे जो अवसरवादी आत्मसन्तोष की भावना पैदा होती है, हमें उसे खत्म करना चाहिए। यह धारणा बिल्कुल झूठी है। यह दक्षिणपंथी भटकाव का फिर से जागना है। यह भटकाव सभी को यकीन दिलाता था कि हमारे दुश्मन धीरे-धीरे समाजवाद की तरफ घिसट आयेंगे और अन्त में सच्चे समाजवादी बन जायेंगे। बोल्शेविकों को अपनी सफलताओं पर सन्तोष करके हरगिज न बैठ रहना चाहिए। उन्हें अपनी तैनाती की जगह पर हरगिज न सोना चाहिए। हमें आत्मसन्तोष नहीं चाहिए, बल्कि चौकसी, सच्ची बोल्शेविक क्रान्तिकारी चौकसी चाहिये। यह याद रखना चाहिए कि दुश्मनों की हालत जितनी ही निराशाजनक होगी उतनी ही आतुरता से वे उग्र कदम उठायेंगे, क्योंकि इसी को वे सोवियत सत्ता के खिलाफ मौत का वारण्ट पाने वालों की लड़ाई का एकमात्र चारा समझेंगे। हमें यह याद रखना चाहिए और चौकस रहना चाहिए।

"(ख) हमें इस बात का उचित संगठन करना चाहिए कि पार्टी सदस्यों को पार्टी इतिहास की शिक्षा दी जा सके, हमारी पार्टी के इतिहास में सभी पार्टी-विरोधी गुटों और पार्टी नीति से लड़ने के लिये उनके तरीकों, उनके दाँव-पेंच और उससे भी ज्यादा पार्टी-विरोधी गुटों से लड़ने में हमारी पार्टी के दाँव-पेच और तरीकों के इतिहास का अध्ययन करना चाहिए जिनसे कि हमारी पार्टी इन गुटों को परास्त कर सकी और उनका नाश कर सकी। पार्टी सदस्यों को यही न जानना चाहिए कि किस तरह पार्टी ने संवैधानिक जनवादियों, समाजवादी-क्रान्तिकारियों, मेन्शेविकों और अराजकतावादियों का मुकाबला किया और उन्हें परास्त किया, बल्कि यह भी कि उसने कैसे त्रात्स्कीवादियों, 'जनवादी-केन्द्रवादियों', 'मजदूर-विरोध', जिनोवियेवपंथियों, दक्षिणपंथी भटकाव वालों और दक्षिणवामपंथी अजूबों वगैरह का मुकाबला किया और उन्हें परास्त किया। यह कभी न भूलना चाहिए कि पार्टी सदस्यों की क्रान्तिकारी चौकसी पक्की करने के लिये हमारी पार्टी के इतिहास की जानकारी और समझ एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण और जरूरी साधन है।"

1933 में, पार्टी की कतारों से फालतू और ऐरे-गैरे लोगों का निकालना शुरू हुआ। यह शुद्धि बहुत ही महत्त्वपूर्ण थी। खास तौर से पार्टी सदस्यों के रिकार्ड को सावधानी से जाँचा गया, और स.म. किरोव की नीच हत्या के बाद, पुराने पार्टी कार्डों के बदले नये कार्ड दिये गये। इसका बहुत ही महत्त्व था।

पार्टी सदस्यों के रिकार्ड की जाँच के पहले, बहुत से पार्टी-संगठनों में पार्टी कार्डों में बहुत ही लापरवाही और गैर-जिम्मेदारी बरती जाती थी। कई संगठनों में पता चला कि **कम्युनिस्टों की रजिस्ट्री करने में अराजकता** एकदम असहनीय हो गयी है। इस तरह की हालत से, दुश्मन अपना नीच उद्देश्य साधते थे। पार्टी कार्ड लेकर वह उसे जासूसी, तोड़-फोड़, वगैरह के लिये पर्दे की तरह काम में लाते थे। पार्टी-संगठनों के बहुत से नेताओं ने नये सदस्य भर्ती करने और पार्टी कार्ड देने का काम छोटी जगहों के लोगों को दे रखा था और कभी-कभी उन पार्टी सदस्यों तक को दे रखा था जिनके विश्वासपात्र होने की परीक्षा

भी न हुई थी।

13 मई 1935 को, पार्टी कार्डों की रजिस्ट्री, सुरक्षा और वितरण के बारे में तमाम संगठनों के नाम एक गश्ती चिट्ठी में, केन्द्रीय समिति ने उन्हें निर्देश किया कि सावधानी से पार्टी सदस्यों के रिकार्ड की जाँच करें और 'खुद अपनी पार्टी-अपने घर-में बोल्शेविक व्यवस्था कायम करें।'

पार्टी सदस्यों के रिकार्ड की जाँच बहुत ही राजनीतिक महत्त्व की बात थी। पार्टी सदस्यों के रिकार्ड की जाँच के नतीजों के सिलसिले में, पार्टी की केन्द्रीय समिति की प्लेनरी बैठक ने 25 दिसम्बर 1935 को एक प्रस्ताव पास किया, जिसमें कहा गया कि यह जाँच सो.सं.क.पा. (बो.) की कतारों को मजबूत करने में बहुत ही महत्त्वपूर्ण राजनीतिक और संगठनात्मक कदम है।

पार्टी सदस्यों के रिकार्ड की जाँच और पार्टी कार्डों की तब्दीली के बाद, पार्टी में नये सदस्यों की भर्ती फिर शुरू हुई। इस सिलसिले में, सो.सं.क.पा. (बो.) की केन्द्रीय समिति ने माँग की कि पार्टी में नये सदस्य दल के दल न भर्ती किये जायें, बल्कि सख्ती के साथ उनकी अलग-अलग भर्ती हो, और भर्ती में इस बात का ध्यान रखा जाये कि वही लोग आयें "जो सचमुच आगे बढ़े हुए हैं और मजदूर वर्ग के उद्देश्य के प्रति सचमुच वफादार हैं। देश के सबसे अच्छे लोग, मुख्यतः मजदूरों, किसानों और सक्रिय बुद्धिजीवियों में से भी, जो समाजवाद के लिये संघर्ष के विभिन्न मोर्चों पर परखे और कसे जा चुके हैं।"

पार्टी में नये सदस्यों की भर्ती फिर शुरू करने में केन्द्रीय समिति ने पार्टी संगठनों को निर्देश दिया कि वे इस बात का ध्यान रखें कि विरोधी लोग सो.सं.क.पा. (बो.) की कतारों में घुस आने के लिए बराबर कोशिशें करते रहेंगे। इसलिए :

> "हर पार्टी संगठन का काम है कि बोल्शेविक चौकसी ज्यादा से ज्यादा बढ़ाये, लेनिनवादी पार्टी का झण्डा ऊँचा रखे और विरोधी, गैर और फालतू लोगों के भीतर घुस आने से पार्टी की कतारों की रक्षा करे।" (सो.सं.क.पा. (बो.) की केन्द्रीय समिति का प्रस्ताव, 29 सितम्बर 1936, **प्राव्दा**, अंक 270, 1936 में प्रकाशित)।

बोल्शेविक पार्टी ने अपनी कतारों को शुद्ध किया और मजबूत किया, पार्टी के शत्रुओं का नाश किया और पार्टी नीति की तोड़-मरोड़ का निर्ममता से मुकाबला किया। इस तरह, बोल्शेविक पार्टी अपनी केन्द्रीय समिति के चारों तरफ और भी सिमट आयी, जिसके नेतृत्व में पार्टी और सोवियत देश ने एक नयी मंजिल में प्रवेश किया-एक वर्गहीन, समाजवादी समाज के निर्माण को पूरा करने की मंजिल में प्रवेश किया।

सारांश

1930-34 के दौर में, सत्ता हासिल करने के बाद सर्वहारा क्रान्ति की सबसे कठिन ऐतिहासिक समस्या को बोल्शेविक पार्टी ने हल किया, यानी लाखों निजी खेती करने वाले किसानों को सामूहिक खेती की राह पर, समाजवाद की राह पर लाने की समस्या को हल किया।

शोषक वर्गों में सबसे बहुसंख्यक कुलकों के खात्मे से और अधिकांश किसानों द्वारा सामूहिक खेती का रास्ता अपनाने से, देश में पूँजीवाद की आखिरी जड़ें उखड़ गयीं, खेती में समाजवाद की आखिरी जीत हुई, और देहात में सोवियत सत्ता पूरी तरह मजबूत हुई।

संगठन-सम्बन्धी कई कठिनाइयाँ दूर करने के बाद, सामूहिक खेत मजबूती से कायम हो गये और खुशहाली की राह पर आगे बढ़ने लगे।

पहली पंचवर्षीय योजना का फल यह हुआ कि प्रथम श्रेणी के समाजवादी उद्योग-धन्धों के रूप में और मशीनों से होने वाली सामूहिक खेती के रूप में, हमारे देश में समाजवादी आर्थिक व्यवस्था की अडिग नींव डाली गयी, बेकारी खत्म की गयी, मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण खत्म किया गया और हमारी श्रमिक जनता का भौतिक और सांस्कृतिक जीवन-स्तर बराबर ऊँचा करने के लिये परिस्थितियाँ रची गयीं।

ये विराट सफलताएँ मजदूर वर्ग ने, सामूहिक किसानों और हमारे देश की आम मेहनतकश जनता ने पार्टी और सरकार की साहसी, क्रान्तिकारी और बुद्धिमान नीति की बदौलत हासिल कीं।

चारों तरफ की पूँजीवादी दुनिया सोवियत संघ की ताकत तोड़ने और कमजोर करने की कोशिशें कर रही थी। वह सोवियत संघ में तोड़-फोड़ करने वालों, हत्यारों और जासूसों के गिरोह संगठित करने में दूने जोर-शोर से लग गयी। जर्मनी और जापान में फासिज्म के सत्तारूढ़ होने पर, पूँजीवादी घेरे की यह विरोधी कार्रवाई खास तौर से उभरकर सामने आयी। त्रात्स्कीवादियों और जिनोवियेवपंथियों में फासिज्म को वफादार चाकर मिले, जो जासूसी, तोड़-फोड़, आतंक और भड़काने के काम करने के लिये तैयार थे और पूँजीवाद को बहाल करने के लिये, सोवियत संघ की पराजय के लिये काम करने को तैयार थे।

सोवियत सरकार ने इन पतित लोगों को फौलादी हाथ से दण्ड दिया, और जनता के शत्रुओं और देश के प्रति गद्दारों के साथ निर्ममता से व्यवहार किया।

बारहवाँ अध्याय

समाजवादी समाज के निर्माण को पूरा करने के संघर्ष में बोल्शेविक पार्टी। नये विधान का प्रचलन। (1935-37)

1. 1935-'37 में अन्तरराष्ट्रीय परिस्थिति। अस्थायी रूप से आर्थिक संकट का कम होना। नये आर्थिक संकट की शुरुआत। इटली का अबीसीनिया हड़पना। स्पेन में जर्मनी और इटली का हस्तक्षेप। मध्यचीन पर जापानी हमला। दूसरे साम्राज्यवादी युद्ध की शुरुआत।

1929 के उत्तरार्द्ध में पूँजीवादी देशों में जो आर्थिक संकट फूट पड़ा था, वह 1933 तक चला। उसके बाद उद्योग-धन्धों का पतन बन्द हुआ, संकट के बाद ठहराव का दौर आया और उसके बाद, एक हद तक उद्योग-धन्धों में नयी जान आयी, एक हद तक उनकी गति आगे को हुई। लेकिन, यह प्रगति ऐसी न थी जो एक नयी और ऊँची सतह पर औद्योगिक खुशहाली का दौर शुरू करती। विश्व पूँजीवाद के उद्योग-धन्धे 1929 के स्तर तक भी न पहुँच पाये। 1937 के मध्य तक, वह उसके 95-96 फीसदी तक ही पहुँच पाये। 1937 के पूर्वार्द्ध में ही, एक नया आर्थिक संकट शुरू हुआ, जिसका असर सबसे पहले संयुक्त राज्य अमरीका पर पड़ा। 1937 के आखिर तक, अमरीका में बेकारों की तादाद एक करोड़ तक पहुँच गयी थी। ब्रिटेन में भी बेकारी तेजी से बढ़ रही थी।

इस तरह, पूँजीवादी देश अभी पिछले आर्थिक संकट की तबाही से सँभल न पाये थे कि उन्होंने अपने सामने नया आर्थिक संकट देखा।

नतीजा यह हुआ कि साम्राज्यवादी देशों के परस्पर विरोध और वैसे ही पूँजीपतियों और सर्वहारा के अन्तरविरोध और तेज हुए। इसके फलस्वरूप, हमलावर जागीरों के घर में आर्थिक संकट से जो क्षति हुई थी, उसे पूर्ण करने के लिये उन्होंने दूसरे अरक्षित देशों को हड़पने की तैयारी और जोरशोर से शुरू कर दी। इस समय तक, दो मशहूर हमलावर देशों, जर्मनी और जापान, के साथ एक तीसरी जागीर इटली भी मिल गयी।

1935 में, फासिस्ट इटली ने अबीसीनिया पर हमला किया और उस पर अधिकार कर लिया। 'अन्तरराष्ट्रीय कानून' के अनुसार बिना किसी सफाई या सबब के, उसने ऐसा

किया। बिना लड़ाई का ऐलान किये, उसने अबीसीनिया पर डाकू की तरह हमला किया, जिसका अब फासिस्टों में चलन हो गया है। यह अबीसीनिया पर ही प्रहार नहीं था, बल्कि ब्रिटेन पर भी था; यूरोप से हिन्दुस्तान और आम तौर से एशिया को आने वाले उसके समुद्री मार्गों पर प्रहार था। ब्रिटेन ने अबीसीनिया में इटली को पैर जमाने से रोकने की विफल कोशिशें कीं। आगे चलकर, इटली लीग ऑफ नेशन्स से अलग हो गया, जिससे कि उसके हाथ खाली रहें और वह जोरों से हथियारबन्दी करने लगा।

इस तरह, यूरोप और एशिया के बीच सबसे छोटे जल-मार्गों पर लड़ाई की एक नयी गिरह पड़ गयी।

फासिस्ट जर्मनी ने एकतरफा कार्रवाई करके, वर्साई की शान्ति-सन्धि को रद्द कर दिया और यूरोप के मानचित्र का बलपूर्वक संशोधन करने के लिये एक योजना स्वीकार की। जर्मन फासिस्ट इस बात को छिपाते न थे कि वे पास-पड़ोस के देशों पर कब्जा करना चाहते थे, या कम-से-कम उनके ऐसे इलाकों को हड़पना चाहते थे जहाँ जर्मन रहते थे। इसलिए, उन्होंने पहले ऑस्ट्रिया को हड़पने की योजना बनायी और उसके बाद चेकोस्लोवाकिया पर हमला करने और उसके बाद हो सकता है कि पोलैण्ड पर हमला करने का विचार किया। पोलैण्ड में भी एक ऐसा गठा हुआ इलाका है जहाँ जर्मन रहते हैं और जो जर्मनी के सीमान्त पर है। और उसके बाद... खैर, उसके बाद “देखा जायेगा”।

1936 की गर्मियों में, जर्मनी और इटली ने स्पेन के जनतंत्र में फौजी हस्तक्षेप शुरू किया। स्पेन के फासिस्टों की मदद करने के बहाने, उन्होंने इस बात का मौका ढूँढ़ लिया कि चोरी से स्पेन की धरती पर, फ्रांस के पृष्ठभाग में अपनी फौजें उतार दें, और स्पेन के समुद्र में-वालीरिक द्वीपों और जिब्राल्टर के भागों में दक्षिण से, अटलाण्टिक समुद्र में पश्चिम से, विस्के की खाड़ी में उत्तर से-अपने जहाजी बेड़े तैनात कर दें। 1937 के आरम्भ में, जर्मन फासिस्टों ने आस्ट्रिया पर कब्जा कर लिया। और इस तरह, दैन्यूब नदी के मध्य भाग में पैर जमा लिये और दक्षिण यूरोप में एड्रियाटिक समुद्र की तरफ पसरने लगे।

जर्मन और इटालियन फासिस्टों ने स्पेन में अपना हस्तक्षेप बढ़ाया और साथ ही दुनिया को भरोसा दिलाते रहे कि वे स्पेन के ‘कम्युनिस्टों’ से लड़ रहे हैं और उनका दूसरा कोई मंसूबा नहीं है। लेकिन यह छिछला और भोंड़ा बहाना था, जिससे सीधे-सादे लोग बहलाये जा सकें। वास्तव में, वे ब्रिटेन और फ्रांस के समुद्री मार्गों पर पैर जमा कर-जिनके अफ्रीका और एशिया में बड़े-बड़े उपनिवेश थे-इन देशों पर ही प्रहार कर रहे थे।

जहाँ तक आस्ट्रिया को हड़पने का सवाल था, कम-से-कम इसे यह न कहा जा सकता था कि यह वर्साई सन्धि-पत्र के खिलाफ संघर्ष है, कि पहले साम्राज्यवादी युद्ध में खोये हुए प्रदेश को लौटा कर जर्मनी के ‘राष्ट्रीय’ हितों की रक्षा करने का प्रयत्न है। आस्ट्रिया न तो युद्ध के पहले और न उसके बाद जर्मनी का हिस्सा रहा था। आस्ट्रिया का बलपूर्वक अपहरण, विदेशी भूमि के साम्राज्यवादी हड़पने की बहुत जीती-जागती मिसाल था। इससे फासिस्ट जर्मनी के मंसूबों के बारे में कोई शक न रहा कि वह पश्चिमी यूरोप के महाद्वीप में प्रभुत्व की जगह बनाना चाहता था।

सबसे बढ़कर, यह फ्रांस और ब्रिटेन के हितों पर प्रहार था।

इस तरह, यूरोप के दक्षिण में, आस्ट्रिया और एड्रियाटिक के कटिबन्ध में, और यूरोप के धुर पश्चिम में, स्पेन और उसके सीमान्त छूने वाले समुद्रों के कटिबन्ध में युद्ध की नयी गिरहें लगाई जा रही थीं।

1937 में, जापानी फासिस्ट सैन्यवादियों ने पेइपिङ पर कब्जा कर लिया, मध्य चीन पर हमला किया और शंघाई ले लिया। कई साल पहले, मंचूरिया पर जापानी हमले की तरह, मध्यचीन पर भी जापानियों ने अपने प्रचलित ढंग से हमला किया। उन्होंने खुद अपनी तरफ से उकसाई हुई विभिन्न 'स्थानीय घटनाओं' को बेईमानी से इस्तेमाल करके और सभी 'अन्तरराष्ट्रीय नियमों', सन्धियों, समझौतों, वगैरह को तोड़कर, डाकुओं की तरह यह हमला किया। तिनचिन और शंघाई पर कब्जा होने से, चीन के विशाल बाजार का दरवाजा जापान के लिये खुल गया। जब तक तिनचिन और शंघाई जापान के हाथ में हैं, तब तक वह कभी भी मध्यचीन से ब्रिटेन और अमरीका को निकाल सकता है जहाँ उनकी भारी पूँजी लगी हुई है।

इसमें सन्देह नहीं कि चीन में जापानी साम्राज्यवादियों का कोई भविष्य नहीं है, और न कभी होगा। कारण यह कि जापानी हमलावरों के खिलाफ चीनी जनता और उसकी फौज ने वीरता से युद्ध किया है। चीन में विशाल राष्ट्रीय नवजागरण हुआ है। उसके पास जनशक्ति और धरती के विराट साधन हैं। और अन्त में, चीनी राष्ट्रीय सरकार का निश्चय है कि अन्त तक मुक्तियुद्ध किया जाये जब तक कि चीनी भूमि से हमलावर पूरी तरह निकाल नहीं दिये जाते। इन सब बातों से जरा भी सन्देह नहीं रह जाता कि चीन में जापानी साम्राज्ययवादियों का न तो कोई भविष्य है, न होगा।

फिर भी, यह सच है कि फिलहाल चीन के व्यापार की कुंजी जापान के हाथ में है और चीन के खिलाफ उसका युद्ध ब्रिटेन और अमरीका के हितों पर एक बहुत बड़ा प्रहार है।

इस तरह, प्रशान्त महासागर में, चीन के कटि-बन्ध में, युद्ध की एक और गिरह लगी।

इन सभी बातों से जाहिर होता है कि एक दूसरा साम्राज्यवादी युद्ध सचमुच शुरू हो गया है। बिना लड़ाई का ऐलान किये, यह चोरी से शुरू हुआ है। राष्ट्रीयताएँ और राज्य, प्रायः अनजाने ही दूसरे साम्राज्यवादी युद्ध की लपेट में आ गये। तीन हमलावर राज्यों ने-जर्मनी, इटली और जापान के फासिस्ट शासक-दल ने-संसार के विभिन्न हिस्सों में युद्ध शुरू किया। यह युद्ध जिब्राल्टर से शंघाई तक फैले हुए एक विराट प्रदेश में चल रहा है। अभी ही, उसमें पचास करोड़ से ऊपर लोग सिमट आये हैं। आखिरी छानबीन में, यही पता चलता है कि यह युद्ध ब्रिटेन, फ्रांस और अमरीका के पूँजीवादी हितों के खिलाफ चालू है, क्योंकि इसका उद्देश्य हमलावर देशों के हितों में और तथाकथित जनवादी राज्यों के हितों की बलि देकर प्रभाव-क्षेत्रों और संसार का फिर से बँटवारा करना है।

दूसरे साम्राज्यवादी युद्ध की एक अपनी विशेषता यह है कि इसे हमलावर शक्तियाँ चला रही हैं, और फैला रही हैं; जबकि दूसरी शक्तियाँ, 'जनवादी' शक्तियाँ जिनके खिलाफ युद्ध चलाया जा रहा है, ऐसा दिखाती हैं कि जैसे युद्ध से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है, वे सफाई देती हैं, पीछे हटती हैं, शान्ति-प्रेम की डींग हाँकती हैं, फासिस्ट हमलावरों को फटकारती हैं और.... थोड़ी-थोड़ी करके हमलावरों को अपनी जगहें सौंपती जाती हैं; साथ

ही, यह भी कहती जाती हैं कि हम मुकाबले की तैयारी कर रहे हैं।

साबित यह होगा कि इस युद्ध की एक विचित्र और एकतरफा विशेषता है। लेकिन, इससे यह बात खत्म नहीं होती कि यह बेरोक दूसरों की जमीन हड़पने का बर्बर युद्ध है, जो अबीसीनिया, स्पेन और चीन की अरक्षित जनता के हितों की बलि देकर चलाया जा रहा है।

यह कहना गलत होगा कि युद्ध की इस एकतरफा विशेषता का कारण 'जनवादी' राज्यों की सैनिक या आर्थिक कमजोरी है। अवश्य ही 'जनवादी' राज्य फासिस्ट राज्यों से ज्यादा ताकतवर हैं। इस बढ़ते हुए विश्व युद्ध की एकतरफा विशेषता इस वजह से है कि फासिस्ट ताकतों के खिलाफ जनवादी राज्यों का कोई संयुक्त मोर्चा नहीं है। तथाकथित जनवादी राज्य फासिस्ट राज्यों की 'ज्यादतियाँ' जरूर पसन्द नहीं करते और उनकी ताकत बढ़ने से डरते हैं। लेकिन, यूरोप में मजदूर आन्दोलन से और एशिया में राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन से वे और भी डरते हैं, और इन 'खतरनाक' आन्दोलनों के लिये फासिस्टवाद को 'बहुत बढ़िया दवा' समझते हैं। इसलिए 'जनवादी' राज्यों का शासक दल, खास तौर से ब्रिटेन का कंजरवेटिव शासक दल, अपने को इसी नीति तक सीमित रखता है कि गुरूर भरे फासिस्ट शासकों से 'ज्यादतियाँ न करने' की प्रार्थना करता रहे और साथ-साथ उन्हें यह भी समझने दे कि वह मजदूर आन्दोलनों और राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन की तरफ उनकी प्रतिक्रियावादी नीति को 'पूरी तरह समझता है', और कुल मिलाकर उससे हमदर्दी भी रखता है। इस मामले में, ब्रिटेन का शासक दल मोटे तौर से उसी नीति पर चल रहा है जिस नीति पर जारशाही में रूस के उदारपंथी-सम्राटवादी पूँजीपति चलते थे। ये पूँजीपति जार की नीति की 'ज्यादतियों' से तो डरते ही थे, लेकिन जनता से और भी डरते थे और इसीलिए, उन्होंने जार से प्रार्थना करने की नीति अपनाई और फलतः जनता के खिलाफ जार के साथ षड्यंत्र करने की नीति अपनाई। और जैसा कि हम जानते हैं, इसके लिये रूस के उदारपंथी-सम्राटवादी पूँजीपतियों को इस दुमुँही नीति की भारी कीमत चुकानी पड़ी थी। यह बात मानी जा सकती है कि इतिहास ब्रिटेन के शासक दल से और फ्रांस और अमरीका में उनके दोस्तों से इसका बदला लेगा।

स्पष्ट है कि सोवियत संघ अन्तरराष्ट्रीय परिस्थिति में इस तरह की तब्दीली की तरफ से आँखें बन्द न कर सकता था और न इन अशुभ घटनाओं को भुला सकता था। कोई भी युद्ध, कितना ही छोटा क्यों न हो, हमलावरों के छेड़ने पर वह शान्ति-प्रेमी देशों के लिये खतरा बन जाता है। दूसरा साम्राज्यवादी युद्ध जो ऐसे 'अजाने' ढंग से, राष्ट्रों पर चोरी से छा गया है और जिसने पचास करोड़ से ऊपर जनता को समेट लिया है, निस्सन्देह सभी राष्ट्रों के लिये और सबसे पहले सोवियत संघ के लिये बहुत बड़ा खतरा है। यह बात जर्मनी, इटली और जापान द्वारा 'कम्युनिस्ट-विरोधी गुट' बनाने से बहुत अच्छी तरह प्रकट होती है। इसलिए शान्ति की नीति पर चलते हुए, हमारे देश ने अपने सीमान्तों की सुरक्षा को और भी मजबूत करना और लाल फौज और जल-सेना की लड़ाकू योग्यता को और बढ़ाना शुरू किया 1934 के खत्म होते-होते, सोवियत संघ लीग ऑफ नेशन्स में शामिल हुआ। उसने यह जानते हुए ऐसा किया कि अपनी कमजोरी के बावजूद लीग हमलावरों का

पर्दाफाश करने की जगह का काम दे सकती है। और कितना ही कमजोर सही, वह शान्ति का एक साधन बन सकती है, जो युद्ध छिड़ने को रोक सके। सोवियत संघ का विचार था कि ऐसे समय में लीग ऑफ नेशन्स जैसे कमजोर अन्तरराष्ट्रीय संगठन को भी भुलाना न चाहिए। मई 1935 में, फ्रांस और सोवियत संघ ने हमलावरों के सम्भावित आक्रमण के खिलाफ परस्पर सहयोग की सन्धि की। उसके साथ ही, सोवियत संघ और चेकोस्लोवाकिया में वैसी ही सन्धि की गयी। मार्च 1936 में, सोवियत संघ ने मंगोलिया के जन-गणतंत्र से परस्पर सहयोग की सन्धि की; और अगस्त 1937 में चीन के गणतंत्र के साथ एक-दूसरे पर हमला न करने की सन्धि की।

2. सोवियत संघ में उद्योग-धन्धों और खेती की और अधिक प्रगति। दूसरी पंचवर्षीय योजना का समय से पहले पूरा होना। खेती के पुनर्संगठन और सामूहिकीकरण का पूरा होना। कार्यकर्ताओं का महत्त्व। स्ताखानोव आन्दोलन। खुशहाली का ऊँचा होता हुआ स्तर। ऊँचा होता हुआ सांस्कृतिक स्तर। सोवियत क्रान्ति की शक्ति।

1930-'33 के आर्थिक संकट के तीन साल बाद, पूँजीवादी देशों में तो नया आर्थिक संकट पैदा हुआ, लेकिन इस समूचे दौर में सोवियत संघ के उद्योग-धन्धे बराबर प्रगति करते रहे। 1937 के मध्य से, पहले विश्व पूँजीवाद के उद्योग-धन्धे कुल मिलाकर मुश्किल से 1929 की पैदावार के स्तर के 95-96 फीसदी हो पाये थे, और तभी 1936 के उत्तरार्द्ध में वे एक नये संकट की गिरफ्त में आ गये। लेकिन, सोवियत संघ के उद्योग-धन्धे अपनी लगातार सम्पूर्ण प्रगति से 1937 के आखिर तक, 1929 की उपज के 428 फीसदी या युद्ध-पूर्व की पैदावार के 700 फीसदी तक पहुँच गये थे।

ये सफलताएँ पुनर्संगठन की उस नीति का सीधा नतीजा थीं जिस पर पार्टी और सरकार इतना जम कर चली थी।

इन सफलताओं का परिणाम यह हुआ कि दूसरी पंचवर्षीय योजना समय से पहले ही पूरी हो गयी। चार साल तीन महीने में 1 अप्रैल 1937 तक, वह पूरी हो गयी थी। समाजवाद के लिये, यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण विजय थी।

खेती की प्रगति का भी बहुत कुछ यही हाल था। सभी फसलों की कुल भूमि 1913 (युद्ध पूर्व) में 10 करोड़ पचास लाख हेक्तार थी; 1937 में यह भूमि बढ़कर 13 करोड़ 50 लाख हेक्तार हो गयी। 1913 में, अनाज की फसल 4 अरब 80 करोड़ पूड थी; 1937 में यह फसल बढ़कर 6 अरब 80 करोड़ पूड हो गयी। इसी बीच, कपास की फसल 4 करोड़ 40 लाख पूड से बढ़कर 15 करोड़ 40 लाख पूड हुई; सन की फसल (रेशे) 1 करोड़ 90 लाख पूड से, 3 करोड़ 10 लाख पूड हुई; चीनी बनाने वाले चुकन्दर की फसल 65 करोड़ 40 लाख पूड से बढ़कर 1 अरब 31 करोड़ 10 लाख पूड हुई; और तिलहन की फसल 12 करोड़ 90 लाख से बढ़कर 30 करोड़ 60 लाख पूड हुई।

यहाँ पर यह कह देना चाहिए कि 1937 में अकेले सामूहिक खेतों ने (सरकारी खेत

छोड़कर) बाजार के लिये 1 अरब 70 करोड़ पूड गल्ला पैदा किया। 1913 में, जमीन्दारों, कुलकों और किसानों ने मिलकर जितना गल्ला बाजार भेजा था, उससे यह राशि कम से कम 40 करोड़ पूड ज्यादा थी।

खेती की सिर्फ एक शाखा-पशु-प्रजनन-अब भी युद्ध-पूर्व के स्तर से पीछे थी और ज्यादा धीमी रफ्तार से प्रगति कर रही थी।

जहाँ तक खेती में सामूहिकीकरण का सवाल था, उसे पूरा हुआ समझा जा सकता था। 1937 तक जिन किसान परिवारों ने सामूहिक खेतों में भाग लिया था, उनकी संख्या 1 करोड़ 85 लाख, या कुल किसान परिवारों की 93 फीसदी थी। उधर सामूहिक खेतों का अनाज की फसल का इलाका किसानों की कुल अनाज की फसल के इलाके का 99 फीसदी था।

खेती के पुनर्संगठन और खेती के लिये ट्रैक्टरों और मशीनों को बड़ी तादाद में देने का क्या फल हुआ, यह अब स्पष्ट हो गया।

उद्योग-धन्धों और खेती का पुनर्संगठन पूरा होने से, राष्ट्रीय अर्थतंत्र के पास अब पहले दर्जे के कौशल की बहुतायत हो गयी। उद्योग-धन्धों, खेती, यातायात-व्यवस्था और फौज को आधुनिकतम कौशल का भारी सामान मिला था-उन्हें मशीनें और कलपुर्जे, ट्रैक्टर और खेती की मशीनें, इंजन और जहाज, तोपें और टैंक, हवाई जहाज और युद्ध-पोत मिले थे। कौशल सीखे हुए लाखों आदमियों की जरूरत थी, जो इस तमाम कौशल का उपयोग कर सकें और उससे ज्यादा से ज्यादा फायदा पहुँचा सकें। इसके बिना, कौशल को जानने-बूझने वाले काफी आदमियों के बिना, यह खतरा था कि यह सब कौशल मुर्दा और बेकार लोहा-लक्कड़ सा ही रह जाये। यह भारी खतरा था और इस वजह से पैदा हुआ था कि कौशल सीखे हुए आदमियों, कौशल का पूरी तरह उपयोग कर सकने और इससे फायदा उठा सकने वाले कार्यकर्ताओं की संख्या वैसे ही नहीं बढ़ रही थी जैसे कि कौशल, बल्कि उससे बहुत पीछे घिसट रही थी। परिस्थिति इस कारण और भी उलझ गयी थी कि हमारे काफी औद्योगिक प्रबन्धक इस खतरे को महसूस न करते थे, और समझते थे कि कौशल से 'सब कुछ अपने-आप हो जायेगा!' पहले उन्होंने कौशल के महत्त्व को कम करके आँका था और उसे नफरत की निगाह से देखा था, अब वे उसका मूल्य बहुत बढ़ाकर आँकने लगे और उसे जादू समझने लगे। वह यह न समझते थे कि कौशल को जानने-बूझने वाले आदमियों के बिना कौशल मुर्दा है। वे यह न समझते थे कि कौशल से पैदावार खूब बढ़ाई जाये, इसके लिये कौशल को जानने-बूझने वाले आदमियों की जरूरत थी।

इस तरह, कौशल को जानने-बूझने वाले कार्यकर्ताओं की समस्या सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण हो गयी।

यह जरूरी था कि जिन प्रबन्धकों ने कौशल के लिये बहुत ज्यादा जोश दिखलाया था और इसके फलस्वरूप ट्रेनिंग पाये हुए आदमियों के महत्त्व को, कार्यकर्ताओं के महत्त्व को कम करके आँका था, उनका ध्यान कौशल का अध्ययन करने और उसमें उस्तादी हासिल करने की तरफ खींचा जाये, उनका ध्यान इस जरूरत की तरफ खींचा जाये कि कौशल का उपयोग कर सकने वाले और उससे भरसक लाभ उठा सकने वाले बहुत से कार्यकर्ताओं

को शिक्षित करने के लिये कुछ भी न उठा रखा जाये।

पहले, जब पुनर्संगठन का दौर शुरू हो रहा था, जब देश में कौशल की कमी थी, तब पार्टी ने नारा दिया था: "पुनर्संगठन के दौर में सारा दारोमदार कौशल पर है;" अब जबकि कौशल की बहुतायत थी, जबकि पुनर्संगठन का काम मुख्यतः पूरा हो चुका था और कार्यकर्ताओं की भारी कमी महसूस हो रही थी तब पार्टी के लिये नया नारा देना लाजिमी हो गया, ऐसा नारा जो इतना कौशल पर नहीं बल्कि आदमियों पर, कौशल का भरसक उपयोग कर सकने वाले कार्यकर्ताओं पर ध्यान केन्द्रित करे।

इस दृष्टि से, मई 1935 में, कामरेड स्तालिन ने लाल सेना के विद्यालय के स्नातकों के सामने जो भाषण दिया उसका भारी महत्त्व था।

कामरेड स्तालिन ने कहा :

> "पहले हम कहा करते थे कि 'सब कुछ कौशल पर निर्भर है'। इस नारे से, कौशल की कमी को खत्म करने और कार्रवाई के हर क्षेत्र में प्रथम श्रेणी के कौशल से अपनी जनता को लैस करने के लिये एक विशाल कौशल का आधार रचने में हमें मदद मिली। यह बहुत अच्छा है। लेकिन इतना काफी नहीं है, काफी हद तक यह काफी नहीं है। कौशल को चालू करने के लिये और उससे अधिकतम फायदा उठाने के लिये, हमें ऐसे आदमी चाहिए जो कौशल पर हावी हो चुके हों, हमें ऐसे कार्यकर्ता चाहिए, जो उस पर हावी हो सकते हों और इस कौशल को उसके तमाम नियम-कायदों के अनुसार इस्तेमाल कर सकते हों। ऐसे आदमियों के बिना, जो कौशल पर हावी हो चुके हों, कौशल मुर्दा है। ऐसे लोगों के हाथ में, जो कौशल पर हावी हो चुके हों, कौशल चमत्कार कर सकता है और उसे करना चाहिए। अगर हमारी प्रथम श्रेणी की मिलों और कारखानों में हमारे सरकारी और सामूहिक खेतों में, हमारी यातायात व्यवस्था में और लाल फौज में हमारे पास ऐसे काफी कार्यकर्ता होते जो इस कौशल से काम ले सकते, तो हमारा देश आज से तिगुनी और चौगुनी ज्यादा सफलता पा सकता। यही सबब है कि अब आदमियों पर, कार्यकर्ताओं पर, उन मजदूरों पर जो कौशल पर हावी हो चुके हों, जोर देना चाहिए। पुराना नारा 'सब कुछ कौशल पर निर्भर है', एक बीते हुए दौर का प्रतिबिम्ब है, ऐसे दौर का जिसमें हमारे पास कौशल की कमी थी। लेकिन उस नारे की जगह, अब नया नारा, यह नारा कि 'सब कुछ कार्यकर्ताओं पर निर्भर है' देना चाहिए। मुख्य चीज अब यही है।...
>
> "वक्त आ गया है कि हम समझें कि दुनिया के पास जो सबसे मूल्यवान पूँजी है, उसमें सबसे मूल्यवान और सबसे निर्णायक पूँजी आदमी है, कार्यकर्ता है। यह समझना चाहिए कि हमारी आज की हालत में 'सब कुछ कार्यकर्ताओं पर निर्भर है'। अगर उद्योग-धन्धों में, खेती, यातायात और सेना में हमारे पास अच्छे और बहुत से कायकर्ता हों तो हमारा देश अजेय हो जायेगा। अगर हमारे पास ऐसे कार्यकर्ता न होंगे, तो हम दोनों पैरों से लंगड़े रहेंगे।" (स्तालिन, **लेनिनवाद की समस्याएँ**, अं. सं. मास्को, 1947, पृ. 523-24, सम्पादक, अंग्रेजी संस्करण)।

इस तरह, अब मुख्य काम यह था कि कौशल जानने वाले कार्यकर्ताओं को ट्रेनिंग देने का काम बढ़ाया जाये और श्रम की उत्पादकता बराबर बढ़ाते रहने के लिये नये कौशल पर जल्द हावी हों।

ऐसे कार्यकर्ताओं की बढ़ोत्तरी की सबसे जीती-जागती मिसाल, हमारी जनता द्वारा नये कौशल पर हावी होने और श्रम की उत्पादकता के बराबर बढ़ते रहने की ठोस जीती-जागती मिसाल स्ताखानोव आन्दोलन था। इस आन्दोलन का जन्म दोन्येत्स प्रदेश के कोयले के धन्धों में हुआ, और वहाँ वह बढ़ा। वहाँ से वह उद्योग-धन्धों की दूसरी शाखाओं, रेलों और उसके बाद, खेती में फैला। इसका नाम स्ताखानोव आन्दोलन उसके जन्मदाता अलेक्सी स्ताखानोव के कारण पड़ा। वह केन्द्रीय इर्मीनो कोयले की खान (दोन्येत्स प्रदेश) में कोयला निकालने का काम करता था। स्तखानोव से पहले, निकिता इजोतोव ने कोयला निकालने के सभी पूर्व रिकार्ड तोड़ दिये थे। 31 अगस्त 1935 को, स्ताखानोव ने एक ही पाली में 102 टन कोयला काटा और इस तरह, खुदाई के उस समय के मानदण्ड से चौदह गुना ज्यादा कोयला निकाला। इससे उपज का स्तर ऊँचा करने के लिये, श्रम की उत्पादकता में नयी प्रगति करने के लिये, मजदूरों और सामूहिक किसानों के एक सामूहिक आन्दोलन की शुरुआत हुई। मोटर उद्योग में बुसीगिन, जूतों के उद्योग में स्मेतानिन, रेलों में किवोनोस, लकड़ी के धन्धों में मुसिन्स्की, सूती उद्योग-धन्धों में एब्दोकिया विनोग्रादोवा और मारिया विनोग्रादोवा, खेती में मारिया देमचैंको, मरीना ग्नातेंको, प. अंजेलिना, पोलागुतिन, कोलेसोव, कोवार्दाक और बोरिन-स्ताखानोव आन्दोलन के ये पहले अग्रदूत थे।

इनके बाद, दूसरे आगे बढ़ने वाले कार्यकर्ता आये। उनकी पलटनें की पलटनें आगे आयीं, जिन्होंने पहले के अग्रदूतों के श्रम की उत्पादकता को पीछे छोड़ दिया।

नवम्बर 1935 में, क्रेमलिन में स्ताखानोववादियों की पहली अखिल संघीय कान्फ्रेंस हुई। उसमें कामरेड स्तालिन ने भाषण दिया। इनसे स्ताखानोव आन्दोलन को जबर्दस्त प्रोत्साहन मिला।

कामरेड स्तालिन ने अपने भाषण में कहा :

> "स्ताखानोव आन्दोलन.... समाजवादी होड़ की नयी लहर की अभिव्यक्ति है, समाजवादी होड़ की नयी और ऊँची मंजिल की अभिव्यक्ति है।... पिछले दिनों, लगभग तीन साल पहले समाजवादी होड़ की पहली मंजिल के दौर में यह जरूरी नहीं था कि समाजवादी होड़ का सम्बन्ध आधुनिक कौशल से हो। दरअसल, उस समय आधुनिक कौशल जैसी चीज हमारे पास मुश्किल से थी। इसके विपरीत, समाजवादी होड़ की वर्तमान मंजिल, स्ताखानोव, आन्दोलन का सम्बन्ध आवश्यक रूप से आधुनिक कौशल से है। नये और उच्चतर कौशल के बिना स्ताखानोव आन्दोलन की कल्पना नहीं की जा सकती। हमारे पास कामरेड स्ताखानोव, बुसीगिन, स्मेतानिन, क्रिवोनोस, प्रोनिन, दोना विनोग्रादोवा और दूसरे बहुत से लोग हैं। ऐसे नये आदमी, मेहनत करने वाले स्त्री और पुरुष जिन्होंने अपने धन्धों के कौशल में उस्तादी हासिल की है, उससे काम लिया है और आगे बढ़ गये हैं। तीन साल पहले, ऐसे आदमी थे ही नहीं या मुश्किल से थे।... स्ताखानोव आन्दोलन का महत्त्व इस बात में है कि यह ऐसा

आन्दोलन है जो कौशल के पुराने मानदण्ड तोड़ रहा है, क्योंकि वे नाकाफी हैं। कई जगह तो वह सबसे आगे बढ़े हुए पूँजीवादी देशों की श्रम की उत्पादकता से भी आगे बढ़ रहा है। इस तरह, यह आन्दोलन इस बात की अमली सम्भावना पैदा कर रहा है कि हमारे देश में समाजवाद को और दृढ़ किया जाये, यह सम्भावना पैदा कर रहा है कि हम अपने देश को दुनिया में सबसे समृद्ध देश बना सकें।" (उप., पृष्ठ 526-27)।

स्ताखानोववादियों के काम करने के तरीके बताते हुए और देश के भविष्य के लिये स्ताखानोव आन्दोलन का भारी महत्त्व प्रकट करते हुए, कामरेड स्तालिन ने आगे कहा :

"हमारे साथियो, स्ताखानोववादियों को और नजदीक से देखिये। ये किस तरह के लोग हैं? ये लोग ज्यादातर नौजवान, या अधेड़ उम्र के मजदूर स्त्री और पुरुष हैं, ऐसे लोग हैं जिनके पास संस्कृति और कौशल का ज्ञान है, जो अपने काम में अचूक और नपे-तुले कार्य की मिसालें देते हैं, जो काम में समय का महत्त्व समझते हैं और जिन्होंने मिनटों का ही नहीं, सेकण्डों का भी हिसाब रखना सीखा है। इनमें से अधिकांश ने कौशल का अल्पतम[1] कोर्स पूरा किया है और अपनी कौशल की शिक्षा जारी किये हुए हैं। इनमें कुछ इंजीनियरों, टेक्नीशियनों और प्रबन्धकों की तरह, पुरातन से प्रेम और ठहराव नहीं है। ये कौशल के पुराने पड़ चुके मानदण्डों को चूर करते हुए और नये और उच्चतर मानदण्ड रचते हुए, हिम्मत से आगे बढ़ते जा रहे हैं। हमारे उद्योग-धन्धों के नेताओं ने जो आर्थिक योजनायें बनायी हैं और योग्यता का जो हिसाब लगाया है, उनमें ये संशोधन करते जाते हैं। अकसर इंजीनियर और टेक्नीशियन जो कहते हैं; उसे ये सुधार देते हैं और उसमें नयी चीज जोड़ देते हैं, उन्हें ये अकसर शिक्षा देते हैं और आगे बढ़ने की प्रेरणा देते हैं। कारण यह कि ऐसे लोग हैं जो अपने धन्धों के कौशल पर पूरी तरह हावी हो चुके हैं और कौशल से जो अधिकतम फायदा उठाया जा सका है, उसे उठाते हैं। स्ताखानोववादियों की संख्या अभी कम है, लेकिन इसमें किसे सन्देह हो सकता है कि कल उनकी संख्या दस गुनी बढ़ जायेगी? क्या यह स्पष्ट नहीं है कि स्ताखानोववादी उद्योग-धन्धों में नये परिवर्तन करने वाले हैं, स्ताखानोव आन्दोलन हमारे उद्योग-धन्धों के भविष्य का दर्पण है, उसमें मजदूर वर्ग के सांस्कृतिक और कौशल-सम्बन्धी स्तर के ऊँचे उठने के बीज हैं, वह हमारे सामने ऐसा रास्ता खोलता है जिस रास्ते से ही श्रम की उत्पादकता के वे ऊँचे आँकड़े हासिल हो सकते हैं जो समाजवाद से कम्युनिज्म की तरफ बढ़ने के लिये अनिवार्य हैं, और जो मानसिक श्रम और शारीरिक श्रम का भेद मिटाने के लिये अनिवार्य हैं?" (उप. पृष्ठ 529)।

स्ताखानोव आन्दोलन के फैलने से और समय से पहले दूसरी पंचवर्षीय योजना पूरी हो जाने से, ऐसी परिस्थितियाँ पैदा हुईं जिसमें श्रमिक जनता की खुशहाली और संस्कृति का स्तर नये सिरे से ऊँचा उठ सके।

दूसरी पंचवर्षीय योजना के दौर में, मजदूरों और दफ्तर के कर्मचारियों की वास्तविक

---

1. कौशल का अल्पतम-समाजवादी उद्योग-धन्धों में मजदूरों के लिए आवश्यक कौशल-सम्बन्धी ज्ञान का अल्पतम स्तर-अं. अनु.

तनख्वाह दुगुनी से ज्यादा बढ़ चुकी थी। 1933 में, कुल तनख्वाह 34 अरब रूबल दी जाती थी। 1937 में, यह तनख्वाह बढ़कर 81 अरब रूबल हो गयी। राज्य का सामाजिक बीमा-फण्ड 4 अरब 60 करोड़ रूबल से, 5 अरब 60 करोड़ रूबल तक बढ़ा। अकेले 1937 में, मजदूरों और कर्मचारियों के राज्य द्वारा होने वाले बीमे पर, जीवन की परिस्थितियाँ सुधारने और सांस्कृतिक जरूरतें पूरी करने पर, स्वास्थ्य-गृहों, विश्राम-गृहों, सेनेटोरियमों और औषधि-व्यवस्था पर, लगभग 10 अरब रूबल खर्च किये गये थे।

देहात में, सामूहिक खेती की व्यवस्था निश्चित रूप से दृढ़ की जा चुकी थी। इस काम में, कृषि संघों की नियमावली से बड़ी सहायता मिली। यह नियमावली फरवरी 1935 में होने वाली सामूहिक खेतों के आगे बढ़े हुए कार्यकर्ताओं की दूसरी कांग्रेस में स्वीकार की गयी थी। सामूहिक खेत जो जमीन जोतते-बोते थे, वह उन्हें हमेशा बनाये रखने के लिये दी गयी थी, इससे भी सामूहिक खेती को दृढ़ करने में बड़ी सहायता मिली। सामूहिक खेती की व्यवस्था के मजबूत होने से, ग्रामीण जनता की गरीबी और रोटी-रोजी के अनिश्चित होने का खात्मा हो गया। पहले, लगभग तीन साल पहले, सामूहिक किसानों को हर काम के दिन के लिये एक या दो किलोग्राम अनाज मिलता था। अनाज पैदा करने वाले इलाकों में, अब अधिकांश सामूहिक किसानों को पाँच से बारह किलोग्राम तक अनाज मिलता था और बहुतों को काम के प्रति दिन के लिये बीस किलोग्राम तक मिलता था, जिसमें दूसरी तरह की उपज और पैसे की आमदनी की गिनती न थी। अब अनाज पैदा करने वाले इलाकों में, ऐसे लाखों सामूहिक किसान परिवार थे जिनकी आमदनी 500 से 1500 पूड अनाज तक थी; और चुकन्दर, कपास, सन, पशु-प्रजनन, अंगूर, साइट्रस, साग और फल पैदा करने वाले इलाकों में जिनकी सालाना आमदनी लाखों रूबल थी। सामूहिक खेत समृद्ध हो गये थे। सामूहिक किसान परिवारों का ध्यान अनाज की नयी खेतियाँ और नये गोदाम बनाने की तरफ ही मुख्य रूप से था, क्योंकि पुराने गोदाम बहुत थोड़ी सी सालाना आमदनी के लिये बनाये गये थे और उनसे परिवारों की दस फीसदी जरूरतें भी पूरी न होती थीं।

1936 में, लोगों की खुशहाली के बढ़ते हुए स्तर के विचार से, सरकार ने गर्भपात बन्द करने का कानून पास किया। इसके साथ ही, जच्चाखाने, शिशुगृह, दूध पिलाने के केन्द्र और किण्डरगार्टन बनाने के लिये विस्तृत कार्यक्रम मंजूर किया। 1936 में, इन सबके लिये 217 करोड़ 40 लाख रूबल नियत किये गये; जबकि 1935 में इनके लिये 87 करोड़ 50 लाख रूबल नियत किये गये थे। बड़े परिवारों को काफी भत्ता देने के लिये, एक कानून बनाया गया। इस कानून के मातहत, 1933 में 1 अरब रूबल से ऊपर भत्ता दिया गया।

सार्वजनिक अनिवार्य शिक्षा लागू करने से और नये स्कूल बनाने से, जनता की सांस्कृतिक प्रगति तेजी से हुई। सारे देश में, भारी संख्या में स्कूल बनाये गये। प्राथमिक और माध्यमिक स्कूलों में 1914 में 80 लाख विद्यार्थी थे; 1936-37 में उनकी तादाद 2 करोड़ 80 लाख हो गयी। इसी बीच, कृषि-विद्यालयों के विद्यार्थियों की संख्या 1,12,000 से 5,42,000 तक बढ़ गयी।

सचमुच ही, यह सांस्कृतिक क्रान्ति थी।

आम जनता की खुशहाली और संस्कृति का स्तर ऊँची होने से, सोवियत क्रान्ति की शक्ति, उसके बल और अजेयता का पता लगता था। पुराने जमाने में क्रान्तियाँ इसलिए नाकाम हुई थीं कि जनता को आजादी देने पर भी वे उसकी भौतिक और सांस्कृतिक हालत में कोई गहरा सुधार न कर सकी थीं। उनकी मुख्य कमजोरी यही थी। सभी क्रान्तियों से हमारी क्रान्ति इसी बात में भिन्न थी कि उसने जनता को जारशाही और पूँजीवाद से मुक्त ही नहीं किया, बल्कि जनता की खुशहाली और सांस्कृतिक हालत में बुनियादी सुधार किया। उसकी शक्ति और अजेयता इसी बात में है।

स्ताखानोववादियों की पहली अखिल रूसी संघीय कान्फ्रेंस में, कामरेड स्तालिन ने कहा था :

> "दुनिया में हमारी सर्वहारा क्रान्ति ही ऐसी क्रान्ति है जिसे जनता को न सिर्फ राजनीतिक परिणाम, बल्कि भौतिक परिणाम भी दिखाने का मौका मिला है। तमाम मजदूरों की क्रान्तियों में, हम एक ही ऐसी क्रान्ति जानते हैं जो सत्ता ले सकी थी। वह थी-पेरिस कम्यून। लेकिन, वह ज्यादा दिन न चली। यह सही है कि उसने पूँजीवाद की बेड़ियाँ चूर करने की कोशिश की; लेकिन उन्हें चूर कर डालने का उसे काफी समय न मिला और जनता को क्रान्ति के लाभदायी परिणाम दिखाने का और भी कम समय मिला था। हमारी क्रान्ति ही ऐसी क्रान्ति है कि जिसने पूँजीवाद की बेड़ियाँ ही नहीं तोड़ीं और जनता के लिये आजादी ही नहीं लायी, बल्कि वह जनता की खुशहाल जिन्दगी के लिये भौतिक परिस्थितियाँ निर्मित करने में भी सफल हुई है। हमारी क्रान्ति की शक्ति और अजेयता इसी बात में है।" (उप., पृष्ठ 532)।

3. सोवियतों की आठवीं कांग्रेस। सोवियत संघ के नये विधान की स्वीकृति।

फरवरी 1935 में, सोवियत समाजवादी जनतंत्र संघ की सोवियतों की सातवीं कांगेस ने एक प्रस्ताव पास किया कि सोवियत संघ का 1924 में स्वीकृत किया हुआ विधान बदल दिया जाये। सोवियत संघ के जीवन में जो विराट परिवर्तन हुए थे, उनसे विधान बदलना जरूरी था; क्योंकि सोवियत संघ का पहला विधान 1924 में मंजूर किया गया था। इस दौर में, देश की वर्ग-शक्तियों का परस्पर सम्बन्ध बिल्कुल बदल गया था। नये समाजवादी उद्योग-धन्धे निर्मित हुए थे। कुलकों का विध्वंस हो चुका था। सामूहिक खेती की जीत हुई थी। सोवियत समाज के आधार के रूप में, राष्ट्रीय अर्थतंत्र की हर शाखा में पैदावार के साधनों की समाजवादी मिल्कियत कायम की गयी थी। समाजवाद की जीत से, मुमकिन हुआ कि चुनाव की व्यवस्था को और भी जनवादी बनाया जाये और गुप्त मतदान के साथ सार्वजनिक, समान और प्रत्यक्ष निर्वाचन-प्रथा चालू की जाये।

कामरेड स्तालिन के सभापतित्व में, विधान का मसौदा तैयार करने के लिये एक विधान-कमीशन बनाया गया था और उसने सोवियत संघ के नये विधान का मसौदा तैयार किया। मसौदा सारे देश के सामने बहस के लिये रखा गया; और यह बहस साढ़े पाँच

महीने चलती रही। उसके बाद, वह सोवियतों की असाधारण आठवीं कांग्रेस के सामने पेश किया गया।

सोवियतों की आठवीं कांग्रेस सोवियत संघ के नये विधान का मसौदा मंजूर या नामंजूर करने के लिये खास तौर से बुलायी गयी थी। यह कांग्रेस नवम्बर 1936 में हुई।

कांग्रेस के सामने नये विधान के मसौदे पर रिपोर्ट देते हुये, कामरेड स्तालिन ने बताया कि सोवियत संघ में 1924 का विधान मंजूर होने के बाद कौन सी मुख्य तब्दीलियाँ हुई हैं।

1924 का विधान नेप के शुरू के दिनों में बना था। उस समय तक, सोवियत सरकार समाजवाद के विकास के साथ-साथ पूँजीवाद के विकास की भी अनुमति देती थी। सोवियत सरकार ने योजना बनायी थी कि दोनों व्यवस्थाओं-पूँजीवादी व्यवस्था और समाजवादी व्यवस्था-के बीच होड़ चलने के दौर में आर्थिक क्षेत्र में पूँजीवाद पर समाजवाद की विजय संगठित और निश्चित की जायेगी। 'कौन जीतेगा?'-इस सवाल का अभी फैसला न हुआ था। उस समय के उद्योग-धन्धे कौशल के पुराने और नाकाफी सामान से लैस थे वे अभी युद्धपूर्व के स्तर तक ही न पहुँच पाये थे। खेती की हालत इससे भी गयी-बीती थी। किसानों के निजी खेत एक अपार सागर थे और सरकारी तथा सामूहिक खेत उसके छोटे-छोटे टापू। उस समय, सवाल कुलकों को खत्म करने का नहीं, सिर्फ उन्हें नियंत्रित करने का था। समाजवादी नाके पर, देश का सिर्फ 50 फीसदी व्यापार होता था।

1936 में, सोवियत संघ की तस्वीर बिल्कुल ही दूसरी थी। उस समय तक, देश का आर्थिक जीवन पूरी तरह बदल गया था और आर्थिक जीवन के सभी क्षेत्रों में समाजवादी व्यवस्था की जीत हुई थी। अब शक्तिशाली समाजवादी उद्योग-धन्धे थे, जिन्होंने युद्ध-पूर्व की उपज से सात गुनी पैदावार बढ़ा ली थी और व्यक्तिगत उद्योग-धन्धों को पूरी तरह निकाल बाहर किया था। खेती में, सामूहिक और सहकारी खेती के रूप में, अप-टू-डेट मशीनों से लैस और दुनिया में सबसे बड़े पैमाने पर चलने वाली यंत्र-सज्जित समाजवादी खेती की जीत हुई थी। 1936 तक, कुलक वर्ग रूप में पूरी तरह खत्म किये जा चुके थे और निजी खेती करने वाले किसान देश के आर्थिक जीवन में कोई महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा न करते थे। व्यापार पूरी तरह राज्य और सहकारी समितियों के हाथ में था। मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण सदा के लिये खत्म किया जा चुका था। आर्थिक जीवन की सभी शाखाओं में, नयी समाजवादी व्यवस्था की अडिग बुनियाद के तौर पर पैदावार के साधनों की सार्वजनिक, समाजवादी मिल्कियत मजबूती से कायम हो चुकी थी। नये समाजवादी समाज से गरीबी, बेकारी, संकट और मुफलिसी हमेशा के लिये विदा हो चुके थे। सोवियत समाज के सभी सदस्यों की खुशहाल और सांस्कृतिक जिन्दगी के लिये परिस्थितियाँ रची जा चुकी थीं।

कामरेड स्तालिन ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि सोवियत संघ में वैसे ही आबादी की वर्ग-बनावट भी बदल गयी है। गृह-युद्ध के दौर में भी, जमीन्दार वर्ग और पुराने बड़े साम्राज्यवादी पूँजीपतियों का खात्मा हो चुका था। समाजवादी निर्माण के वर्षों में, सभी शोषक तत्व-पूँजीपति, सौदागर, कुलक और मुनाफेखोर-मिटा दिये गये थे। मिटाये हुए शोषक

वर्गों के सिर्फ नगण्य अवशेष रह गये थे, और उन्हें पूरी तरह से मिटाना बहुत ही निकट भविष्य की बात थी।

समाजवादी रचना के दौर में, सोवियत संघ की श्रमिक जनता में-मजदूरों, किसानों और बुद्धिजीवियों में-गहरी तब्दीली हुई थी।

मजदूर वर्ग अब शोषित वर्ग न था, जैसा कि पूँजीवाद में पैदावार के साधनों से हीन वह होता है। उसने पूँजीवाद को निर्मूल कर दिया था, पूँजीपतियों से पैदावार के साधन ले लिये थे और उन्हें जन-सम्पत्ति बना दिया था। वह 'सर्वहारा' शब्द के पुराने और सही अर्थ में सर्वहारा न रह गया था। सोवियत संघ के सर्वहारा वर्ग के पास राज्यसत्ता थी, और वह बिल्कुल नये वर्ग में तब्दील हो गया था। वह ऐसा मजदूर वर्ग हो गया था जो शोषण से मुक्त था, ऐसा मजदूर वर्ग जिसने पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था मिटा दी थी और पैदावार के साधनों की समाजवादी मिल्कियत कायम की थी। इसलिए, यह ऐसा मजदूर वर्ग था जैसा मनुष्य जाति के इतिहास ने पहले कभी भी न देखा था।

सोवियत संघ के किसानों की हालत में भी कम गहरे परिवर्तन न हुए थे। पुराने जमाने में, दो करोड़ से ऊपर निजी खेती करने वाले छोटे और मध्यम किसान परिवार अलग-थलग बाबा आदम के जमाने के औजारों से अपने छोटे-छोटे खेत जोतते-बोते रहे थे। जमीन्दार, कुलक, सौदागर, मुनाफेखोर, सूदखोर, वगैरह उनका शोषण करते थे। अब सोवियत संघ में बिल्कुल नयी तरह के किसान बन चुके थे। किसानों का शोषण करने के लिये अब जमीन्दार, कुलक, सौदागर और सूदखोर न थे। किसान परिवारों की भारी बहुसंख्या सामूहिक खेतों में शामिल हो चुकी थी। इन सामूहिक खेतों का आधार पैदावार के साधनों की निजी मिल्कियत न थी, बल्कि सामूहिक मिल्कियत थी; ऐसी सामूहिक मिल्कियत जो सामूहिक मेहनत से पैदा हुई थी। ये नयी तरह के किसान थे, ऐसे किसान जो शोषण से मुक्त थे। ये ऐसे किसान थे जैसे मनुष्य जाति के इतिहास ने पहले कभी भी न देखे थे।

सोवियत संघ के बुद्धिजीवियों में भी तब्दीली हुई थी। अधिकांशतः ये बिल्कुल नये बुद्धिजीवी बन गये थे। बुद्धिजीवी वर्ग के अधिकांश सदस्य मजदूरों और किसानों की कतारों से आये थे। यह वर्ग पुराने बुद्धिजीवियों की तरह पूँजीवाद की सेवा न करता था; वह समाजवाद की सेवा करता था। वह समाजवादी समाज का बराबरी के दर्जे वाला सदस्य था। मजदूरों और किसानों के साथ, वह नये समाजवादी समाज का निर्माण कर रहा था। यह नये तरह का बुद्धिजीवी वर्ग था, जो जनता की सेवा करता था और सभी तरह के शोषण से मुक्त था। यह ऐसा बुद्धिजीवी वर्ग था जैसा मनुष्य जाति के इतिहास ने पहले कभी भी न देखा था।

इस तरह, सोवियत संघ की श्रमिक जनता में पुराने वर्ग-विभाजन की रेखायें मिट रही थीं, वर्गों का पुराना अकेलापन मिट रहा था। मजदूरों, किसानों और बुद्धिजीवियों के आर्थिक और राजनीतिक अन्तरविरोध मुरझा रहे थे और मिट रहे थे। समाज की नैतिक और राजनीतिक एकता की बुनियाद रखी जा चुकी थी।

सोवियत संघ के जीवन में ये गम्भीर परिवर्तन, सोवियत संघ में समाजवाद की ये

निर्णायक सफलताएँ नये विधान में प्रतिबिम्बित हुईं।

नये विधान के अनुसार, सोवियत समाज में दो मित्र वर्ग हैं-मजदूर और किसान। इन दोनों का वर्ग-विभेद अभी बना हुआ है। सोवियत समाजवादी जनतंत्र संघ मजदूरों और किसानों का समाजवादी राज्य है।

श्रमिक जनता के प्रतिनिधियों की सोवियतें सोवियत संघ की राजनीतिक बुनियाद हैं। जमीन्दारों और पूँजीपतियों की सत्ता खत्म करने और सर्वहारा अधिनायकत्व हासिल करने के फलस्वरूप, ये सोवियतें विकसित और मजबूत हुई हैं।

सोवियत संघ में, सभी सत्ता श्रमिक जनता के प्रतिनिधियों की सोवियतों के रूप में शहर और देहात की श्रमिक जनता के हाथ में है।

सोवियत संघ में, राज्य-शक्ति का सबसे ऊँचा संगठन सोवियत संघ की सर्वोच्च (सुप्रीम) सोवियत है।

सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत में, समान अधिकार वाले दो सदन हैं-संघ की सोवियत और राष्ट्रीयताओं की सोवियत। गुप्त मतदान से सार्वजनिक, समान और प्रत्यक्ष निर्वाचन के आधार पर, चार साल के लिये सोवियत संघ के नागरिकों द्वारा सर्वोच्च सोवियत चुनी जाती है।

श्रमिक जनता के प्रतिनिधियों की सभी सोवियतों की तरह, सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत के चुनाव सार्वजनिक हैं। इसका मतलब यह है कि सोवियत संघ के सभी नागरिक जो 18 साल के हो चुके हों, नस्ल, जाति, धर्म, शिक्षा का स्तर, निवास-स्थान, सामाजिक उद्गम, सम्पत्ति की स्थिति, या पिछली कार्रवाई का विचार किये बिना, प्रतिनिधियों के चुनाव में वोट दे सकते हैं और स्वयं चुने जा सकते हैं। जो आदमी पागल हैं, या जिन्हें अदालतों ने ऐसी सजायें दी हैं जिनमें निर्वाचन के अधिकार खोना शामिल है, इस नियम के अपवाद हैं।

प्रतिनिधियों का निर्वाचन समान रूप से होता है। इसका मतलब यह है कि हर नागरिक का एक वोट है और सभी नागरिक बराबरी की हैसियत से चुनाव में हिस्सा लेते हैं।

प्रतिनिधियों का चुनाव प्रत्यक्ष होता है। इसका मतलब यह है कि श्रमिक जनता के प्रतिनिधियों की देहाती और शहरी सोवियतों से लेकर सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत तक और उसे मिलाकर श्रमिक जनता के प्रतिनिधियों की सभी सोवियतें नागरिकों द्वारा प्रत्यक्ष वोट से चुनी जाती हैं।

सोवियत संघ की आर्थिक बुनियाद अर्थतंत्र की समाजवादी व्यवस्था और पैदावार के साधनों की समाजवादी मिल्कियत है। सोवियत संघ में, यह समाजवादी उसूल चरितार्थ होता है-"हर एक से उसकी योग्यता के अनुसार, हर एक को उसके काम के अनुसार।"

सोवियत संघ के सभी नागरिकों को काम करने के अधिकार की गारण्टी है; आराम करने और अवकाश भोगने के अधिकार, शिक्षा पाने के अधिकार, बुढ़ापे में और बीमारी, या अपाहिज होने पर परवरिश के अधिकार की गारण्टी है।

जीवन के सभी क्षेत्रों में, स्त्रियों को पुरुषों के बराबर अधिकार दिये गये हैं।

सोवियत संघ के नागरिकों की समानता, उनकी जाति या नस्ल का भेद किये बिना, एक अटूट विधान है।

सभी नागरिकों के लिये, अन्तःकरण की स्वाधीनता और धर्म-विरोधी प्रचार की स्वाधीनता स्वीकृत है।

समाजवादी समाज को मजबूत करने के लिये, भाषण, प्रकाशन और सभा-संगठन की आजादी की गारण्टी विधान करता है; सार्वजनिक संगठनों में ऐक्यबद्ध होने के अधिकार, व्यक्ति की सुरक्षा, निवास और पत्र-व्यवहार के गुप्त रहने की सुरक्षा; श्रमिक जनता के हितों की रक्षा करने के लिये, या अपनी वैज्ञानिक कार्रवाई के लिये, या राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिये अपने संघर्ष के कारण सताये हुए विदेशी नागरिकों के शरण पाने के अधिकार की गारण्टी करता है।

नये विधान ने सोवियत संघ के सभी नागरिकों के लिये गम्भीर कर्त्तव्य भी निश्चित किये हैं; कानून का पालन करना, श्रम-अनुशासन पर चलना, ईमानदारी से सार्वजनिक कर्त्तव्य-पालन करना, समाजवादी समाज के नियमों का आदर करना, सार्वजनिक, समाजवादी सम्पत्ति की रक्षा करना और उसे मजबूत करना, और समाजवादी पितृभूमि की रक्षा करना।

"पितृभूमि की रक्षा करना, सोवियत संघ के हर नागरिक का पवित्र कर्त्तव्य है।"

विभिन्न सभाओं में नागरिकों के इकट्ठे होने के अधिकार की चर्चा करते हुए, विधान के एक नियम में कहा गया है :

> "मजदूर वर्ग की कतारों में से, और श्रमिक जनता के दूसरे हिस्सों से, सबसे सक्रिय और राजनीतिक रूप से सचेत नागरिक सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) में एकजुट होते हैं। यह पार्टी समाजवादी-व्यवस्था को मजबूत करने और विकसित करने के लिये मजदूर वर्ग के संघर्ष में उसकी हिरावल है और श्रमिक जनता के सभी सार्वजनिक और सरकारी संगठनों की मेरुदण्ड है।"

सोवियतों की आठवीं कांग्रेस ने एकमत से सोवियत संघ के नये विधान के मसौदे का अनुमोदन किया और उसे स्वीकृत किया।

इस तरह, सोवियत देश ने एक नया विधान पाया, ऐसा विधान जिसमें समाजवाद और मजदूरों तथा किसानों के जनतंत्र की विजय निहित थी।

इस तरह, विधान ने इस युगान्तरकारी तथ्य को वैधानिक रूप दिया कि सोवियत संघ ने विकास की नयी मंजिल में प्रवेश किया है, ऐसी मंजिल जिसमें समाजवादी समाज की रचना पूरी हो चुकी है और कम्युनिस्ट समाज की तरफ क्रमशः बढ़ने का काम शुरू हो गया है, जहाँ सामाजिक जीवन का पथ-प्रदर्शक सिद्धान्त यह कम्युनिस्ट उसूल होगा :

> "हरेक से उसकी योग्यता के अनुसार, हरेक को उसकी आवश्यकता के अनुसार।"

4. जासूसों, तोड़-फोड़ करने वालों और देश के गद्दारों के बुखारिन-त्रात्स्की गिरोह के अवशेषों का खात्मा। सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत के चुनाव की तैयारियाँ। पार्टी के भीतर व्यापक जनवाद-पार्टी का रास्ता। सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत के चुनाव।

1937 में, बुखारिन-त्रात्स्की गिरोह के राक्षसी कारनामों के बारे में नयी बातों का पता चला। प्याताकोव, रादेक आदि के मुकदमे से, तुखाचेव्स्की, याकिर आदि के मुकदमे से, और अन्त में बुखारिन, राइकोव, क्रेस्तिन्स्की, रोजनेगोल्ज, वगैरह के मुकदमे से पता चला कि बुखारिनपंथी और त्रात्स्कीवादी बहुत पहले मिल कर जनता के शत्रुओं का एक मिला-जुला दल बना चुके थे, जो 'दक्षिणपंथियों और त्रात्स्कीवादियों के गुट' के रूप में काम करता था।

मुकदमों से पता चला कि अक्टूबर समाजवादी क्रान्ति के प्रारम्भिक दिनों से ही मनुष्य जाति के इन कृमि-कीटों ने त्रात्स्की, जिनोवियेव और कामेनेव जैसे जनता के शत्रुओं के साथ मिलकर, लेनिन, पार्टी और सोवियत राज्य के खिलाफ षड्यंत्र किया था। 1918 के आरम्भ में, ब्रेस्ट-लिटोव्स्क की शान्ति न होने देने का नीच प्रयत्न, लेनिन के खिलाफ षड्यंत्र और 1918 के वसन्त में लेनिन, स्तालिन और स्वेर्दलोव की गिरफ्तारी और हत्या के लिये 'वामपंथी' समाजवादी-क्रान्तिकारियों के साथ षड्यंत्र, 1918 की गर्मियों में लेनिन पर पैशाचिक हमला, जब पिस्तौल की गोली से लेनिन घायल हुए थे, 1918 की गर्मियों में 'वामपंथी' समाजवादी-क्रान्तिकारियों का विद्रोह, पार्टी के भीतर लेनिन के नेतृत्व की जड़ काटने और उसे खत्म करने के उद्देश्य से 1921 में पार्टी के मतभेदों को जानबूझ कर बढ़ाना, लेनिन की बीमारी के समय और उनकी मृत्यु के बाद पार्टी-नेतृत्व को खत्म करने की कोशिशें, विदेशी जासूस-विभागों को राज्य के भेद बताना और जासूसी किस्म की सूचनायें भेजना, किरोव की नीच हत्या, तोड़-फोड़, उकसावे के काम और विस्फोट, मेन्जिन्स्की, कुईविशेव और गोर्की की हत्या-पता लगा कि ये और ऐसे ही राक्षसी काम बीस साल तक पूँजीवादी राज्यों के जासूस-विभागों की आज्ञा से त्रात्स्की, जिनोवियेव, कामेनेव, बुखारिन, राइकोव और उनके गुर्गों ने अपनी देखरेख में कराये थे, या उनमें हिस्सा लिया था।

मुकदमों से पता चला कि त्रात्स्की-बुखारिन गुट के इन राक्षसों ने अपने मालिकों-विदेशी राज्यों के जासूस-विभागों-की आज्ञा से पार्टी और सोवियत राज्य का नाश करने का बीड़ा उठाया था; देश की सुरक्षा-शक्ति को कमजोर करने, विदेशी सैनिक हस्तक्षेप की सहायता करने, लाल फौज की हार के लिये रास्ता साफ करने, सोवियत संघ का विभाजन करने, जापानियों को सोवियत समुद्री इलाका देने, पोलों को सोवियत बेलारूस और जर्मनों को सोवियत उक्रेन देने, मजदूरों और सामूहिक किसानों की सफलताएँ मिटाने और सोवियत संघ में पूँजीवादी गुलामी बहाल करने का बीड़ा उठाया था।

ये पिद्दी जैसे गद्दार, जिनकी ताकत चींटी से ज्यादा न थी, यह समझ बैठे थे कि वे देश के मालिक हैं और ख्वाब देखने लगे थे कि उक्रेन, बेलारूस और समुद्री इलाका बेचना, या दे देना सचमुच उनके हाथ में है।

ये गद्दार कीड़े भूल गये थे कि सोवियत देश की सच्ची मालिक सोवियत जनता है, और उसने इन राइकोवों, बुखारिनों, जिनोवियेवों और कामेनेवों को राज्य के केवल अस्थायी कर्मचारी ही बनाया है, जिन्हें किसी समय भी वह अपने दफ्तरों से कूड़े के ढेर की तरह बाहर फेंक सकती है।

फासिस्टों के यह घृणित चाकर भूल गये कि सोवियत जनता के सिर्फ उँगली भर उठाने की देर है और इनका कहीं निशान बाकी नहीं रहेगा।

सोवियत अदालत ने बुखारिन-त्रात्स्की गिरोह के राक्षसों को गोली से उड़ा देने की सजा दी।

घरेलू मामलों की जन-कमिसार-समिति ने प्राणदण्ड पूरा किया।

सोवियत जनता ने बुखारिन-त्रात्स्की गिरोह के नाश का अनुमोदन किया और फिर अपने आगे के कामों में लग गयी।

और, अगला काम यह था कि सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत के चुनाव की तैयारी की जाये और उसे संगठित रूप में किया जाये।

पार्टी ने चुनाव की तैयारियों में अपनी सारी शक्ति लगा दी। उसका विचार था कि सोवियत संघ के नये विधान को अमल में लाना देश के राजनीतिक जीवन में एक मोड़ है। इस मोड़ का मतलब था-चुनाव की व्यवस्था को पूरी तरह जनतांत्रिक बनाना, सीमित निर्वाचन की जगह सार्वजनिक निर्वाचन चालू करना, पूरी तरह से समान न होने वाले मताधिकार की जगह समान मताधिकार चालू करना, अप्रत्यक्ष चुनाव के बदले प्रत्यक्ष चुनाव जारी करना, और खुले मतदान के बदले गुप्त मतदान का चलन करना।

नये विधान के चलन के पहले पुजारियों, भूतपूर्व गद्दारों, भूतपूर्व कुलकों और सामाजिक रूप से उपयोगी धन्धों में न लगे हुए आदमियों के मताधिकारों पर रोक थी। नये विधान ने प्रतिनिधियों का चुनाव सार्वजनिक करके निर्वाचन की सभी पाबन्दियों को खत्म कर दिया, जो इस तरह के नागरिकों पर लगी थीं।

पहले, प्रतिनिधियों का चुनाव असमान होता था, क्योंकि शहरी और देहाती आबादी के चुनाव के आधार अलग-अलग थे। लेकिन, अब निर्वाचन की समानता पर पाबन्दी लगाने की कोई जरूरत न रह गयी थी और सभी नागरिकों को चुनाव में समानता के आधार पर हिस्सा लेने का अधिकार दिया गया था।

पहले, सोवियत सत्ता की बीच वाली और ऊँची संस्थाओं के चुनाव अप्रत्यक्ष होते थे। लेकिन अब नये विधान के अनुसार, शहरी और देहाती सोवियतों से लेकर सर्वोच्च सोवियत तक सभी सोवियतों का चुनाव नागरिकों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से होना था।

पहले, सोवियतों के प्रतिनिधि खुले मतदान से चुने जाते थे और उम्मीदवारों की सूचियों पर वोट पड़ते थे। लेकिन, अब प्रतिनिधियों के लिये वोट गुप्त मतदान से दिये जाते थे, और सूचियों को नहीं बल्कि हर निर्वाचन-क्षेत्र के लिये अलग-अलग नामजद व्यक्तिगत उम्मीदवारों को दिये जाते थे।

देश के राजनीतिक जीवन में, यह एक निश्चित मोड़ था।

नयी निर्वाचन-प्रथा का यह फल निकलना था, और दरअसल निकला कि जनता की

राजनीतिक कार्रवाई और बढ़ी, सोवियत सत्ता की संस्थाओं पर आम जनता का ज्यादा नियंत्रण हुआ और जनता के प्रति सोवियत सत्ता की संस्थाओं की जिम्मेदारी और बढ़ी।

इस मोड़ के लिये पूरी तरह तैयार रहने के लिये, पार्टी को उसकी प्रेरक शक्ति बनना था और अगले चुनाव में उसकी प्रमुख भूमिका पूरी तरह निश्चित करनी थी। लेकिन, यह तभी हो सकता था जब खुद पार्टी-संगठन अपने रोजमर्रा के काम में पूरी तरह जनतांत्रिक हो जायें, जब वे पूरी तरह अपने अन्दरूनी पार्टी-जीवन में जनवादी-केन्द्रीयता के उसूलों पर चलें जैसा कि पार्टी नियमावली का तकाजा था, जब पार्टी की सभी संस्थाएँ निर्वाचित हो, जब पार्टी में आलोचना और आत्मालोचना पूरी तरह विकसित हो, जब पार्टी के सदस्यों के प्रति पार्टी संस्थाओं की पूरी-पूरी जिम्मेदारी हो, और जब खुद पार्टी सदस्य पूरी तरह से सक्रिय हों।

फरवरी 1937 में, कामरेड ज्दानोव ने केन्द्रीय समिति के प्लेनम में सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत के चुनाव के लिये पार्टी-सगंठनों को तैयार करने के विषय पर एक रिपोर्ट दी। उस रिपोर्ट से पता चला कि कई पार्टी-संगठन बाकायदा पार्टी-नियमावली तोड़ रहे थे और अपने रोजमर्रा के काम में जनवादी केन्द्रीयता के उसूल ठुकराते थे, चुनाव के बदले सदस्यों को कोआप्ट करते थे, अलग-अलग उम्मीदवारों को चुनने के बदले सूचियों को वोट देते थे, गुप्त मतदान के बदले, खुले मतदान से काम लेते थे, वगैरह। जाहिर था कि जिन संगठनों में इस तरह का व्यवहार चल रहा था वे सही तौर पर सर्वोच्च सोवियत के चुनाव में अपना काम पूरा न कर सकते थे। इसलिए, सबसे पहले जरूरी था कि पार्टी-संगठनों में ऐसी जनवाद विरोधी हरकतें बन्द की जायें और व्यापक जनवादी तरीके से पार्टी कार्य को संगठित किया जाये।

इसलिए कामरेड ज्दानोव की रिपोर्ट सुनने के बाद, केन्द्रीय समिति के प्लेनम ने फैसला किया :

> "(क) पार्टी नियमावली के अनुसार, पार्टी के अन्दरूनी जनवाद के उसूलों के बिना शर्त और पूरी तरह पालन करने के आधार पर पार्टी कार्य पुनर्संगठित किया जाये।
>
> "(ख) पार्टी-कमेटियों में सदस्य कोआप्ट करने का चलन बन्द किया जाये और पार्टी-नियमावली के अनुसार, पार्टी-संगठनों की निर्देशक संस्थाओं के चुनाव का सिद्धान्त बहाल किया जाये।
>
> "(ग) पार्टी-संस्थाओं के चुनाव में, सूचियों पर वोट देने की मनाही की जाये; वोट अलग-अलग व्यक्तिगत उम्मीदवारों को दिये जायें और पार्टी के सभी सदस्यों का उम्मीदवारों को चुनौती देने और उनकी आलोचना करने का अनियंत्रित अधिकार सुरक्षित किया जाये।
>
> "(घ) पार्टी-संस्थाओं के चुनाव में गुप्त मतदान का चलन किया जाये।
>
> "(ङ) प्राथमिक पार्टी-संगठनों की पार्टी-कमेटियों से लेकर मण्डल और प्रदेश कमेटियों तक सभी पार्टी-संगठनों की पार्टी-संस्थाओं और राष्ट्रीय कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समितियों के चुनाव किये जायें। ये चुनाव 20 मई तक पूरे हो जायें।
>
> "(च) पार्टी-संगठनों को आज्ञा दी जाये कि पार्टी-संस्थाओं के काम की मियाद के

बारे में पार्टी नियमावली की धारायें सख्ती से मानी जायें, यानी प्राथमिक पार्टी-संगठनों में सालाना चुनाव करना, जिले और शहर के संगठनों में सालाना चुनाव करना और मण्डल, प्रदेश और जनतंत्रों के संगठनों में हर अठारहवें महीने चुनाव करना।

"(छ) यह निश्चित करना कि प्राथमिक पार्टी-संगठन इस नियम का सख्ती से पालन करें कि आम फैक्टरी सभाओं में पार्टी-कमेटियाँ चुनी जायें और प्रतिनिधियों के सम्मेलन उनकी जगह न ले लें।

"(ज) कई प्राथमिक पार्टी-संगठनों के इस चलन का खात्मा करना कि आम मीटिंगें प्रायः खत्म करके, उनकी जगह विभाग-मीटिंगे और प्रतिनिधि सम्मेलन किये जायें।"

इस तरह, पार्टी ने आगामी चुनाव की तैयारियाँ शुरू कीं।

केन्द्रीय समिति का यह फैसला भारी राजनीतिक महत्त्व का था। इसका महत्त्व इसी बात में न था कि उससे सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत के चुनाव के लिये पार्टी आन्दोलन शुरू हुआ, बल्कि इसमें भी, और सबसे पहले इसी में था कि उसने पार्टी-संगठनों को अपना काम पुनर्संगठित करने में मदद दी, पार्टी के अन्दरूनी जनतंत्र का उसूल लागू करने में और पूरी तैयारी के साथ सर्वोच्च सोवियत के चुनावों का सामना करने में मदद दी।

पार्टी ने फैसला किया कि कम्युनिस्टों और गैर-पार्टी जनता के संयुक्त निर्वाचन-दल को चुनाव आन्दोलन चलाने में अपनी नीति की धुरी बनाया जाये। पार्टी ने चुनाव-क्षेत्रों में गैर-पार्टी जनता के साथ मिले-जुले उम्मीदवार खड़े करने का फैसला करके एक संयुक्त दल में, गैर-पार्टी जनता के सहयोग से, चुनावों में प्रवेश किया। पूँजीवादी देशों के चुनावों के लिये यह बिल्कुल अभूतपूर्व और असम्भव सी चीज थी, लेकिन हमारे देश में कम्युनिस्टों और गैर-पार्टी जनता का संयुक्त दल बिल्कुल स्वाभाविक सी चीज थी, क्योंकि यहाँ विरोधी वर्ग बिल्कुल न रह गये थे और जनता के सभी हिस्सों की नैतिक और राजनीतिक एकता एक असन्दिग्ध सत्य है।

7 दिसम्बर 1937 को, पार्टी की केन्द्रीय समिति ने निर्वाचकों के नाम एक घोषणापत्र निकाला, जिसमें कहा गया था :

"12 दिसम्बर 1937 को, हमारे समाजवादी विधान के अनुसार, सोवियत संघ की श्रमिक जनता देश की सर्वोच्च सोवियत के प्रतिनिधियों का चुनाव करेगी। बोल्शेविक पार्टी गैर-पार्टी मजदूरों, किसानों, दफ्तर के कर्मचारियों और बुद्धिजीवियों के सहयोग से, संयुक्त दल में, चुनावों में प्रवेश करती है। बोल्शेविक पार्टी दीवार खड़ी करके गैर-पार्टी जनता से अपने-आपको दूर नहीं रखती, बल्कि इसके विपरीत, गैर-पार्टी जनता के साथ सहयोग से, संयुक्त दल में, मजदूर सभाओं और दफ्तरों के कर्मचारियों के ट्रेड यूनियनों, नौजवान कम्युनिस्ट सभाओं और दूसरे गैर-पार्टी-संगठनों और सभाओं के साथ संयुक्त दल में चुनावों में प्रवेश करती है। इसलिए, उम्मीदवार कम्युनिस्टों और गैर-पार्टी जनता के मिलेजुले उम्मीदवार होंगे; हर गैर-पार्टी प्रतिनिधि कम्युनिस्टों

का भी प्रतिनिधि होगा, ठीक जैसे कि हर कम्युनिस्ट प्रतिनिधि गैर-पार्टी जनता का भी प्रतिनिधि होगा।"

केन्द्रीय समिति के घोषणापत्र के अन्त में, निर्वाचकों से यह अपील की गयी थीः

"सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) की केन्द्रीय समिति तमाम कम्युनिस्टों और हमदर्दों का आह्वान करती है कि वे गैर-पार्टी उम्मीदवारों के लिये वैसे ही एकमत होकर वोट दें जैसे कि वे कम्युनिस्ट उम्मीदवारों को वोट देते हैं।

"सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) की केन्द्रीय समिति तमाम गैर-पार्टी निर्वाचकों का आह्वान करती है कि वे कम्युनिस्ट उम्मीदवारों के लिये वैसे ही एकमत होकर वोट दें जैसे कि वे गैर-पार्टी उम्मीदवारों के लिये देंगे।

"सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) की केन्द्रीय समिति सभी निर्वाचकों का आह्वान करती है कि वे 12 दिसम्बर 1937 को एक साथ निर्वाचन केन्द्रों में संघीय सोवियत और राष्ट्रीयताओं की सोवियत के प्रतिनिधि चुनने के लिये आयें।

"ऐसा एक भी निर्वाचक न होना चाहिए कि जो सोवियत राज्य की सर्वोच्च संस्था के प्रतिनिधि चुनने के गौरवपूर्ण अधिकार का उपयोग न करे।

"ऐसा एक भी सक्रिय नागरिक न होना चाहिए कि जो इस बात में मदद देना अपना नागरिक कर्त्तव्य न समझे कि सभी निर्वाचक, बिना किसी अपवाद के, सर्वोच्च सोवियत के चुनावों में हिस्सा लें।

"12 दिसम्बर 1937 का दिन एक महान त्योहार होना चाहिए, जिसमें लेनिन और स्तालिन के विजयी झण्डे के चारों तरफ सोवियत संघ की सभी राष्ट्रीयताओं की श्रमिक जनता के संघ-बद्ध होने का उत्सव मनाया जाये।"

11 दिसम्बर 1937 को, चुनाव से एक दिन पहले, कामरेड स्तालिन ने, जिस इलाके में वे नामजद हुए थे, वहाँ के निर्वाचकों के सामने भाषण दिया। इसमें उन्होंने बताया कि जनता जिन सार्वजनिक कार्यकर्ताओं को चुनेगी और सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत का प्रतिनिधि बनायेगी, वे किस तरह के होने चाहिए। कामरेड स्तालिन ने कहा :

"निर्वाचकों को यह माँग करनी चाहिए कि उनके प्रतिनिधि अपने काम के योग्य बने रहें; अपने काम में वे राजनीतिक मूढ़मतियों के स्तर तक न फिसल जायें, अपनी जगह वे लेनिन की तरह के राजनीतिक कार्यकर्ता बने रहें, सार्वजनिक कार्यकर्ताओं के रूप में उनकी रूपरेखा वैसी ही साफ-सुथरी और निश्चित हो जैसी लेनिन की थी, वे लड़ाई में वैसे ही निडर हों और जनता के शत्रुओं की तरफ वैसे ही निर्मम हों जैसे लेनिन थे, वे सभी तरह की बदहवासी से, बदहवासी जैसी चीज से भी, मुक्त रहें और जब परिस्थिति उलझने लगे और क्षितिज पर कोई खतरा दिखाई दे तो वे हर तरह के भय से वैसे ही मुक्त हों जैसे लेनिन थे; पेचीदा समस्याओं को सुलझाने में, जहाँ समझ-बूझकर दृष्टिकोण बनाना होता है और पक्ष और विपक्ष की बात अच्छी तरह तौलनी होती है, वे वैसे ही समझ-बूझकर और बुद्धिमानी से काम करें जैसे लेनिन करते थे, वे वैसे ही सच्चे और ईमानदार हों जैसे लेनिन थे, वे अपनी जनता से वैसे

ही प्रेम करें जैसे लेनिन करते थे।"

12 दिसम्बर को, सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत के चुनाव भारी उत्साह के साथ समाप्त हुए। ये चुनाव से बढ़ कर कुछ और भी थे। ये एक महान त्योहार थे, जिसमें सोवियत जनता की विजय का उत्सव मनाया गया था, वे सोवियत संघ की जनता की विशाल मैत्री का प्रदर्शन थे।

कुल 9 करोड़ 40 लाख निर्वाचकों में से, 9 करोड़ 10 लाख से ऊपर ने, या 96.8 फीसदी ने वोट डाले। इनमें से 8,98,44,000 या 98.6 फीसदी ने कम्युनिस्टों और गैर-पार्टी जनता के संयुक्त दल के उम्मीदवारों के लिये वोट दिये। सिर्फ 6,32,000 या 1 फीसदी से कुछ कम ने कम्युनिस्टों और गैर-पार्टी जनता के संयुक्त दल के उम्मीदवारों के खिलाफ वोट दिये। संयुक्त दल के सभी उम्मीदवार बिना किसी अपवाद के चुने गये।

इस तरह, 9 करोड़ लोगों ने एक राय होकर अपने वोटों से सोवियत संघ में समाजवाद की जीत को पक्का किया।

कम्युनिस्टों और गैर-पार्टी जनता के संयुक्त दल के लिये, यह उल्लेखनीय विजय थी।

यह बोल्शेविक पार्टी की विजय थी।

अक्टूबर क्रान्ति की 20वीं वर्षगाँठ पर, अपने ऐतिहासिक भाषण में कामरेड मोलोतोव ने सोवियत जनता की जिस नैतिक और राजनीतिक एकता का हवाला दिया था, यह चुनाव उसका ज्वलन्त प्रमाण था।

उपसंहार

बोल्शेविक पार्टी ने जो ऐतिहासिक मार्ग तय किया है, उससे कौन से मुख्य परिणाम निकलते हैं?

सो.सं.क.पा. (बो.) के इतिहास से हमें कौन सी शिक्षा मिलती है?

(1) पार्टी के इतिहास से सबसे पहले हमें यह शिक्षा मिलती है कि सर्वहारा क्रान्ति की विजय, सर्वहारा अधिनायकत्व की विजय सर्वहारा की क्रान्तिकारी पार्टी के बिना असम्भव है; ऐसी पार्टी के बिना असम्भव है जो अवसरवाद से मुक्त हो, जो समझौतावादियों और समर्पणवादियों का जरा भी मुलाहिजा न करती हो और पूँजीपतियों और उनकी राज्यसत्ता की तरफ क्रान्तिकारी रुख अपनाती हो।

पार्टी के इतिहास से हमें यह शिक्षा मिलती है कि सर्वहारा वर्ग को ऐसी पार्टी के बिना छोड़ देने का मतलब है-उसे क्रान्तिकारी नेतृत्व के बिना छोड़ देना, और उसे क्रान्तिकारी नेतृत्व के बिना छोड़ने का मतलब है-सर्वहारा क्रान्ति के उद्देश्य को चौपट कर देना।

पार्टी के इतिहास से हमें यह शिक्षा मिलती है कि पश्चिमी यूरोप के ढंग की, साधारण सामाजिक-जनवादी पार्टी-जो घरेलू शान्ति की हालत में बढ़ी हो, अवसरवादियों के पीछे घिसटती हो, 'सामाजिक सुधारों' का सपना देखती हो और सामाजिक क्रान्ति से भय खाती हो-ऐसी पार्टी नहीं हो सकती।

पार्टी का इतिहास हमें यह शिक्षा देता है कि सिर्फ नयी तरह की पार्टी मार्क्सवादी

लेनिनवादी पार्टी, सामाजिक क्रान्ति की पार्टी, पूँजीपतियों के खिलाफ निर्णायक युद्ध के लिये सर्वहारा को तैयार कर सकने वाली और सर्वहारा क्रान्ति की विजय संगठित कर सकने वाली पार्टी ही ऐसी पार्टी हो सकती है।

सोवियत संघ की बोल्शेविक पार्टी ऐसी ही पार्टी है।

कामरेड स्तालिन कहते हैं :

"क्रान्ति से पूर्व के दिनों में, बहुत कुछ शान्तिमय विकास के दिनों में, जब दूसरे इण्टरनेशनल की पार्टियाँ मजदूर आन्दोलन में प्रमुख शक्ति थीं और संघर्ष के संसदीय रूप मुख्य रूप समझे जाते थे, तब पार्टी का वह निर्णायक और भारी महत्त्व न था, और न हो सकता था, जो आगे चलकर खुले क्रान्तिकारी संघर्ष की परिस्थितियों में हुआ। दूसरे इण्टरनेशनल पर होने वाले हमलों से उसकी रक्षा करते हुए, काउत्स्की कहता है कि दूसरे इण्टरनेशनल की पार्टियाँ शान्ति का साधन हैं न कि युद्ध का, और इसीलिए युद्ध के दिनों में, सर्वहारा की क्रान्तिकारी कार्रवाई के दिनों में कोई महत्त्वपूर्ण कदम उठाने में वे असमर्थ थीं। यह बिल्कुल ठीक है। लेकिन, इसका मतलब क्या है? इसका मतलब यह है कि दूसरे इण्टरनेशनल की पार्टियाँ सर्वहारा वर्ग के क्रान्तिकारी संघर्ष के अयोग्य हैं, वे सर्वहारा वर्ग की लड़ाकू पार्टियाँ नहीं हैं, जो मजदूरों को सत्तारूढ़ करने में उनकी अगुवाई कर सकें बल्कि चुनाव की मशीनें हैं, जो संसदीय चुनाव और संसदीय संघर्ष के लिये रची गयी हैं। दरअसल, यही सबब है कि जिन दिनों दूसरे इण्टरनेशनल का अवसरवाद जोरों पर था, तब सर्वहारा वर्ग का मुख्य राजनीतिक संगठन पार्टी न थी बल्कि उसका संसदीय गुट था। इसे सभी लोग जानते हैं कि उस समय पार्टी सचमुच संसदीय गुट का पुछल्ला थी, और उसके मातहत थी। कहना न होगा कि ऐसी हालत में और ऐसी पार्टी के हाथ में बागडोर होने पर, सर्वहारा वर्ग को क्रान्ति के लिये तैयार करने का सवाल ही न उठ सकता था।

"लेकिन, नये दौर के शुरू होते ही परिस्थिति बुनियादी तौर पर बदल गयी। नया दौर खुली वर्ग-टक्करों का दौर है, सर्वहारा की क्रान्तिकारी कार्रवाई, सर्वहारा क्रान्ति का दौर है जबकि साम्राज्यवाद का तख्ता उलटने के लिये और सर्वहारा के सत्तारूढ़ होने के लिये प्रत्यक्ष शक्ति संगठन हो रहा है। इस दौर में, सर्वहारा वर्ग के सामने नये काम आते हैं। उसके सामने नयी क्रान्तिकारी नीति पर समूचे पार्टी कार्य को पुनर्संगठित करने के काम आते हैं; सत्ता के लिये क्रान्तिकारी संघर्ष की भावना में मजदूरों को शिक्षित करने के काम आते हैं; रिजर्व शक्ति तैयार रखने और उसे आगे बढ़ाने के काम आते हैं; पड़ोसी देशों के मजदूरों से सहयोग कायम करने के काम आते हैं; उपनिवेशों और पराधीन देशों के स्वाधीनता आन्दोलन से मजबूत सम्बन्ध कायम करने वगैरह-वगैरह के काम आते हैं। यह समझना कि पुरानी सामाजिक-जनवादी पार्टियाँ, जो संसदशाही की शान्तिमय परिस्थितियों में बढ़ी थीं, ये नये काम कर सकेंगी, अपने को घोर निराशा के दलदल में डालना है और अनिवार्य रूप से पराजित होना है। अगर ऐसे काम सँभालने की जिम्मेदारी रहते हुए सर्वहारा वर्ग पुरानी पार्टियों के नेतृत्व में रहे, तो वह पूरी तरह निहत्था ही रहेगा। कहना न होगा कि सर्वहारा वर्ग

ऐसी हालत में रहना मंजूर न कर सकता था।

"इसीलिए, एक नयी पार्टी, एक लड़ाकू पार्टी, एक क्रान्तिकारी पार्टी की जरूरत पैदा हुई, जो इतनी साहसी हो कि सत्ता के लिये संघर्ष में मजदूरों की अगुवाई कर सके, जो इतनी अनुभवी हो कि क्रान्तिकारी परिस्थिति के पेचीदा हालात में अपना दिशा-ज्ञान बनाये रख सके और जो इतनी लचीली हो कि मंजिल तक पहुँचने की राह में तमाम छिपी हुई विघ्नबाधाओं से बचती हुई चल सके।

"ऐसी पार्टी के बिना, साम्राज्यवाद का तख्ता उलटने और सर्वहारा अधिनायकत्व कायम करने की बात सोचना भी बेकार है।

"यह नयी पार्टी लेनिनवाद की पार्टी है।" (स्तालिन, **लेनिनवाद की समस्याएँ**, अं. सं., मास्को, 1947, पृष्ठ 80-81)।

(2) पार्टी के इतिहास से हमें आगे यह शिक्षा मिलती है कि मजदूर वर्ग की पार्टी वर्ग-नेता की अपनी भूमिका तब तक पूरी नहीं कर सकती, सर्वहारा क्रान्ति के संगकनकर्ता और नेता की भूमिका तब तक पूरी नहीं कर सकती, जब तक कि वह मजदूर आन्दोलन के आगे बढ़े हुए सिद्धान्त, मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त में माहिर नहीं होती।

मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त की शक्ति इस बात में है कि किसी भी परिस्थिति में सही दिशा पहचानने में वह पार्टी की मदद करती है, सामयिक घटनाओं के भीतरी सम्बन्ध समझने में, उनकी गति को पहले से देखने में और न सिर्फ यही समझने में कि ये घटनायें कैसे और किस दिशा में इस समय आगे बढ़ रही हैं, बल्कि कैसे और किस दिशा में वे भविष्य में भी बढ़ेंगी, मदद देती है।

सिर्फ ऐसी पार्टी, जो मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त में माहिर हो चुकी हो, विश्वास के साथ आगे बढ़ सकती है और मजदूर वर्ग को आगे ले जा सकती है।

दूसरी तरफ, ऐसी पार्टी जो मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त में माहिर नहीं है, मजबूरन अँधेरे में रास्ता टटोलती है, अपनी कार्रवाई में विश्वास खो देती है और मजदूर वर्ग को आगे नहीं ले जा पाती।

ऐसा लग सकता है कि मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त में माहिर होने के लिये बस इतना ही जरूरी है कि मार्क्स, एंगेल्स और लेनिन की रचनाओं से अलग-थलग नतीजे और स्थापनाएँ मेहनत के साथ रट ली जायें, मौके से उनका उद्धरण देना सीख लिया जाये और बाकी के लिये इस उम्मीद का भरोसा किया जाये कि ऐसे रटे हुए परिणाम और स्थापनाएँ हर किसी परिस्थिति और अवसर के अनुकल होंगी। लेकिन, मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त की तरफ ऐसा रवैया बिल्कुल गलत है। मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त को सूत्रों का संग्रह न समझना चाहिए, कुछ प्रश्नोत्तरों की सूची न समझना चाहिए, कोई धर्म-ग्रंथ न समझना चाहिए, और खुद मार्क्सवादियों को उसका मुल्ला और पण्डित न समझना चाहिए। मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त समाज के विकास का विज्ञान है, मजदूर आन्दोलन का विज्ञान है। विज्ञान की हैसियत से, वह एक जगह स्थिर नहीं रहता, न रह सकता है बल्कि विकसित होता है और अपने को पूर्ण बनाता है। यह स्पष्ट है कि अपने विकास में वह

जरूर ही नये अनुभव और नये ज्ञान से समृद्ध होगा और समय बीतने पर उसकी कुछ स्थापनाएँ और परिणाम जरूर ही बदलेंगे, नयी ऐतिहासिक परिस्थितियों के अनुकूल नयी स्थापनाएँ और परिणाम जरूर ही उनकी जगह लेंगे।

मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त में माहिर होने का हरगिज यह मतलब नहीं है कि उसके तमाम सूत्रों और परिणामों को रट लिया जाये और उसके हर शब्द से चिपके रहा जाये। मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त में माहिर होने के लिये, हमें सबसे पहले उसके शब्दों और तत्व में भेद करना सीखना चाहिये।

मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त में माहिर होने का मतलब है कि उस सिद्धान्त के सार-तत्व को पचाना और सर्वहारा के वर्ग-संघर्ष की बदलती हुई परिस्थितियों में, क्रान्तिकारी आन्दोलन की अमली समस्याएँ हल करने में उसका उपयोग सीखना।

मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त में माहिर होने का मतलब है, इस सिद्धान्त को क्रान्तिकारी आन्दोलन के नये तजुर्बे से भरा-पूरा बनाना, उसे नयी स्थापनाओं और परिणामों से समृद्ध करना। मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त में माहिर होने का मतलब है कि उसकी पुरानी पड़ चुकी स्थापनाओं और परिणामों को सिद्धान्त के तत्व के अनुसार बदलने में हिचकिचाये बिना, उनकी जगह नयी ऐतिहासिक परिस्थितियों के अनुकूल स्थापनाओं और परिणामों को रखकर, उसे **विकसित करने और बढ़ाने** की योग्यता रखना।

मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त कठमुल्लापन नहीं है, बल्कि काम करने के लिये एक मार्ग-दर्शक है।

दूसरी रूसी क्रान्ति (फरवरी 1917) से पहले, सभी देशों के मार्क्सवादी यह मानते थे कि संसदीय जनवादी-गणतंत्र ही पूँजीवाद से समाजवाद की तरफ बढ़ने के दौर में समाज के राजनीतिक संगठन का सबसे उपयुक्त रूप है। यह सही है कि 1870 के आसपास मार्क्स ने कहा था कि सर्वहारा अधिनायकत्व का सबसे उपयुक्त रूप संसदीय जनतंत्र नहीं है बल्कि पेरिस कम्यून जैसा राजनीतिक संगठन है। लेकिन दुर्भाग्य से, मार्क्स ने अपनी रचनाओं में इस स्थापना को और विकसित न किया था और वह भुला दी गयी थी। इसके सिवाय, 1891 के एरफ्रुट कार्यक्रम के मसौदे की अपनी आलोचना में, एंगेल्स ने यह अधिकृत बयान दिया था कि "जनवादी गणतंत्र... सर्वहारा अधिनायकत्व का अपना निश्चित रूप है...।" इससे कोई सन्देह नहीं रह जाता कि जनवादी गणतंत्र को ही मार्क्सवादी सर्वहारा अधिनायकत्व का राजनीतिक रूप समझते चले आये थे। आगे चलकर, एंगेल्स की यही स्थापना सभी मार्क्सवादियों के लिये, लेनिन के लिये भी, पथ-प्रदर्शक सिद्धान्त बन गयी थी। लेकिन, 1905 की रूसी क्रान्ति ने और खास तौर से फरवरी 1917 की क्रान्ति ने समाज के राजनीतिक संगठन का एक नया रूप पेश किया-मजदूर और किसान प्रतिनिधियों की सोवियतें। दोनों रूसी क्रान्तियों के तजुर्बे का अध्ययन करके और मार्क्सवाद के सिद्धान्त के आधार पर, लेनिन इन नतीजे पर पहुँचे कि सर्वहारा अधिनायकत्व के लिये सबसे अच्छा राजनीतिक रूप संसदीय जनवादी गणतंत्र नहीं है, बल्कि सोवियतों का जनतंत्र है। इस आधार से आगे बढ़ते हुए, अप्रैल 1917 में, पूँजीवादी क्रान्ति से समाजवादी क्रान्ति की तरफ बढ़ने के दौर में, लेनिन ने सर्वहारा अधिनायकत्व के सबसे अच्छे राजनीतिक

रूप के तौर पर सोवियतों के जनतंत्र का नारा दिया। सभी देशों के अवसरवादी संसदीय जनतंत्र से चिपके रहे और लेनिन पर मार्क्सवाद से हटने और जनतंत्र का नाश करने का दोष लगाते रहे। लेकिन अवश्य ही, सच्चे मार्क्सवादी लेनिन ही थे जो मार्क्सवाद के सिद्धान्त में माहिर हो चुके थे, न कि वे अवसरवादी। कारण यह कि लेनिन मार्क्सवादी सिद्धान्त को नये अनुभव से समृद्ध करके उसे आगे बढ़ा रहे थे, जबकि अवसरवादी उसे पीछे घसीट रहे थे और उसकी एक स्थापना को कठमुल्लेपन से पकड़े बैठे थे।

हमारी पार्टी, हमारी क्रान्ति और मार्क्सवाद का क्या हश्र होता अगर लेनिन मार्क्सवाद की शब्दावली से कच्ची खा जाते और उनमें यह हिम्मत न होती कि एंगेल्स की रची हुई मार्क्सवाद की एक पुरानी स्थापना की जगह सोवियतों के जनतंत्र के बारे में नयी स्थापना रखें, ऐसी स्थापना जो नयी ऐतिहासिक परिस्थितियों के अनुकूल थी? पार्टी अँधेरे में भटकती रहती, सोवियतें बिखर जातीं, हमारे यहाँ सोवियत सत्ता न होती और मार्क्सवादी सिद्धान्त को भारी धक्का लगता। सर्वहारा वर्ग हार जाता और उसके दुश्मन जीत जाते।

साम्राज्यवाद से पहले के पूँजीवाद का अध्ययन करके, एंगेल्स और मार्क्स इस नतीजे पर पहुँचे थे कि समाजवादी क्रान्ति अकेले एक देश में विजयी नहीं हो सकती, वह एकबारगी धावा बोल कर ही सभी या अधिकांश सभ्य देशों में विजयी हो सकती है। यह बात 19वीं सदी के मध्य की है। यह परिणाम आगे चलकर सभी मार्क्सवादियों के लिये मार्ग-दर्शक सिद्धान्त बन गया। लेकिन, 20वीं सदी के शुरू होते-होते, साम्राज्यवाद से पहले का पूँजीवाद बढ़ कर साम्राज्यवादी पूँजीवाद हो गया, उभरता हुआ पूँजीवाद गतिरुद्ध पूँजीवाद में बदल गया। साम्राज्यवादी पूँजीवाद का अध्ययन करके, मार्क्सवादी सिद्धान्त के आधार पर, लेनिन इस नतीजे पर पहुँचे कि एंगेल्स और मार्क्स का पुराना सूत्र नयी ऐतिहासिक परिस्थितियों के अनुकूल नहीं रह गया है और समाजवादी क्रान्ति की विजय अकेले एक देश में बिल्कुल सम्भव है। सभी देशों के अवसरवादी एंगेल्स और मार्क्स के पुराने सूत्र से चिपके रहे और लेनिन पर मार्क्सवाद से हटने का दोष मढ़ते रहे। लेकिन, अवश्य ही सच्चे मार्क्सवादी लेनिन ही थे जो मार्क्सवाद के सिद्धान्त में माहिर थे, न कि वे अवसरवादी; कारण यह कि लेनिन मार्क्सवादी सिद्धान्तों को नये अनुभव से समृद्ध करके उसे आगे बढ़ा रहे थे, जबकि अवसरवादी उसे पीछे घसीट रहे थे और उसको मुर्दा बना रहे थे।

पार्टी, हमारी क्रान्ति और मार्क्सवाद का क्या हश्र होता अगर लेनिन मार्क्सवाद की शब्दावली से कच्ची खा जाते और उनमें सैद्धान्तिक आत्मविश्वास का इतना बल न होता कि मार्क्सवाद के एक पुराने परिणाम को खारिज कर दें और उसकी जगह एक नया परिणाम रखें, जो अकेले एक देश में समाजवाद की विजय की सम्भावना का दावा करता हो, ऐसा परिणाम जो नयी ऐतिहासिक परिस्थितियों के अनुकूल हो? पार्टी अँधेरे में भटकती रहती, सर्वहारा क्रान्ति नेतृत्व विहीन हो जाती, और मार्क्सवादी सिद्धान्त का पतन शुरू हो जाता। सर्वहारा वर्ग हार जाता और उसके दुश्मन जीत जाते।

अवसरवाद का हमेशा यही मतलब नहीं होता कि मार्क्सवादी सिद्धान्त या उसकी किन्हीं स्थापनाओं और परिणामों को सीधे-सीधे नामंजूर किया जाये। अवसरवाद कभी-कभी

इस कोशिश में भी प्रकट होता है कि मार्क्सवाद की उन स्थापनाओं से चिपका रहे जो पुरानी पड़ चुकी हैं और उन्हें धर्म-सूत्र की तरह बना दिया जाये, जिससे कि मार्क्सवाद का और आगे को विकास रोक दिया जाये और फलतः सर्वहारा वर्ग के क्रान्तिकारी आन्दोलन का विकास रोक दिया जाये।

बिना अतिशयोक्ति के भय के, यह कहा जा सकता है कि एंगेल्स की मृत्यु के बाद सिद्धान्त में माहिर लेनिन, और लेनिन के बाद स्तालिन और लेनिन के दूसरे शिष्य ही एकमात्र ऐसे मार्क्सवादी रहे हैं जिन्होंने मार्क्सवादी सिद्धान्त को आगे बढ़ाया है और जिन्होंने सर्वहारा के वर्ग-संघर्ष की नयी परिस्थितियों में नये तजुर्बों से उसे समृद्ध किया है।

और, ठीक इसी वजह से कि लेनिन और लेनिनवादियों ने मार्क्सवादी सिद्धान्त को आगे बढ़ाया है, लेनिनवाद मार्क्सवाद का अगला विकास है। वह सर्वहारा के वर्ग-संघर्ष की नयी परिस्थितियों का मार्क्सवाद है, साम्राज्यवाद और सर्वहारा क्रान्तियों के युग का मार्क्सवाद है, भूमण्डल के छठे भाग में समाजवाद की विजय के युग का मार्क्सवाद है।

अक्टूबर 1917 में, बोल्शेविक पार्टी की जीत न हो पाती यदि उसके प्रमुख सदस्य मार्क्सवाद के सिद्धान्त में माहिर न हो चुके होते, यदि उन्होंने काम करने के लिये इस सिद्धान्त को मार्ग-दर्शक के रूप में देखना न सीखा होता, यदि उन्होंने सर्वहारा के वर्ग-संघर्ष के नये तजुर्बे से समृद्ध करके मार्क्सवादी सिद्धान्त को आगे बढ़ाना न सीखा होता।

उन जर्मन मार्क्सवादियों की आलोचना करते हुए, जिन्होंने अमरीका में वहाँ के मजदूर आन्दोलन के नेतृत्व का भार सँभाला था, एंगेल्स ने लिखा था :

> "जर्मन यह नहीं समझे कि अमरीकी जनता को गतिशील करने के लिये किस तरह सिद्धान्त को अस्त्र की तरह इस्तेमाल करना चाहिए। अधिकांशतः वे खुद ही सिद्धान्त नहीं समझते और उसके साथ शास्त्रीय और कठमुल्लेपन के ढंग से व्यवहार करते हैं, मानो वह कोई रट लेने की चीज हो और उसके बाद वह बिना हाथ-पैर हिलाये सभी जरूरतें पूरी कर देगी। उनके लिये वह धर्मशास्त्र है, न कि काम करने के लिये एक मार्गदर्शक।" (**जोर्गे के नाम पत्र,** 29 नवम्बर 1886)।

अप्रैल 1917 में, कामेनेव और कुछ दूसरे पुराने बोल्शेविक सर्वहारा और किसानों के क्रान्तिकारी-जनवादी अधिनायकत्व के पुराने सूत्र से ऐसे समय चिपके हुए थे जबकि क्रान्तिकारी आन्दोलन आगे बढ़ चुका था और उसकी माँग थी कि समाजवादी क्रान्ति की तरफ बढ़ा जाये। कामेनेव और इन पुराने बोल्शेविकों की आलोचना करते हुए, लेनिन ने लिखा था :

> "हमारी शिक्षा धर्मशास्त्र नहीं है, बल्कि काम करने के लिये एक मार्गदर्शक है। मार्क्स और एंगेल्स हमेशा यही कहते थे। वे ठीक ही 'सूत्रों' को रटने और दुहराने का मजाक उड़ाते थे। ये सूत्र अधिक से अधिक आम कार्यों की रूपरेखा ही बता सकते हैं। लेकिन, ऐतिहासिक क्रम के हर अलग दौर का ठोस आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों में उनमें तब्दीली होना जरूरी है।... इस अकाट्य सत्य को अच्छी तरह

महसूस करना जरूरी है कि मार्क्सवादी को वास्तविक जीवन की ठोस हकीकत पहचाननी चाहिए, और बीते हुए कल के सिद्धान्त से चिपके न रह जाना चाहिए।...” (**लेनिन ग्रंथावली**, रू.सं., खण्ड 20, पृ. 100-101)।

(3) पार्टी के इतिहास से हमें आगे यह शिक्षा मिलती है कि मजदूर वर्ग की कतारों में निम्न-पूँजीवादी पार्टियाँ सक्रिय रहती हैं और मजदूर वर्ग के पिछड़े हुए हिस्सों को पूँजीपतियों के बाहुपाश में ठेल देती हैं और इस तरह, मजदूर वर्ग की एकता तोड़ देती हैं; जब तक इस तरह की पार्टियाँ पछाड़ी नहीं जातीं तब तक सर्वहारा क्रान्ति की विजय असम्भव होती है।

हमारी पार्टी का इतिहास निम्न-पूँजीवादी पार्टियों के खिलाफ-समाजवादी-क्रान्तिकारियों, मेन्शेविकों, अराजकतावादियों और राष्ट्रवादियों के खिलाफ-संघर्ष का इतिहास और इन पार्टियों को पूरी तरह हराने का इतिहास है। अगर ये पार्टियाँ पछाड़ी न जातीं और मजदूर वर्ग की कतारों से निकाली न जातीं तो मजदूर वर्ग की एकता कायम न होती, और अगर मजदूर वर्ग की एकता कायम न होती तो सर्वहारा क्रान्ति की जीत हासिल करना असम्भव होता।

ये पार्टियाँ जो पहले पूँजीवाद की रक्षा की हिमायत करती थीं और आगे चलकर, अक्टूबर क्रान्ति के बाद पूँजीवाद को बहाल करने की हिमायत करती थीं, यदि ये पार्टियाँ पूरी तरह पछाड़ी न जातीं तो सर्वहारा अधिनायकत्व को बनाये रखना, विदेशी सैनिक हस्तक्षेप को हराना, और समाजवाद का निर्माण असम्भव होता।

यह बात आकस्मिक न समझनी चाहिए कि सभी निम्न-पूँजीवादी पार्टियाँ, जो जनता की आँखों में धूल झोंकने के लिये अपने को ‘क्रान्तिकारी’ और ‘समाजवादी’ पार्टियाँ कहती थीं-समाजवादी-क्रान्तिकारी, मेन्शेविक, अराजकतावादी और राष्ट्रवादी-अक्टूबर समाजवादी क्रान्ति से पहले ही क्रान्तिविरोधी हो गयी थीं और आगे चलकर विदेशी पूँजीपतियों के जासूस विभागों की दलाल बन गयीं, जासूसों, तोड़-फोड़ करने वालों, भड़काने वालों, हत्यारों और देश के गद्दारों का गिरोह बन गयी थीं।

लेनिन कहते हैं :

> “सामाजिक क्रान्ति के युग में, सर्वहारा वर्ग की एकता सिर्फ मार्क्सवाद की चरम क्रान्तिकारी पार्टी ही कायम कर सकती है, और वह तमाम दूसरी पार्टियों के खिलाफ निर्मम संघर्ष करके ही इसे कायम कर सकती है।” (**लेनिन ग्रंथावली**, रू.सं., खं. 26, पृ. 50)।

(4) पार्टी का इतिहास आगे हमें यह शिक्षा देता है कि जब तक मजदूर वर्ग की पार्टी अपनी ही कतारों के अवसरवादियों के खिलाफ बेमुलाहिजा संघर्ष नहीं करती, जब तक अपने ही भीतर के समर्पणवादियों को कुचल नहीं देती, तब तक वह अपनी कतारों में एकता और अनुशासन कायम नहीं रख सकती। वह सर्वहारा क्रान्ति के नेता और संगठनकर्ता की अपनी भूमिका पूरी नहीं कर सकती और न नये समाजवादी समाज की निर्माता की भूमिका पूरी कर सकती है।

हमारी पार्टी के आन्तरिक जीवन के विकास का इतिहास पार्टी के भीतर अवसरवादी गुटों के खिलाफ-'अर्थवादियों', मेन्शेविकों, त्रात्स्कीवादियों, बुखारिनपंथियों और राष्ट्रवादी भटकाव वालों के खिलाफ-संघर्ष का इतिहास है, और इन गुटों की पूरी हार का इतिहास है।

हमारी पार्टी का इतिहास हमें यह सिखाता है कि समर्पणवादियों के ये सभी गुट दरअसल पार्टी के अन्दर मेन्शेविज्म के दलाल थे, मेन्शेविज्म की तलछट और उसके कीड़े थे, मेन्शेविज्म को जारी रखने वाले थे। मेन्शेविकों की तरह, वे मजदूर वर्ग और उसकी पार्टी में पूँजीवादी असर फैलाने के साधन थे। इसलिए, पार्टी में इन गुटों को खत्म करने का संघर्ष मेन्शेविज्म को खत्म करने के संघर्ष का ही एक हिस्सा था।

अगर हम 'अर्थवादियों' और मेन्शेविकों को न पछाड़ते तो हम पार्टी न बना पाते और मजदूर वर्ग को सर्वहारा क्रान्ति की मंजिल तक न ले जा पाते।

अगर हम त्रात्स्कीवादियों और बुखारिनपंथियों को न हराते, तो वे परिस्थितियाँ पैदा न कर पाते जो समाजवाद के निर्माण के लिये अनिवार्य हैं।

यदि हम सभी रंग-रूपों के राष्ट्रवादी भटकाववालों को न हराते, तो हम जनता को अन्तरराष्ट्रीयता की भावना में शिक्षित न कर पाते, हम सोवियत संघ की राष्ट्रीयताओं की महान मैत्री के झण्डे की रक्षा न कर पाते और सोवियत समाजवादी गणतंत्रों का संघ न रच पाते।

कुछ लोगों को लग सकता है कि बोल्शेविकों ने पार्टी के भीतर अवसरवादियों के खिलाफ संघर्ष में ही बहुत समय लगाया और वह उनके महत्त्व को बहुत बढ़ा-चढ़ाकर आँकते थे। लेकिन, ऐसा सोचना बिल्कुल ही गलत होगा। हमारे भीतर का अवसरवाद किसी स्वस्थ शरीर में नासूर की तरह है, और उसे कभी तवज्जो न देनी चाहिये। पार्टी मजदूर वर्ग का प्रमुख दस्ता है, उसका सबसे अगला किला है, उसका सेनापति विभाग है। सन्देहवादी, अवसरवादी, समर्पणवादी और गद्दार मजदूर वर्ग के संचालक दल में बर्दाश्त नहीं किये जा सकते। यदि पूँजीपतियों से जीवन-मरण की लड़ाई लड़ते हुए खुद मजदूर वर्ग के संचालक दल में ही, उसके किले में ही, समर्पणवादी और गद्दार रहें तो मजदूर वर्ग पर दुहरी मार, मोर्चे से और पीछे से भी मार होने लगेगी। जाहिर है कि ऐसे संघर्ष का नतीजा हार ही हो सकता है। किला लेने का सबसे आसान तरीका उस पर भीतर से कब्जा करना है। जीत हासिल करने के लिये मजदूर वर्ग की पार्टी से, उसके संचालक दल से, उसके अगले किले से सबसे पहले समर्पणवादियों, भगोड़ों, गुण्डों और गद्दारों को निकाल बाहर करना चाहिए।

यह बात आकस्मिक ही न समझनी चाहिए कि त्रात्स्कीवादी, बुखारिनपंथी और राष्ट्रवादी भटकाव वाले, जो लेनिन और पार्टी के खिलाफ लड़े थे, उसी मंजिल पर पहुँचे जहाँ मेन्शेविक और समाजवादी-क्रान्तिकारी पार्टियाँ पहुँची थीं, यानी वे फासिस्ट जासूस-विभागों के दलाल बन गये, तोड़-फोड़ करने वाले, हत्यारे, भड़काने वाले और देश से गद्दारी करने वाले बन गये।

लेनिन ने कहा था :

"हमारी कतारों में सुधारवादियों, मेन्शेविकों के रहते हुए, सर्वहारा क्रान्ति में जीत हासिल करना असम्भव है, उस जीत को बनाये रखना असम्भव है। सिद्धान्त रूप में, यह बात स्पष्ट है और रूस तथा हंगरी-दोनों के तजुर्बे से उसका ज्वलन्त प्रमाण मिला है।... रूस में, अनेक बार ऐसी कठिन परिस्थितियाँ पैदा हुई हैं जबकि सोवियत व्यवस्था बिल्कुल निश्चित रूप से उलट दी जाती अगर हमारी पार्टी में मेन्शेविक, सुधारवादी और निम्न-पूँजीवादी जनवादी बने रहते....।" (**लेनिन ग्रंथावली,** रू.सं., खण्ड 25, पृष्ठ 462-63)।

कामरेड स्तालिन कहते हैं :

"हमारी पार्टी अपनी कतारों में अपूर्व दृढ़ता और आन्तरिक एकता मुख्यतः इसलिए कायम कर सकी कि वह समय रहते अवसरवादी कोढ़ से अपने को शुद्ध रख सकी, वह अपनी कतारों से विसर्जनवादियों, मेन्शेविकों को निकाल सकी। सर्वहारा पार्टियाँ अपनी कतारों से अवसरवादियों और सुधारवादियों, सामाजिक-साम्राज्यवादियों और सामाजिक-अन्धराष्ट्रवादियों, सामाजिक-राष्ट्रभक्तों और सामाजिक -शान्तिवादियों को निकालकर विकसित और मजबूत होती है। पार्टी अपनी कतारों से अवसरवादी तत्वों को निकालकर मजबूत होती हैं।" (स्तालिन, **लेनिनवाद की समस्याएँ**, अं. सं., मास्को 1947, पृष्ठ 91)।

(5) पार्टी का इतिहास हमें आगे यह शिक्षा देता है कि पार्टी मजदूर वर्ग के नेता की अपनी भूमिका पूरी नहीं कर सकती यदि सफलता से बदहवास होकर उसमें घमण्ड आ जाये, वह अपने काम में दोष न देखे, अपनी गलतियाँ मानने से और समय रहते खुल कर और ईमानदारी से उन्हें सुधारने से डरे।

पार्टी अजेय होती है यदि वह आलोचना और आत्मालोचना से न डरे, यदि वह अपने काम में गलतियों और दोषों को नजरन्दाज न करे, यदि वह पार्टी के काम की गलतियों से सबक लेकर अपने कार्यकर्ताओं को सिखाये-पढ़ाये और यदि वह समय रहते अपनी गलतियों को सुधारना जाने।

वह पार्टी खत्म हो जाती है जो अपनी गलतियों को छिपाती है जो कठिन समस्याओं को नजरन्दाज करती है, जो सब कुछ ठीक होने का बहाना करके अपनी गलतियों पर पर्दा डालती है, जो आलोचना और आत्मालोचना बर्दाश्त नहीं कर सकती, जो आत्मसन्तोष और घमण्ड में फूल जाती है और अपनी सफलताओं पर विश्राम करने लगती है।

लेनिन कहते हैं :

"कोई राजनीतिक पार्टी अपनी गलतियों की तरफ कैसा रुख अपनाती है, यह इस बात को समझने का बहुत ही महत्त्वपूर्ण और पक्का तरीका है कि वह पार्टी कितनी सच्ची है और अमल में वह अपने वर्ग और मेहनतकश जनता की तरफ अपनी जिम्मेदारियाँ कैसे पूरी करती है। खुल कर गलती मानना, उसके कारण निश्चित करना, जिन परिस्थितियों में गलती हुई, उनकी छानबीन करना और गलती सुधारने

के तरीकों पर पूरी तरह विचार करना-एक गम्भीर पार्टी की यही निशानी है; इसी तरीके से उसे अपना कर्त्तव्य पालन करना चाहिए, इसी तरीके से उसे अपने वर्ग और उसके बाद जनता को सिखाना-पढ़ाना चाहिये।" (**लेनिन,** सं. ग्रं. अं. सं., मास्को, 1947, खण्ड 2, पृष्ठ 599)।

और आगे :

"सभी क्रान्तिकारी पार्टियाँ, जो अब तक मिट चुकी हैं, इसीलिए मिटीं कि वे घमण्ड से भर गयीं, वे यह न देख पायीं कि उनकी शक्ति कहाँ है और अपनी कमजोरियाँ बताने में डरीं। लेकिन, हम नहीं मिटेंगे, क्योंकि हम अपनी कमजोरियाँ बताने से डरते नहीं हैं और उन्हें दूर करना सीखेंगे।" (**लेनिन ग्रंथावली**, रू.सं., खं. 27, पृष्ठ 260-61)।

(6) अन्त में, पार्टी के इतिहास से हमें यह शिक्षा मिलती है कि जब तक आम जनता से उसका व्यापक सम्पर्क नहीं होता, जब तक वह इस सम्बन्ध को लगातार मजबूत नहीं करती, जब तक वह आम जनता की आवाज सुनना और उसकी फौरी जरूरतों को समझना नहीं जानती, जब तक आम जनता को सिखाने के ही लिये नहीं बल्कि उससे सीखने के लिये भी तैयार नहीं रहती, तब तक मजदूर वर्ग की पार्टी सच्ची जनपार्टी नहीं हो सकती, जो लाखों मजदूरों का और तमाम श्रमिक जनता का नेतृत्व कर सके।

पार्टी अजेय होती है अगर वह, लेनिन के शब्दों में, "आम मेहनतकश जनता से नाता जोड़ सके, उससे निकट सम्पर्क बनाये रख सके, और चाहें तो कह लीजिये कि एक हद तक उसमें घुलमिल सके और सबसे पहले सर्वहारा के साथ, लेकिन गैर-सर्वहारा मेहनतकश अवाम के साथ भी, यह सम्बन्ध कायम रख सके।" (लेनिन, सं. ग्रं. अं. सं, मास्को, 1947, खण्ड 2, पृष्ठ 574)।

वह पार्टी मिट जाती है जो अपने को अपने छोटे से पार्टी के खोल में बन्द कर लेती है, जो अपने को आम जनता से दूर कर लेती है, जो अपने ऊपर नौकरशाही जंग चढ़ जाने देती है।

कामरेड स्तालिन कहते हैं :

"हम इसे नियम के रूप में ग्रहण कर सकते हैं कि जब तक बोल्शेविक आम जनता से सम्बन्ध बनाये रहेंगे, तब तक वे अजेय रहेंगे। और इसके विपरीत, जैसे ही बोल्शेविक आम जनता से नाता तोड़ेंगे और उससे सम्पर्क खो देंगे, जैसे ही उन पर नौकरशाही जंग चढ़ जायेगा, वे अपनी सारी ताकत खो देंगे और शून्य के बराबर रह जायेंगे।

"प्राचीन यूनानियों की दन्तकथाओं में एक प्रसिद्ध वीर ऐण्टीयस था। कथा के अनुसार, वह समुद्र के देवता पोसेईडन और धरती की देवी गीया का पुत्र था। ऐण्टीयस अपनी माँ को बहुत प्यार करता था, जिसने उसे जन्म दिया था, उसे दूध पिलाया था और पाला-पोसा था। कोई ऐसा वीर न था जिसे ऐण्टीयस ने परास्त न किया हो। वह अजेय वीर समझा जाता था। उसकी शक्ति किस बात में थी? उसकी

शक्ति इस बात में थी कि हर बार जब वह शत्रु से लड़ते हुए मुसीबत में होता था तो वह धरती को छू लेता था, उस माता को जिसने उसे जन्म दिया था और दूध पिलाया था, और इससे उसे नयी शक्ति मिल जाती थी। फिर भी, उसके लिये हार का खतरा था-यह खतरा कि किसी न किसी तरह वह धरती से अलग न कर दिया जाये। उसके दुश्मन उसकी यह कमजोरी जानते थे और उसकी ताक में थे। एक दिन ऐसा दुश्मन आ गया कि जिसने इस कमजोरी से फायदा उठाया और ऐण्टीयस को हरा दिया। यह दुश्मन हरकुलीज था। हरकुलीज ने ऐण्टीयस को कैसे हराया? उसने उसे धरती से उठा लिया, अधर में टाँगे रखा, उसे धरती न छूने दी और उसका गला घोंट दिया।

"मैं समझता हूँ कि बोल्शेविक हमें यूनानी दन्तकथाओं के वीर ऐण्टीयस की याद दिलाते हैं। वे भी ऐण्टीयस की तरह इसलिए शक्तिशाली हैं कि वे अपनी माता से, उस जनता से सम्पर्क बनाये रखते हैं जिसने उन्हें जन्म दिया है, दूध पिलाया है और बड़ा किया है। और जब तक वे अपनी माता से, अपनी जनता से सम्पर्क बनाये रहेंगे तब तक वे अवश्य ही अजेय बने रहेंगे।

"बोल्शेविक नेतृत्व की अजेयता का यही रहस्य है।" (स्तालिन, **पार्टी के काम के दोष**)।

बोल्शेविक पार्टी ने जो ऐतिहासिक मार्ग तय किया है, उससे हमें यही मुख्य शिक्षा मिलती है।

जे. वी. स्तालिन द्वारा लिखित और सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) की केन्द्रीय समिति के एक आयोग द्वारा सम्पादित यह पुस्तक सोवियत संघ में 1938 में छपी थी। यह पुस्तक दुनियाभर के कम्युनिस्टों के लिए एक अनिवार्य पाठ्यपुस्तक रही है, और आगे भी रहेगी। यह पुस्तक कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में मज़दूर वर्ग द्वारा समाजवाद के लिए सफल संघर्ष और समाजवादी निर्माण के अनुभवों और सबकों का निचोड़ प्रस्तुत करती है। यह पुस्तक हमें सामाजिक विकास के नियमों के ज्ञान से लैस करती है तथा पूँजी और श्रम के बीच जारी विश्व ऐतिहासिक महासमर में समाजवाद की अपरिहार्य विजय में विश्वास पैदा करती है। निम्न-पूँजीवादी पार्टियाँ-गुटों, सभी प्रकार के अवसरवादियों, आत्मसमर्पणवादियों, जनता के दुश्मनों और पार्टी के भीतर वामपन्थी दुस्साहसवाद तथा दक्षिणपन्थी अवसरवाद की प्रवृत्तियों के ख़िलाफ़ समझौताहीन संघर्ष चलाते हुए तपकर निखरी बोल्शेविक पार्टी का यह इतिहास हर देश के क्रान्तिकारियों के लिए एक प्रकाशस्तम्भ है।

राहुल
फ़ाउण्डेशन

ISBN 978-81-87728-15-3
मूल्य : रु. 90.00

बेहतर ज़िन्दगी का रास्ता
बेहतर किताबों से होकर जाता है!

जनचेतना

सम्पूर्ण सूचीपत्र
2018

हम हैं सपनों के हरकारे
हम हैं विचारों के डाकिये

आम लोगों के लिए
ज़रूरी हैं वे किताबें
जो उनकी ज़िन्दगी की घुटन
और मुक्ति के स्वप्नों तक
पहुँचाती हैं विचार
जैसे कि बारूद की ढेरी तक
आग की चिनगारी।
घर–घर तक चिनगारी छिटकाने वाला
तेज़ हवा का झोंका बन जाना होगा
ज़िन्दगी और आने वाले दिनों का सच
बतलाने वाली किताबों को
जन–जन तक पहुँचाना होगा।

दो दशक पहले प्रगतिशील, जनपक्षधर साहित्य को जन–जन तक पहुँचाने की मुहिम की एक छोटी–सी शुरुआत हुई, बड़े मंसूबे के साथ। एक छोटी–सी दुकान और फ़ुटपाथों पर, मुहल्लों में और दफ़्तरों के सामने छोटी–छोटी प्रदर्शनियाँ लगाने वाले तथा साइकिलों पर, ठेलों पर, झोलों में भरकर घर–घर किताबें पहुँचाने वाले समर्पित अवैतनिक वालण्टियरों की टीम – शुरुआत बस यहीं से हुई। आज यह वैचारिक अभियान उत्तर भारत के दर्जनों शहरों और गाँवों तक फैल चुका है। एक बड़े और एक छोटे प्रदर्शनी वाहन के माध्यम से जनचेतना हिन्दी और पंजाबी क्षेत्र के सुदूर कोनों तक हिन्दी, पंजाबी और अंग्रेज़ी साहित्य एवं कला–सामग्री के साथ सपने और विचार लेकर जा रही है, जीवन–संघर्ष–सृजन–प्रगति का नारा लेकर जा रही है।

हिन्दी क्षेत्र में यह अपने ढंग का एक अनूठा प्रयास है। एक भी वैतनिक स्टाफ़ के बिना, समर्पित वालण्टियरों और विभिन्न सहयोगी जनसंगठनों के कार्यकर्ताओं के बूते पर यह प्रोजेक्ट आगे बढ़ रहा है।

आइये, आप सभी इस मुहिम में हमारे सहयात्री बनिये।

सम्पूर्ण सूचीपत्र

परिकल्पना प्रकाशन

उपन्यास

1.	**तरुणाई का तराना**/याङ मो		...
2.	**तीन टके का उपन्यास**/बेर्टोल्ट ब्रेष्ट		...
3.	**माँ**/मक्सिम गोर्की		...
4.	**वे तीन**/मक्सिम गोर्की		75.00
5.	**मेरा बचपन**/मक्सिम गोर्की		...
6.	**जीवन की राहों पर**/मक्सिम गोर्की		...
7.	**मेरे विश्वविद्यालय**/मक्सिम गोर्की		...
8.	**फ़ोमा गोर्देयेव**/मक्सिम गोर्की		55.00
9.	**अभागा**/मक्सिम गोर्की		40.00
10.	**बेकरी का मालिक**/मक्सिम गोर्की		25.00
11.	**असली इन्सान**/बोरिस पोलेवोई		...
12.	**तरुण गार्ड**/अलेक्सान्द्र फ़देयेव	(दो खण्डों में)	160.00
13.	**गोदान**/प्रेमचन्द		...
14.	**निर्मला**/प्रेमचन्द		...
15.	**पथ के दावेदार**/शरत्चन्द्र		...
16.	**चरित्रहीन**/शरत्चन्द्र		...
17.	**गृहदाह**/शरत्चन्द्र		70.00
18.	**शेषप्रश्न**/शरत्चन्द्र		...
19.	**इन्द्रधनुष**/वान्दा वैसील्युस्का		65.00
20.	**इकतालीसवाँ**/बोरीस लव्रेन्योव		20.00
21.	**दास्तान चलती है** (एक नौजवान की डायरी से)/अनातोली कुज़्नेत्सोव		70.00

22.	**वे सदा युवा रहेंगे**/ग्रीगोरी बकलानोव	60.00
23.	**मुर्दों को क्या लाज-शर्म**/ग्रीगोरी बकलानोव	40.00
24.	**बख़्तरबन्द रेल 14-69**/व्सेवोलोद इवानोव	30.00
25.	**अश्वसेना**/इसाक बाबेल	40.00
26.	**लाल झण्डे के नीचे**/लाओ श	50.00
27.	**रिक्शावाला**/लाओ श	65.00
28.	**चिरस्मरणीय** (प्रसिद्ध कन्नड़ उपन्यास)/निरंजन	55.00
29.	**एक तयशुदा मौत** (एनजीओ की पृष्ठभूमि पर)/मोहित राय	30.00
30.	**Mother/***Maxim Gorky*	250.00
31.	**The Song of Youth**/*Yang Mo*	...

कहानियाँ

1.	**श्रेष्ठ सोवियत कहानियाँ** (3 खण्डों का सेट)	450.00
2.	**वह शख़्स जिसने हैडलेबर्ग को भ्रष्ट कर दिया** (मार्क ट्वेन की दो कहानियाँ)	60.00

मक्सिम गोर्की

3.	**चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 1)	...
4.	**चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 2)	...
5.	**चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 3)	...
6.	**हिम्मत न हारना मेरे बच्चो**	10.00
7.	**कामो : एक जाँबाज़ इन्क़लाबी मज़दूर की कहानी**	...

अन्तोन चेख़व

8.	**चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 1)	...
9.	**चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 2)	...
10.	**दो अमर कहानियाँ**/लू शुन	...
11.	**श्रेष्ठ कहानियाँ**/प्रेमचन्द	80.00
12.	**पाँच कहानियाँ**/पुश्किन	...
13.	**तीन कहानियाँ**/गोगोल	30.00
14.	**तूफ़ान**/अलेक्सान्द्र सेराफ़ीमोविच	60.00
15.	**वसन्त**/सेर्गेई अन्तोनोव	60.00
16.	**वसन्तागम**/रओ शि	50.00

17. **सूरज का ख़ज़ाना**/मिख़ाईल प्रीश्विन 40.00
18. **स्नेगोवेत्स का होटल**/मत्वेई तेवेल्योव 35.00
19. **वसन्त के रेशम के कीड़े**/माओ तुन 50.00
20. **क्रान्ति झंझा की अनुगूँजें** (अक्टूबर क्रान्ति की कहानियाँ) 75.00
21. **चुनी हुई कहानियाँ**/श्याओ हुङ 50.00
22. **समय के पंख**/कोन्स्तान्तीन पाउस्तोव्सकी ...
23. **श्रेष्ठ रूसी कहानियाँ** (संकलन) ...
24. **अनजान फूल**/आन्द्रेई प्लातोनोव 40.00
25. **कुत्ते का दिल**/मिख़ाईल बुल्गाकोव 70.00
26. **दोन की कहानियाँ**/मिख़ाईल शोलोख़ोव 35.00
27. **अब इन्साफ़ होने वाला है** ...
(भारत और पाकिस्तान की प्रगतिशील उर्दू कहानियों का प्रतिनिधि संकलन)
(ग्यारह नयी कहानियों सहित परिवर्द्धित संस्करण)/स. **शकील सिद्दीक़ी**
28. **लाल कुरता**/हरिशंकर श्रीवास्तव ...
29. **चम्पा और अन्य कहानियाँ**/मदन मोहन 35.00

कविताएँ

1. **जब मैं जड़ों के बीच रहता हूँ**/पाब्लो नेरूदा 60.00
2. **आँखें दुनिया की तरफ़ देखती हैं**/लैंग्स्टन ह्यूज 60.00
3. **उम्मीद-ए-सहर की बात सुनो** (फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ के संस्मरण और चुनिन्दा शायरी, सम्पादक: शकील सिद्दीक़ी) 160.00
4. **माओ त्से-तुङ की कविताएँ** (राजनीतिक पृष्ठभूमि सहित विस्तृत टिप्पणियाँ एवं अनुवाद : सत्यव्रत) 20.00
5. **इकहत्तर कविताएँ और तीस छोटी कहानियाँ – बेर्टोल्ट ब्रेष्ट**
(मूल जर्मन से अनुवाद : मोहन थपलियाल)
(ब्रेष्ट के दुर्लभ चित्रों और स्केचों से सज्जित) 150.00
6. **समर तो शेष है...** (इप्टा के दौर से आज तक के प्रतिनिधि क्रान्तिकारी समूहगीतों का संकलन) 65.00
7. **मध्यवर्ग का शोकगीत**/हान्स माग्नुस एन्त्सेन्सबर्गर 30.00
8. **जेल डायरी**/हो ची मिन्ह 40.00
9. **ओस की बूँदें और लाल गुलाब**/होसे मारिया सिसों 25.00

10. **इन्तिफ़ादा :** फ़लस्तीनी कविताएँ/स. रामकृष्ण पाण्डेय ...

11. **लहू है कि तब भी गाता है**/पाश ...

12. **लोहू और इस्पात से फूटता गुलाब :** फ़लस्तीनी कविताएँ (द्विभाषी संकलन)
A Rose Breaking Out of Steel and Blood (Palestinian Poems) 60.00

13. **पाठान्तर**/विष्णु खरे 50.00

14. **लालटेन जलाना** (चुनी हुई कविताएँ)/विष्णु खरे 60.00

15. **ईश्वर को मोक्ष**/नीलाभ 60.00

16. **बहनें और अन्य कविताएँ**/असद ज़ैदी 50.00

17. **सामान की तलाश**/असद ज़ैदी 50.00

18. **कोहेकाफ़ पर संगीत-साधना**/शशिप्रकाश 50.00

19. **पतझड़ का स्थापत्य**/शशिप्रकाश 75.00

20. **सात भाइयों के बीच चम्पा**/कात्यायनी (पेपरबैक) ...
(हार्डबाउंड) 125.00

21. **इस पौरुषपूर्ण समय में**/कात्यायनी 60.00

22. **जादू नहीं कविता**/कात्यायनी (पेपरबैक) ...
(हार्डबाउंड) 200.00

23. **फ़ुटपाथ पर कुर्सी**/कात्यायनी 80.00

24. **राख-अँधेरे की बारिश में**/कात्यायनी 15.00

25. **यह मुखौटा किसका है**/विमल कुमार 50.00

26. **यह जो वक़्त है**/कपिलेश भोज 60.00

27. **देश एक राग है**/भगवत रावत ...

28. **बहुत नर्म चादर थी जल से बुनी**/नरेश चन्द्रकर 60.00

29. **दिन भौंहें चढ़ाता है**/मलय 120.00

30. **देखते न देखते**/मलय 65.00

31. **असम्भव की आँच**/मलय 100.00

32. **इच्छा की दूब**/मलय 90.00

33. **इस ढलान पर**/प्रमोद कुमार 90.00

34. **तो**/शैलेय 75.00

नाटक

1. **करवट**/मक्सिम गोर्की 40.00

2. **दुश्मन**/मक्सिम गोर्की 35.00

3. **तलछट**/मक्सिम गोर्की ...
4. **तीन बहनें** (दो नाटक)/अन्तोन चेख़व 45.00
5. **चेरी की बग़िया** (दो नाटक)/अ. चेख़व 45.00
6. **बलिदान जो व्यर्थ न गया**/व्सेवोलोद विश्नेव्स्की 30.00
7. **क्रेमलिन की घण्टियाँ**/निकोलाई पोगोदिन 30.00

संस्मरण

1. **लेव तोल्स्तोय : शब्द-चित्र**/मक्सिम गोर्की 20.00

स्त्री-विमर्श

1. **दुर्ग द्वार पर दस्तक** (स्त्री प्रश्न पर लेख)/कात्यायनी (पेपरबैक) 130.00

ज्वलन्त प्रश्न

1. **कुछ जीवन्त कुछ ज्वलन्त**/कात्यायनी 90.00
2. **षड्यन्त्ररत मृतात्माओं के बीच**
   (साम्प्रदायिकता पर लेख)/कात्यायनी 25.00
3. **इस रात्रि श्यामला बेला में** (लेख और टिप्पणियाँ)/सत्यव्रत 30.00

व्यंग्य

1. **कहें मनबहकी खरी-खरी**/मनबहकी लाल 25.00

नौजवानों के लिए विशेष

1. **जय जीवन!** (लेख, भाषण और पत्र)/निकोलाई ओस्त्रोव्स्की 50.00

वैचारिकी

1. **माओवादी अर्थशास्त्र और समाजवाद का भविष्य**/रेमण्ड लोट्टा 25.00

साहित्य-विमर्श

1. **उपन्यास और जनसमुदाय**/रैल्फ़ फ़ॉक्स 75.00
2. **लेखनकला और रचनाकौशल**/
   गोर्की, फ़ेदिन, मयाकोव्स्की, अ. तोल्सतोय ...
3. **दर्शन, साहित्य और आलोचना**/
   बेलिंस्की, हर्ज़ेन, चेर्नीशेव्स्की, दोब्रोल्युबोव 65.00
4. **सृजन-प्रक्रिया और शिल्प के बारे में**/मक्सिम गोर्की 40.00

5. **मार्क्सवाद और भाषाविज्ञान की समस्याएँ**/स्तालिन 20.00

नयी पीढ़ी के निर्माण के लिए

1. **एक पुस्तक माता-पिता के लिए**/अन्तोन मकारेंको ...
2. **मेरा हृदय बच्चों के लिए**/वसीली सुखोम्लीन्स्की ...

आह्वान पुस्तिका शृंखला

1. **प्रेम, परम्परा और विद्रोह**/कात्यायनी 50.00

सृजन परिप्रेक्ष्य पुस्तिका शृंखला

1. **एक नये सर्वहारा पुनर्जागरण और प्रबोधन के वैचारिक-सांस्कृतिक कार्यभार**/कात्यायनी, सत्यम 25.00

राहुल फाउण्डेशन

नौजवानों के लिए विशेष

1.	**नौजवानों से दो बातें**/पीटर क्रोपोटकिन	15.00
2.	**क्रान्तिकारी कार्यक्रम का मसविदा**/भगतसिंह	15.00
3.	**मैं नास्तिक क्यों हूँ और 'ड्रीमलैण्ड' की भूमिका**/भगतसिंह	15.00
4.	**बम का दर्शन और अदालत में बयान**/भगतसिंह	15.00
5.	**जाति-धर्म के झगड़े छोड़ो, सही लड़ाई से नाता जोड़ो**/भगतसिंह	15.00
6.	**भगतसिंह ने कहा...**(चुने हुए उद्धरण)/भगतसिंह	15.00

क्रान्तिकारियों के दस्तावेज़

1.	**भगतसिंह और उनके साथियों के सम्पूर्ण उपलब्ध दस्तावेज़**/स. सत्यम	350.00
2.	**शहीदेआज़म की जेल नोटबुक**/भगतसिंह	100.00
3.	**विचारों की सान पर**/भगतसिंह	50.00

क्रान्तिकारियों के विचारों और जीवन पर

1.	**बहरों को सुनाने के लिए**/एस. इरफ़ान हबीब (भगतसिंह और उनके साथियों की विचारधारा और कार्यक्रम)	...
2.	**क्रान्तिकारी आन्दोलन का वैचारिक विकास**/शिव वर्मा	15.00
3.	**भगतसिंह और उनके साथियों की विचारधारा और राजनीति**/बिपन चन्द्र	20.00
4.	**यश की धरोहर**/ भगवानदास माहौर, शिव वर्मा, सदाशिवराव मलकापुरकर	50.00
5.	**संस्मृतियाँ**/शिव वर्मा	80.00
6.	**शहीद सुखदेव : नौघरा से फाँसी तक**/स. डॉ. हरदीप सिंह	40.00

महत्त्वपूर्ण और विचारोत्तेजक संकलन

1. **उम्मीद एक ज़िन्दा शब्द है**
   ('दायित्वबोध' के महत्त्वपूर्ण सम्पादकीय लेखों का संकलन) 75.00
2. **एनजीओ : एक ख़तरनाक साम्राज्यवादी कुचक्र** 60.00
3. **डब्ल्यूएसएफ़ : साम्राज्यवाद का नया ट्रोजन हॉर्स** 50.00

ज्वलन्त प्रश्न

1. **'जाति' प्रश्न के समाधान के लिए बुद्ध काफ़ी नहीं, अम्बेडकर भी काफ़ी नहीं, मार्क्स ज़रूरी हैं** / रंगनायकम्मा ...
2. **जाति और वर्ग : एक मार्क्सवादी दृष्टिकोण** / रंगनायकम्मा 60.00

दायित्वबोध पुस्तिका शृंखला

1. **अनश्वर हैं सर्वहारा संघर्षों की अग्निशिखाएँ**/दीपायन बोस 10.00
2. **समाजवाद की समस्याएँ, पूँजीवादी पुनर्स्थापना और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति**/शशिप्रकाश 30.00
3. **क्यों माओवाद?**/शशिप्रकाश 20.00
4. **बुर्जुआ वर्ग के ऊपर सर्वतोमुखी अधिनायकत्व लागू करने के बारे में**/चाङ चुन-चियाओ 5.00
5. **भारतीय कृषि में पूँजीवादी विकास**/सुखविन्दर 35.00

आह्वान पुस्तिका शृंखला

1. **छात्र-नौजवान नयी शुरुआत कहाँ से करें?** 15.00
2. **आरक्षण : पक्ष, विपक्ष और तीसरा पक्ष** 15.00
3. **आतंकवाद के बारे में : विभ्रम और यथार्थ** 15.00
4. **क्रान्तिकारी छात्र-युवा आन्दोलन** 15.00
5. **भ्रष्टाचार और उसके समाधान का सवाल सोचने के लिए कुछ मुद्दे** 50.00

बिगुल पुस्तिका शृंखला

1. **कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन और उसका ढाँचा**/लेनिन 10.00
2. **मकड़ा और मक्खी**/विल्हेल्म लीब्नेख़्त 5.00

3. **ट्रेडयूनियन काम के जनवादी तरीक़े**/सेर्गेई रोस्तोवस्की 5.00
4. **मई दिवस का इतिहास**/अलेक्ज़ैण्डर ट्रैक्टनबर्ग 10.00
5. **पेरिस कम्यून की अमर कहानी** 20.00
6. **अक्टूबर क्रान्ति की मशाल** 15.00
7. **जंगलनामा : एक राजनीतिक समीक्षा**/डॉ. दर्शन खेड़ी 5.00
8. **लाभकारी मूल्य, लागत मूल्य, मध्यम किसान और छोटे पैमाने के माल उत्पादन के बारे में मार्क्सवादी दृष्टिकोण : एक बहस** 30.00
9. **संशोधनवाद के बारे में** 10.00
10. **शिकागो के शहीद मज़दूर नेताओं की कहानी**/हावर्ड फ़ास्ट 10.00
11. **मज़दूर आन्दोलन में नयी शुरुआत के लिए** 20.00
12. **मज़दूर नायक, क्रान्तिकारी योद्धा** 15.00
13. **चोर, भ्रष्ट और विलासी नेताशाही** ...
14. **बोलते आँकड़े, चीख़ती सच्चाइयाँ** ...
15. **राजधानी के मेहनतकश : एक अध्ययन**/अभिनव 30.00
16. **फ़ासीवाद क्या है और इससे कैसे लड़ें?**/अभिनव 75.00
17. **नेपाली क्रान्ति : इतिहास, वर्तमान परिस्थिति और आगे के रास्ते से जुड़ी कुछ बातें, कुछ विचार**/आलोक रंजन 55.00
18. **कैसा है यह लोकतंत्र और यह संविधान किनकी सेवा करता है** आलोक रंजन/आनन्द सिंह 100.00

मार्क्सवाद

1. **धर्म के बारे में**/मार्क्स, एंगेल्स 100.00
2. **कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र**/मार्क्स-एंगेल्स 25.00
3. **साहित्य और कला**/मार्क्स-एंगेल्स 150.00
4. **फ्रांस में वर्ग-संघर्ष**/कार्ल मार्क्स 40.00
5. **फ्रांस में गृहयुद्ध**/कार्ल मार्क्स 20.00
6. **लूई बोनापार्त की अठारहवीं ब्रूमेर**/कार्ल मार्क्स 35.00
7. **उज़रती श्रम और पूँजी**/कार्ल मार्क्स 15.00
8. **मज़दूरी, दाम और मुनाफ़ा**/कार्ल मार्क्स 20.00
9. **गोथा कार्यक्रम की आलोचना**/कार्ल मार्क्स 40.00
10. **लुडविग फ़ायरबाख़ और क्लासिकीय जर्मन दर्शन का अन्त**/ फ्रेडरिक एंगेल्स 20.00

11.	**जर्मनी में क्रान्ति तथा प्रतिक्रान्ति**/फ़्रेडरिक एंगेल्स	30.00
12.	**समाजवाद : काल्पनिक तथा वैज्ञानिक**/फ़्रेडरिक एंगेल्स	...
13.	**पार्टी कार्य के बारे में**/लेनिन	15.00
14.	**एक क़दम आगे, दो क़दम पीछे**/लेनिन	60.00
15.	**जनवादी क्रान्ति में सामाजिक-जनवाद के दो रणकौशल**/लेनिन	25.00
16.	**समाजवाद और युद्ध**/लेनिन	20.00
17.	**साम्राज्यवाद : पूँजीवाद की चरम अवस्था**/लेनिन	30.00
18.	**राज्य और क्रान्ति**/लेनिन	40.00
19.	**सर्वहारा क्रान्ति और ग़द्दार काउत्स्की**/लेनिन	15.00
20.	**दूसरे इण्टरनेशनल का पतन**/लेनिन	15.00
21.	**गाँव के ग़रीबों से**/लेनिन	...
22.	**मार्क्सवाद का विकृत रूप तथा साम्राज्यवादी अर्थवाद**/लेनिन	20.00
23.	**कार्ल मार्क्स और उनकी शिक्षा**/लेनिन	20.00
24.	**क्या करें?**/लेनिन	...
25.	**"वामपन्थी" कम्युनिज़्म – एक बचकाना मर्ज़**/लेनिन	...
26.	**पार्टी साहित्य और पार्टी संगठन**/लेनिन	15.00
27.	**जनता के बीच पार्टी का काम**/लेनिन	70.00
28.	**धर्म के बारे में**/लेनिन	20.00
29.	**तोल्स्तोय के बारे में**/लेनिन	10.00
30.	**मार्क्सवाद की मूल समस्याएँ**/जी. प्लेख़ानोव	30.00
31.	**जुझारू भौतिकवाद**/प्लेख़ानोव	35.00
32.	**लेनिनवाद के मूल सिद्धान्त**/स्तालिन	50.00
33.	**सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) का इतिहास**	90.00
34.	**माओ त्से-तुङ की रचनाएँ : प्रतिनिधि चयन** (एक खण्ड में)	...
35.	**कम्युनिस्ट जीवनशैली और कार्यशैली के बारे में**/माओ त्से-तुङ	...
36.	**सोवियत अर्थशास्त्र की आलोचना**/माओ त्से-तुङ	35.00
37.	**दर्शन विषयक पाँच निबन्ध**/माओ त्से-तुङ	70.00
38.	**कला-साहित्य विषयक एक भाषण और पाँच दस्तावेज़** / माओ त्से-तुङ	15.00
39.	**माओ त्से-तुङ की रचनाओं के उद्धरण**	50.00

अन्य मार्क्सवादी साहित्य

1.	**राजनीतिक अर्थशास्त्र, मार्क्सवादी अध्ययन पाठ्यक्रम** नयी	300.00
2.	**ख्रुश्चेव झूठा था**/ग्रोवर फ़र	300.00
3.	**राजनीतिक अर्थशास्त्र के मूलभूत सिद्धान्त** (दो खण्डों में) (दि शंघाई टेक्स्टबुक ऑफ़ पोलिटिकल इकोनॉमी)	160.00
4.	**पेरिस कम्यून की शिक्षाएँ** (सचित्र) एलेक्ज़ेण्डर ट्रैक्टनबर्ग	10.00
5.	**कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र**/डी. रियाज़ानोव (विस्तृत व्याख्यात्मक टिप्पणियों सहित)	100.00
6.	**द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद**/डेविड गेस्ट	...
7.	**महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति : चुने हुए दस्तावेज़ और लेख** (खण्ड 1)	35.00
8.	**इतिहास ने जब करवट बदली**/विलियम हिण्टन	25.00
9.	**द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद**/वी. अदोरात्स्की	50.00
10.	**अक्टूबर क्रान्ति और लेनिन**/अल्बर्ट रीस विलियम्स (महत्त्वपूर्ण नयी सामग्री और अनेक नये दुर्लभ चित्रों से सज्जित परिवर्द्धित संस्करण)	90.00
11.	**सोवियत संघ में पूँजीवाद की पुनर्स्थापना**/मार्टिन निकोलस	50.00

राहुल साहित्य

1.	**तुम्हारी क्षय**/राहुल सांकृत्यायन	40.00
2.	**दिमाग़ी ग़ुलामी**/राहुल सांकृत्यायन	...
3.	**वैज्ञानिक भौतिकवाद**/राहुल सांकृत्यायन	65.00
4.	**राहुल निबन्धावली**/राहुल सांकृत्यायन	50.00
5.	**स्तालिन : एक जीवनी**/राहुल सांकृत्यायन	150.00

परम्परा का स्मरण

1.	**चुनी हुई रचनाएँ**/गणेशशंकर विद्यार्थी	100.00
2.	**सलाखों के पीछे से**/गणेशशंकर विद्यार्थी	30.00
3.	**ईश्वर का बहिष्कार**/राधामोहन गोकुलजी	30.00
4.	**लौकिक मार्ग**/राधामोहन गोकुलजी	20.00
5.	**धर्म का ढकोसला**/राधामोहन गोकुलजी	30.00
6.	**स्त्रियों की स्वाधीनता**/राधामोहन गोकुलजी	30.00

जीवनी और संस्मरण

1. **कार्ल मार्क्स जीवन और शिक्षाएँ**/ज़ेल्डा कोट्स 25.00
2. **फ़्रेडरिक एंगेल्स : जीवन और शिक्षाएँ**/ज़ेल्डा कोट्स ...
3. **कार्ल मार्क्स : संस्मरण और लेख** ...
4. **अदम्य बोल्शेविक नताशा**
   (एक स्त्री मज़दूर संगठनकर्ता की संक्षिप्त जीवनी)/एल. काताशेवा 30.00
5. **लेनिन कथा**/मरीया प्रिलेज़ायेवा 70.00
6. **लेनिन विषयक कहानियाँ** 75.00
7. **लेनिन के जीवन के चन्द पन्ने**/लीदिया फ़ोतियेवा ...
8. **स्तालिन : एक जीवनी**/राहुल सांकृत्यायन 150.00

विविध

1. **फाँसी के तख़्ते से**/जूलियस फ़्यूचिक 30.00
2. **पाप और विज्ञान**/डायसन कार्टर 100.00
3. **सापेक्षिकता सिद्धान्त क्या है?**/लेव लन्दाऊ, यूरी रूमेर ....

Rahul Foundation

MARXIST CLASSICS

KARL MARX

1.	**A Contribution to the Critique of Political Economy**	100.00
2.	**The Civil War in France**	80.00
3.	**The Eighteenth Brumaire of Louis Bonaparte**	40.00
4.	**Critique of the Gotha Programme**	25.00
5.	**Preface and Introduction to A Contribution to the Critique of Political Economy**	25.00
6.	**The Poverty of Philosophy**	80.00
7.	**Wages, Price and Profit**	35.00
8.	**Class Struggles in France**	50.00

FREDERICK ENGELS

9.	**The Peasant War in Germany**	70.00
10.	**Ludwig Feuerbach and the End of Classical German Philosophy**	65.00
11.	**On Capital**	55.00
12.	**The Origin of the Family, Private Property and the State**	100.00
13.	**Socialism: Utopian and Scientific**	60.00
14.	**On Marx**	20.00
15.	**Principles of Communism**	5.00

MARX and ENGELS

16.	**Historical Writings** (Set of 2 Vols.)	700.00
17.	**Manifesto of the Communist Party**	50.00
18.	**Selected Letters**	40.00

V. I. LENIN

19.	**Theory of Agrarian Question**	160.00
20.	**The Collapse of the Second International**	25.00
21.	**Imperialism, the Highest Stage of Capitalism**	80.00
22.	**Materialism and Empirio-Criticism**	150.00

23. **Two Tactics of Social-Democracy in the Democratic Revolution** 55.00

24. **Capitalism and Agriculture** 30.00

25. **A Characterisation of Economic Romanticism** 50.00

26. **On Marx and Engels** 35.00

27. **“Left-Wing” Communism, An Infantile Disorder** 40.00

28. **Party Work in the Masses** 55.00

29. **The Proletarian Revolution and the Renegade Kautsky** 40.00

30. **One Step Forward, Two Steps Back** …

31. **The State and Revolution** …

MARX, ENGELS and LENIN

32. **On the Dictatorship of Proletariat, *Questions and Answers*** 50.00

33. **On the Dictatorship of the Proletariat: *Selected Expositions*** 10.00

PLEKHANOV

34. **Fundamental Problems of Marxism** 35.00

J. STALIN

35. **Marxism and Problems of Linguistics** 25.00

36. **Anarchism or Socialism?** 25.00

37. **Economic Problems of Socialism in the USSR** 30.00

38. **On Organisation** 15.00

39. **The Foundations of Leninism** 40.00

40. **The Essential Stalin** *Major Theoretical Writings 1905–52* 175.00
(Edited and with an Introduction by Bruce Franklin)

LENIN and STALIN

41. **On the Party** …

MAO TSE-TUNG

42. **Five Essays on Philosophy** 50.00

43. **A Critique of Soviet Economics** 70.00

44. **On Literature and Art** 80.00

45. **Selected Readings from the Works of Mao Tse-tung** ...

46. **Quotations from the Writings of Mao Tse-tung** ...

OTHER MARXISM

1. **Political Economy, *Marxist Study Courses*** (Prepared by the British Communist Party in the 1930s) 275.00
2. **Fundamentals of Political Economy** (The Shanghai Textbook) 160.00
3. **Reader in Marxist Philosophy**/ *Howard Selsam & Harry Martel* ...
4. **Socialism and Ethics**/*Howard Selsam* ...
5. **What Is Philosophy?** (A Marxist Introduction)**/** *Howard Selsam* 75.00
6. **Reader's Guide to Marxist Classics/***Maurice Cornforth* 70.00
7. **From Marx to Mao Tse-tung /**George Thomson ...
8. **Capitalism and After/**George Thomson ...
9. **The Human Essence/**George Thomson 65.00
10. **Mao Tse-tung's Immortal Contributions/***Bob Avakian* 125.00
11. **A Basic Understanding of the Communist Party** (Written during the GPCR in China) 150.00
12. **The Lessons of the Paris Commune/** *Alexander Trachtenberg (Illustrated)* 15.00

BIOGRAPHIES & REMINISCENCES

1. **Reminiscences of Marx and Engels** (Collection) ...
2. **Karl Marx And Frederick Engels:** An Introduction to their Lives and Work/David Riazanov ...
3. **Joseph Stalin: A Political Biography** *by The Marx-Engels-Lenin Institute* ...

PROBLEMS OF SOCIALISM

1. **How Capitalism was Restored in the Soviet Union, And What This Means for the World Struggle (Red Papers 7)** 175.00

2. **Preface of Class Struggles in the USSR /** *Charles Bettelheim* 30.00
3. **Nepalese Revolution: History, Present Situation and Some Points, Some Thoughts on the Road Ahead /** Alok Ranjan 75.00
4. **Problems of Socialism, Capitalist Restoration and the Great Proletarian Cultural Revolution /** *Shashi Prakash* 40.00

ON THE CULTURAL REVOLUTION

1. **Hundred Day War:** The Cultural Revolution At Tsinghua University / *William Hinton* ...
2. **The Cultural Revolution at Peking University /** *Victor Nee* with *Don Layman* 30.00
3. **Mao Tse-tung's Last Great Battle** / *Raymond Lotta* 25.00
4. **Turning Point in China** / *William Hinton* ...
5. **Cultural Revolution and Industrial Organization in China** / *Charles Bettelheim* 55.00
6. **They Made Revolution Within the Revolution /** *Iris Hunter* ...

ON SOCIALIST CONSTRUCTION

1. **Away With All Pests:** An English Surgeon in People's China: 1954–1969 */ Joshua S. Horn* ...
2. **Serve The People:** Observations on Medicine in the People's Republic of China /*Victor W. Sidel* and *Ruth Sidel* ...
3. **Philosophy is No Mystery** (Peasants Put Their Study to Work) 35.00

CONTEMPORARY ISSUES

1. **Caste and Class: A Marxist Viewpoint /** Ranganayakamma 60.00

DAYITVABODH REPRINT SERIES

1. **Immortal are the Flames of Proletarian Struggles /** *Deepayan Bose* 15.00

2. **Problems of Socialism, Capitalist Restoration and the Great Proletarian Cultural Revolution** / *Shashi Prakash* 40.00
3. **Why Maoism?** / *Shashi Prakash* 25.00

AHWAN REPRINT SERIES

1. **Where Should Students and Youth Make a New Beginning?**
2. **Reservation: Support, Opposition and Our Position** 20.00
3. **On Terrorism : Illusion and Reality** / *Alok Ranjan* 15.00

BIGUL REPRINT SERIES

1. **Still Ablaze is the Torch of October Revolution** 20.00
2. **Nepalese Revolution History, Present Situation and Some Points, Some Thoughts on the Road Ahead** / Alok Ranjan 75.00

WOMEN QUESTION

1. **The Emancipation of Women** / *V. I. Lenin* ...
2. **Breaking All Tradition's Chains: Revolutionary Communism and Women's Liberation** /*Mary Lou Greenberg*...

MISCELLANEOUS

1. **Probabilities of the Quantum World** / *Daniel Danin* ...
2. **An Appeal to the Young** / *Peter Kropotkin* 15.00

अरविन्द स्मृति न्यास के प्रकाशन

1. **इक्कीसवीं सदी में भारत का मज़दूर आन्दोलनः निरन्तरता और परिवर्तन, दिशा और सम्भावनाएँ, समस्याएँ और चुनौतियाँ**
(द्वितीय अरविन्द स्मृति संगोष्ठी के आलेख) 40.00
2. **भारत में जनवादी अधिकार आन्दोलनः दिशा, समस्याएँ और चुनौतियाँ**
(तृतीय अरविन्द स्मृति संगोष्ठी के आलेख) 80.00
3. **जाति प्रश्न और मार्क्सवाद**
(चतुर्थ अरविन्द स्मृति संगोष्ठी के आलेख) 150.00

PUBLICATIONS FROM ARVIND MEMORIAL TRUST

1. **Working Class Movement in the Twenty-First Century: Continuity and Change, Orientation and Possibilities, Problems and Challenges** (Papers presented in the Second Arvind Memorial Seminar) 40.00
2. **Democratic Rights Movement in India: Orientation, Problems and Challenges** (Papers presented in the Third Arvind Memorial Seminar) 80.00
3. **Caste Question and Marxism** (Papers presented in the Fourth Arvind Memorial Seminar) 200.00

जनचेतना

एक वैचारिक मुहिम है
भविष्य-निर्माण का एक प्रोजेक्ट है
वैकल्पिक मीडिया की एक सशक्त धारा है।

परिकल्पना प्रकाशन, राहुल फ़ाउण्डेशन, अनुराग ट्रस्ट, अरविन्द स्मृति न्यास, शहीद भगतसिंह यादगारी प्रकाशन, दस्तक प्रकाशन और प्रांजल आर्ट पब्लिशर्स की पुस्तकों की 'जनचेतना' मुख्य वितरक है। ये प्रकाशन पाँच स्त्रोतों – सरकार, राजनीतिक पार्टियों, कॉरपोरेट घरानों, बहुराष्ट्रीय निगमों और विदेशी फ़ण्डिंग एजेंसियों से किसी भी प्रकार का अनुदान या वित्तीय सहायता लिये बिना जनता से जुटाये गये संसाधनों के आधार पर आज के दौर के लिए ज़रूरी व महत्त्वपूर्ण साहित्य बेहद सस्ती दरों पर उपलब्ध कराने के लिए प्रतिबद्ध हैं।

अनुराग ट्रस्ट

1.	**बच्चों के लेनिन**	35.00
2	**Stories About Lenin**	35.00
3.	**सच से बड़ा सच**/रवीन्द्रनाथ ठाकुर	25.00
4.	**औज़ारों की कहानियाँ**	20.00
5.	**गुड़ की डली**/कात्यायनी	20.00
6.	**फूल कुंडलाकार क्यों होते हैं**/सनी	20.00
7.	**धरती और आकाश**/अ. वोल्कोव	120.00
8.	**कजाकी**/प्रेमचन्द	35.00
9.	**नीला प्याला**/अरकादी गैदार	40.00
10.	**गड़रिये की कहानियाँ**/क़यूम तंगरीकुलीयेव	35.00
11.	**चींटी और अन्तरिक्ष यात्री**/अ. मित्यायेव	35.00
12.	**अन्धविश्वासी शेकी टेल**/सेर्गेई मिखाल्कोव	20.00
13.	**चलता-फिरता हैट**/एन. नोसोव, होल्कर पुक्क	20.00
14.	**चालाक लोमड़ी** (लोककथा)	20.00
15.	**दियांका-टॉमचिक**	20.00
16.	**गधा और ऊदबिलाव**/मक्सिम गोर्की, सेर्गेई मिखाल्कोव	20.00
17.	**गुफा मानवों की कहानियाँ**/मैरी मार्स	...
18.	**हम सूरज को देख सकते हैं**/मिकोला गिल, दायर स्लावकोविच	20.00
19.	**मुसीबत का साथी**/सेर्गेई मिखाल्कोव	20.00
20.	**नन्हे आर्थर का सूरज**/हद्याक ग्युलनज़रयान, गेलीना लेबेदेवा	20.00
22.	**आकाश में मौज-मस्ती**/चिनुआ अचेबे	20.00
23.	**ज़िन्दगी से प्यार** (दो रोमांचक कहानियाँ)/जैक लण्डन	40.00
24.	**एक छोटे लड़के और एक छोटी लड़की की कहानी**/मक्सिम गोर्की	20.00
25.	**बहादुर**/अमरकान्त	15.00
26.	**बुन्नू की परीक्षा** (सचित्र रंगीन)/शस्या हर्ष	...

27. **दान्को का जलता हुआ हृदय**/मक्सिम गोर्की 15.00
28. **नन्हा राजकुमार**/आतुआन द सैंतेक्ज़ूपेरी 40.00
29. **दादा आर्खिप और ल्योंका**/मक्सिम गोर्की 30.00
30. **सेमागा कैसे पकड़ा गया**/मक्सिम गोर्की 15.00
31. **बाज़ का गीत**/मक्सिम गोर्की 15.00
32. **वांका**/अन्तोन चेख़व 15.00
33. **तोता**/रवीन्द्रनाथ टैगोर 15.00
34. **पोस्टमास्टर**/रवीन्द्रनाथ टैगोर ...
35. **काबुलीवाला**/रवीन्द्रनाथ टैगोर 20.00
36. **अपना-अपना भाग्य**/जैनेन्द्र 15.00
37. **दिमाग़ कैसे काम करता है**/किशोर 25.00
38. **रामलीला**/प्रेमचन्द 15.00
39. **दो बैलों की कथा**/प्रेमचन्द 25.00
40. **ईदगाह**/प्रेमचन्द ...
41. **लॉटरी**/प्रेमचन्द 20.00
42. **गुल्ली-डण्डा**/प्रेमचन्द ...
43. **बड़े भाई साहब**/प्रेमचन्द 20.00
44. **मोटेराम शास्त्री**/प्रेमचन्द ...
45. **हार की जीत**/सुदर्शन ...
46. **इवान**/व्लादीमिर बोगोमोलोव 40.00
47. **चमकता लाल सितारा**/ली शिन-थ्येन 55.00
48. **उल्टा दरख़्त**/कृश्नचन्दर 35.00
49. **हरामी**/मिखाईल शोलोख़ोव 25.00
50. **दोन किहोते** /सर्वान्तेस (नाट्य रूपान्तर - नीलेश रघुवंशी) ...
51. **आश्चर्यलोक में एलिस** /लुइस कैरोल
(नाट्य रूपान्तर - नीलेश रघुवंशी) 30.00
52. **झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई**/वृन्दावनलाल वर्मा
(नाट्य रूपान्तर - नीलेश रघुवंशी) 35.00
53. **नन्हे गुदड़ीलाल के साहसिक कारनामे**/सुन यओच्युन ...
54. **लाखी**/अन्तोन चेख़व 25.00
55. **बेझिन चरागाह**/इवान तुर्गनेव 12.00

56.	**हिरनौटा**/द्मीत्री मामिन सिबिर्याक	25.00
57.	**घर की ललक**/निकोलाई तेलेशोव	10.00
58.	**बस एक याद**/लेओनीद अन्द्रेयेव	20.00
59.	**मदारी**/अलेक्सान्द्र कुप्रिन	35.00
60.	**पराये घोंसले में**/फ़्योदोर दोस्तोयेव्स्की	20.00
61.	**कोहकाफ़ का बन्दी**/तोल्सतोय	30.00
62.	**मनमानी के मज़े**/सेर्गेई मिखाल्कोव	30.00
63.	**सदानन्द की छोटी दुनिया**/सत्यजीत राय	15.00
64.	**छत पर फँस गया बिल्ला**/विताउते जिलिन्सकाइते	35.00
65.	**गोलू के कारनामे**/रामबाबू	25.00
66.	**दो साहसिक कहानियाँ**/होल्गर पुक्क	15.00
67.	**आम ज़िन्दगी की मज़ेदार कहानियाँ**/होल्गर पुक्क	20.00
68.	**कंगूरे वाले मकान का रहस्यमय मामला**/होल्गर पुक्क	20.00
69.	**रोज़मर्रे की कहानियाँ**/होल्गर पुक्क	20.00
70.	**अजीबोग़रीब क़िस्से**/होल्गर पुक्क	...
71.	**नये ज़माने की परीकथाएँ**/होल्गर पुक्क	25.00
72.	**किस्सा यह कि एक देहाती ने दो अफ़सरों का कैसे पेट भरा**/मिखाइल सल्तिकोव-श्चेद्रिन	15.00
73.	**पश्चदृष्टि-भविष्यदृष्टि** (लेख संकलन)/ कमला पाण्डेय	30.00
74.	**यादों के घेरे में अतीत** (संस्मरण)/ कमला पाण्डेय	100.00
75.	**हमारे आसपास का अँधेरा** (कहानियाँ)/ कमला पाण्डेय	60.00
76.	**कालमन्थन** (उपन्यास)/ कमला पाण्डेय	60.00

ਪੰਜਾਬੀ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਨ

ਦਸਤਕ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਨ

ਮੈਕਸਿਮ ਗੋਰਕੀ ਦਾ ਸਵੈ-ਜੀਵਨੀ ਨਾਵਲ (ਤਿੰਨ ਭਾਗਾਂ ਵਿੱਚ)

1. ਮੇਰਾ ਬਚਪਨ	130.00
2. ਮੇਰੇ ਵਿਸ਼ਵ-ਵਿਦਿਆਲੇ	100.00
3. ਮੇਰੇ ਸ਼ਗਿਰਦੀ ਦੇ ਦਿਨ	200.00

4. ਪ੍ਰੇਮ, ਪ੍ਰੰਪਰਾ ਅਤੇ ਵਿਦਰੋਹ / ਕਾਤਿਆਈਨੀ	20.00
5. ਥੀਏਟਰ ਦਾ ਸੰਖੇਪ ਤਰਕਸ਼ਾਸਤਰ / ਬ੍ਰੈਖ਼ਤ	15.00
6. ਆਈਜੇਂਸਤਾਈਨ ਦਾ ਫਿਲਮ ਸਿਧਾਂਤ	15.00
7. ਮਜ਼ਦੂਰ ਜਮਾਤੀ ਸੰਗੀਤ ਰਚਨਾਵਾਂ ਦੀਆਂ ਸਮੱਸਿਆਵਾਂ	10.00
8. ਪਹਿਲਾ ਅਧਿਆਪਕ / ਚੰਗੇਜ਼ ਆਇਤਮਾਤੋਵ (ਨਾਵਲ)	25.00
9. ਸ਼ਾਂਤ ਸਰਘੀ ਵੇਲਾ / ਬੋਰਿਸ ਵਾਸੀਲਿਯੇਵ (ਨਾਵਲ)	30.00
10. ਭਾਂਜ / ਅਲੈਗਜ਼ਾਂਦਰ ਫ਼ਦੇਯੇਵ (ਨਾਵਲ)	100.00
11. ਫੌਲਾਦੀ ਹੜ / ਅਲੈਗਜ਼ਾਂਦਰ ਸਰਾਫ਼ੀਮੋਵਿਚ (ਨਾਵਲ)	100.00
12. ਇਕਤਾਲ਼ੀਵਾਂ / ਬੋਰਿਸ ਲਵਰੇਨਿਓਵ (ਨਾਵਲ)	30.00
13. ਮਾਂ / ਮੈਕਸਿਮ ਗੋਰਕੀ (ਨਾਵਲ)	180.00
14. ਪੀਲ਼ੇ ਦੈਂਤ ਦਾ ਸ਼ਹਿਰ / ਮੈਕਸਿਮ ਗੋਰਕੀ	80.00
15. ਸਾਹਿਤ ਬਾਰੇ / ਮੈਕਸਿਮ ਗੋਰਕੀ	200.00
16. ਅਸਲੀ ਇਨਸਾਨ ਦੀ ਕਹਾਣੀ / ਬੋਰਿਸ ਪੋਲੇਵਾਈ (ਨਾਵਲ)	200.00
17. ਅੱਠੇ ਪਹਿਰ (ਕਹਾਣੀਆਂ)	125.00
18. ਬਘਿਆੜਾਂ ਦੇ ਵੱਸ / ਬਰੂਨੋ ਅਪਿਤਜ (ਨਾਵਲ)	100.00
19. ਮੀਤ੍ਰਿਆ ਕੋਕੋਰ / ਮੀਹਾਇਲ ਸਾਦੋਵਿਆਨੋ (ਨਾਵਲ)	100.00
20. ਇਨਕਲਾਬ ਲਈ ਜੂਝੀ ਜਵਾਨੀ	150.00
21. ਬੱਚਿਆਂ ਨੂੰ ਦਿਆਂ ਦਿਲ ਆਪਣਾ ਮੈਂ / ਵ. ਸੁਖੋਮਲਿੰਸਕੀ	150.00
22. ਫਾਸੀ ਦੇ ਤਖ਼ਤੇ ਤੋਂ / ਜੂਲੀਅਸ ਫੂਚਿਕ (ਨਾਵਲ)	50.00
23. ਭੁੱਬਲ / ਫ਼ਰੰਜ਼ਦ ਅਲੀ (ਪਾਕਿਸਤਾਨੀ ਪੰਜਾਬ ਦਾ ਨਾਵਲ)	200.00
24. ਸਭ ਤੋਂ ਖਤਰਨਾਕ... (ਪਾਸ਼ ਦੀ ਸਮੁੱਚੀ ਉਪਲੱਬਧ ਸ਼ਾਇਰੀ)	200.00
25. ਧਰਤੀ ਧਨ ਨਾ ਆਪਣਾ / ਜਗਦੀਸ਼ ਚੰਦਰ	250.00

ਸ਼ਹੀਦ ਭਗਤ ਸਿੰਘ ਯਾਦਗਾਰੀ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਨ

1.	ਉਜਰਤ, ਕੀਮਤ ਅਤੇ ਮੁਨਾਫਾ / ਮਾਰਕਸ	30.00
2.	ਉਜਰਤੀ ਕਿਰਤ ਅਤੇ ਸਰਮਾਇਆ / ਮਾਰਕਸ	20.00
3.	ਸਿਆਸੀ ਆਰਥਿਕਤਾ ਦੀ ਅਲੋਚਨਾ ਵਿੱਚ ਯੋਗਦਾਨ / ਮਾਰਕਸ	125.00
4.	ਲੂਈ ਬੋਨਾਪਾਰਟ ਦੀ ਅਠਾਰਵੀਂ ਬਰੂਮੇਰ / ਮਾਰਕਸ	50.00
5.	ਪੂੰਜੀ ਦੀ ਉਤਪਤੀ / ਮਾਰਕਸ	45.00
6.	ਰਿਹਾਇਸ਼ੀ ਘਰਾਂ ਦਾ ਸਵਾਲ / ਏਂਗਲਜ਼	35.00
7.	ਫਿਊਰਬਾਖ : ਪਾਦਰਥਵਾਦੀ ਅਤੇ ਆਦਰਸ਼ਵਾਦੀ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀਕੋਣਾਂ ਦਾ ਵਿਰੋਧ / ਮਾਰਕਸ-ਏਂਗਲਜ਼	60.00
8.	ਜਰਮਨੀ ਵਿੱਚ ਇਨਕਲਾਬ ਅਤੇ ਉਲਟ ਇਨਕਲਾਬ / ਏਂਗਲਜ਼	50.00
9.	ਮਾਰਕਸ ਦੇ "ਸਰਮਾਇਆ" ਬਾਰੇ / ਏਂਗਲਜ਼	60.00
10.	ਫਰਾਂਸ ਅਤੇ ਜਰਮਨੀ 'ਚ ਕਿਸਾਨੀ ਦਾ ਸਵਾਲ / ਏਂਗਲਜ਼	20.00
11.	ਸੋਸ਼ਲਿਜ਼ਮ : ਵਿਗਿਆਨਕ ਅਤੇ ਯੂਟੋਪੀਆਈ / ਏਂਗਲਜ਼	35.00
12.	ਕਾਰਲ ਮਾਰਕਸ ਬਾਰੇ / ਏਂਗਲਜ਼	10.00
13.	ਲੁਡਵਿਗ ਫਿਉਰਬਾਖ ਅਤੇ ਕਲਾਸੀਕੀ ਜਰਮਨ ਦਰਸ਼ਨ ਦਾ ਅੰਤ / ਏਂਗਲਜ਼	30.00
14.	ਟੱਬਰ, ਨਿੱਜੀ ਜਾਇਦਾਦ ਅਤੇ ਰਾਜ ਦੀ ਉੱਤਪਤੀ / ਏਂਗਲਜ਼	65.00
15.	ਕਾਰਲ ਮਾਰਕਸ ਅਤੇ ਉਨਾਂ ਦੀ ਸਿੱਖਿਆ / ਲੈਨਿਨ	35.00
16.	ਰਾਜ ਅਤੇ ਇਨਕਲਾਬ / ਲੈਨਿਨ	50.00
17.	ਦੂਜੀ ਇੰਟਰਨੈਸ਼ਨਲ ਦਾ ਪਤਣ / ਲੈਨਿਨ	45.00
18.	ਖੇਤੀ ਵਿੱਚ ਪੂੰਜੀਵਾਦ / ਲੈਨਿਨ	15.00
19.	ਰਾਜ / ਲੈਨਿਨ	10.00
20.	ਸਾਮਰਾਜਵਾਦ, ਸਰਮਾਏਦਾਰੀ ਦਾ ਸਰਵਉੱਚ ਪੜਾਅ / ਲੈਨਿਨ	70.00
21.	ਇੱਕ ਕਦਮ ਅੱਗੇ ਦੋ ਕਦਮ ਪਿੱਛੇ / ਲੈਨਿਨ	125.00
22.	ਲੋਕਾਂ ਵਿੱਚ ਕੰਮ ਕਿਵੇਂ ਕਰੀਏ / ਲੈਨਿਨ	65.00
23.	ਸਾਹਿਤ ਅਤੇ ਕਲਾ ਬਾਰੇ / ਲੈਨਿਨ	150.00
24.	ਸਮਾਜਵਾਦ ਅਤੇ ਜੰਗ / ਲੈਨਿਨ	45.00
25.	ਖੱਬੇ ਪੱਖੀ ਕਮਿਊਨਿਜ਼ਮ ਇੱਕ ਬਚਗਾਨਾ ਰੋਗ / ਲੈਨਿਨ	65.00
26.	ਅਸੀਂ ਜਿਹੜਾ ਵਿਰਸਾ ਤਿਆਗਦੇ ਹਾਂ / ਲੈਨਿਨ	25.00
27.	ਪ੍ਰੋਲੇਤਾਰੀ ਇਨਕਲਾਬ ਅਤੇ ਭਗੌੜਾ ਕਾਊਤਸਕੀ / ਲੈਨਿਨ	70.00
28.	ਆਰਥਕ ਰੋਮਾਂਚਵਾਦ ਦਾ ਚਰਿੱਤਰ ਚਿੱਤਰਣ / ਲੈਨਿਨ	50.00

29.	ਸੁਤੰਤਰ ਵਪਾਰ ਦਾ ਸਵਾਲ / ਮਾਰਕਸ, ਏਂਗਲਜ਼, ਲੈਨਿਨ	10.00
30.	ਲੈਨਿਨਵਾਦ ਦੀਆਂ ਨੀਹਾਂ / ਸਟਾਲਿਨ	20.00
31.	ਫ਼ਲਸਫਾਨਾ ਲਿਖਤਾਂ / ਮਾਓ-ਜ਼ੇ-ਤੁੰਗ	25.00
32.	ਸੋਵੀਅਤ ਅਰਥਸ਼ਾਸਤਰ ਦੀ ਅਲੋਚਨਾ / ਮਾਓ-ਜ਼ੇ-ਤੁੰਗ	60.00
33.	ਮਾਰਕਸਵਾਦ ਦੇ ਬੁਨਿਆਦੀ ਮਸਲੇ / ਪਲੈਖਾਨੋਵ	40.00
34.	ਰਾਜਨੀਤਕ ਅਰਥਸ਼ਾਸਤਰ ਦੇ ਮੂਲ ਸਿਧਾਂਤ	60.00
35.	ਫਿਲਾਸਫੀ ਕੋਈ ਗੋਰਖਧੰਦਾ ਨਹੀਂ	10.00
36.	ਦਵੰਦਵਾਦ ਜ਼ਰੀਏ ਲੋਕਾਂ ਦੀ ਸੇਵਾ	10.00
37.	ਇਤਿਹਾਸ ਨੇ ਜਦ ਕਰਵਟ ਬਦਲੀ	40.00
38.	ਇਨਕਲਾਬ ਅੰਦਰ ਇਨਕਲਾਬ	20.00
39.	ਮਾਓ-ਜ਼ੇ-ਤੁੰਗ ਦੀ ਅਮਿੱਟ ਦੇਣ	125.00
40.	ਚੀਨ ਵਿੱਚ ਉਲਟ ਇਨਕਲਾਬ ਅਤੇ ਮਾਓ ਦਾ ਇਨਕਲਾਬੀ ਵਿਰਸਾ	60.00
41.	ਮਾਓਵਾਦੀ ਅਰਥਸ਼ਾਸਤਰ ਅਤੇ ਸਮਾਜਵਾਦ ਦਾ ਭਵਿੱਖ	60.00
42.	ਲੈਨਿਨ ਦੀ ਜੀਵਨ ਕਹਾਣੀ	100.00
43.	ਅਡੋਲ ਬਾਲਸ਼ਵਿਕ ਨਤਾਸ਼ਾ	30.00
44.	ਮਾਰਕਸ ਅਤੇ ਏਂਗਲਜ਼ ਆਪਣੇ ਸਮਕਾਲੀਆਂ ਦੀਆਂ ਨਜ਼ਰਾਂ ਵਿੱਚ	75.00
45.	ਪੈਰਿਸ ਕਮਿਊਨ ਦੀ ਅਮਰ ਕਹਾਣੀ	10.00
46.	ਬੁਝ ਨਹੀਂ ਸਕਦੀ ਅਕਤੂਬਰ ਇਨਕਲਾਬ ਦੀ ਮਸ਼ਾਲ	10.00
47.	ਦਹਿਸ਼ਤਗਰਦੀ ਬਾਰੇ ਭਰਮ ਅਤੇ ਯਥਾਰਥ	10.00
48.	ਪੰਜਾਬ ਦਾ ਕਿਸਾਨ ਅੰਦੋਲਨ ਅਤੇ ਕਮਿਊਨਿਸਟ ਲਹਿਰ	10.00
49.	ਜੰਗਲਨਾਮਾ : ਇੱਕ ਰਾਜਨੀਤਕ ਪੜਚੋਲ	10.00
50.	ਭਾਰਤੀ ਖੇਤੀ ਵਿੱਚ ਪੂੰਜੀਵਾਦੀ ਵਿਕਾਸ	20.00
51.	ਅਮਿੱਟ ਹਨ ਮਜ਼ਦੂਰ ਸੰਗਰਾਮਾਂ ਦੀਆਂ ਚਿਣਗਾਂ	10.00
52.	ਸਮਾਜਵਾਦ ਦੀਆਂ ਸਮੱਸਿਆਵਾਂ, ਪੂੰਜੀਵਾਦ ਦੀ ਮੁੜ ਬਹਾਲੀ ਅਤੇ ਮਹਾਨ ਪ੍ਰੋਲੇਤਾਰੀ ਸੱਭਿਆਚਾਰ ਇਨਕਲਾਬ	20.00
53.	ਕਿਉਂ ਮਾਓਵਾਦ ?	10.00
54.	ਸੋਵੀਅਤ ਯੂਨੀਅਨ ਦੇ ਇਤਿਹਾਸ ਬਾਰੇ ਪ੍ਰਚਾਰੇ ਜਾਂਦੇ ਝੂਠ	10.00
55.	ਰਿਜ਼ਰਵੇਸ਼ਨ : ਪੱਖ, ਵਿਪੱਖ ਅਤੇ ਤੀਸਰਾ ਪੱਖ	5.00
56.	ਮਾਰਕਸਵਾਦ ਅਤੇ ਜਾਤ ਦਾ ਸਵਾਲ / ਸੁਖਵਿੰਦਰ	20.00

57.	ਮਾਰਕਸਵਾਦ ਬਾਰੇ ਅੰਬੇਡਕਰ ਦੇ ਵਿਚਾਰ / ਰੰਗਾਨਾਇਕੰਮਾ	15.00
58.	ਡਾ. ਅੰਬੇਡਕਰ ਅਤੇ ਭਾਰਤ ਦਾ ਸੰਵਿਧਾਨ / ਰੰਗਾਨਾਇਕੰਮਾ	15.00
59.	ਡਾ. ਅੰਬੇਡਕਰ : ਜੀਵਨ ਅਤੇ ਵਿਚਾਰ / ਰੰਗਾਨਾਇਕੰਮਾ	10.00
60.	ਭਾਰਤ ਦੇ ਇਤਿਹਾਸ ਵਿੱਚ ਜਾਤ-ਪਾਤ / ਪ੍ਰੋ. ਇਰਫ਼ਾਨ ਹਬੀਬ	10.00
61.	ਉਦਾਰਵਾਦੀ ਨੀਤੀਆਂ ਦੇ 18 ਸਾਲ	5.00
62.	ਚੋਰ, ਭ੍ਰਿਸ਼ਟ ਅਤੇ ਅਯਾਸ਼ ਨੇਤਾਸ਼ਾਹੀ	5.00
63.	ਪਾਪ ਅਤੇ ਵਿਗਿਆਨ / ਡਾਈਸਨ ਕਾਰਟਰ	60.00
64.	ਫਾਸੀਵਾਦ ਕੀ ਹੈ ਅਤੇ ਇਸ ਨਾਲ਼ ਕਿਵੇਂ ਲੜੀਏ ?	15.00
65.	ਆਈਨਸਟੀਨ ਦੇ ਸਮਾਜਿਕ ਸਰੋਕਾਰ	10.00
66.	ਨੌਜਵਾਨਾਂ ਨਾਲ਼ ਦੋ ਗੱਲਾਂ / ਪੀਟਰ ਕ੍ਰੋਪੋਟਕਿਨ	10.00
67.	ਇਨਕਲਾਬ ਦਾ ਸੁਨੇਹਾ (ਭਗਤ ਸਿੰਘ ਅਤੇ ਸਾਥੀਆਂ ਦੀਆਂ ਲਿਖਤਾਂ)	30.00
68.	ਅਜਿਹਾ ਸੀ ਸਾਡਾ ਭਗਤ ਸਿੰਘ / ਸ਼ਿਵ ਵਰਮਾ	10.00
69.	ਮੈਂ ਨਾਸਤਿਕ ਕਿਉਂ ਹਾਂ ? / ਭਗਤ ਸਿੰਘ	10.00
70.	ਭਗਤ ਸਿੰਘ ਨੇ ਕਿਹਾ... / ਭਗਤ ਸਿੰਘ	5.00
71.	ਭਗਤ ਸਿੰਘ ਤੇ ਉਸਦੇ ਸਾਥੀਆਂ ਦਾ ਵਿਚਾਰਧਾਰਕ ਵਿਕਾਸ / ਪ੍ਰੋ. ਬਿਪਨ ਚੰਦਰਾ	10.00
72.	ਇਨਕਲਾਬੀ ਲਹਿਰ ਦਾ ਸਿਧਾਂਤਕ ਵਿਕਾਸ / ਸ਼ਿਵ ਵਰਮਾ	10.00
73.	ਸ਼ਹੀਦ ਚੰਦਰ ਸ਼ੇਖਰ ਆਜ਼ਾਦ / ਭਗਵਾਨ ਦਾਸ ਮਹੌਰ	10.00
74.	ਗਦਰੀ ਸੂਰਬੀਰ / ਪ੍ਰੋ. ਰਣਧੀਰ ਸਿੰਘ	10.00
75.	ਸ਼ਹੀਦ ਸੁਖਦੇਵ	20.00
76.	ਸ਼ਹੀਦ ਕਰਤਾਰ ਸਿੰਘ ਸਰਾਭਾ	5.00
77.	ਵਿਦਿਆਰਥੀ ਨੌਜਵਾਨ ਨਵੀਂ ਸ਼ੁਰੂਆਤ ਕਿੱਥੋਂ ਕਰਨ ?	10.00
78.	ਸੋਧਵਾਦ ਬਾਰੇ	5.00
79.	ਭਾਰਤ ਵਿੱਚ ਗਿਆਨ ਪ੍ਰਸਾਰ ਦੀ ਲੋੜ ਕਿਉਂ ? / ਸੁਖਵਿੰਦਰ	15.00
80.	ਵਧਦੀ ਅਬਾਦੀ	15.00
81.	ਯੁੱਗ ਕਿਵੇਂ ਬਦਲਦੇ ਹਨ ? / ਡਾ. ਅੰਮ੍ਰਿਤ	10.00
82.	ਧਰਮ ਬਾਰੇ / ਲੈਨਿਨ	30.00
83.	ਮਨੁੱਖੀ ਜੀਵਨ ਵਿੱਚ ਮਾਤ-ਭਾਸ਼ਾ ਦਾ ਮਹੱਤਵ	20.00
84.	ਇੱਕ ਪ੍ਰਤਿਭਾ ਦਾ ਜਨਮ / ਗੈਨਰਿਖ ਵੋਲਕੋਵ	100.00
85.	ਭਾਰਤ ਵਿੱਚ ਨਵਉਦਾਰਵਾਦ ਦੇ ਦੋ ਦਹਾਕੇ / ਸੁਖਵਿੰਦਰ	20.00

86.	ਕਾਰਲ ਮਾਰਕਸ ਦਾ ਕਲਾ ਦਰਸ਼ਨ	200.00
87.	ਸਤਾਲਿਨ - ਇੱਕ ਜੀਵਨੀ / ਰਾਹੁਲ ਸਾਂਕਰਤਾਇਨ	150.00
88.	ਪੋਰਨੋਗ੍ਰਾਫੀ : ਇਕ ਸਰਮਾਏਦਾਰਾ ਕੋਹੜ / ਅਜੇ ਪਾਲ	10.00
89.	ਔਰਤਾਂ ਦੀ ਗੁਲਾਮੀ ਦਾ ਆਰਥਿਕ ਅਧਾਰ / ਸੀਤਾ	10.00

ਅਨੁਰਾਗ ਟਰੱਸਟ (ਬੱਚਿਆਂ ਲਈ)

1.	ਇਵਾਨ / ਵਲਾਦੀਮੀ ਬਗਾਮਲੋਵ	35.00
2.	ਵਾਂਕਾ / ਅਨਤੋਨ ਚੈਖੋਵ	10.00
3.	ਕਿਸਮਤ ਆਪੋ-ਆਪਣੀ / ਜੈਨੇਂਦਰ	20.00
4.	ਕੋਹੇਕਾਫ਼ ਦਾ ਕੈਦੀ / ਤਾਲਸਤਾਏ	30.00
5.	ਛੱਤ 'ਤੇ ਫਸ ਗਿਆ ਬਿੱਲਾ ਅਤੇ ਹੋਰ ਕਹਾਣੀਆਂ	20.00
6.	ਅਜੀਬੋ-ਗਰੀਬ ਕਿੱਸੇ / ਹੋਲਗਰ ਪੁੱਕ	20.00
7.	ਦੋ ਹਿੰਮਤੀ ਕਹਾਣੀਆਂ / ਹੋਲਗਰ ਪੁੱਕ	15.00
8.	ਨਵੇਂ ਜ਼ਮਾਨੇ ਦੀਆਂ ਪਰੀ-ਕਥਾਵਾਂ / ਹੋਲਗਰ ਪੁੱਕ	20.00
9.	ਅਸੀਂ ਸੂਰਜ ਨੂੰ ਵੇਖ ਸਕਦੇ ਹਾਂ / ਮਿਕੋਲ ਗਿੱਲ	10.00
10.	ਗੁਫਾ ਮਾਨਵਾਂ ਦੀਆਂ ਕਹਾਣੀਆਂ / ਮੈਰੀ ਮਾਰਸ	20.00
11.	ਕਿੱਸਾ ਇਹ ਕਿ ਇੱਕ ਪੇਂਡੂ ਨੇ ਦੋ ਅਫ਼ਸਰ ਸ਼ਹਿਰੀ ਅਫਸਰਾਂ ਦਾ ਢਿੱਡ ਕਿਵੇਂ ਭਰਿਆ / ਮਿਖਾਈਲ ਸ਼ਚੇਦ੍ਰਿਨ	15.00
12.	ਸਦਾਨੰਦ ਦੀ ਛੋਟੀ ਦੁਨੀਆਂ / ਸੱਤਿਆਜੀਤ ਰਾਏ	10.00
13.	ਬਾਜ਼ ਦਾ ਗੀਤ / ਮੈਕਸਿਮ ਗੋਰਕੀ	10.00
14.	ਬੱਸ ਇੱਕ ਯਾਦ / ਲਿਓਨਿਦ ਆਂਦਰੇਯੇਵ	10.00
15.	ਦਾਦਾ ਅਰਖ਼ੀਪ ਅਤੇ ਲਿਓਨਕਾ / ਗੋਰਕੀ	20.00
16.	ਦਾਨਕੋ ਦਾ ਬਲ਼ਦਾ ਹੋਇਆ ਦਿਲ / ਗੋਰਕੀ	10.00
17.	ਘਰ ਦੀ ਲਲਕ / ਨਿਕੋਲਾਈ ਤੇਲੇਸ਼ੋਵ	20.00
18.	ਗੁੱਲੀ-ਡੰਡਾ / ਪ੍ਰੇਮਚੰਦ	10.00
19.	ਹਾਰ ਦੀ ਜਿੱਤ / ਸ਼ੁਦਰਸ਼ਨ	10.00
20.	ਹਰਾਮੀ / ਮਿਖ਼ਾਇਲ ਸ਼ੋਲੋਖ਼ੋਵ	20.00
21.	ਕਾਬੁਲੀਵਾਲ਼ਾ / ਰਵਿੰਦਰਨਾਥ ਟੈਗੋਰ	10.00
22.	ਮੁਸੀਬਤ ਦਾ ਸਾਥੀ / ਸੇਰੇਗਈ ਮਿਖਾਲਕੋਵ	10.00
23.	ਪੋਸਟਮਾਸਟਰ / ਰਵਿੰਦਰਨਾਥ ਟੈਗੋਰ	10.00

24.	ਰਾਮਲੀਲਾ / ਪ੍ਰੇਮਚੰਦ	10.00
25.	ਸੇਮਾਗਾ ਕਿਵੇਂ ਫੜਿਆ ਗਿਆ / ਗੋਰਕੀ	10.00
26.	ਤੁਰਦਾ-ਫਿਰਦਾ ਟੋਪ / ਐੱਨ. ਨੋਸੋਵ	10.00
27.	ਬੇਜਿਨ ਚਰਾਗਾਹ / ਇਵਾਨ ਤੁਰਗੇਨੇਵ	20.00
28.	ਉਲਟਾ ਰੁੱਖ / ਕ੍ਰਿਸ਼ਨਚੰਦਰ	35.00
29.	ਵੱਡੇ ਭਾਈ ਸਾਹਬ / ਪ੍ਰੇਮਚੰਦ	10.00
30.	ਇੱਕ ਛੋਟੇ ਮੁੰਡੇ ਅਤੇ ਕੁੜੀ ਦੀ ਕਹਾਣੀ ਜਿਹੜੇ ਬਰਫ਼ੀਲੀ ਠੰਡ 'ਚ ਕਾਂਬੇ ਨਾਲ਼ ਮਰੇ ਨਹੀਂ / ਮੈਕਸਿਮ ਗੋਰਕੀ	10.00
31.	ਬਹਾਦਰ / ਅਮਰਕਾਂਤ	10.00
32.	ਹਿਰਨੋਟਾ / ਦਮਿਤਰੀ ਮਾਮਿਨ ਸਿਬਿਰੇਆਕ	10.00

——::——

हमारे पास आपको मिलेंगे

- विश्व क्लासिक्स
- स्तरीय प्रगतिशील साहित्य
- भगतसिंह और उनके साथियों का सम्पूर्ण उपलब्ध साहित्य
- मक्सिम गोर्की की पुस्तकों का सबसे बड़ा संग्रह
- भारतीय इतिहास के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण क्रान्तिकारी दस्तावेज़
- मार्क्सवादी साहित्य
- जीवन और समाज की समझ तथा विचारोत्तेजना देने वाला साहित्य
- प्रगतिशील क्रान्तिकारी पत्र-पत्रिकाएँ
- दिमाग़ की खिड़कियाँ खोलने और कल्पना की उड़ानों को पंख देने वाला बाल-साहित्य
- सुन्दर, सुरुचिपूर्ण, प्रेरक पोस्टर और कार्ड
- क्रान्तिकारी गीतों के कैसेट
- साहित्यिक व क्रान्तिकारी उद्धरणों-चित्रों वाली टीशर्ट, कैलेण्डर, बुकमार्क, डायरी आदि ...

ऐसा साहित्य जो सपने देखने और भविष्य-निर्माण के लिए प्रेरित करता है!

(हिन्दी, अंग्रेज़ी, पंजाबी और मराठी में)

किताबें नहीं,
हम आने वाले कल के सपने लेकर आये हैं
किताबें नहीं,
हम असली इन्सान की तरह

जनचेतना

मुख्य केन्द्र : डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020

फ़ोन : 0522-4108495

अन्य केन्द्र :

- 114, जनता मार्केट, रेलवे बस स्टेशन रोड,
  गोरखपुर-273001, फ़ोन : 7398783835
- दिल्ली : 9999750940
- नियमित स्टॉल : कॉफ़ी हाउस के पास, हज़रतगंज, लखनऊ
  शाम 5 से 8 बजे तक

सहयोगी केन्द्र

- जनचेतना पुस्तक विक्रय केन्द्र, दुकान नं. 8, पंजाबी भवन,
  लुधियाना (पंजाब) फ़ोन : 09815587807

ईमेल : info@janchetnabooks.org

वेबसाइट : www.janchetnabooks.org

हमारी बुकशॉप और प्रदर्शनियों से पुस्तकें लेने के अलावा आप हमसे डाक से भी किताबें मँगा सकते हैं। हमारी वेबसाइट पर जाकर पुस्तक सूची से पुस्तकें चुनें और ईमेल या फोन से हमें ऑर्डर भेज दें। आप मनीऑर्डर या चेक से या सीधे हमारे बैंक खाते में भुगतान कर सकते हैं। आप वेबसाइट पर दिये Instamojo के लिंक से भी भुगतान कर सकते हैं। हमारी किताबें आप Amazon और Flipkart से भी ऑनलाइन मँगा सकते हैं।

बैंक खाते का विवरण:

ACC. NAME: JANCHETNA PUSTAK PRATISHTHAN SAMITI

Acc. No. 0762002109003796

Bank: Punjab National Bank



यदि आपको महज़ मनोरंजन चाहिए,
महज़ नशे की एक ख़ुराक,
दिल को बहलाने के लिए एक ख़याल
तो नहीं हैं ऐसी किताबें हमारे पास।
हम ऐसी किताबें लेकर आये हैं
जो आपकी मोहनिद्रा झकझोरकर तोड़ दें,
जो आज के हालात पर
आपको सोचने के लिए मजबूर कर दें।
हम किताबें नहीं
लड़ने की ज़िद
और हालात की बेहतरी की उम्मीदें
लेकर आये हैं,
हम आने वाले कल के सपने लेकर आये हैं।
हम लेकर आये हैं
एक सार्थक, स्वाभिमानी, मुक्त जीवन की तड़प।
किताबें नहीं
हम असली इंसान की तरह
जीने का संकल्प लेकर आये हैं।

जनचेतना

एक सांस्कृतिक मुहिम
एक वैचारिक प्रोजेक्ट
वैकल्पिक मीडिया का एक मॉडल